ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

# नियम का सार

( भाग 4 )

श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसार परमागम के परम आलोचना अधिकार तथा शुद्धनिश्चय प्रायश्चित अधिकार पर अध्यात्म युगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के ईसवी सन् 1971 के वर्ष के धारावाहिक शब्दशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा ( राज. )


: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ ( सौराष्ट्र ) – 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले ( वेस्ट ), मुम्बई-400 056

फोन : ( 022 ) 26130820

**विक्रम संवत 2079** | **वीर संवत 2549** | **ई. सन 2023**

**—: प्रकाशन :—**

**श्रावण कृष्ण एकम्, वीरशासन जयन्ती**

(दिव्यध्वनि दिवस) दिनांक, 04 जुलाई 2023

के अवसर पर

**—: प्राप्ति स्थान :—**

**1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट**

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250    फोन : 02846–244334

**2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई–400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

**विवेक कम्प्यूटर**

अलीगढ़।

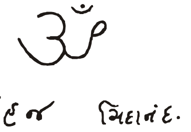

# प्रकाशकीय

**मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।**
**मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं।।**

भगवान महावीर और गौतम गणधर के बाद जिनके नाम का उल्लेख किया जाता है, ऐसे भरत के समर्थ आचार्य, साक्षात्, सदेह विदेहक्षेत्र जाकर सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि का प्रत्यक्ष रसपान करनेवाले श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव महान योगीश्वर हैं। अनेक महान आचार्य उनके द्वारा रचित शास्त्रों के आधार देते हैं, इससे ऐसा प्रसिद्ध होता है कि अन्य आचार्य भी उनके वचनों को आधारभूत मानते हैं।

वे निर्मल पवित्र परिणति के धारक तो थे ही, परन्तु पुण्य में भी समर्थ थे कि जिससे सीमन्धरभगवान का साक्षात् योग हुआ। महाविदेह से वापस आने के पश्चात् पोन्नूर तीर्थधाम में साधना करते-करते उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की। जिसमें श्री समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, अष्टपाहुड़—यह पाँच परमागम तो प्रसिद्ध हैं ही, परन्तु इनके उपरान्त भी अनेक शास्त्रों की रचना उन्होंने की है।

'श्री समयसार' इस भरतक्षेत्र का सर्वोत्कृष्ट परमागम है। उसमें नवतत्त्वों का शुद्धनय की दृष्टि से निरूपण करके जीव का शुद्धस्वरूप प्रकाशित किया है। 'श्री प्रवचनसार' में नाम के अनुसार जिन प्रवचन का सार झेला है और उसे ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन, ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन और चरणानुयोगसूचक चूलिका नामक तीन अधिकारों में विभाजित किया है। 'श्री नियमसार' में मुख्यरूप से शुद्धनय से जीव, अजीव, शुद्धभाव, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, प्रायश्चित, समाधि, भक्ति, आवश्यक, शुद्धोपयोग इत्यादि का वर्णन है। 'श्री पंचास्तिकायसंग्रह' में कालसहित पाँच अस्तिकायों का (अर्थात् छह द्रव्यों का) और नवपदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग का निरूपण है। तथा 'श्री अष्टपाहुड़' एक दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमें सम्यक् रत्नत्रय एक ही मोक्षमार्ग है, इसकी दृढ़तापूर्वक स्थापना की गयी है।

श्री नियमसार परमागम मुख्यरूप से मोक्षमार्ग के निरूपचार निरूपण का अनुपम ग्रन्थ है। 'नियम' अर्थात् जो अवश्य करनेयोग्य हो, वह अर्थात् रत्नत्रय। 'नियमसार' अर्थात् नियम का सार अर्थात् शुद्ध रत्नत्रय। इस शुद्ध रत्नत्रय की प्राप्ति परमात्मतत्त्व का आश्रय करने से ही होती है। निगोद से लेकर सिद्ध तक की सर्व अवस्थाओं में—शुभ, अशुभ और शुद्ध विशेषों में—रहा हुआ जो नित्य-निरंजन टंकोत्कीर्ण शाश्वत् एकरूप शुद्धद्रव्य सामान्य, वह परमात्मतत्त्व है। वही शुद्ध अन्त:तत्त्व, कारणपरमात्मा, परमपारिणामिकभाव इत्यादि नामों से कहा जाता है। इस परमात्मतत्त्व की उपलब्धि अनादि काल से अनन्त-अनन्त दु:ख को अनुभव करते हुए जीव ने एक क्षणमात्र भी नहीं की और इससे सुख के लिये उसके सर्व प्रयत्न (द्रव्यलिंगी मुनि के व्यवहाररत्नत्रय तक) सर्वथा व्यर्थ गये हैं। इसलिए इस परमागम का एकमात्र उद्देश्य जीवों को परमात्मतत्त्व की उपलब्धि अथवा आश्रय कराने का है।

इस शास्त्र में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव की प्राकृत गाथाओं पर तात्पर्यवृत्ति नाम की संस्कृत टीका लिखनेवाले मुनिवरश्री पद्मप्रभमलधारिदेव हैं। वे श्री वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य हैं और विक्रम की १३वीं शताब्दी में हो गये हैं। श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के हृदय में रहे हुए परम गम्भीर आध्यात्मिक भावों को अपने अन्तर्वेदन के साथ मिलानकर इस टीका में स्पष्ट रीति से अभिव्यक्त किया है। इस टीका में आनेवाले कलशरूप काव्य अतिशय मधुर हैं और अध्यात्म मस्ती से तथा भक्तिरस से भरपूर हैं। टीकाकार मुनिराज ने गद्य तथा पद्यरूप से परमपारिणामिकभाव को तो बहुत-बहुत गाया है। पूरी टीका मानो कि परमपारिणामिकभाव का और तदाश्रित मुनिदशा का एक महाकाव्य हो, ऐसा मुमुक्षु हृदय को मुदित करता है। संसार दावानल समान है और सिद्धदशा तथा मुनिदशा परम सहजानन्दमय है—ऐसे भाव का एकधारा वातावरण पूरी टीका में ब्रह्मनिष्ठ मुनिवर ने अलौकिक रीति से सृजित किया है और स्पष्टरूप से दर्शाया है कि मुनियों की व्रत, नियम, तप, ब्रह्मचर्य, त्याग, परीषहजय इत्यादिरूप से कोई भी परिणति हठपूर्वक, खेदयुक्त, कष्टजनक और नरकादि के भयमूलक नहीं होती परन्तु अन्तरंग आत्मिक वेदन से होनेवाली परम परितृप्ति के कारण सहजानन्दमय होती है।

श्री नियमसार में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने 187 गाथायें प्राकृत में रची हैं। उन पर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीका लिखी है। ब्रह्मचारी श्री शीतलप्रसादजी ने मूल गाथाओं का तथा टीका का हिन्दी अनुवाद किया है। श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा इस नियमसार की मूल गाथायें, उनका गुजराती पद्यानुवाद, संस्कृत टीका और उस गाथा-टीका का अक्षरश: गुजराती-हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया गया है। इस शास्त्रजी में प्रतिपादित विषयवस्तु को निम्नानुसार बारह अधिकारों में प्रस्तुत किया गया है।

(1) जीव अधिकार, (2) अजीव अधिकार, (3) शुद्धभाव अधिकार, (4) व्यवहार चारित्र अधिकार, (5) परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार, (6) निश्चय प्रत्याख्यान अधिकार, (7) परम आलोचना अधिकार, (8) शुद्धनिश्चय प्रायश्चित्त अधिकार, (9) परम समाधि अधिकार, (10) परम भक्ति अधिकार, (11) निश्चय परमआवश्यक अधिकार, (12) शुद्धोपयोग अधिकार।

यह नियमसार ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री को अत्यन्त प्रिय था। आचार्यदेव ने निज भावना के निमित्त रचना की होने से कारणपरमात्मा को बहुत ही घोंटा है, जो गुरुदेवश्री को अपने आचार्य गुरुवर की उत्कृष्ट साधना स्मरण कराता था। उन्होंने इस पर बहुत ही गहराई से स्वाध्याय किया था और प्रसिद्ध में बहुत बार इस ग्रन्थ पर प्रवचन भी किये थे। इन प्रवचनों में से अपने पास छह बार के प्रवचन पूरे उपलब्ध हैं। यहाँ प्रस्तुत प्रवचन उनमें से एक बार के प्रवचन हैं, जो वीर संवत् 2497 (ई.स. 1971) वर्ष के दौरान नियमसार शास्त्र पर 202 प्रवचन हैं। पूज्य गुरुदेवश्री को निरन्तर ऐसी भावना रहती थी कि मुमुक्षु नितरते सत्धर्म का श्रवण करके निज कल्याण के मार्ग में आगे बढ़ें। इसी उत्कृष्ट भावना से ऐसे गहन शास्त्र कि जो कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने निज भावना के लिये रचा है, उसे पूज्यश्री ने छह-छह बार प्रसिद्ध सभा में लिया था। ये गहन प्रवचन यहाँ अक्षरश: शास्त्ररूप से प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इस प्रकार यह शास्त्र वास्तव में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रभावना का ही फल है। अध्यात्म का गहरा रहस्य समझाकर पूज्य गुरुदेवश्री ने जो अपार उपकार किया है, उसका वर्णन वाणी से करने में हम असमर्थ हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की उपलब्धि सी.डी., डी.वी.डी., वेबसाईट (www.vitragvani.com) तथा ऐप (Vitragvani App) तथा सोशल मीडिया (www.youtube.com/c/vitragvani) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा की गयी है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की ऐसी भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का अधिकतम लाभ सामान्यजन प्राप्त करें कि जिससे यह वाणी शाश्वत् बनी रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरश: ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप नियमसार शास्त्र पर 1971 में हुए 202 प्रवचन यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं। उसमें से नियम का सार, भाग-4 में यहाँ (7) परम आलोचना अधिकार और (8) शुद्धनिश्चय प्रायश्चित अधिकार पर हुए धारावाही 26 प्रवचन प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झबेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरतधारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उनके आभारी हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर गुजराती में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य श्री निजेश जैन, सोनगढ़ द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्रीमती पारुलबेन सेठ, विलेपार्ला; श्री दिनेशभाई शाह, विलेपार्ला; श्री अतुलभाई जैन, मलाड और श्रीमती आरतीबेन जैन, मलाड द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां, जिला-भीलवाड़ा (राज) द्वारा किया गया है। इस प्रसंग पर ट्रस्ट सभी के प्रति आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा उत्तरदायित्व पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक तथा उपयोग की एकाग्रतापूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशनकार्य में प्रमादवश अथवा अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमायाचना करते हैं। सभी मुमुक्षुओं से निवेदन है कि अशुद्धियों की नोंध ट्रस्ट को प्रेषित करें जिससे आगामी आवृत्ति में सुधार किया जा सके। यह प्रवचन vitragvani.com तथा vitragvani app पर उपलब्ध हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री के करकमल में सादर समर्पित करते हैं। पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधे ऐसी भावना से विराम लेते हैं। इति शिवम्।

ट्रस्टीगण

**श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,**

विलेपाला, मुम्बई

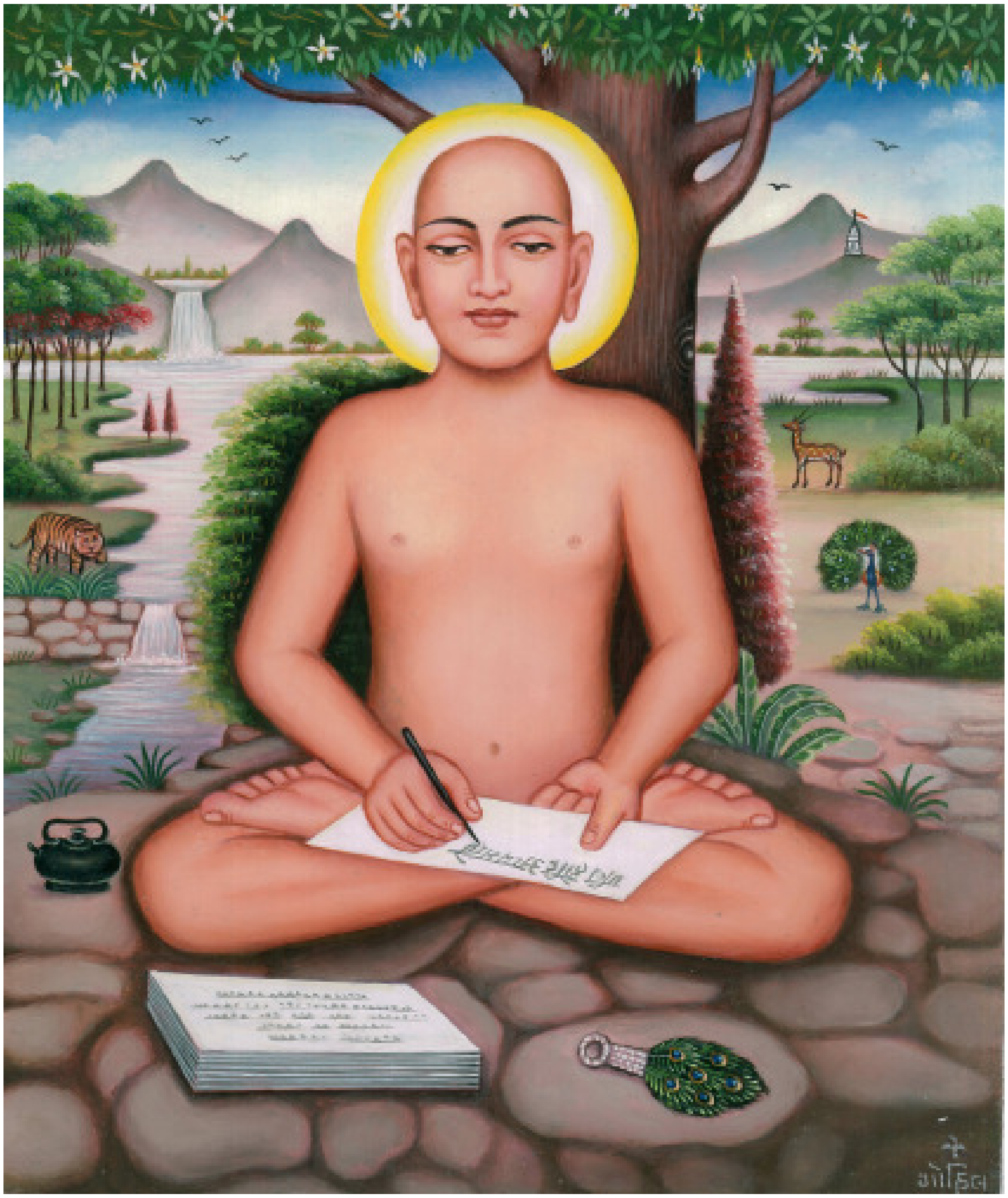

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

# अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

## ( संक्षिप्त जीवनवृत्त )

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 - ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

**शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।**

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन–उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्‌भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते–करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

**का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 – फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

## अनुक्रमणिका


| प्रवचन नं. | दिनांक | गाथा / श्लोक नं. | पृष्ठ नं. |
|---|---|---|---|
| | निश्चयप्रत्याख्यान अधिकार | | |
| १०६ | २७-०८-१९७१ | १०८-१०९, १५२-१५३ | १ |
| १०७ | २८-०८-१९७१ | १०९, १५४-१५५ | १५ |
| १०८ | २९-०८-१९७१ | १५६-१५९ | ३० |
| १०९ | ३०-०८-१९७१ | ११० | ४५ |
| ११० | ३१-०८-१९७१ | ११०, १६०-१६१ | ५९ |
| १११ | ०१-०९-१९७१ | १११, १६२-१६४ | ७३ |
| ११२ | ०२-०९-१९७१ | १६५-१६८ | ८७ |
| ११३ | ०३-०९-१९७१ | ११२, १६९-१७० | १०१ |
| ११४ | ०४-०९-१९७१ | ११२, १७१-१७२ | ११५ |
| ११५ | ०५-०९-१९७१ | १७३-१७५ | १२९ |
| ११६ | ०६-०९-१९७१ | १७६-१७९ | १४३ |
| | शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त अधिकार | | |
| ११७ | ०७-०९-१९७१ | ११३, १८० | १५६ |
| ११८ | ०८-०९-१९७१ | ११४-११५, १८१ | १७० |
| ११९ | ०९-०९-१९७१ | ११६, १८२ | १८६ |
| १२० | १०-०९-१९७१ | ११६-११७, १८३ | २०१ |
| १२१ | ११-०९-१९७१ | ११७, १८४-१८६ | २१५ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १२२ | १२-०९-१९७१ | १८६-१८८ | २३० |
| १२३ | १३-०९-१९७१ | ११८, १८९ | २४३ |
| १२४ | १४-०९-१९७१ | ११९ | २५७ |
| १२५ | १५-०९-१९७१ | ११९ | २७२ |
| १२६ | १६-०९-१९७१ | ११९ | २८७ |
| १२७ | १७-०९-१९७१ | १२०, १९० | ३०१ |
| १२८ | १८-०९-१९७१ | १२०, १९१-१९४ | ३१७ |
| १२९ | १९-०९-१९७१ | १२१, १९५ | ३३१ |
| १३० | २०-०९-१९७१ | १९६-१९८ | ३४५ |
| १३१ | २१-०९-१९७१ | १९९ | ३६० |

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

# नियम का सार

## ( भाग - ४ )

**श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यवर प्रणीत श्री निमयसार परमागम पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के ई.स. १९७१ वर्ष के अक्षरशः प्रवचन**

**भाद्र शुक्ल ६, शुक्रवार, दिनांक - २७-८-१९७१**
**गाथा-१०८-१०९, श्लोक-१५२-१५३, प्रवचन-१०६**

दशलक्षणी पर्व का दूसरा दिन है। मार्दव, उत्तम मार्दव—निर्मानता, उत्तम निर्मानता। आत्मा में सम्यग्दर्शन, अनुभवसहित किसी भी चीज़ में गर्व न करना, नम्रता रखना, उसका नाम मार्दवधर्म है।

**उत्तमणाणपहाणो उत्तमतवयरणकरणसीलो वि।**
**अप्पाणं जो हीलदि मद्दवरयणं भवे तस्स॥३९५॥**

(–कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

**जो कोई धर्मात्मा उत्तम ज्ञान से तो प्रधान हो...** शास्त्र का महाज्ञान इत्यादि विशेष हो, सम्यग्ज्ञान हो **और उत्तम तपश्चरण करने का जिसका स्वभाव हो...** इच्छानिरोध... अमृत का सागर उछालने में उग्र पुरुषार्थ (ऐसी) जिसकी परिणति है, वह '**अप्पाणं जो हीलदि**' ऐसा होने पर अपने आत्मा का (—पर्याय का) अनादर करता है (कि) अरे आत्मा! तू क्या चीज़? तेरे से विशेष शुद्धज्ञानी हैं, गणधर जैसे चार ज्ञान के धनी हैं,

केवलज्ञानी हैं, उनके समक्ष तेरी अल्पज्ञता की कीमत क्या? सम्यग्ज्ञानसहित की बात है। भानरहित करे, उसको तो अभी शास्त्र के पठन का—पढ़ने का अभिमान है, मैं बहुत पढ़ा हूँ और दिखावा करे दूसरे को बताने को, मैं इतना पढ़ा हूँ, मैं इतना याद रखता हूँ, इतनी धारणा मेरे में है—वह तो सब मिथ्या अभिमान है। मिथ्यात्वसहित का उसका गर्व है। आहाहा!

जिसको अपने आत्मा के आनन्द का ज्ञान हुआ है, पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान का मैं स्वामी हूँ, ऐसी मेरी चीज़ में से जो सम्यग्ज्ञान हुआ हो, तो भी अपने आत्मा को **'हीलदि'**—नीचा बताता है। मैं कहाँ, कहाँ परमात्मा, कहाँ केवलज्ञान, कहाँ चार ज्ञान-चौदह पूर्व की एक अन्तर्मुहूर्त में रचना करने की गणधर की सामर्थ्य! ऐसे अपने आत्मा को, अपने से अधिक गुणी को लक्ष्य में लेकर निर्मान होता है, गर्व छोड़ देता है। समझ में आया? तपस्या भी थोड़ी-बहुत हो, इच्छा निरोध किया हो तो भी (कहे), कहाँ प्रभु? गणधरों ने तो महा उपवास छह-छह महीने के किये, आत्मा के आनन्द में रहे, उनके समक्ष मेरी दशा क्या है? समझ में आया? ज्ञान और चारित्र और तप—तीनों लिये।

अपने से अधिक को लक्ष्य में लेकर आत्मा को मदरहित करे अथवा नीचा बतावे, अपने को हल्का बतावे। हल्का समझते हो? छोटा। **'तस्स मद्दवरयणं भवे' धर्मात्मा को मार्दव नाम का धर्मरत्न होता है।** यह धर्मरत्न। समझ में आया? पाठ में है, हों! **'मद्दवरयणं भवे'** निर्मान... अभिमान से रहित—गर्व से रहित अपनी निर्मानता बताता है। दूसरे के निकट अपने को दिखाव में हल्का बताता है, छोटा बताता है, **उसको मार्दव नाम का धर्मरत्न होता है।** आहाहा! **सब शास्त्रों का जाननेवाला पण्डित हो तो भी ज्ञानमद नहीं करे।** यह विचारे कि **मेरे से बड़े (अवधि) मनःपर्ययज्ञानी हैं, केवलज्ञानी सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी है, मैं क्या हूँ?** आहाहा!

**उत्तम तप करे तो भी उसका मद नहीं करे, आप सब जाति...** अपनी माता का पक्ष ऊँचा हो तो मद न करे कि मेरी माता ऐसी है। **कुल...** पिता बड़े कुल का पुत्र हो तो क्या? तीर्थंकर जैसे जिसमें जन्मे, तो साधारण कुल की क्या बात है? ऐसा अपने कुल का अभिमान न करे। **बल...** अपना बल हो शरीर का और आत्मा का, उसका भी अभिमान न करे। **ऐश्वर्य...** आचार्यपद हो, उपाध्यायपद हो, संघ का कोई पद हो—

उसका गर्व न करे, **तप का...** गर्व न करे। अपना सुन्दर शरीर हो रूप जड़ का, उसका गर्व न करे। उसका गर्व करे तो मिथ्यात्व है। **सबसे बड़े हो तो भी परकृत अपमान को भी सहते हैं।** साधारण प्राणी उसका अपमान कर दे। अपमान क्या चीज़ है? मैं तो ज्ञानानन्द हूँ, मुझको जाने बिना वह अपमान कैसे करे? समझ में आया?

'वंदे चक्री तथापि न होवे मान जब...' श्रीमद् में आता है न? छह खण्ड का राजा, छियानवें हजार स्त्रियाँ (हों और) ८४ लाख हाथी निकले हो, उस पर बैठा हो, नीचे (उतरकर) मुनि को वन्दन करे। समझ में आया? 'वंदे चक्री तथापि न होवे मान जब...' उस समय गर्व करके कषाय उत्पन्न नहीं करता, उसको उत्तम मार्दव कहा जाता है। सम्यग्दर्शन, अनुभवसहित ज्ञाता-दृष्टा में अभिमान करना नहीं और निर्मानपने—अकषायस्वभावपने रहना, उसका नाम मार्दवधर्म कहते हैं। आज दूसरा दिन है। इसमें तो '**मद्दवरयणं**' शब्द प्रयोग किया है। मार्दव रत्न। आहाहा! जिस रत्न की कीमत से मुक्ति मिले, इस रत्न की कीमत से मुक्ति मिलती है। निर्मान... निर्मान...

यहाँ अपने नियमसार। उपासक का आया है न? वह चल गया है। अमृतचन्द्राचार्य का (श्लोक) चल गया है, कल आ गया है। **और उपासकाध्ययन में (श्री समन्तभद्रस्वामीकृत रत्नकरण्डश्रावकाचार में १२५वें श्लोक द्वारा) कहा है कि....** देखो! आलोचना के चार भेद कहेंगे।

**आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम्।**
**आरोपयेन्महा-व्रत-मामरण-स्थायि निःशेषम्॥**

जो कोई पुण्य-पाप किया, कराया और करते को सम्मत हुआ, **सर्व पापों की निष्कपटरूप से आलोचना करके,...** अपने स्वरूप की सम्हाल करके... आनन्दमूर्ति प्रभु ज्ञानसमुद्र आत्मा की सम्हाल, आलोच करके ऐसा **मरणपर्यन्त रहनेवाला, निःशेष (-परिपूर्ण) महाव्रत धारण करना।** व्यवहार लिया है। अब, चारित्र धारण करते हैं, ऐसा कहते हैं। उसमें महाव्रत आता है, महाव्रत का विकल्प आता है न। रत्नकरण्ड श्रावकाचार है न, तो व्यवहार लिया है।

**और (इस १०७ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं):—** लो, भावलिंगी सन्त—मुनिराज हैं, अतीन्द्रिय

आनन्द के प्रचुर स्वसंवेदनन में लवलीन। अपना अतीन्द्रिय आनन्द, उसके वेदन में लवलीन ऐसे मुनि यह श्लोक कहते हैं।

**आलोच्यालोच्य सुकृतमसुकृतंघोरसन्सारमूलं,**
**शुद्धात्मानं निरुपधि-गुणं चात्मनैवावलम्बे।**
**पश्चादुच्चैः प्रकृति-मखिलां द्रव्य-कर्म-स्वरूपां,**
**नीत्वा नाशं सहज-विलसद्बोध-लक्ष्मीं व्रजामि॥१५२॥**

अरे धर्मात्मा! ऐसा कहते हैं। **श्लोकार्थः—घोर संसार के मूल ऐसे सुकृत और दुष्कृत...** हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोगवासना, काम, क्रोध, रति, अरति यह तो पाप दुष्कृत है, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण आदि ऐसे सब शुभभाव, वे घोर संसार का मूल हैं। ऐसा तो लिखा है। शुभ और अशुभभाव दोनों संसार के मूल हैं, घोर संसार का मूल। आहाहा! आलोचना अधिकार है न! यह समस्त प्रकार से लोंच कर डाल—निकाल दे—छोड़ देना। आहाहा! इतनी समता, इतना सम्यग्ज्ञान की ओर का उसका झुकाव, इतनी अतीन्द्रिय आनन्द की लहर उठती हो। कहते हैं, **घोर संसार के मूल...** सेठी! सुकृत... पंच महाव्रत आदि विकल्प शुभभाव, वह घोर संसार का मूल है। पापभाव की तो बात ही क्या करना? हिंसा, झूठ, चोरी, विषय-भोगवासना, कमाना धूल—यह तो महा घोर संसार का मूल है (ही), आहाहा! परन्तु यहाँ तो सुकृत को घोर संसार का मूल कहा है। वीतरागी मुनि हैं और वीतरागधर्म में लाने को (कहते हैं कि) रागभाव, वह सर्व संसार का मूल है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा है। उसमें से जितनी बहिर्ललक्ष्मी राग की वृत्ति उत्पन्न होती है शुभ या अशुभ, दोनों घोर संसार का मूल है। बबूल... बबूल कहते हैं न? बावण—बबूल लाखों-करोड़ों जो वन में वृक्ष हों, अकेले काँटे पर और नीचे पड़े हों, ऐसे वन में निकले हों, तो कहाँ रास्ता, कहाँ जाना? इसी प्रकार संसार चौरासी के अवतार घोर संसार दुःख का काँटा पड़ा है उसमें। आहाहा! काँटे ही पड़े हैं। ऊपर काँटे, नीचे काँटे और कोई निकलने का रास्ता हो नहीं और वहाँ जा चढ़े। आहाहा! ऊपर आकाश, नीचे धरती, रास्ता बाहर नहीं, कहाँ जाना? इसी प्रकार चौरासी लाख अवतार एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौन्द्रिय, नरक की

योनि, आहाहा! बड़े राजा हों यहाँ और मरकर नरक में जाये, आहाहा! यह क्या है? चिल्लाहट मचाये। पीड़ा... पीड़ा... ...मनुष्य को.... क्या कहा जाता है? नाम क्या कहा जाता है? जमशेदपुर। जमशेदपुर की भट्टी। राजकुमार हो विवाहित कल का, उसमें जीवित डाले अग्नि में और जो दुःख हो, उससे अनन्तगुना दुःख तो पहले नरक में दस हजार वर्ष के आयुष्य में है। वह संसार घोर संसार। आहाहा!

ऐसे संसार का मूल शुभ और अशुभभाव **सदा आलोच-आलोचकर... आलोच-आलोचकर...** दो बार है न? **'आलोच्यालोच्य'** दो बार है। अन्दर में से उखाड़ डाले। राग का विकल्प भी न रहे। आहाहा! भगवान अकेला वीतरागमूर्ति प्रभु, उसमें दृष्टि रखकर स्थिरता में इतना जम गया हो कि जिसमें **आलोच-आलोचकर...** अपने स्वरूप को देख-देखकर राग का नाश हो जाता है। आहाहा! मैं ऐसे **आलोच-आलोचकर मैं निरुपाधिक गुणवाले शुद्ध आत्मा को...** ध्याता हूँ—मैं ध्यान करता हूँ, मेरे स्वभाव में मैं आरूढ़ होता हूँ, ऐसा कहते हैं। कैसा हूँ मैं? कैसा हूँ मैं?

**निरुपाधिक गुणवाले...** अन्तर में ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि निरुपाधिक गुणस्वभाववाला मैं। अनादि-अनन्त अनन्त ऐसे गुण निरुपाधिक स्वभाव मेरा है। आहाहा! ऐसा कहकर क्या कहा? राग शुभ है, वह भी उपाधि है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, नामस्मरण, भगवान णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं—ऐसा विकल्प उठाना, यह राग है, उपाधि है। आहाहा! वीतरागी सन्तों की वाणी झेलना कठिन है कायर को। भाई! चौरासी के अवतार में किसी स्थान में कहीं शान्ति नहीं। अशान्ति जलहलती है कि यह कषाय, वह मैं। ऐसे संसार में दुःखरूप दावानल से बचने के लिये स्वाभाविक गुणवाले शुद्धात्मा को—मैं त्रिकाली शुद्ध आनन्द सच्चिदानन्द ऐसे **आत्मा को आत्मा से ही...** अर्थात्? ऐसा पवित्र गुणवाला शुद्ध आत्मा, उसे शुद्ध परिणति द्वारा... समझ में आया?

आत्मा को शुद्ध आत्मा की परिणति से ही **अवलम्बता हूँ।** आहाहा! द्रव्यस्वभाव शुद्ध ध्रुव, उसकी शुद्ध परिणति द्वारा... पुण्य-पाप तो घोर मूल कहा, उसको छोड़ने को अपने स्वरूप में निर्मल वीतरागी परिणति के द्वारा अवलम्बता हूँ। वीरचन्दभाई! ऐसा मार्ग है। उन प्रमुखों को खबर नहीं होती। वे तो स्वयं कहते थे मुझे। वे सेठिया, उन्हें

भी कुछ खबर नहीं होती। हाँक रखते गाड़ियाँ... ऐसे जाये। आहाहा! पंथ की खबर नहीं होती कि कैसा पंथ है? और उस पंथ पर जाने से ही मुक्ति होगी, (उसकी) खबर नहीं। सेठ! कौन करा दे? वह करे तो होता है। समझ में आया? आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, प्रभु! भगवान पूर्णानन्द परमात्मा तू है। तेरी चीज़ ही परमात्मा है। वह परम शुद्ध आत्मा शुद्धगुणवाला उस ओर वीतरागी परिणति करके अवलम्बन लेना, उसका नाम आलोचन है। आहाहा! अभी समझ में लाना कठिन पड़े कि यह क्या कहते हैं।

आत्मा से ही शुद्ध आत्मा को... त्रिकाली शुद्ध ध्रुव को वर्तमान आत्मा से ही... आहाहा! पुण्य का विकल्प, वह कोई आत्मा नहीं, वह तो राग है। आहाहा! **आत्मा से ही...** आत्मा अर्थात् अनाकुल शान्ति और अनाकुल ज्ञान, ऐसी निर्विकल्प रागरहित शुद्ध परिणति—पर्याय के द्वारा ध्रुव को अवलम्बता हूँ। आहाहा! है या नहीं? उसमें है। आहाहा! मुनि स्वयं कहते हैं अपना स्वभाव। अहो! मेरा शुद्धगुण स्वभावाला आत्मा, वह मेरी शुद्ध परिणतिरूप आत्मा, उससे मैं अन्तर में अवलम्बता हूँ, मेरे अवलम्बन में आत्मा है, आहाहा! मेरी शुद्धपरिणति का अवलम्बन आत्मा है। शुद्धपरिणति का कारण राग नहीं और अपने द्रव्य में अवलम्बन का कारण कोई विकार या व्यवहार नहीं। आहाहा! **शुद्ध आत्मा को आत्मा से ही...** आत्मा से ही अवलम्बता हूँ, तो क्या ध्रुव को ध्रुव से अवलम्बन है? समझ में आया?

मेरा आत्मा निर्विकारी शुद्ध स्वभाववाला है, पुण्य-पापवाला नहीं। ऐसा मैं आत्मा, अपनी वर्तमान पर्याय में शुद्धता द्वारा—शुद्ध उपयोग द्वारा—शुद्ध परिणति द्वारा—त्रिकाली ध्रुव को अवलम्बता हूँ। आहाहा! लो, इसका नाम संवर। यह आलोचना है न! आलोचना कहो या संवर कहो। अपने आता है, प्रतिक्रमण में आता है। भूतकाल का प्रतिक्रमण और भविष्य का (प्रत्याख्यान) और वर्तमान का संवर। वह यह वर्तमान का संवर। आहाहा! शाम-सवेरे क्या, चौबीस घण्टे हो। अन्तर में द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेकर जितनी शुद्धता प्रगट हुई है, वह कायम रहती है। मुनि को तो कायम संवर ही है। चौबीस घण्टे आलोचना है। आहाहा! आता है न अपने समयसार में। नित्य प्रति.... करते हैं। नित्य प्रतिक्रमण, नित्य आलोचना, नित्य प्रत्याख्यान। आहाहा! समझ में आया? ....है वह तो व्यवहार है विकल्प, वह छूट जाये तो निर्विकल्प भी हो जाये। समझ में आया?

एक व्यक्ति ने प्रश्न किया यह साधु को यह व्यवहार... कि तुम शाम-सवेरे प्रतिक्रमण करते हो, तो शाम को प्रतिक्रमण के काल में निर्विकल्पदशा आ जाये तो क्या करो? नहीं, विकल्प तो करना ही (पड़ेगा), प्रतिक्रमण तो करना ही पड़ेगा। शाम का समय... परन्तु अन्दर निर्विकल्पता आ जाये तो? यह विकल्प तो करना पड़ेगा। कुछ खबर नहीं होती। क्या करना पड़े? वह तो विकल्प है। उससे छूटकर अन्दर स्थिरता निर्विकल्प करना पड़े, (ऐसा) कहाँ आया? परन्तु व्यवहारवाला है न! विधि... विधि से करना। ऐ जेठाभाई! आता है न तुम्हारे? विधि से सब करना, अविधि छोड़ देना, शाम का प्रतिक्रमण विधिपूर्वक करना। बराबर शब्द बोलना, ऐसा बोलना, ऐसा बोलना। निर्विकल्पता आ जाये तो भी वह नहीं... परन्तु वह तो निर्विकल्पता न आवे, तब तक विकल्प होते हैं, परन्तु उसे छोड़कर (निर्विकल्पता) आती हो तो फिर करना रहा कहाँ? मूल लोगों को बाहर का आग्रह हो जाता है न व्यवहार का। भगवान ने शाम-सवेरे प्रतिक्रमण करने का कहा है, वह कैसे जाये? परन्तु कहा है किसलिए? निर्विकल्प स्थिरता के लिये कहा है। उसमें स्थिर न हो सके तो ऐसा शुभभाव होता है, परन्तु हेय है, घोर संसार का मूल है। आहाहा!

यह व्यवहार प्रतिक्रमण और व्यवहार सामायिक और समझे बिना बैठे न सामायिक करने, णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं। सवेरे-शाम.... सामायिक करके बैठे। परन्तु किसकी सामायिक? आत्मा राग से रहित आनन्दस्वरूप है और अन्तर में समता—वीतरागभाव का लाभ तो हुआ नहीं। कहाँ से सामायिक आ गयी? समझ में आया? कहो, सामायिक की होगी या नहीं चिमनभाई! बहुत की होगी। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, पहले तो हम हमारे शुद्धस्वरूप... शुद्धगुणवाला, निरुपाधिक स्वभाववाला मैं आत्मा, उसको **आत्मा से ही...** ऐसा शब्द है। व्यवहार से, विकल्प से मेरी निर्विकल्पता होगी, ऐसा है नहीं। और विकल्प से मेरा अवलम्बन द्रव्य का होगा, त्रिकाली ज्ञायक प्रभु राग से अवलम्बन में आता है, (ऐसा) तीन काल में है नहीं। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग लोगों को सुनने में मिला नहीं और मान लिया कि हम धर्म करते हैं, धर्म करते हैं। जिन्दगी जाती है, भाई! आहाहा! जिसकी—मनुष्य(भव) की एक समय की कीमत... श्रीमद् ने लिखा है न, शुभमणि... महा मणिरत्न हो अरबों का उससे भी (अधिक)

मनुष्य के देह की एक समय की कीमत है, भाई! ऐसा समय, चैतन्य को पहुँचने, आराधने के लिये ऐसा समय मिलना मुश्किल है। आहाहा! है न? 'तो भी अरे भवचक्र का फेरा नहीं एक ही टला।' भव के अभाव की बात से उठे हैं श्रीमद्। आहाहा!

**फिर द्रव्यकर्मस्वरूप समस्त प्रकृति को अत्यन्त नष्ट करके...** ऐसे आत्मा को आराधता हूँ, अवलम्बता हूँ और विशेष फिर द्रव्यकर्मस्वरूप समस्त जड़कर्म अत्यन्त नष्ट करके **सहज-विलसती ज्ञानलक्ष्मी को...** आहाहा! कहो, सेठ! तुम्हारे धूल लक्ष्मी नहीं। हैरान... हैरान करनेवाली है। **सहज-विलसती ज्ञानलक्ष्मी**—केवलज्ञान... आहाहा! मेरे आत्मा का मैंने शुद्ध परिणति से अवलम्बन लिया, तो द्रव्यकर्म का नाश हो जायेगा और मेरी ज्ञानलक्ष्मी **मैं प्राप्त करूँगा।** आहाहा! मेरे निधान में केवलज्ञान लक्ष्मी पड़ी है अन्दर में, उसका अवलम्बन करके पर्याय में मैं केवलज्ञान लक्ष्मी प्राप्त करूँगा। आहाहा! समझ में आया? मैं प्राप्त करूँगा निःसन्देह। भाई! बीच में कर्म का उदय आ जाये, विघ्न आवे। अरे! कौन विघ्न? सुन न! आलोचना में पहला मांगलिक में आया था। प्रभु! तेरा जिसने शरण लिया, विघ्न किसका? आत्मा आनन्दमूर्ति शुद्धस्वभाव का जिसने शरण लिया, विघ्न किसका? विघ्न है कहाँ जगत में? कोई चीज़ कहाँ है? मैं बादशाह ज्ञान का चक्रवर्ती अपने स्वरूप की लक्ष्मी साधता हूँ, साधते-साधते मैं केवलज्ञान लूँगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह कायर का काम नहीं। हें... हें... बनिया की तरह विह्वल की तरह करे, हाँ... हाँ... ऐसा होता है। वह यहाँ नहीं चलता, कहते हैं यहाँ। मूलचन्दभाई! दिगम्बर दर्शन... नागा बादशाह से आघा। समझ में आया? यह मार्ग वह मार्ग! यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा! **मैं प्राप्त करूँगा।** आहाहा! महाराज! छद्मस्थ पंचम काल के साधु और (कहे कि) मैं अपनी सहज विलसती ज्ञानलक्ष्मी प्राप्त करूँगा, निःसन्देह प्राप्त करूँगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! एकाध भव भले हो, परन्तु मैं केवलज्ञान लक्ष्मी प्राप्त करूँगा... करूँगा... करूँगा। संसार का नाश कर, कर्म का नाश कर, संसार तो विकार उदय है, कर्म का नाश करके सहज लक्ष्मी प्राप्त करूँगा। ऐसा समकिती का भाव होता है।

जैसे चक्रवर्ती की तलवार हो न, (उसकी) एक हजार देव सेवा करते हैं। ऐसे तलवार लेकर उठे। वह आता है भरतेशवैभव में। बहुत काल हो गया था भरत को, तो

माता—भरत की माता आयी। अकस्मात् (अचानक) आ गयी लश्कर (के बीच) अयोध्या से विमान में। भरत को खबर करो। क्या है ? लश्कर में कोलाहल हो गया कोलाहल। खबर नहीं, अकस्मात् आ गयी। बहुत दिन हो गये थे राज साधन को (निकले)। माता को ऐसा हो गया कि अरेरे! भरत कहाँ ? लश्कर में कोलाहल हो गया कि कौन दुश्मन आया ? यह हुआ क्या ? तलवार हाथ में लेकर.... चमचमाती तलवार (जिसकी) एक हजार देव सेवा करे, को झेल न सके। उसके दुश्मन तो झेल न सके ऐसी। क्या है ? क्या हुआ ? कौन है ऐसा दुश्मन ? अरे! माताजी आये हैं। हें! अकस्मात् माताजी आये हैं। ...सारे लश्कर में हर्ष हो गया। ओहो माता! खबर बिना आये। तलवार लेकर ऐसे... दुश्मन तो देख न सके। एक हजार देव तो तलवार की सेवा करे और जिस तलवार का चमकता तेज कि वज्र का स्तम्भ हों ऐसे चीर डाले, ऐसी एक तलवार। वज्र के स्तम्भ हों, हीरा के। ककड़ी... ककड़ी कहते हैं न ? ककड़ी। ककड़ी, ककड़ी चीरे, वैसे चीर डाले, ऐसी तलवार।

ऐसे भगवान की आत्मा वीतराग परिणति धारा से अशुद्धता का और कर्म का नाश होता है। चमकती... चमकती वीतरागधारा जहाँ प्रगट हो, किसी का भार नहीं, कहते हैं। और उसके द्वारा हम केवलज्ञान प्राप्त करेंगे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! परन्तु अभी पाँचवें काल में केवलज्ञान है नहीं न ? ऐई! ऐसा कहाँ से लाया ? पण्डितजी! अरे! सुन तो सही। हमारा आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, उसमें केवलज्ञान (रूप) अनन्त पर्यायलक्ष्मी (पड़ी है)। सावधान हो तो थोड़ा काल भले बाकी हो, उस काल की गिनती हमें नहीं है। आहाहा! देखो! यह आलोचना। अशुद्धता को उखाड़ कर फेंक देता हूँ। यह भी नास्ति से है। कथन तो ऐसा हो न, भाई! १०८ (गाथा)। अब आलोचना का भेद बताते हैं, प्रकार... प्रकार।

**आलोयणमालुंछण वियडीकरणं च भावसुद्धी य।**
**चउविहमिह परिकहियं आलोयणलक्खणं समए॥१०८॥**

**है शास्त्र में वर्णित चतुर्विधरूप में आलोचना।**
**आलोचना, अविकृतिकरण, अरु शुद्धता, आलुंछना॥१०८॥**

चार भेद वर्णन किये हैं। फिर एक-एक की व्याख्या करेंगे। **टीका : यह, आलोचना के स्वरूप के भेदों का कथन है।** १०८ (गाथा) **भगवान अरहन्त के मुखारविन्द से निकली हुई,...** आहाहा! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर वीतराग केवलज्ञानलक्ष्मी सम्पन्न, उनके मुखारविन्द से निकली... भाषा ऐसी है, देखो! है तो (ऐसा कि) पूरे शरीर से ध्वनि उठती है। केवलज्ञान हुआ ओम... ऐसी ध्वनि, पूरे शरीर में से ओम... ऐसी ध्वनि उठती है। होंठ हिलते नहीं, कण्ठ हिलता नहीं। ऐसे भगवान के मुखारविन्द से... लौकिक अपेक्षा से 'मुख से बोला जाता है' ऐसा कहने में आता है, वही भाषा ली है। क्या करे? आहाहा! मुखरूपी अरविन्द—कमल, उससे निकली हुई **( श्रवण के लिए आयी हुई )...** सुननेवाले के लिये दिव्यध्वनि आयी हुई है, ऐसा कहते हैं। उसके लिये दी है न। आहाहा! वह तो निमित्त सम्बन्ध है न, उसकी बात है। उन्होंने भेद बताये भगवान ने, श्रवण करनेवाले को सुनाई, ऐसा कहते हैं।

**सकल जनता को श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हो...** आहाहा! देखो! ऐसी भगवान की वाणी में दिव्यध्वनि द्वारा आलोचन का—संवर का—स्वरूप के देखने का जो स्वरूप आया, वह **सकल जनता को श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हो...** आहाहा! ऐसी वाणी सुननेवाला सौभाग्य जीव है। देखो! आहाहा! **सकल जनता को श्रवण का सौभाग्य...** भाषा ऐसी है। थोड़े नहीं, सकल जनता। **श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हो ऐसी,...** आहाहा! **सुन्दर-आनन्दस्यन्दी ( सुन्दर-आनन्द झरती ),...** वाणी... बात तो ऐसी है कि जो सुननेवाला है, उसको सुनाते हैं कि तेरा आत्मा राग से रहित, अशुद्धता से रहित है, ऐसी तेरी दृष्टि कर, तुझे आनन्द झरेगा। जैसे पर्वत में से पानी झरता है, वैसे अन्तर में आनन्द झरेगा—आनन्द का झरना आयेगा। यह आरोप वाणी को दिया है।

श्रीमद् में आया न, 'वचनामृत वीतराग के... वचनामृत वीतराग के परम शान्तरसमूल...' है तो वाणी, परन्तु बताती है वीतराग शान्ति आत्मस्वभाव। वचनामृत... वचनामृत... उस वचन को अमृत कहा। आहाहा! यह क्या कहते हैं? उसमें अमृत प्रगट होने का उसका निमित्त है, इसलिए वचनामृत (कहा)। 'वीतराग के...' परमशान्त—अकषायस्वभाव—वीतरागस्वभाव प्रगट करने में निमित्त ऐसी वाणी 'परम शान्तरसमूल... परन्तु कायर को प्रतिकूल' कहते हैं। वह औषध तो भव का—रोग का है। कायर—

हीजड़े जैसे को तो कठिन पड़े कि यह... यह... क्या कहते हैं? धर्म में ऐसा? ऐसा धर्म? कुछ करना नहीं, वह नहीं। राग करना नहीं। परन्तु स्वभाव करना, ऐसा नहीं आता? आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है उसमें लीन होना, वह करना नहीं? यह कोई क्रिया नहीं? यह स्वाभाविक क्रिया है। अपना गुण गुण में रखना, आनन्द आनन्द में रखना, शान्ति में शान्ति—चारित्र रखना। समझ में आया? यह गुण की परिणति करना, वह कोई करना नहीं (और) कुछ राग करे और बाहर में दिखाव की कोई क्रिया करे तो वह क्रिया। धूल भी क्रिया नहीं।

**सुन्दर-आनन्दस्यन्दी...** आहाहा! सुन्दर आनन्द झरती **अनक्षरात्मक जो दिव्यध्वनि,...** लो, वाणी में आनन्द झरता है, ऐसा कहते हैं। मूल तो, अतीन्द्रिय आनन्द ऐसा भगवान, उसको बताती है और सुननेवाला अपना अतीन्द्रिय आनन्द में नजर करता है तो आनन्द झरता है, यह बतानेवाली वाणी है। यह वीतराग की वाणी बतानेवाली है, उसके अतिरिक्त किसी की वाणी ऐसी होती नहीं। आहाहा! कठिन काम! व्यवहारवालों को तो चोट लगे। ऐ सेठ! गजराजजी! व्यवहारवालों को तो यह चोट लगे। व्यवहार सब उड़ा देते हैं। अरे! सुन तो सही! व्यवहार का अर्थ क्या? राग। राग वह धर्म है? आहाहा! घोर संसार फल कहा था न! आहाहा! समझ में आया? **अनक्षरात्मक जो दिव्यध्वनि,...** देखो भाई! इसमें 'अनक्षरात्मक' ली है। उसमें 'अक्षर' आता है न? अनक्षर, एकरूप आती है न दिव्यध्वनि, इसलिए अनक्षर....

**उसके परिज्ञान में कुशल...** ऐसी वाणी के ज्ञान में कुशल गणधर... आहाहा! **चतुर्थज्ञानधर...** मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्ययज्ञान **गौतम महर्षि के मुखकमल से निकली हुई...** भगवान के मुख से निकली और गणधर ने गूँथी। **मुखकमल से निकली हुई जो चतुर वचन रचना,...** चतुर वचनरचना, आहाहा! परमागम की रचना। समझ में आया? यह परमागम है, अपने होता है या नहीं? परमागममन्दिर। आहाहा! परमात्मा की वाणी है। मुनियों ने कही... परमात्मा ने कही, गणधर ने कही, ऐसी परम्परा से आचार्य—सन्तों ने यही कहा। परम्परा से सन्त कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पद्मप्रभमलधारिदेव इत्यादि दिगम्बर सन्तों ने वीतराग की वाणी बारह (अंगरूप) वहन की है। आहाहा! समझ में आया?

**उसके गर्भ में विद्यमान राद्धान्तादि ( -सिद्धान्तादि ) समस्त शास्त्रों...** सिद्धान्त तत्त्वों का सार। गर्भ में विद्यमान समस्त शास्त्र के **अर्थसमूह के सार-सर्वस्वरूप शुद्ध-निश्चय-परम-आलोचना के चार भेद हैं।** ऐसा कहते हैं। वीतराग की वाणी में आलोचना के चार भेद आये हैं, उसकी महिमा करके ऐसा भेद बताया। **वे भेद अब आगे कहे जानेवाले चार सूत्रों में कहे जाएँगे।** लो!

**१०८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:**—१५३।

**आलोचना-भेद-ममुं विदित्वा मुक्त्यङ्गना-सङ्गम-हेतुभूतम्।**
**स्वात्मस्थितिं याति हि भव्यजीवः तस्मै नमः स्वात्मनि निष्ठिताय॥१५३॥**

**श्लोकार्थः—मुक्तिरूपी रमणी के संगम के हेतुभूत...** आहाहा! शिवरमणी—मुक्तिरूपी रमणी। लो। देखो! यहाँ शब्द यह है न? '**अंगना**' अंगना का अर्थ किया न 'रमणी'? परन्तु यह तो '**मुक्त्यंगना**' है न? अंगना कहा या स्त्री कहो या रमणी कहो। आहाहा! पहले यह शब्द आया था ६३, संवत् १९६३। रामलीला देखकर आये थे। 'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव।' ऐसी छह लाईन थी, परन्तु इतनी याद रह गयी। ६३ की बात है। १७ वर्ष की उम्र थी। सत्रह समझे? १० और ७ = सत्रह। यह शब्द पहले आया था अन्दर। तू तो शिवरमणी रमनार है। यह स्त्री का धन्धा-फन्दा यह तेरा कर्तव्य नहीं। यह 'रमणी' शब्द आया, देखो! '**अंगना**' गुजराती में स्त्री कहते हैं न?

'**मुक्त्यङ्गनासङ्गमहेतु**' आहाहा! परमानन्दरूपी रमणी—मुक्तदशा—पूर्णानन्द में रमनेवाली दशा, ऐसे संगम के हेतु—उसे मिलाप करनेवाला निमित्त, ऐसी आलोचना का हेतु अर्थात् कारण। **आलोचना के भेदों को जानकर जो भव्य जीव वास्तव में**—वास्तव में **निज आत्मा में स्थिति प्राप्त करता है,...** बात यह है, लो। भगवान की वाणी सुनकर भी... भगवान ने यह कहा था, ऐसा। आलोचना के कथन में दिव्यध्वनि में—भगवान की वाणी में आया, सन्तों ने वही बात कही। क्या? निज आत्मा में स्थिति प्राप्त कर। तेरा स्वरूप अखण्डानन्द... पहले 'आलोचना' यहाँ लिया, देखो! यहाँ 'ऐसे आलोचना' ऐसा नहीं लिया। यहाँ स्थित कर। आहाहा!

**निज आत्मा में...** 'निज आत्मा' शब्द प्रयोग किया है वापस। परमात्मा त्रिलोकनाथ को नहीं। सर्वज्ञ परमात्मा का लक्ष्य करेगा, ध्यान करेगा तो विकल्प—राग उठेगा। तेरा निज परमात्मा... आहाहा! **निज आत्मा में स्थिति प्राप्त करता है,...** आहाहा! इसमें तो ऐसा लिया कि दिव्यध्वनि में ऐसा आया... निजस्वरूप में स्थिति कर, ऐसा आया था। तो निज स्वरूप में स्थिति करते हैं। आहाहा! 'लाख बात की बात' आता है या नहीं छहढाला में? 'निश्चय उर लाओ, छोड़ी जगत द्वंद्व-फंद निज आतम ध्याओ।' यह निज आतम ध्याओ। आहाहा! परन्तु अपनी कीमत ही की नहीं। मैं तो जैसे पामर हूँ, राग में रहनेवाला हूँ, दुनिया के धन्धे करने में हूँ। धूल भी नहीं, सुन तो सही। यह सब तू नहीं। आहाहा! तेरी चीज़ आनन्द का धाम... किस प्रकार—किस प्रकार से उसका कथन करना? कहते हैं। ऐसे निजस्वरूप आत्मा में स्थिति प्राप्त करता है, **उस स्वात्मनिष्ठित को...** अहो! मुनि भी आनन्द में आये हैं न! **( -उस निजात्मा में लीन भव्य जीव को ) नमस्कार हो।** आहाहा!

**तस्मै नमः... तस्मै नमः... स्वात्मनि निष्ठिताय तस्मै नमः।** आहाहा! नमस्कार क्या विकल्प को—व्यवहार को है? नग्नदशा को नमस्कार है? वह तो जड़ है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। मेरा नमस्कार, निजस्वरूप में स्थित होकर निर्मल निर्विकारीदशा प्रगट हुई, उसको मेरा नमस्कार हो। यह मुनि ऐसे आलोचन करनेवाले को नमस्कार करते हैं। आहाहा! यह १०८ हुआ। १०९। आया अब माल। दूसरे-दूसरे प्रकार से कहते हैं।

**'जो पस्सदि अप्पाणं'** समयसार (गाथा) १४-१५ में आता है। **'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं'** इसमें दूसरे प्रकार से कहते हैं।

**जो पस्सदि अप्पाणं समभावे संठवित्तु परिणामं।**
**आलोयणमिदि जाणह परमजिणंदस्स उवएसं॥१०९॥**

परम वीतराग परमेश्वर का यह उपदेश है। आहाहा!

**समभाव में परिणाम स्थापे और देखे आतमा।**
**जिनवर वृषभ उपदेश में वह जीव है आलोचना॥१०९॥**

**टीकाः—यहाँ आलोचना के स्वीकारमात्र से परमसमताभावना कही गयी है।**

क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वरूप का जहाँ अवलोकन करता है तो परमसमताभाव प्राप्त होता है और परमसमताभाव से आत्मा में स्थिर होता है। राग से स्थिर होता नहीं, ऐसा कहते हैं। पाठ है न? **'समभावे संठवित्तु परिणामं'** अपने शुभ-अशुभ परिणाम से हटकर, शुद्ध परिणाम जो वीतरागी शुद्ध, उससे आत्मा में स्थिर होता है, उससे आत्मा को देखता है, ऐसा कहते हैं। उसे जिनेन्द्र के उपदेश में आलोचना जान। उसको आलोचना कहते हैं। आहाहा! ..... (व्यवहार) आलोचना का उपहास किया है। उसमें आयेगा, उसमें आयेगा कलश में—१५५ में।

**वास्तव में व्यवहार-आलोचना के प्रपंच का उपहास किया है।** हँसी, मजाक। व्यवहार का तो मजाक उड़ाया है। २१५ पृष्ठ, १५५ कलश। है? **निकट परमपुरुष में विधि क्या और निषेध क्या?** उपहास किया है, मश्करी। व्यवहार क्या? प्रपंच, विकल्प क्या? प्रपंच का अर्थ विस्तार। यहाँ तो व्यवहार की मश्करी की है। यह भगवान के निकट जाकर आलोचना करना, ऐसा करना, इस व्यवहार की तो मजाक उड़ाई है निश्चय ने। घोर संसार का मूल कहा है। शुभ उपयोग व्यवहार संसार का मूल है। जिसे मुक्ति प्राप्त करनी हो, उसे संसार के मूल का आश्रय लेना? उसका अवलम्बन लेना? ऐसा कैसे हो?

**यहाँ आलोचना के स्वीकारमात्र से परमसमताभावना कही गयी है।** ऐसा कहते हैं। अन्तर के सन्मुख में जहाँ स्वीकार ... हुआ, वहाँ वीतरागता प्रगट होती है और वीतरागभाव द्वारा आत्मा को देखना, उसका नाम आलोचना है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आत्मा में तो वह की वह बात आती है। भाई! वह की वह नहीं, विस्तार से बहुत प्रकार है। पहलू अलग-अलग करके स्थापित तो वीतरागभाव करना है, वह भी आत्मा के आश्रय से। परन्तु उसकी कथनी विस्तार से—अनेक प्रकार से होती है न! **परमसमताभाव...** वापस इन्होंने शब्द 'परम' लागू किया है। **आलोचना के स्वीकारमात्र से परमसमताभावना... परमसमताभावना कही गयी है।** आहाहा! परम समता, वीतरागता, निर्दोषता, पवित्रता, यह भावना अन्तर में करना, यह यहाँ बात की है। विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**भाद्र शुक्ल ७, शनिवार, दिनांक - २८-८-१९७१**
**गाथा-१०९, श्लोक-१५४-१५५, प्रवचन-१०७**

आज दसलक्षणी पर्व का तीसरा दिन है उत्तम आर्जवधर्म। यह चारित्र का अन्तर्भेद है। मुनि की मुख्यता से बात है न? दसलक्षणी पर्व चारित्र का भेद है। चारित्र का आराधन करनेवाले (मुख्य) मुनि होते हैं और चारित्र का फलरूप मुक्ति उनको होती है। तो कहते हैं, उत्तम आर्जवधर्म।

**जो चिंतेइ ण वंकं कुणदि ण वंकं जंपए वंकं।**
**ण य गोवदि णियदोसं अज्जवधम्मो हवे तस्स॥३९६॥**

(-कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

**जो कोई मुनि मन में वक्रतारूप चिन्तवन नहीं करे....** मन, वचन और काया की सरलता। इस सरलता के भी दो भेद हैं। एक व्यवहार सरलता जो राग की मन्दतारूप भावपुण्य है। समझ में आया? और एक निश्चय सरलता, वह शुद्धभाव है।

**मुमुक्षु :** उससे दो धर्म न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** एक व्यवहारधर्म और एक निश्चयधर्म। शास्त्र में आता है न, तत्त्वार्थसूत्र में। मन-वचन और काया की सरलता—अवक्रता से नामकर्म की पुण्यप्रकृति बँधती है। ऐसा आता है न! तत्त्वार्थसूत्र में चार बोल आते हैं। पुण्यभाव की बात है वहाँ। समझ में आया? यह शुभविकल्प है। वह आर्जवधर्म निर्विकल्प वीतरागी परिणति है।

तो कहते हैं, **जो मन से वक्रता न चिंतवे...** अपनी शुद्ध निर्विकारीपर्याय को यहाँ उत्तम सम्यग्दर्शनसहित सरलता कहा गया है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन... आत्मा आनन्दस्वरूप का जिसको भान नहीं, उसकी सरलता विकल्प की मन्दता में जाती है, वह पुण्यबन्ध में जाती है। अपना निजस्वरूप शुद्ध आनन्द, उसकी दृष्टि हुई और उसमें लीनता करता है, उसको वीतरागी सरलता होती है। यह चार आते हैं... तत्त्वार्थसूत्र

में—मन, वचन और काया, अविसंवाद भाव। साधर्मी के साथ झगड़ा आदि न करे, शुभनामकर्म बाँधे। शुभनामकर्म बँधता है। वह विकल्प की बात है।

जामनगर में पहले गये थे ८२ के वर्ष। बाह्य की क्रिया में सब (धर्म) मानते थे और मैंने तो (कहा) सभा में कि चार प्रकार से मन-वचन और काया, अविसंवादभाव सब हो तो पुण्यबन्ध है, धर्म नहीं। परन्तु वे वीरजीभाई के पिताजी थे न ताराचन्दभाई, उसको तो ऐसा लगा कि आहाहा! यह अभी तक तो... यह लोगों को... देखो! नाम तुम्हारा है कहीं? पूनातर का है न वह? क्या कहलाता है? ज्ञानसागर। आहाहा! क्या लिखा है? देखो! तत्त्वार्थसूत्र में तो है, परन्तु तब कहाँ तत्त्वार्थसूत्र देखा था? देखो उसमें। मन सरल, वचन सरल, काय सरल और अविसंवाद (भाव)—किसी के साथ झगड़ा नहीं। ऐसी राग की मन्दता में शुभनामकर्म बाँधते हैं, धर्म नहीं। ऐसे हो गये दुर्बल। एकान्त में आये... एकान्त में आये ताराचन्द पानाचन्द (और कहा) महाराज! इन लोगों को... मैंने कहा, मार्ग यही है। लोगों को क्या, यहाँ कहाँ बात है? लोग ऐसा कहते हैं कि यह करते हैं, उसे तुम धर्म कहते नहीं और पुण्य कहते हो उसे।

वीरजीभाई थे न, उनके पिताश्री थे। बत्तीस सूत्र के जाननेवाले। साधु-आर्यिका को पढ़ावे। वैसे ठण्डे मनुष्य। परन्तु यह तत्त्व की खबर नहीं। सब चलावे यह सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण, यह हमारा धर्म। धूल भी धर्म नहीं। ऐई! लावे, यह बैठे उनके पुत्र। कानजीभाई आये हैं। ताराचन्दभाई की बात है। वह किस वर्ष, समझे? ८२। संवत् १९८२। तुम्हारे उपाश्रय में, नवकार के उपाश्रय में वहाँ उतारे थे न! वहाँ यह वाँचते हैं न। समझ में आया? ऐसा उसमें—शास्त्र में आता है—श्वेताम्बर शास्त्र में आता है। आता है कि मन की सरलता, वाणी की सरलता, काया की सरलता और अविसंवाद (अर्थात्) विसंवाद—झगड़ा-बगड़ा नहीं, कषाय की मन्दता, पुण्यबन्ध हो। कानजीभाई! यह तुम्हारे दादा आये शाम को अकेले, हों! प्रतिक्रमण....

कहा, ऐसा है मार्ग। धर्म की चीज़ दूसरी है। यह काया की सरलता और ऐसा क्रियाकाण्ड नहीं। वह तो पुण्यबन्ध, नामकर्म बाँधे मिथ्यात्वसहित शुभनामकर्म। इसमें क्या? जिसमें अपनी शान्ति और वीतरागता उत्पन्न हो... मूलचन्दभाई! इनके पिताश्री के

पिताश्री थे। बहुत साधु-आर्यिका को शास्त्र पढ़ावे। चलते सूत्र कहते, चलते सूत्र। ताराचन्दभाई होशियार बहुत। दृष्टि की कुछ खबर नहीं होती। ऐ कानजीभाई! यह (संवत्) १९८२ में यह बड़ी चर्चा हुई थी। मार्ग यह है। बाहर तुम कहो या न कहो, वस्तु दूसरी नहीं है। यहाँ यह कहते हैं, देखो! मन, वाणी की वक्रता का विकल्प नहीं जहाँ। सरलता... समझे?

**मन में जो दूसरे को भुलावा देने के लिये विचार तो कुछ करे और वचन से कुछ कहे, काय से कुछ और ही करे। ऐसा करने में मायाकषाय प्रबल होती है।** इसलिए ऐसा नहीं करे। **निष्कपट प्रवृत्ति करे, अपने दोषों को नहीं छुपावे।** तीसरा पद है न। अपने दोष हो, बचाव न करे। दोषी... दोषी है। जितना रागादि हो, दोष है। **ऐसे-तैसे बालक की तरह गुरु के पास कहे, वहाँ उत्तम आर्जवधर्म होता है।** ऐसी बात है। यह तीसरा धर्म हुआ न आज।

यहाँ अपने १०९ गाथा नियमसार। आलोचना (अधिकार)। अपने पूर्णानन्दस्वरूप को देखना—देखना, उसका नाम आलोचना है। समझ में आया? व्यवहार में रागादि का आलोचन करना, छोड़ना, उसका नाम व्यवहार आलोचना। निश्चय आलोचना यह है। आहाहा! देखो! टीका। उसकी एक लाईन चल गयी है। १०९ (गाथा)।

**टीका:—यहाँ आलोचना के स्वीकारमात्र से परमसमताभावना कही गयी है।** अपना शुद्धस्वरूप, पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञानकन्द को स्वीकार करने से, उसको देखने से, उसको देखकर अवलोकन करने से, मात्र से—स्वीकारमात्र से... त्रिकाली परमात्मा अपना निजस्वरूप उसके **स्वीकारमात्र से परमसमताभावना कही गयी है।** उसमें परमवीतरागभावना ही होती है। समझ में आया? सूक्ष्म है नियमसार।

**सहज वैराग्यरूपी अमृतसागर के फेन-समूह के श्वेत शोभामण्डल की वृद्धि के हेतुभूत पूर्ण चन्द्र समान...** आहाहा! कहते हैं कि आलोचना करनेवाला, अपने निजस्वरूप का अवलोकन करनेवाला पर से विमुख है। सहज वैराग्य का... वैराग्यरूपी अमृतसागर के झाग। आहाहा! फेन होता है न उसमें। फेन... फेन कहते हैं? फेन कहते हो। सफेद होता है न। (झाग)।

**शोभामण्डल...** यह झाग की भी शोभामण्डली... वृद्धि के हेतुभूत—ज्वार लाकर.... **पूर्ण चन्द्र समान...** देखो न! विशेषण कितने प्रयोग किये! इस ओर पूर्णानन्दस्वभाव को देखना है तो पर से बिल्कुल वैराग्यभाव है, ऐसा कहते हैं। उस वैराग्यभाव में अमृत का सागर वैराग्यभाव... आहाहा! पर्याय में राग को छोड़कर, अपना शुद्ध आनन्द प्रभु, उसका अवलोकन करने में पर से विरक्तता, राग से विरक्तता हुई, ऐसा स्वाभाविक वैराग्य... ऐसा अमृत का सागर, उसका फेन—समूह **श्वेत शोभामण्डल की वृद्धि के हेतुभूत पूर्ण चन्द्र समान ( अर्थात् सहज वैराग्य में ज्वार लाकर उसकी उज्ज्वलता बढ़ानेवाला ) जो जीव...** आहाहा! **सदा अन्तर्मुखाकार...** कैसे हैं जीव? किसको देखते हैं? कैसे स्वरूप को देखते हैं धर्मात्मा? कि **सदा अन्तर्मुखाकार ( -सदा अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है ऐसे ),...** भगवान आत्मा तो अन्तर्मुख आनन्दकन्द नाथ है। बहिर्मुख में तो राग और एक समय की पर्याय है। आहाहा! समझ में आया? भीखाभाई! क्या कहा? कहा क्या? कहा क्या?

**मुमुक्षु :** अपने में अन्तर्मुख होनेपने की बात है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हुआ का प्रश्न नहीं। यह तो स्वरूप कैसा है, पहले ऐसे समझना। यह तो वस्तु कैसी है? सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने यह आत्मा कैसा देखा है? ऐसा कहते हैं। यह तो अन्तर्मुख चीज़ जिसका स्वरूप है। वह बहिर में है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वस्तु भगवान आत्मा अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है। वह राग और पर्याय में आया ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा अन्तर निजस्वरूप अन्तर्मुख है, उसका स्वरूप बहिर्मुख में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? सेठ! ऐसी सूक्ष्म बात है जरा। समझना पड़ेगा, बेगारी नहीं, जरा उत्साह से समझना पड़ेगा, क्या करे? दुःखी है। यह तो वेगारी—निकाली। यहाँ तो, मैं ऐसा हूँ, ऐसे प्रमोद से स्वीकार करना पड़ेगा। समझ में आया? देवीलालजी! आहाहा! अधिकार तो अच्छा आया है नियमसार में, हों! आहाहा! **सदा अन्तर्मुखाकार...** एक बात।

**अति अपूर्व...** कभी दृष्टि में लिया ही नहीं भगवान आत्मा को। पर्याय को और राग को लक्ष्य में लिया, जिससे मिथ्यात्व हुआ, उससे संसार की वृद्धि हुई। आहाहा!

समझ में आया? ऐसी **अति अपूर्व...** आहाहा! सम्यग्दर्शन की निर्मल वीतरागी पर्याय उत्पन्न हो, वह तो अपूर्व है ही। यह तो वस्तु अति अपूर्व है। समझ में आया? क्षायिक समकित, चारित्र—वीतरागदशा हो, वह अपूर्व है। पूर्व में प्रगट नहीं (हुई), ऐसी चीज़ है। परन्तु वह तो पर्याय की अपूर्वता है। परन्तु यह तो वस्तु अति अपूर्व है। आहाहा! अनाकुल आनन्द का धाम... यहाँ तो अभी आगे लेंगे। 'ज्ञान का स्थान' ऐसा लेंगे। गजब टीका की है! आहाहा! ऐसी सन्तों की वाणी, उस वाणी में यह! ऐसा कहीं कथन मिले नहीं, ऐसी चीज़ है। आहाहा! **सदा अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है...** भगवान आत्मा का तो अन्तर्मुख स्वरूप है। जो पर्याय में आया नहीं, राग में आया नहीं, निमित्त ने तो कभी छुआ ही नहीं।

ऐसे **निरंजन निजबोध के स्थानभूत...** आहाहा! अंजन अर्थात् मैलरहित निजबोध—अपना त्रिकाली ज्ञान, उस ज्ञान का स्थानभूत... अपना निजज्ञान जो त्रिकाली, उसका स्थानभूत... आहाहा! **कारणपरमात्मा...** समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में—सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में सदा अन्तर्मुखस्वरूप, अति अपूर्व और निरंजन निजबोध के स्थानभूत... **निरंजन निजबोध के स्थानभूत...** आहाहा! मति-ज्ञान आदि पर्याय में तो कर्म के निमित्त की अपेक्षा है उसमें, उसको तो विभावगुण कहा। समझ में आया? यह तो निजबोध जो त्रिकाली चैतन्यस्वभाव... चैतन्यस्वभाव... चैतन्यस्वभाव... ध्रुवस्वभाव, उसका स्थान। आहाहा! समझ में आया? **निरंजन निजबोध के स्थानभूत कारणपरमात्मा को...** यह सब कारणपरमात्मा के विशेषण कहे। समझ में आया?

**निरवशेषरूप से अन्तर्मुख...** अब पर्याय में आया... बिल्कुल बाकी रखे बिना अन्तर्मुख **निज स्वभावनिरत...** अपने त्रिकाली स्वभाव में लीन, **सहज-अवलोकन द्वारा...** अपनी वर्तमान ज्ञान और वीतरागी आनन्द की पर्याय के अवलोकन द्वारा **निरन्तर देखता है...** उसका नाम आलोचना है। सेठ! समझ में आया? यह मिच्छामि दुक्कडम् किया, मिच्छामि दुक्कडम् सामने (करे)। यह तो अपूर्व चीज़ जो अन्दर आनन्द प्रभु, जो निरंजन—अंजनरहित, मैलरहित निजबोध शाश्वत्, उसके स्थानरूप भगवान कारणपरमात्मा वस्तु, उसको **निरवशेषरूप से अन्तर्मुख...** वर्तमान पर्याय में कुछ बाकी रखे बिना सम्पूर्ण रीति से अपने अन्दर में देखते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह

आलोचना की रीति। यह सब खड़े होकर बोले न संवत्सरी में, मिच्छामि दुक्कडम्... मिच्छामि दुक्कडम्... मिच्छामि दुक्कडम्। वह मिच्छामि दुक्कडम् सच्चा नहीं है। आहाहा!

भगवान आत्मा अति अपूर्व अन्तर्मुख जिसका स्वरूप और मैलरहित ज्ञानबोध अपना स्वभाव, उसका स्थान... वहाँ निजबोध पड़ा है आत्मा में, उसका वह स्थान है। उसको कारणपरमात्मा कहते हैं। अपने भगवान आत्मा को कारणपरमात्मा कहते हैं। आहाहा! किसको? अवशेष (रहित) रूप से—निःअवशेष—कुछ बाकी रखे बिना अपनी पर्याय को अन्तर्मुख झुकाना। ऐ सेठ! ऐसी बात भी कहाँ सुनी है? वहाँ सागर में सुनी है? जल्दी आते हैं तुमसे पहले, हों! उसको रस है। समझ में आया? आहाहा! इसके सिवा सब थोथा है। पहले समझ में तो लाना चाहिए न कि चीज़ यह है और इस चीज़—सन्मुख होना है। जिसके सन्मुख होना है, वह चीज़ क्या है? सन्मुख होना, वह तो पर्याय है। समझ में आया? परन्तु वह पर्याय किसके सन्मुख होवे, वह चीज़ कैसी है? आहाहा! तारणस्वामी तो बहुत कहते हैं, **'अप्पा सो परमप्पा'** बहुत कहते हैं। ममलपाहुड़ में है और ज्ञानसमुच्चय में है। अपने व्याख्यान हो गया है। अभी तो प्रकाशित हुआ है कहाँ? बाकी है। पच्चीस प्रकाशित हुए, अभी आठ तो बाकी है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

**सहज-अवलोकन द्वारा...** भाषा तो देखो! विकल्प नहीं। अन्तर्मुख होकर... अन्तर्मुखस्वरूप में अन्तर्मुख होकर... अन्तर्मुखस्वरूप सहज स्वभाव से देखते हैं। **जो जीव कारणपरमात्मा को सर्वथा अन्तर्मुख ऐसा जो निज स्वभाव में...** देखो! सर्वथा अन्तर्मुख ऐसा निज स्वभाव... **लीन सहज-अवलोकन उसके द्वारा...** वह पर्याय। सहज अवलोकन द्वारा **निरन्तर देखता है—अनुभवता है;...** आहाहा! पहले तो अभी समझना मुश्किल कि क्या चीज़ कहते हैं। शास्त्र पढ़े और पठन करे और ऐसा करे, बापू! यह तो दूसरी चीज़ है। समझ में आया? आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने परमेश्वर को नीचे उतारा है। हम तो आये हैं तुम्हारे पास, हमारे पास आओ। आहाहा! हमारा भगवान हमारे पास है। तेरा स्वरूप, भगवान! ऐसा ही मेरा स्वरूप है। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने सनातन वीतरागपंथ धर्मधुरन्धर धर्म के स्तम्भ, ऐसा रखा। कैसे कहना उसे भाषा कम पड़ती है। आहाहा! शब्द (में आवे) नहीं, ऐसी शब्दातीत-वचनातीत, विकल्पातीत। आहाहा!

अन्तर में कैसा लिया? पाँच पर्याय ज्ञान की है, उसमें तो निमित्त की अपेक्षा आती है, कहते हैं। यह अन्दर निजबोध निरंजन स्वभाव त्रिकाल, उसका स्थान कारणप्रभु को निरवशेष पुरुषार्थ से अन्तर्मुख होकर देखते हैं। आहाहा!

**क्या करके देखता है?** अब परिणाम लेते हैं। परिणम तो वहाँ लिया, परन्तु विशेष पाठ है न? **पहले निज परिणाम को समतावलम्बी करके,...** देखो! अपनी पर्याय में समता—वीतरागपर्याय प्रगट करके... समतावलम्बी। आहाहा! अमृत झरता है। आगे कहेंगे कि हमारे मुख में से तो परमागम झरता है। मुनि स्वयं कहते हैं, हों! आहाहा! भगवान! तू ऐसा है अन्दर, जैसा वर्णन में आता है ऐसा है। बाहर नहीं है, बाहर गया नहीं है। आहाहा! यह विश्वास, यह प्रतीति, यह भरोसा कहाँ से लाना? यह कोई बाहर से आता है?

कहते हैं, **पहले निज परिणाम को...** ऐसा शब्द लिया है। अर्थात् पहले वीतराग पर्याय प्रगट करके, राग की पर्याय को छोड़कर वीतरागीभाव, समताभाव, निर्विकल्पभाव... समतावलम्बी करके, **निज परिणाम को समतावलम्बी करके, परसंयमीभूतरूप से...** यह 'म' पड़ा रहा है। 'म' रह गया है। पाठ है न! '**परमसंयमीभूत्वा तिष्ठति...** संस्कृत में है टीका। है न? '**समतावलंबनं कृत्वा परमसंयमीभूत्वा तिष्ठति...** यह 'र' रह गया है। गुजराती में बराबर है, इसमें रह गया है। **परसंयमीभूतरूप से...** उत्कृष्ट बात है न यहाँ मुनि की। दसलक्षणी पर्व है न! यह पर्व तो चारित्र का है। आहाहा! उसमें यह आयी आलोचना, देखो! आहाहा! समझ में आया? अनादि से ऐसा दसलक्षणी पर्व का आराधन होता है। पंचमी से शुरु होता है, चौदस को पूरा होता है। आहाहा! यह पूरा होता है अन्दर में।

**पहले निज परिणाम को समतावलम्बी करके,...** पहले समझ में तो ले कि यह क्या है? पर्याय में—वर्तमान दशा में समता प्रगट करके... पहले समता प्रगट करके, पश्चात् अन्तर्मुख स्वरूप को देखना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। **निज परिणाम को समतावलम्बी करके, परसंयमीभूतरूप से रहकर...** उत्कृष्ट बात है न! परमसमताभाव का अवलम्बन लेकर, अन्दर में संयमीभूतरूप से **रहकर**

**देखता है; वही आलोचना का स्वरूप है...** अपने को देखना, वह आलोचना का स्वरूप है, पर को देखने—जानने की बात नहीं है। समझ में आया?

**ऐसा, हे शिष्य!...** कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं न। '**जाणह**' गाथा में है। '**आलोयणमिदि जाणह**' कुन्दकुन्दाचार्य भगवान सन्त स्वयं कहते हैं, **हे शिष्य! तू परम जिननाथ के उपदेश द्वारा जान।** वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ आलोचना का स्वरूप ऐसा तू जान... ऐसा तू जान। पहला तो 'जान' ऐसा कहा। समझ में आया? ऐसा आलोचना का स्वरूप भगवान ने कहा, ऐसा कहते हैं भाई! व्यवहार कहते हैं, उसकी मश्करी करेंगे न उसमें। इस कारण से कहेंगे, ऐसा तू जान, ऐसा कहते हैं भगवान। व्यवहार-फ्यवहार की आलोचना विधि... निषेध है उसमें... उसका कलश में लेंगे। उसको इस कारण से लेंगे। (१५५वाँ कलश)। हाँ, है न। इस गाथा का कलश है न।

गाथा में ऐसा आया कि ऐसा आलोचन तू जान। पर के व्यवहार-फ्यवहार की बात छोड़ दे। सब मश्करी करते हैं व्यवहार की। पाप लगे उसे व्यवहार आलोचना। गुरु के पास कहते हैं। मजाक है। व्यवहार आलोचना की तो मजाक उड़ाई है। हँसी, तिरस्कार, खिल्ली। 'खिल्ली' कहते हैं न तुम्हारे? खिल्ली उड़ाई खिल्ली। व्यवहार आलोचना की तो खिल्ली उड़ाई है। आहाहा! यह पाठ के द्वारा, हों! '**जाणह**' आया न, मुनिराज ने उसमें से निकाला। '**आलोयणमिदि जाणह**' यह आलोचना जान। व्यवहार-फ्यवहार की बात मुफ्त में क्या करता है? ऐई देवीलालजी! आहाहा! व्यवहार का तो भुक्का उड़ाया है। कौन कहता था? चिमनभाई। कल कहते थे न!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ वर्तन है न। आत्मा में है सब। इसके साथ तो... है। वह कहा न! निरंजन निजबोध का स्थान—पात्र भगवान आत्मा। बस, वह भगवान आत्मा से केवल निर्विकल्प पर्याय। यह कहा न! पात्र—स्थान कहा न! निजबोध का स्थान आत्मा वह पात्र आया। शब्द तो यह नहीं थे, क्षेत्र कहा था। अपना त्रिकाली ज्ञानमूर्ति स्वभाव, उसका स्थान तो भगवान आत्मा है, वह पात्र है। आहाहा! उसमें एकाकार होकर पीयूष—अमृत को पीओ। वह मार्ग है भगवान का। आहाहा! समझ में आया?

व्यवहारवाले को तो ऐसा लगे कि यह तो निश्चय... व्यवहार होता है, वह पुण्य का विकल्प और बन्ध का कारण है। यहाँ तो मोक्षमार्ग चलता है न, नियमसार। नियमसार में भी, '**नियमेण य जं कज्जं**' निश्चय से करनेयोग्य यह नियम है। निश्चय मोक्षमार्ग करनेयोग्य है। व्यवहार मोक्षमार्ग करनेयोग्य नहीं, आता है। व्यवहार आ जाता है, विकल्प आता है, करनेयोग्य नहीं। कर्ता नहीं उसका। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा यह, आलोचना के भेदों में प्रथम ( भेद ) हुआ।** लो, आलोचना के चार भेद कहे न १०८ गाथा में। आलोचन, आलुंछन, अविकृतिकरण और भावशुद्धि। चार भेद में से एक भेद की व्याख्या १०९ (गाथा) में आयी।

**अब इस १०९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज छह श्लोक कहते हैं:** गाथा एक, श्लोक छह। १११ गाथा एक और श्लोक नौ। नौ अभी आयेंगे नौ। एक सौ ग्यारह में नौ, बारह में नौ। एक नौ आ गये हैं। १५४ कलश... कलश।

**आत्मा ह्यात्मानमात्मन्यविचलनिलयं चात्मना पश्यतीत्थं।**
**यो मुक्तिश्रीविलासानतनुसुखमयान् स्तोककालेन याति।**
**सोऽयं वन्द्यः सुरेशैर्यमधर-ततिभिः खेचरैर्भूचरैर्वा**
**तं वन्दे सर्ववन्द्यं सकलगुणनिधिं तद्गुणापेक्षयाहम्॥१५४॥**

वह भाषा ली है 'वंदे तद्गुणलब्धये।' कहते हैं, अरे भगवान! तेरी निधि तो सुन। तू कैसा है? अमृत का सागर तुम हो। यहाँ तो वैराग्य पर्याय को अमृतसागर कहा। आहाहा! वीतरागी पर्याय जिसके आश्रय से प्रगट होती है, उसको यहाँ अमृत का सागर कहा है। अमृत का सागर परिणति में डोलता है, वह तो पर्याय को अमृतसागर कहा। यह तो भगवान अमृत का सागर ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड है। आहाहा! निजघर की बात सुनी नहीं उसने। मैं कैसा हूँ? कैसे हूँ? कैसे प्राप्ति हो? खबर नहीं। बाकी दूसरी बात... धर्म के नाम से व्यवहार ऐसा और फैसा और... जो मार्ग नहीं है, उसको मार्ग माना है। समझ में आया?

**श्लोकार्थः—इस प्रकार जो आत्मा,...** कैसा आत्मा? अन्तर्मुखस्वरूप वह आत्मा। आत्मा वह कर्ता त्रिकाली आनन्दसागर प्रभु। **आत्मा को...** अपनी आत्मा की निर्विकारी पर्याय। **आत्मा द्वारा...** अपनी निर्विकल्प आनन्द की, शान्ति की और ज्ञान की पर्याय

द्वारा। राग द्वारा नहीं, निमित्त द्वारा नहीं। आहाहा! **इस प्रकार जो आत्मा, आत्मा को, आत्मा द्वारा,...** व्यवहार द्वारा, निमित्त द्वारा, गुरु द्वारा और शास्त्र द्वारा नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐ सेठ! सिंह की थाप पड़े तो सिंह का बच्चा नहीं डरे, बकरा भागे। आहाहा! सिंह की दहाड़ पड़े अन्दर से तो सिंह का बच्चा... हमारी जाति का है, हमारी जाति का है वह। आता है न शास्त्र में।

बकरे के झुण्ड में छोटा सिंह का बच्चा पहले से—शुरुआत से जोड़ दिया। छोटा बच्चा सिंह का। उसको कुछ खबर नहीं। एक बार सिंह आया। अरे! यहाँ कहाँ तू रहा बकरी के बच्चों में? तू हमारी जाति का है, देखो! पानी में देखो। ऐसे अपना मुख न देख सके। पानी में देखो। हमें देखो, पानी में देखो। हमारी जाति है, देखो! हाँ! और दहाड़ की सिंह ने, तो वह बच्चा हिला नहीं, बकरे चले गये। देखो! हमारी दहाड़ पड़ी तो तुमको भय नहीं हुआ। हमारी जाति का है, चलो। समझ में आया? इसी प्रकार दिव्यध्वनि की दहाड़ पड़ी कि तुम सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा हो। इस पामर में कहाँ घुस गया तू? समझ में आया?

राग मेरा है, पुण्य मेरा, ऐसा है, फैसा है, मैं रागी हूँ, मैं संसारी हूँ। अरे! बकरे के बच्चे में घुस गया सिंह। सेठ! भगवान कहते हैं, हम दहाड़ मारते हैं वाणी द्वारा और तुझे त्रास नहीं होगा, तुझको ख्याल हो जायेगा। आहाहा! भगवान कहते हैं, ऐसा ही मैं हूँ। समझ में आया? मैं कोई पामर नहीं, मैं राग नहीं, मैं अल्पज्ञ नहीं, अल्प वीर्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? **आत्मा को...** आत्मा कर्ता, आत्मा को कार्य, आत्मा द्वारा करण—साधन। यह साधन कहते हैं। कोई कहते हैं, बात तो तुम्हारी सब बराबर है, परन्तु साधन? भगवान की भक्ति करना, गुरु की भक्ति करना, मजीरे बजाना, ऐसा कोई ऐसा है या नहीं? नहीं। लगाते हैं या नहीं? ऐसा भजन लगावे कि आहाहा! अपने को भी भूल जाना। भूल जाना?

यहाँ तो कहते हैं, आत्मा द्वारा... विकल्प और व्यवहार के साधन द्वारा नहीं। ऐ चिमनभाई! यह तो बातें कठिन, भाई! कहा न, अगास गये थे तब। बात तो सब ठीक कहते हैं महाराज, परन्तु साधन? गुरु की प्रतिमा रखना, फोटो रखना, भजन करना,

शास्त्र वाँचना—वह सब साधन है या नहीं? वह साधन-फाधन कुछ है नहीं। समझ में आया? यह आत्मा, आत्मा को, आत्मा द्वारा—यह साधन। भीखाभाई! चिल्लाहट मचा जाये। अरे भगवान! तेरे घर की तुझे खबर नहीं। तू तो सिंह का बच्चा नहीं, सिंह है। आहाहा! हे सिद्ध! तो आता है कि हे सिद्ध! वही आवाज आती है। सामने से आवाज आती है, प्रतिघात। प्रतिध्वनि... पडघा (गुजराती में) हमारी भाषा में कहते हैं। पडघा अर्थात् प्रतिध्वनि। आवाज ऐसे पड़ती है कि हे परमात्मा! तब सामने आती है कि हे परमात्मा! तू परमात्मा है। प्रेमचन्दजी! ऐसी बात है। बीड़ी-फीड़ी और... बड़े सेठिया हो गये मानो, उसमें है नहीं कुछ।

**मुमुक्षु :** वह तो सब अनादि काल से है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अनादि का... विष्टा के ढ़ेर तो अनादि के थे ही वे। यह तो अमृत का सागर। त्रिलोकनाथ परमात्मा ने मन्थन करके निकाला और जगत के समक्ष प्रसिद्ध किया। अन्तर्मुखस्वरूप जो है, इस अन्तर्मुख आत्मा का, अन्तर्मुख को, अन्तर्मुख द्वारा... आहाहा! गजब बात है।

**आत्मा में...** अपने निर्विकारी स्वभाव में **अविचल निवासवाला देखता है,...** आहाहा! वीतरागी पर्याय द्वारा... ऐसा आया न पाठ में। **'समभावे संठवित्तु परिणामं'** **'समभावे संठवित्तु परिणामं'** उसकी व्याख्या की दूसरे पद की। **अविचल निवासवाला देखता है,...** आहाहा! ऐसा हुआ कि परिणाम है न, वह आत्मा द्वारा... ऐसे वीतरागी परिणाम द्वारा। आहाहा! अब ऐसा वीतरागी... पहली तो वस्तु पूर्ण है, उसकी अन्तर्मुख दृष्टि होना, सम्यग्दर्शन। पश्चात् अन्तर्मुख के आश्रय से वीतरागी परिणाम हुआ, उस वीतरागी पर्याय द्वारा अपने को देखना, वह साधन हुआ। समझ में आया? व्यवहार-फ्यवहार, विकल्प साधन-फाधन है ही नहीं। पंगु है तू कि दूसरे का आश्रय लेता है? राग का आश्रय लेना? नपुंसक है? स्त्री हो न स्त्री, आठ वर्ष का लड़का हो तो लड़के को सामने लेकर पीछे चले, सामने स्वयं न चले। स्त्री और लड़का हो तो उसके अग्र रखे सामने, स्वयं पीछे चले। तू स्त्री है? तुझे राग को मुख्य रखकर हमारी प्राप्ति होगी? नपुंसक है? आहाहा!

आत्मा को आत्मा में आत्मा के द्वारा अविचल होता है। **वह अनंग-सुखमय ( अतीन्द्रिय आनन्दमय ) ऐसे मुक्तिलक्ष्मी के विलासों को अल्प काल में प्राप्त करता है।** वस्तु बतायी, उसका उपाय बताया, उसका फल बताया—तीनों बता दिये। समझ में आया? आत्मा—वस्तु, आत्मा को—अपना कार्य, द्वारा—करण, अधिकरण—आत्मा में। **अविचल निवासवाला देखता है,...** आहाहा! **अनंग सुखमय...** अनंग अर्थात् अंग बिना का। अतीन्द्रिय सुख आनन्दमय ऐसे **मुक्तिलक्ष्मी के विलासों को...** मुक्तिलक्ष्मी का विलास... ऐसे आत्मा को अन्दर देखता है। वह मुक्तिलक्ष्मी का निवास, विलास अल्प काल में प्राप्त करता है। केवलज्ञान अल्पकाल में हुआ, मुक्ति हुई। समझ में आया? हमें स्वर्ग में जाना है, धूल में जाना है। धूल में जाना है तुझे? राग में जाना है? या अन्तर में जाना है और मुक्तिलक्ष्मी में जाना है तुझे? पहले करो, पुण्य करो, स्वर्ग में जायेगा, पश्चात् भगवान... धूल में भी नहीं जायेगा, सुन न! प्रसन्नकुमारजी!

**मुमुक्षु :** राग की रुचिवाला....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अरे! चल... चल। राग की रुचि... वहाँ भगवान के पास जायेगा? भगवान को गाली देगा। भगवान कहते हैं, मेरे सन्मुख नहीं देखना, तेरे सन्मुख देखकर तुझे लाभ होगा। ऐसे भगवान को मानना किसलिए?

एक व्यक्ति आया था वह। वह टी.जी. शाह था न टी.जी. शाह। आया था यहाँ। महाराज! सिद्ध कैसे होते हैं? मैंने कहा कि सिद्ध ऐसे होते हैं कि किसी का कुछ नहीं करते। हें! ऐसे सिद्ध? यह हम यहाँ हैं तो कुछ का करते हैं। ऐसे सिद्ध हमारे... कहाँ थे परन्तु तेरे? सुन न! ऐसा कहे, सिद्ध किसी का कुछ न करे? किसी का क्या, अपनी पूर्ण पर्याय का अनुभव करे। इसके अतिरिक्त कुछ किसी को... दुःखी होता हो धर्मी तो सामने देखे नहीं। ऐसे सिद्ध? टी.जी. शाह पहिचानते हो न? त्रिभुवन गोविन्द। वढवाण तुम्हारे।... बहुत था। क्या कहते हैं? छींकणीयां। छींकणी और सब, बिना ठिकाने का। मेरे साथ बात हुई थी। ऐसे सिद्ध भगवान? हम हों घर में हों तो घर का काम करते हैं, बाहर होवें तो जाति का काम करते हैं। कुछ कर नहीं तुम्हारे भगवान? अरे! किसी का करे नहीं। यह जैनशासन में चाहे जैसा होता हो तो विकल्प उठावे नहीं। आहाहा! उसे

हो किसका विकल्प? था कहाँ वहाँ? आहाहा! लूटालूट चलती हो धर्म के नाम से, सिद्ध को कुछ नहीं होता। अरे प्रभु! जरा कुछ विकल्प तो लाओ, इन्द्रों को प्रेरित करो। वे जैसे हम करते हैं, वैसा तुम्हें करना पड़ेगा। समझ में आया? इसके बिना दूसरा रास्ता नहीं है।

**ऐसे मुक्तिलक्ष्मी के विलासों को अल्प काल में प्राप्त करता है।** आहाहा! **वह आत्मा सुरेशों से,...** यह आत्मा सबसे वन्द्य है, ऐसा कहते हैं। **सुरेशों...** (अर्थात्) सुर-देवता ईश्वर-इन्द्रों से पूजनीक—वन्द्य। **संयमधरों की पंक्तियों से,...** वन्द्य। आहाहा! वीतराग की परिणति द्वारा आत्मा को देखनेवाले ऐसे संयमधर, उनकी पंक्ति.... आहाहा! लाखों मुनि ऐसे खड़े हों। सिद्ध उनको भी वन्द्य है। **खेचरों से ( -विद्याधरों से )...** विद्याधरों से भी पूज्य है। आहाहा! **तथा भूचरों से ( -भूमिगोचरियों से ) वन्द्य है।** मुनिराज प्रमोद में—आनन्द में आकर कहते हैं, जो यह परमात्मपद मुक्तिलक्ष्मीस्त्री वन्द्य है, इतने-इतने पुरुषों को.... **मैं उस सर्ववन्द्य...** सर्व को वन्द्ययोग्य वह चीज़ और **सकल-गुणनिधि को ( -सर्व से वन्द्य ऐसे समस्त गुणों के भण्डार को ) उसके गुणों की अपेक्षा से...** गुण की—पर्याय की अपेक्षा रखकर **( -अभिलाषा से ) वन्दन करता हूँ।**

तीन बोल लिये। वन्दन में भी तीन लिये। भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप, उसको वीतरागभाव से जिसने पूर्ण प्राप्त किया, वह सुर के इन्द्रों को वन्द्य है, खेचरों को—विद्याधरों को, भूचर—जमीन पर चलनेवाले... मैं उस **सर्ववन्द्य—**सर्व को वन्दनीक ऐसा जो आत्मा (जिसे) मुक्तिलक्ष्मी प्राप्त हुई। **सकलगुणनिधि...** यह आत्मा कैसा है? कि **सकलगुणनिधि...** भण्डार सब खुल गया। आहाहा! शक्ति में अनन्त आनन्द आदि था, वह पर्याय में सब विकास हो गया, कमल खिल गया। गुलाब होता है न, गुलाब का फूल, (उसकी) कली खिल जाती है न! भगवान की दशा सब खिल गयी। वह भगवान सर्व को वन्द्य है और वह भगवान सर्व गुणों का भण्डार है। दो बात। उसके गुणों की अपेक्षा ऐसी पर्याय की प्राप्ति मेरी दृष्टि में है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **वन्दन करता हूँ।** आहाहा! मुनि की अध्यात्म की धारा, एकबार साधारण प्राणी हो तो उसे ऊँचा करे ऐसा है। हीराभाई! ऐसी वाणी है। १५४ (हुआ)। अब १५५।

**आत्मा स्पष्टः परम-यमिनां चित्त-पङ्केज-मध्ये**
**ज्ञान-ज्योतिःप्रहत-दुरित-ध्वान्त-पुञ्जः पुराणः।**
**सोऽतिक्रान्तो भवति भविनां वाङ्मनोमार्गमस्मि-**
**न्नारातीये परमपुरुषे को विधिः को निषेधः॥१५५॥**

आहाहा! **श्लोकार्थः—जिसने ज्ञानज्योति द्वारा पापतिमिर के पुंज का नाश किया है...** भगवान आत्मा अपनी ज्ञानज्योति द्वारा—चैतन्य की झलक द्वारा—ज्ञान के प्रकाश द्वारा—पाप अर्थात् पुण्य-पाप के तिमिर के पुंज का नाश किया है। पाप शब्द से पुण्य-पाप दोनों। **और जो पुराण (-सनातन) है,...** आहाहा! यह वस्तु जिसमें पुण्य-पाप है ही नहीं। पुराण है—सनातन है, अनादि सनातन भगवान है। **ऐसा आत्मा परमसंयमियों के चित्तकमल में स्पष्ट है।** ऐसा भगवान परमसंयमियों के चित्तकमल में प्रगट स्पष्ट है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि के ज्ञान में वह प्रत्यक्ष है, परन्तु यह तो परमसंयमियों के ज्ञान में... आहाहा! ....चारित्रदशा प्रगट हुई, उसमें स्पष्ट है। **वह आत्मा संसारी जीवों के वचन-मनोमार्ग से अतिक्रान्त...** संसारी के वचन और मनमार्ग से अतिक्रान्त है। मन से ज्ञात हो, ऐसा नहीं; वाणी से ज्ञात हो, ऐसा नहीं। आहाहा! वाणी से ज्ञात हो ऐसा नहीं। **(-वचन तथा मन के मार्ग से अगोचर) है।** आहाहा!

**इस निकट परमपुरुष में विधि क्या और निषेध क्या?** आहाहा! इस वस्तु में विकल्प है नहीं, तो ऐसा करना और ऐसा नहीं करना—यह विधि-निषेध है कहाँ? आहाहा! ऐसे **निकट परमपुरुष...** आहाहा! ऐसी विधि क्या? ऐसी वीतरागी परिणति में परिणमता है, उसको यह करना और यह नहीं करना, ऐसा है कहाँ? आहाहा! आचार्य भी...! '**आलोयणमिदि जाणह परमजिणंदस्स उवएसं**' त्रिलोकनाथ के उपदेश में यह आया है। इसमें से निकाला है कि व्यवहार की मश्करी की (अर्थात्) व्यवहार को याद ही नहीं किया, ऐसा कहते हैं। उसे जान, ऐसा कहा। व्यवहार-फ्यवहार जान, यह भी नहीं कहा यहाँ तो। भाई! व्यवहार जाननेयोग्य है, यह भी यहाँ नहीं कहा। आहाहा! मुनि—नग्न मुनियों की मस्ती है यह। नागा, कहते हैं न, बादशाह से आघा।

कहते हैं, '**आलोयणमिदि जाणह परमजिणंदस्स**' परम वीतरागदेव के उपदेश में यह आया है। व्यवहार-फ्यवहार कर ले—यह बात छोड़ दे। मश्करी की है, ऐसा

कहते हैं। तीसरे पद में से निकाला है। समझ में आया? त्रिलोकनाथ तीर्थंकर वीतराग परमेश्वर जिनेन्द्रनाथ के उपदेश में तो ऐसा आया है। व्यवहार जाननेयोग्य, यह भी नहीं, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** व्यवहार जाने तो लाभ हो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु वह तो यहाँ ज्ञात हो जाता है। इसे जानते हुए। रागादि का ज्ञान उत्पन्न होता है अपने से, उसके कारण से नहीं। यह जानना रहता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

**इस प्रकार इस पद्य द्वारा परम जिनयोगीश्वर ने...** परम सन्तों को **वास्तव में व्यवहार-आलोचना के प्रपंच का...** जिनेश्वर ने—योगीश्वर ने, ऐसा। **वास्तव में व्यवहार-आलोचना के प्रपंच का उपहास किया है।** व्यवहार-आलोचना, ओहोहो! मजाक उड़ाई है। देखो! यह वीतरागी मुनि, वीतरागीमार्ग और वीतरागी त्रिकाली आत्मा का स्वरूप। उसमें यह राग-फाग का विकल्प, आलोचना है ही कहाँ चीज़? है ही नहीं न क्या तुम... ? ऐसे व्यवहार-आलोचना प्रपंच का उपहास—हँसी—मजाक—तिरस्कार... लो, व्यवहार का तिरस्कार। एक व्यक्ति कहता था कि यह व्यवहार का तो तिरस्कार करते हो, निश्चय आवे तो गले पकड़ते हो। एक पण्डित कहता था। आहाहा! भगवान! तिरस्कार का अर्थ उसका आदर नहीं। है या नहीं, उसकी दरकार नहीं। वह है, उसकी दरकार है। त्रिलोकनाथ चैतन्यमूर्ति आनन्द हूँ, उसको सावधानरूप से देखना। (व्यवहार का) उपहास किया है, लो, यह १५५।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**भाद्र शुक्ल ८, रविवार, दिनांक - २९-८-१९७१**
**श्लोक-१५६-१५९, प्रवचन-१०८**

चौथा दिन है न! उत्तम क्षमा, मार्दव और आर्जव—सरलता। उसका अर्थ क्रोध, मान, माया से रहित तीन बोल आये। यह चौथा लोभ से रहित। निर्लोभता कहो या शौच कहो।

**समसंतोसजलेण य जो धोवदि तिह्लिलोहमलपुंजं।**
**भोयणगिद्धिविहीणो तस्स सउच्चं हवे विमलं॥३९७॥**

(-कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

**जो** कोई धर्मात्मा—**मुनि...** मुनि की मुख्यता से बात है न! **समभाव अर्थात् राग-द्वेषरहित परिणाम।** तृण और कंचन को समान जाने, वह तो ज्ञेय है। कंचन ठीक है और तृण अठीक है—ऐसा जिसकी दृष्टि में और भाव में नहीं है, उसको समभाव कहते हैं। आता है न! 'रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की, सबको माना पुद्गल एक स्वभाव जब।' रजकण हो या सर्वार्थसिद्धि विमान की ऋद्धि हो। सबको माना पुद्गल एक स्वभाव। यह तो एक प्रकार से सब पुद्गल का स्वभाव है, उसमें कोई आत्मा है नहीं। धर्मात्मा को अपनी स्वरूप की रुचि और दृष्टिपूर्वक समभाव धारण करना, उसका नाम यहाँ शौचधर्म कहने में आता है। और **सन्तोष...** आत्मा में आनन्द है, आत्मा में सुख है। कहीं दूसरी किसी चीज़ में अपना सुख है नहीं। लक्ष्मी में, शरीर में, इज्जत में, कीर्ति में सुख नहीं, विषयभोग में सुख नहीं। यह तो राग और दुःख है। और पुण्य तथा पाप के भाव जो शुभ-अशुभभाव, उसमें भी सुख नहीं। ऐसा आनन्द और सुख तो अपने में है। उसको यहाँ सन्तोष कहते हैं। ऐसी दृष्टिपूर्वक सन्तोष अर्थात् सुख का अनुभव करना, उसका नाम पवित्रता अर्थात् शौच धर्म है। आहाहा!

**'तिह्लिलोहमलपुंजं' तृष्णा—**आगामी (काल सम्बन्धी) किसी पदार्थ की इच्छा को तृष्णा कहते हैं। **लोभ...** प्राप्त चीज़ की आसक्ति को लोभ कहते हैं। समझ में आया?

तृष्णा और लोभ। तृष्णा, वर्तमान के अतिरिक्त आगामी काल (सम्बन्धी) किसी भी पदार्थ की लालसा करना, वह तृष्णा है। और वर्तमान में सम्प्राप्त—मिली हुई चीज़, उसमें आसक्ति—गृद्धि करना, वह लोभ है। तृष्णा और लोभरूपी भाव को— **मलपुंज को... 'समसंतोसजलेण य जो धोवदि'** अन्तर में आत्मा में आनन्द है और समभाव के धारण करने से ऐसे तृष्णा और लोभ के मलपुंज को **धोता है।** उसका नाम शौचधर्म है। आहाहा! **'भोयणगिद्धिविहीणो'** मुनि की मुख्यता है न! मुनि को तो एक आहार लेने का भाव है, दूसरा तो कुछ है नहीं। तो उसमें भी **गृद्धि...** नहीं होना चाहिए, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लाभ-अलाभ, सरस-निरस समबुद्धि रहता है, उसको शौचधर्म कहा जाता है। लोभ के चार प्रकार हैं। एक जीवित्व का लोभ, वह की वह स्थिति टिकी रहे, ऐसे जीवितकरणलोभ, आरोग्य रहने का लोभ... शरीर की निरोगता रहे—ठीक रहे, ऐसा एक लोभ।

**मुमुक्षु :** उससे धर्म सधेगा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी धर्म होगा नहीं। शरीर ठीक हो तो धर्म सधता है, ऐसी सेठ मश्करी करते हैं, पूछते हैं। ऐसा होता है या नहीं? बीमार पड़े तो क्या करे? (बीमार) पड़े तो खाट में पड़े, लो, कफ चलता है वहाँ। शरीर अच्छा हो तो धर्म होता है, यहाँ आया जाता है। क्यों सेठ? आहाहा!

शरीर तो जड़ है, उसकी निरोगता रहे, वह लोभ है। आहाहा! समझ में आया? और इन्द्रियाँ बनी रहे... पाँचों इन्द्रियाँ व्यवस्थित (ठीक) रहे, आँख देखने का, कान सुनने का,.... (नाक) सूँघने का, बोलने का, रस लेने का और स्पर्श—इन्द्रियाँ व्यवस्थित रहे, यह भी एक लोभ है। परद्रव्य की पर्याय रहना—नहीं रहना, उसके आधीन है। समझ में आया? भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय है। उसमें इन्द्रियाँ व्यवस्थित रहे, (ऐसा) लोभ छोड़ना, ऐसा कहते हैं। और उपभोग का लोभ... उपभोग—बारम्बार भोगने की चीज़ हो, उसका लोभ। चाहे तो अपना और पर का—ऐसे उसके आठ बोल होते हैं। सबमें लोभ का त्याग करना और आत्मा को आनन्द अर्थात् सन्तोष में रखना, उसका नाम शौचधर्म कहने में आता है। आहाहा! चौथा धर्म हुआ।

अपने यहाँ नियमसार। १५६, १५६ कलश। नियमसार का अर्थ मोक्ष का मार्ग। नियम अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, उसका सार (अर्थात्) व्यवहाररहित। समझ में आया? नियमसार। '**नियमेण य जं कज्जं**' निश्चय से करनेयोग्य हो तो, अपना कार्य करनेयोग्य हो तो, अपना भगवान सच्चिदानन्द निर्मल परमात्मा के सन्मुख श्रद्धा और सन्मुख होकर ज्ञान और अन्तर में रमणता—लीनता।—यह नियम से करनेयोग्य तीन चीज़ें हैं। परन्तु यह बीड़ियों का, कहते हैं, कब करना? बीड़ी के पैसे कब लाना? कानपुर जाकर उगाहना।

**मुमुक्षु :** मुनि की बात करो.... बीड़ी की कहाँ.... ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ मुनि के और गृहस्थ के लिये है।

**मुमुक्षु :** ....तब से बीड़ी का धन्धा करते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह धन्धा भी कौन करता है? यह कहते हैं यहाँ तो। यह झबेरी का धन्धा शान्तिभाई नहीं करते। समझ में आया? यह तो इनके घर में कहा। शान्तिभाई करते हैं, यह झबेरी का धन्धा? वे तो राग करते हैं। गये न शान्तिभाई? गये कल रात्रि को। समझ में आया? आहाहा!

नियमसार (अर्थात्) अपना परमात्मा पूर्णानन्द सहजानन्दमूर्ति, उसका अन्तर में निर्विकल्प—राग की अपेक्षा बिना अन्तर में सम्यग्दर्शन प्रगट करना, वह नियम से कर्तव्य है। और अपना ज्ञायक चिदानन्दस्वभाव का स्वसंवेदन ज्ञान करके उसमें उपयोग लगाना। समझ में आया? आहाहा! अगम-निगम की बातें हैं सब। उसको सम्यग्ज्ञान नियम से करनेयोग्य कहते हैं। शास्त्रज्ञान नियम से करनेयोग्य है, ऐसा नहीं कहा यहाँ। समझ में आया? भगवान चैतन्यपुंज ज्ञान का भरपूर सागर, ऐसा चैतन्य का ज्ञान करना, वह नियम से करनेयोग्य कर्तव्य है और स्वरूप में रमना—चरना—जमना—अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र भोजन करना, वह चारित्र, वह आत्मा को नियम से करनेयोग्य है और सार (अर्थात्) व्यवहार से रहित। व्यवहार जो निश्चय से विपरीत है... व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र जो कहते हैं विकल्प—राग, वह निश्चय से विपरीत है। '**विपरीत के परिहार हेतु सार शब्द परिकथित है।**' उसमें आता है तीसरी गाथा में। समझ में आया? तो यहाँ कहते हैं १५६ में।

**जयत्यनघ-चिन्मयं सहज-तत्त्व-मुच्चैरिदं,**
**विमुक्तसकलेन्द्रियप्रकरजातकोलाहलम्।**
**नयानय-निकाय-दूर-मपि योगिनां गोचरं,**
**सदा शिवमयं परं परम-दूर-मज्ञानिनाम्॥१५६॥**

आहाहा! **श्लोकार्थः—जो सकल इन्द्रियों के समूह से उत्पन्न होनेवाले कोलाहल से...** रहित है। भगवान आत्मा अन्दर में कोलाहल से रहित अणीन्द्रिय वस्तु है। इन्द्रियों से—पाँच इन्द्रियों के संग में विकल्प उत्पन्न होता है, ऐसे कोलाहल से तो यह भगवान आत्मा रहित है। अभी, हों! आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर के विकल्प की कोलाहलता, उससे भगवान आत्मा अभी वर्तमान में रहित है, अभी। किसकी बात चलती है? समझ में आया? पाँच इन्द्रिय की ओर का विकल्प जो उठता है, वह कोलाहल है। भगवान आत्मा में वह है नहीं। आहाहा! वह तो अणीन्द्रिय भगवान आत्मा है। अणीन्द्रिय का अनुभव करना और इन्द्रिय के कोलाहल को छोड़ना, इसका नाम मोक्षमार्ग है। समझ में आया? भाई! अच्छी इन्द्रियाँ हों तो दया पाल सके, आँख का तेज हो तो जीवादि को देखा जा सके, कान बराबर हो तो सुन सके। यहाँ मना करते हैं। इन्द्रिय की ओर के सब विकल्प कोलाहल हैं। समझ में आया? आहाहा! उससे तो विमुक्त प्रभु है।

**जो नय और अनय के समूह से दूर होने पर भी...** निश्चय से अबद्ध है और व्यवहार से राग है, बद्ध है—ऐसे नय के विकल्प से तो दूर है। आहाहा! नयातिक्रान्त है। समझ में आया? यह भागवत शास्त्र है। पीछे लिखा है। लिखा है या नहीं? भगवन्त की बात चलती है यह। है या नहीं? ३७२। यह विषय नहीं? कितनी लाईन? भागवत। तीसरी लाईन। **यह नियमसार शास्त्र भागवत शास्त्र है।** ३७२ पृष्ठ। ३७२, नीचे से तीसरी लाईन, नीचे से तीसरी लाईन। है? बोलो।

**मुमुक्षु :** यह नियमसार शास्त्र भागवत शास्त्र है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बस वह। बराबर है। सेठिया को बुलावे तो सही न! यह सब बहियाँ जाँचते हैं, उसकी अपेक्षा यह बुलाया तुमको। यह नियमसार शास्त्र भागवत् शास्त्र है। नीचे अर्थ है, देखो! **भगवान का, दैवी** शास्त्र, **पवित्र** शास्त्र। नीचे अर्थ है

नीचे। भागवत का अर्थ नीचे है। है? भगवत्... भगवान का शास्त्र, दैवी शास्त्र, पवित्र शास्त्र, उसको यहाँ भागवत शास्त्र कहते हैं। समझ में आया? अन्य में भागवत शास्त्र कहते हैं न! यह भावगत शास्त्र है। भागवत कथा तो यह है। सात दिन की... कहते हैं, **जो नय और अनय के समूह से दूर होने पर भी...** ऐसा। **योगियों को गोचर है,...** आहाहा!

**मुमुक्षु :** प्रमाण.... विकल्पातीत?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** विकल्पातीत।

**मुमुक्षु :** प्रमाण नहीं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ यह बात नहीं है। नय-अनय विकल्प दूर होने पर भी योगियों को तो गम्य है। अन्तर ज्ञान की दृष्टि करनेवाले को—समकिती को तो गम्य है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

नय या कुनय जिसमें कोई विकल्प नहीं, उससे रहित होने पर भी सम्यग्दृष्टि को गम्य है। आहाहा! अस्ति-नास्ति की है। यह चैतन्य आत्मा ज्ञायकभाव ध्रुवस्वभाव की दृष्टि करनेवाले धर्मी को तो गम्य है। समझ में आया? पहले कह गये हैं (कि) चार भाव से भी अगम्य है। उसका अर्थ कि चार भाव के आश्रय से वह गम्य नहीं। समझ में आया? यह तो आ गया है शुद्धभाव अधिकार में। भगवान पूर्णानन्द, अनन्त ज्ञान से लबालब भरा ऐसा समुद्र प्रभु, वह क्षायिकभाव से भी अगम्य है। ऐसा पाठ है। इसका अर्थ कि क्षायिकभाव के आश्रय से वह नहीं समझ में आता है। वह तो त्रिकाली के आश्रय से समझ में आता है। कृष्णकुमारजी! समझ में आया? वह तो उसके (अपने) आश्रय से जानने में आता है। पर्याय के आश्रय से, राग के आश्रय से भी जानने में नहीं आता। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा चैतन्यऋद्धि धरनेवाला भगवान आत्मा तेरी पर्याय के समीप में है, आहाहा! दूर नहीं। यह तो दूर था, कहा था न? वह दूर है, परन्तु दूर नहीं, ऐसा। समझे? इन्द्रियों के कोलाहल से मुक्त है, नय-अनय से दूर है। ऐसा आया, 'दूर' आया न? तथापि धर्मी जीव को—धर्मी जीव को वर्तमान पर्याय के समीप है। सेठी! ऐसा तो जयपुर, मुम्बई में तो कुछ मिले नहीं। बापूजी, बापूजी करे, पिताजी साहेब... हो गया काम लो! आहाहा!

इसके लिये तो आये हैं यहाँ। मीठालालजी हैं न। मीठामण है न? कहो, समझ में आया? आहाहा!

तीन लोक का नाथ अनन्त समृद्धि से शोभित, अपनी निज अनन्त समृद्धि से शोभित प्रभु स्वयं, वह धर्मी को पर्याय के समीप में है। वह आता है न! आगे आता है न! '**जस्स संणिहिदो अप्पा**' आता है न अपने कहीं? '**जस्स संणिहिदो अप्पा**' जिसे समीप है आत्मा। आहाहा! पीछे है न? सामायिक में पीछे आता है। समाधि में। समाधि... समाधि... समाधि है न, वह सामायिक है। २२७। यह आया, लो। '**जस्स संणिहिदो अप्पा, संजमे णियमे तवे तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे**' सर्वज्ञ परमात्मा के मार्ग में आत्मा संयम और सम्यग्दर्शन के समीप में है। आहाहा! गाथा १२७, पृष्ठ २५७। उसमें भी आता है, श्वेताम्बर में अनुयोगद्वार। २२७ है न? पृष्ठ, हों, पृष्ठ २५७। गाथा १२७। '**जस्स संणिहिदो अप्पा**' आहाहा!

**संयम-नियम-तप में अहो! आत्मा समीप जिसे रहे।** आत्मा समीप जिसे रहे... आहाहा! निर्मल पर्याय के समीप आत्मा है। यह बात! भगवान तीन लोक का नाथ अनन्त-अनन्त सिद्ध, केवलज्ञानी को तीन लोक के नाथ क्यों कहा जाता है? (क्योंकि) तीन लोक को जानते हैं। ऐसे अनन्त-अनन्त केवलज्ञान को पेट में—गर्भ में रखनेवाला ऐसा भगवान त्रिलोकनाथ, सम्यग्दृष्टि को अपनी पर्याय में नजदीक—समीप वर्तता है। नय-अनय से दूर है, परन्तु सम्यग्दृष्टि की पर्याय में समीप है। समझ में आया? ऐसा शब्द अनुयोगद्वार में आता है, श्वेताम्बर में। वापस उसका अर्थ नहीं और दूसरे गड़बड़... आगे-पीछे विरोध बहुत होता। मेल नहीं। यह तो अखण्डानन्द... सन्तों की—दिगम्बर मुनियों की अखण्ड धारा, एक से अनन्त अरब तक कोई भी जाति लो, परन्तु अखण्डानन्द सत्य अकेला खड़ा होता है। समझ में आया?

कहते हैं, **योगियों को गोचर है...** इसका अर्थ यह कि जिसकी दृष्टि द्रव्य के ऊपर पड़ी है... समझ में आया? तो सम्यग्दृष्टि को वह गम्य है कि आत्मा कैसा है। एक बात। **जो सदा शिवमय है,...** भगवान तो सदा कल्याण की मूर्ति है। सदा शिवमय, निरुपद्रव, अकल्याणरहित त्रिकाल कल्याण की मूर्ति प्रभु आत्मा है। **उत्कृष्ट है...** जिससे

कोई चीज़ ऊँची है नहीं। ऐसी भगवान आत्मा चीज़—वस्तु सम्यग्दर्शन का विषय है और सम्यग्दर्शन को आश्रय करनेयोग्य चीज़ यह सर्वोत्कृष्ट भगवान आत्मा है। आहाहा! **और जो अज्ञानियों को परम दूर है,...** योगियों को गम्य है, तो अज्ञानियों को दूर है। आहाहा! जिसकी बुद्धि निमित्त में, राग में और एक समय की पर्याय में रुकी है, उसको दूर है। आहाहा! समझ में आया? जिसकी बुद्धि पर्याय—एक अंश में अथवा विकल्प शुभभाव में या निमित्त में रुकी है, ऐसे अज्ञानियों को दूर है। आहाहा! कृष्णकुमारजी! ऐसी चीज़ है, लो। आहाहा!

लड़के जब खेलते हैं न छोटी उम्र में, तब ऐसा कहते हैं। छोटी उम्र की बात है १०-११ वर्ष की। मामा का घर कितना (दूर)? कि वह दीपक जले उतना, ऐसा कहते थे। खेल में आता था। आता था तुम्हारे... भाई? वहाँ हमारे मामा का घर नजदीक है न। रहने का स्थान मामा का घर था, मामा ने दिया था। कणबीवाड में घर है। खेले तो ऐसा कहे, मामा का घर कितना (दूर)? यह दीपक जले उतना। पक्का मकान था न। इसी प्रकार आत्मा का घर कितना? जहाँ चैतन्य आनन्द की जलहल ज्योति हो उतना। कहो, चिमनभाई! आहाहा!

**अज्ञानियों को परम दूर है,...** वापस अकेला दूर नहीं। आहाहा! जिसकी अन्तर स्वभाव समीप दृष्टि नहीं और जिसकी दृष्टि पर्याय में, राग में और निमित्त में रुकी है, उसको तो अति—परम दूर है। क्या चीज़ है, उसको मालूम नहीं। **ऐसा यह अनघ...** अनघ... **अनघ-निर्दोष, मलरहित, शुद्ध।** पुण्य-पाप के मैल—अघ। पुण्य और पाप दोनों अघ है। उससे रहित अनघ भगवान आत्मा है। आहाहा! कहो, निरंजन! वहाँ आया था तुम्हारे अमेरिका में कहीं? गप्पें मारे हों वहाँ। समझ में आया? अपने आप वाँचे तो वहाँ क्या साधारण पुस्तक। पुस्तक ले गया था न? कौनसी? समझ में आया? अज्ञानियों को परम दूर है।

**ऐसा यह अनघ-चैतन्यमय...** निर्दोष और चैतन्यमय... **सहजतत्त्व अत्यन्त जयवन्त है।** आहाहा! ऐसा कहकर क्या कहते हैं? हमारी दृष्टि में यह तत्त्व आ गया है, तो ऐसे जयवन्त है। समझ में आया? है, उसका स्वीकार अनुभव में न हो, तब तक 'जयवन्त

है' कहाँ से आया ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? प्रभु की महासत्ता चैतन्यसत्ता है, परन्तु है कहाँ से ? जिसकी श्रद्धा और ज्ञान की पर्याय में आया है। ओहो ! ऐसा **सहजतत्त्व अत्यन्त जयवन्त है।** शाश्वत्, शाश्वत् ही है वह। समझ में आया ? आहाहा ! वे दिगम्बर मुनि हैं। कितनी बात की है ! आहाहा ! गजब बात है। वनवासी। १५६ (कलश) हुआ। १५७।

**शुद्धात्मानं निज-सुखसुधा-वार्धि-मज्जन्त-मेनं,**
**बुद्ध्वा भव्यः परम-गुरुतः शाश्वतं शं प्रयाति।**
**तस्मा-दुच्चै-रह-मपि सदा भावयाम्यत्यपूर्वं,**
**भेदाभावे किमपि सहजं सिद्धिभूसौख्यशुद्धम्॥१५७॥**

यह तो भगवान आत्मा को जगाने के मन्त्र हैं। मिथ्यात्व का जहर उतारने का (मन्त्र) है, समकित का अमृतसागर प्रगट करने का है।

कहते हैं, **श्लोकार्थः—निज सुखरूपी सुधा के सागर में डूबते हुए इस शुद्धात्मा को जानकर...** आहाहा ! कैसा है भगवान अन्दर नित्यानन्द प्रभु ? निज सुख अपना आनन्दरूपी अमृत के सागर में डूबते, डूबकर अन्दर पड़ा है। सुख आनन्द के सागर में भगवान आत्मा पड़ा है। आहाहा ! समझ में आया ? वस्तु—द्रव्य—पदार्थ, वह तो निजसुखरूपी अमृत के सागर में डूबे हुए... अन्दर आनन्द से सराबोर आत्मा है, ऐसा कहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द से सराबोर... तरबोल कहते हैं ? क्या कहते हैं ? तरबोल हमारी गुजराती भाषा है। कुछ खबर नहीं। डूबा हुआ....

जैसे पूरणपोली होती है न पूरणपोली। सराबोर। सरोबार तो कहा। यह तो अभी बराबर हाँ करते, ना करते हैं। यह हिन्दी है या नहीं ? तुम्हारा शब्द तुमको पूछते हैं हम। तरबोल।

**मुमुक्षु :** सराबोर कहते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पूरणपोली होती है न, पूरणपोली समझे ? पूरणपोली। रोटी गेहूँ की, उसमें पूरण डालते हैं न। तुअर की दाल और शक्कर और ऐसा बनाकर... तो ऐसी रोटी बने तो एकदम घी का तपेला—बर्तन पड़ा हो पहले उसमें डाले, (फिर)

उठाकर परोसे। ऐसे उठाकर लो। सराबोर। टपकते घी में सराबोर। .... अपने यहाँ हमारी भाषा है।

यहाँ **सुखरूपी सुधा के सागर में डूबते हुए...** आहाहा! डूबते हुए क्या, है ही ऐसा, ऐसा। आहाहा! जैसे मनुष्य पानी में डूबता है, वैसे भगवान अतीन्द्रिय आनन्द में डूब गया है, अन्दर पड़ा है। आहाहा! उसके गीत इसने सुने नहीं। वह चीज़ क्या है? तीन लोक का नाथ परमात्मा जिसके गर्भ में अनन्त सिद्ध स्थित हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सुखरूपी अमृत के सागर में **डूबते हुए इस शुद्धात्मा को जानकर...** ऐसे भगवान आत्मा को जानकर.... पर को जानकर या राग को जानकर या पर्याय को जानकर, (ऐसा) यहाँ नहीं कहा। समझ में आया? आहाहा!

**भव्य जीव परमगुरु द्वारा शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं;...** परम गुरु ने ऐसा कहा कि तेरी परमात्म चीज़ तेरे पास है। जैसा कहा, ऐसा प्रगट किया—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तेरा भगवान तेरे पास आनन्द में पड़ा है। वहाँ नजर कर। हमारे ऊपर से नजर छोड़ दे। आहाहा! कहा तो यह कहा। देखो! **परम गुरु द्वारा...** धर्मी, समकिती, ज्ञानी, सन्त आदि ने कहा तो यह कहा कि तेरी चीज़ परम आनन्द में डूबी है, वह तेरे पास है। वहाँ नजर कर, वहाँ दृष्टि लगा, वहाँ झुक जाओ, वहाँ लीन हो जाओ। ऐसा गुरु का उपदेश—चार अनुयोग के साररूप यह उपदेश कहा। आहाहा! सन्तों की वाणी में वीतरागता का पोषक तत्त्व आता है। वीतराग की पर्याय कब हो? त्रिकाली ज्ञायकभाव में जब घुस जाये, एकाग्र हो, तो वीतरागी पर्याय होती है। आहाहा! समझ में आया? गुरुगम होता है तो गुरु ऐसा कहते हैं।

**शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं;...** देखो! जैसा आनन्द में डूबा हुआ भगवान गुरु ने कहा, उस ओर झुक जा, उसका स्वीकार कर, तू पूर्णानन्द परमात्मा है, ऐसा स्वीकार कर। तो स्वीकार करके शाश्वत् सुख को प्राप्त करते हैं। जो आनन्द प्रगट हुआ, वह कायम रहेगा। इस संसारी को तो पाँच-पच्चीस वर्ष ठीक लगे और फिर अन्धकार हो जाये, निर्धन हो जाये, एक-एक जिन्दगी में दो-तीन बार (ऐसी) दशा हो जाती है। बहुतों को देखा है न! करोड़पति था और निर्धन हो गया, फिर करोड़पति हुआ। ऐसा

का ऐसा एक-एक जिन्दगी में तीन-तीन, चार-चार बार... यह तो बाहर की दु:ख की दशा है। समझ में आया?

क्या कहते थे वे, नहीं? रावजीलाल। चढ़ती-पड़ती छाया। रावजीलाल था न। किसका था वह? महेन्द्रभाई का? वच्छराजजी। वच्छराजजी अपने गंगवाल, उसका वह था... क्या कहलाता है तुम्हारे? ड्राईवर। पहले जब (संवत्) २०१३ के वर्ष में गये थे न, १३ के वर्ष में आये न जयपुर, तब दीवान की मंजिल में उतरे थे न बाजार में, दीवान की मंजिल में। तो एक था मावजी, कैसा? त्रिकम मावजी। मावजी का लड़का था। झबेरी बाजार में झबेरी की दुकान थी। महेन्द्रभाई पहिचानते हैं। भाई तो पहिचाने न! वांकानेर। मावजी त्रिकमजी झबेरी की दुकान। सब समाप्त हो गया। उसका लड़का, ८० वर्ष की उम्र थी। हम जब नीचे उतरे दीवान की मंजिल से, नीचे उतरे तो वह माँगता था। फकीर जैसे दिखे कपड़े। भिखारी... मेरी नजर गयी। यह शॉल देखकर (कहा), यह पहले से कोई गरीब व्यक्ति नहीं है, यह भिखारी नहीं है।

वहाँ महेन्द्रभाई बैठे थे। महेन्द्रभाई कहे, यह तो मावजी त्रिकम का लड़का है। उन्होंने नहीं परन्तु रामजीलाल ने कहा। महेन्द्रभाई से कहा। मैंने तो उसको बहुत दिया है पहले। अत्यन्त गरीब भिखारी, कपड़े जीर्ण, जूते जीर्ण। ऐसे चलता था। पिचहत्तर वर्ष की उम्र। झबेरी की दुकान थी मावजी त्रिकम, जयपुर में। मैंने कहा, यह कोई भिखारी नहीं लगता पहले से। तब उन्होंने कहा, यह तो मावजी त्रिकम... बड़ी दुकान थी। तब वह रामजीलाल था ड्राईवर, (वह कहे), चढ़ती-पड़ती छाया है। चढ़ती-फिरती छाया। यह छाया होती है न छाया। धूप और छाया। वैसे छाया आवे और जावे, आवे और जावे। इसी प्रकार यह सब ऋद्धि और इज्जत आवे और जावे। उसमें कुछ है नहीं। सेठ! आहाहा! चढ़ती-फिरती छाया है, ऐसा कहा था। यह तो कहते हैं, आहाहा! **शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं;...** शाश्वत् भगवान आनन्द में डूब रहा है, उसका आश्रय किया और पर्याय में शाश्वत् सुख प्राप्त होता है।

**इसलिए, भेद के अभाव की दृष्टि से...** भेद के अभाव की दृष्टि से... आहाहा! मैं तो अभेद, अखण्ड, आनन्दकन्द, एकरूप स्वभाव हूँ। ऐसी अभेद की दृष्टि से **जो सिद्धि**

**से उत्पन्न होनेवाले सौख्य...** दृष्टि से उत्पन्न होनेवाला मुक्ति का सुख... **द्वारा शुद्ध है...** मुक्ति के सुख से वह जीव शुद्ध है। द्रव्य तो शुद्ध है ही, परन्तु अभेददृष्टि से उत्पन्न हुई मुक्ति की पर्याय, उसके सौख्य द्वारा... **ऐसे किसी ( अद्भुत ) सहजतत्त्व को मैं भी सदा...** आहाहा! **किसी ( अद्भुत ) सहजतत्त्व को मैं भी सदा अति-अपूर्व रीति से...** अपूर्व रीति से—अपूर्व पद्धति से—अपूर्व मार्ग से **अत्यन्त भाता हूँ।** आहाहा! हमारे पण्डितजी कहते हैं न कि शब्द कम पड़ते हैं। लिखा है न, प्रस्तावना में लिखा है। इसमें? ऐसा सिंह की भाँति मस्त वनवास... ऐसे चौरासी के अवतार को नाश करके, सिंह की भाँति दहाड़ करके, सिद्धि लेने को तैयार हो गया है। आहाहा! समझ में आया?

और एक गरीब की व्याख्या आयी है अभी। परम गरीब तो दिगम्बर मुनि हैं। ऋद्धिधारी हैं। गरीब-गरीब... मुनियों के लिये 'गरीब' शब्द प्रयोग करना यह ठीक नहीं। यह तो लेख आया है। वे तो बादशाह के बादशाह हैं। आनन्दकन्द में झूलते हैं। कैसे? ऐसा अत्यन्त अप्रतिहत भाता हूँ। मैं स्वरूप की भावना करता हूँ अर्थात् मोक्षमार्ग से मैं द्रव्य को भाता हूँ। आहाहा! समझ में आया? अरे! देह छूटने के काल में कौन शरण है तुझे? यह द्रव्य शरण है। द्रव्य की दृष्टि की हो, तो शरण प्राप्त होगी। नहीं तो कहीं शरण है नहीं। आहाहा! श्वास ले... आहाहा! कोई शरण नहीं लक्ष्मी, शरीर, राग, कर्म बँधे हुए तत्त्व, कर्म बँधा हुआ तत्त्व, एक समय की पर्याय भी शरण नहीं है। आहाहा! क्योंकि वह तो पलटती जाती है। त्रिकाली भगवान शुद्ध आनन्द का धाम अत्यन्त भक्ति से भाता हूँ। आहाहा! मुनि कहते हैं, देखो! १५७ हुआ, १५८।

**निर्मुक्त-सङ्ग-निकरं परमात्म-तत्त्वं,**
**निर्मोहरूप-मनघं परभाव-मुक्तम्।**
**सम्भावयाम्यहमिदं प्रणमामि नित्यं,**
**निर्वाण-योषिद-तनूद्भवसम्मदाय॥१५८॥**

१५८ न? **श्लोकार्थ:—सर्व संग से निर्मुक्त,...** आहाहा! भगवान आत्मा तो सर्व संग से छूटा है। जिसको राग का संग नहीं, कर्म का, निमित्त का संग नहीं। ऐसा भगवान आत्मा असंगतत्त्व है। आहाहा! यह अभी बनायी न पुस्तक। उन धन्नालाल ने उसमें निकाला है, टीकाकार की उसमें भूल है उस आवलिका की। आवलिका का है न।

नियमसार। कल देखा कल। उसमें उनकी टीकाकार की भूल है। टीकाकार भ्रम में हैं। अरे भाई! सुन न! यह योगीश्वर सन्त... कोई अपेक्षा से साधारण बात हो, लक्ष्य न किया हो। ऐसी बात है। लिखा था। कल नया आया। टीकाकार की भूल है, मूल पाठ की भूल है। किसी ने मूल पाठ में फेरफार कर दिया है। गोम्मटसार के अनुसार नहीं। अरे भाई! अपेक्षा से धारणा विषय की बात है। यह भगवान है, उसे तो देख। समझ में आया? भूल-बूल क्या निकालता है? वह तो है। वह तो गौशाळा को बचाया न। गौशाळा को बचाया न। पण्डित ऐसा कहते हैं। आहाहा! आया था।

श्वेताम्बर में ऐसा आता है न! गौशाळा ने... पहले भगवान के पास सीखे लेश्या—तेजोलेश्या। तेजोलेश्या एक लब्धि होती है मारने की। पश्चात् अपने को जब लेश्या प्रगट हुई, समवसरण में आये, भगवान के ऊपर तेजोलेश्या डाली। उससे पहले गोशाळा को बचा लिया। गोशाळा को... अटकचाळो का था न। 'अटकचाळो' क्या कहते हैं? एक साधु अन्यमती बाबा था। जटा में जूं थी, बहुत जूं... जूं। तो गोशाळा निकला। ऐ! जूं का घर है? जूं का घर। बहुत जूं है न। जूं का घर है? ऐसे अनादर बहुत किया। उसने तेजोलेश्या मारी गोशाळा को। भगवान को बचा लिया। ऐसा है, ऐसा आता है। सब कल्पित बात है।

समवसरण में आ न सके नहीं विरोधी। समवसरण में साधु को जलावे... दो साधुओं को जला दिया, ऐसा आता है। सुनक्षत्र मुनि को जला दिया। फिर भगवान के ऊपर डाली लेश्या। भगवान को छह महीने तक दस्त हुए। क्या कहते हैं? खूनी दस्त। पेचिश... पेचिश कहते हैं? हाँ, वह। छह महीने तक रहा भगवान को। फिर दवा दली, शान्त हो गया। अभी केवली को रोग होता है। यह सब कल्पित बातें हैं। दवा ली। फिर भगवान का शरीर पुष्ट हो गया। पन्द्रहवें शतक में है। आहाहा! अरे भगवान! यह बात नहीं। रोग-बोग कैसा? गोशाळो था ही नहीं। ना, ना, भगवान के शरीर में नहीं। यह तुमको खबर नहीं।

**सर्व संग से निर्मुक्त,...** भगवान आत्मा है। भगवान प्रभु अन्दर विराजमान चैतन्यज्योति, ज्ञान की—आनन्द की मूर्ति सर्वसंग से विमुक्त है। आहाहा! **निर्मोहरूप**

है... मोह उसमें है नहीं। निर्मोहरूप है। **अनघ** है... पुण्य और पापरहित है। निर्दोष पिण्ड है प्रभु। आहाहा! **और परभाव से मुक्त**—विकारी पर्याय से मुक्त है। **ऐसे इस परमात्मतत्त्व को...** ऐसे इस परमात्मतत्त्व को... मेरा आत्मा ही ऐसा परमात्मा है। **मैं निर्वाणरूपी स्त्री से उत्पन्न होनेवाले...** निर्वाण अर्थात् मोक्षरूपी स्त्री—परिणति, उससे **उत्पन्न होनेवाले अनंग सुख...** अतीन्द्रिय सुख... **अनंग सुख के लिये नित्य संभाता हूँ ( -सम्यक्‌रूप से भाता हूँ )...** अन्दर में मेरी भावना निरन्तर चालू है। आहाहा! मैं चीज़ जो ऐसा अनघ और निर्दोष परमात्मा, उस ओर का मेरा झुकाव निरन्तर है। समझ में आया? आहाहा!

दृष्टान्त आया न। प्रवचनसार में दृष्टान्त आया है। एक जहाज पर पंखी (पक्षी) बैठा हो कौआ। जहाज चला समुद्र में। बहुत आगे चला गया, बहुत दूर। अब उस कौवे को उड़कर जाना कहाँ? चारों ओर समुद्र। चारों ओर वृक्षादि कुछ नहीं और समुद्र के किनारे से जहाज दूर हो गया। कौआ बैठा था जहाज में। जहाज चला तो कौआ भी बहुत दूर हो गया। तो कहाँ उड़कर जाये? पानी में पड़े?

**मुमुक्षु :** घूम-घूमकर वहीं आये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसे दृष्टि में आत्मा जिसको है, उसे घूम-घूमकर दृष्टि वहीं जाती है। आहाहा! समझ में आया? कौआ का दृष्टान्त दिया है प्रवचनसार में।

ऐसे सम्भाता हूँ और नमन करता हूँ। दो बात आयी। आहाहा! अन्तर भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द में डूबा हुआ है, ऐसा प्रभु, अतीन्द्रिय अमृत आनन्द, उस ओर की मैं भावना करता हूँ, उतना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र(रूप) भावना मोक्षमार्ग है और उसको **और नमन करता हूँ।** मेरा झुकाव उस ओर है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी एक श्लोक की बात नहीं अन्यत्र। आहाहा! एक-एक कलश! एक गाथा के छह कलश। (अब) १५९।

**त्यक्त्वा विभावमखिलं निजभावभिन्नं,**
**चिन्मात्रमेक-ममलं परिभावयामि।**
**सन्सार-सागर-समुत्तरणाय नित्यं,**
**निर्मुक्तिमार्गमपि नौम्यविभेदमुक्तम्॥१५९॥**

**श्लोकार्थ:—निज भाव से भिन्न ऐसे सकल विभाव को छोड़कर...** आहाहा! मेरा निज स्वरूप—भाव अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता—ऐसा जो अपना शाश्वत्—नित्य निजभाव से भिन्न... **निज भाव से भिन्न ऐसे सकल विभाव...** आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी विभाव (और) मेरे निजभाव से भिन्न है। आहाहा! मूलचन्दभाई! ऐसा सब सुना नहीं था पहले अभी तक। यह तो जरा बात होती है। **निज भाव से भिन्न ऐसे सकल विभाव को छोड़कर एक निर्मल चिन्मात्र को मैं भाता हूँ।** धर्मात्मा अपने भाव की प्रसिद्धि करते हैं। मैं तो एक निर्मल चिन्मात्र ज्ञानज्योति सूर्य, अपना निज स्वभाव सूर्य मैं भाता हूँ। उसमें मैं एकाग्र होता हूँ, उसकी मैं भावना करता हूँ, उस भाव की मैं भावना करता हूँ। राग की और निमित्त की भावना नहीं। आहाहा!

**संसारसागर को तर जाने के लिये,...** आहाहा! अरे! यह संसार, उदयभाव, रागादि। संसारसागर—महासमुद्र। विकल्प के जाल, पुण्य-पाप के विकल्प के जाल, उससे तिरने को... समझ में आया? **संसारसागर को तर जाने के लिये, अभेद कहे हुए ( -जिसे जिनेन्द्रों ने भेदरहित कहा है ऐसे )...** कौन? मुक्ति का मार्ग। वस्तु तो अभेद है, उसकी बात यहाँ नहीं। अभेद मोक्षमार्ग अर्थात् निश्चय मोक्षमार्ग। पीछे शब्द ऐसा लिया है। **जिनेन्द्रों ने भेदरहित कहा है...** त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा, उसने भगवान आत्मा की निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र, वह मुक्ति का मार्ग कहा है। व्यवहार-फ्यवहार बीच में (आता है), वह मुक्ति का मार्ग नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

**अभेद कहे हुए ( -जिसे जिनेन्द्रों ने भेदरहित कहा है ऐसे ) मुक्ति के मार्ग को...** मार्ग को—निश्चय मोक्षमार्ग को अभेद लागू पड़ता है। निश्चय कहो, अभेद कहो, स्वाश्रय कहो। कठिन भाई इसमें। नये लोगों को (ऐसा होता है कि) यह क्या.... लाये? कुछ करना, उपवास करना, भक्ति करना, पूजा करना, व्रत पालना, मूलचन्दभाई! ऐसा तो कुछ आता नहीं इसमें। भले ही शुभभाव हो, परन्तु शुभभाव अचेतन है, जड़ है। निश्चय से आत्मा है नहीं, वह तो अजीव है। आहाहा!

**मुक्ति के मार्ग को भी मैं नित्य नमन करता हूँ।** मुक्ति के... पहले आया न? निर्मल

भाता हूँ। पहले अन्दर द्रव्य की बात आयी। अब यहाँ कहते हैं कि अपनी वीतरागी पर्याय जो निश्चय मोक्षमार्ग हुआ, जिनेन्द्र ने कहा वह, उसे मैं नित्य नमन करता हूँ। आहाहा! मेरी प्रगट होने की पर्याय को मैं नमन करता हूँ। समझ में आया? 'वर छोड़कर बारात', ऐसा आता है न? आत्मा क्या चीज़ है, कैसे श्रद्धा करना—यह बात नहीं। यह करो, यह करो और यह करो। अब छोड़ न यह। 'वर छोड़कर बारात' समझते हैं न? 'वर' क्या कहते हैं? दूल्हा। दूल्हा छोड़कर बारात।

हमारे गाँव में एक किसान था। कणबी है न, कृषिकार—किसान। आठ-दस वर्ष की उम्र थी उसके लड़के की। तो उसको आंगी पहनाया। उसका विवाह था। लगन—विवाह। तो दूसरे लड़के ने पूछा, भाई! तेरी बारात में मुझे ले जायेगा? जान आवे न? 'जान' क्या कहलाती है? बारात। तब वह कहे, मेरा बाप मुझे ले जायेगा, उसकी भी खबर नहीं मुझे। क्योंकि हर समय बारात में और दाडे जाये... दाडो समझते हैं? मर जाय तो कारज (मृत्युभोज) करते हैं न। क्या कहते हैं? वह मर जाये न, अन्तक्रिया। दान नहीं, फिर दाडा करते है, भोजन करते हैं। मृत्युभोजन। मृत्युभोज। तो ऐसा कहे कि कभी मृत्युभोजन में मुझे ले जाते हैं, कभी नहीं ले जाते। कभी विवाह में ले जाते हैं, कभी नहीं। तो मुझे खबर नहीं कि मुझे ले जायेंगे या नहीं। परन्तु तेरा विवाह मांडा है न यह? तुझे खबर नहीं? ऐसा है। यह धर्म करते हैं, हम करते हैं, परन्तु तू कौन? यह मुझे कुछ खबर नहीं। ऐसे मूढ़ अज्ञानी। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अरे! मैं ही प्रभु आत्मा हूँ और मुझमें निश्चय अभेददृष्टि और अभेदचारित्र, अभेदज्ञान भगवान ने जो कहा, उसको मैं नमन करता हूँ। व्यवहार को छोड़ दिया, निमित्त को छोड़ दिया दृष्टि में से। देखो! उसका नाम मोक्षमार्ग—नियमसार है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ९, सोमवार, दिनांक - ३०-८-१९७१
गाथा-११०, प्रवचन-१०९

आज दसलक्षणी पर्व का पाँचवाँ दिन है। उत्तम सत्य, पाँचवाँ धर्म है। क्रोध, मान, माया, लोभरहित... ऐसा .... बताया न उत्तम क्षमा, मार्दव, सरलता और शौच। पाँचवाँ (धर्म) सत्य है।

**जिणवयणमेव भासदि तं पालेदुं असक्कमाणो वि।**
**ववहारेण वि अलियं ण वददि जो सच्चवाई सो॥३९८॥**

(-कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

**जो मुनि, जिनसूत्र के ही वचन को कहते हैं...** सर्वज्ञ परमात्मा ने जो कही वीतराग वाणी, ऐसा (मुनि) कहे, अपनी कल्पना से कहे नहीं। जिन-अनुसारी—सर्वज्ञ अनुसारी वाणी, उस वाणी के अनुसार ही वे कहें। '**तं पालेदुं असक्कमाणो**' कदाचित् अपनी क्रिया—आचरण पालने की शक्ति से असमर्थ हों, तो भी '**ववहारेण वि अलियं ण वददि**' अन्यथा न कहे। मार्ग तो भगवान का ऐसा है, भाई! मुनि तो २८ मूलगुण (सहित) जंगल में रहते हैं, आत्मा के आनन्द में रहनेवाले हैं। पंचम काल हो तो वहाँ ढीलापना है, ऐसा नहीं। ऐसी बात है। असमर्थ हो तो भी अन्यथा न कहे। इतनी तो ठीक, व्यवहार से भी अधिक, असत्य न कहे। व्यवहार में बोलचाल में भी अपना अपमान हो जाये, ऐसी भाषा न कहे—ऐसा नहीं। सत्य कहे। मार्ग तो भगवान का ऐसा है, भाई! अपना शुद्ध आत्म परमभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है। वीतरागमार्ग में दूसरी कोई चीज़ है नहीं। और अपने स्वरूप की लीनता, आनन्द में रमणता, वह चारित्र है, ऐसी बात अपने से न पल सके तो भी अन्यथा न कहे। वह मुनि सत्यवादी—उत्तम सत्यधर्म करनेवाला—पालनेवाला कहा जाता है।

व्यवहार जो भोजन आदि का व्यापार... आहारादि है न मुनि को, उसमें ऐसा न कहे (कि) पंचम काल ऐसा है तो कोई थोड़ा उद्देशिक भी चलता है। मुनि को कोई

बाधा—दिक्कत नहीं, ऐसा नहीं कहे। उसके लिये बनाया हो और ले लेवे। दूसरा क्या उपाय है? पंचम काल के साधु होकर मर जाना? यह शरीर से मर जाना? उसमें सेठिया भी कहे कि क्या मार डालना है साधु को? कुछ बनाना, बनाकर देना। सेठ! शहर में आये तो क्या करे? ऐसा कहते हैं, देखो! सेठ सामने—प्रमुख कहने में आता है। गाँव में आवे और खबर पड़े तो उसे कुछ करना पड़े या नहीं? ऐसा मार्ग भगवान का है नहीं। समझ में आया? भोजन आदि का व्यवहार हो, पूजा, प्रभावनादि का व्यवहार जिनसूत्र के अनुसार वचन कहे। अपनी इच्छा से जैसे-तैसे न कहे। उसका नाम सत्यधर्म है। वीतरागमार्ग... आगे आया न उसमें। तुझसे न पल सके तो भी श्रद्धा तो पक्की रखना कि मार्ग तो यह है। समझ में आया?

**'दंसणभट्ठा न सिजंति'** यदि श्रद्धा विपरीत करेगा तो कभी तेरा किनारा नहीं आयेगा। **'चरितभट्ठा'** चारित्र में भ्रष्ट हो, चारित्र न हो, परन्तु श्रद्धा में पक्का हो, दर्शनभ्रष्ट नहीं, वह मुक्ति पायेगा। चारित्रभ्रष्ट है (और) दर्शनभ्रष्ट है, वह मुक्ति नहीं पायेगा। चारित्रभ्रष्ट है, वह मुक्ति पायेगा, क्योंकि उसकी श्रद्धा में यथार्थ भान वर्तता है। समझ में आया? वह सत्यधर्म की... यह दस प्रकार की बात आती है।

अपने यहाँ ११० गाथा, नियमसार। आलुंछन का अधिकार चलता है न। आलोयण का अधिकार आ गया। दूसरा आलुंछन।

**कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो सकीयपरिणामो।**
**साहीणो समभावो आलुंछणमिदि समुद्दिट्ठं॥११०॥**

भगवान ने ऐसा देखा है, ऐसा और कहते हैं।

**जो कर्म-तरु-जड़ नाश के सामर्थ्यरूप स्वभाव है।**
**स्वाधीन निज समभाव आलुंछन वही परिणाम है॥११०॥**

**टीका:— यह, परमभाव के स्वरूप का कथन है।** आहाहा! मुद्दे की रकम की बात है। **भव्य को...** पहले लिया न भव्य। **'भव्य को'** ऐसा पहला शब्द पड़ा है न? **पारिणामिकभावरूप स्वभाव...** आहाहा! जो भव्य जीव है, मोक्ष जाने के योग्य है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त करने में योग्य है, उसका जो पारिणामिकभावस्वभाव...

त्रिकाली ज्ञायकभाव, त्रिकाली ध्रुवभाव, त्रिकाली स्वभावभाव, उसको यहाँ पारिणामिकभाव कहा जाता है। समझ में आया? एक समय की पर्याय से भी भिन्न ऐसा त्रिकाली भगवान आत्मा, उसका सहज द्रव्यस्वभाव—स्वरूप, द्रव्य के स्वभाव की अस्ति, वह परमपारिणामिकभाव है। पोपटभाई! ऐसी भाषा तो तुमने सुनी नहीं होगी वहाँ वाडा में। आहाहा!

भगवान आत्मा... 'भव्य को' यह बात लेना है। पारिणामिकभावरूप स्वभाव, त्रिकाली ज्ञायकभाव, वस्तु आत्मा नित्य ऐसा उसका स्वभाव भी अविनाशी—नित्य, ज्ञान-दर्शन-आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता ऐसी शक्तियाँ अनन्त, वह उसका स्वभाव। यह भव्य का पारिणामिकभावरूप स्वभाव... आहाहा! **स्वभाव होने के कारण परमस्वभाव है।** त्रिकाली भाव, वह परमस्वभाव है। नित्यानन्दस्वभाव ध्रुव—कायमी, अविनाशी—शाश्वत् स्वभावभाव उसको यहाँ पारिणामिकभाव कहा जाता है।

**वह पंचम भाव...** पंचम त्रिकाली भगवान महिमावन्त अपना निज त्रिकाली स्वभाव **औदयिकादि चार विभावस्वभावों को अगोचर है।** आहाहा! पुण्य-पाप का विकल्प, व्यवहाररत्नत्रय से अगम्य है। और उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक की पर्याय, उसके आश्रय से भी अगम्य है (अर्थात्) उसके आश्रय से प्रगट होता नहीं। आहाहा! गजब बात! समझ में आया? नहीं समझ में आया, सेठी! क्या कहा? क्या नहीं समझ में आया? आत्मा है न! उसमें दो अंश हैं। एक वर्तमान पर्याय—अवस्था—हालत का अंश है और एक त्रिकाली अंश है। जो त्रिकाली अंश ध्रुव है... नय का विषय बताना है न! पारिणामिकभाव निश्चयनय का विषय है। एक अंश है न वह। परन्तु यह अंश कैसा? कि त्रिकाल अंश जो ध्रुवस्वभाव...

आत्मा जैसे नित्य है, वैसे उसका ज्ञानभाव, दर्शनभाव, आनन्दभाव ऐसा स्वभाव अनादि-अविनाशी है। ऐसा जो नित्य स्वभाव, उसको यहाँ पारिणामिकभाव, वस्तु की सहज स्थिति का भाव कहने में आता है। यह भाव—पंचमभाव, उदयादि चार विभावस्वभावों से अगोचर है। इसका अर्थ कि उसकी जो पर्याय—हालत—दशा में पुण्य-पाप की दशा, उपशम समकित आदि की दशा, क्षयोपशम ज्ञान की दशा, क्षायिक

समकित आदि की दशा, उसके आश्रय से वह प्राप्त नहीं होता। समझ में आया? वह तो परमस्वभाव का आश्रय लेकर अवलम्बन लेता है तो भान होता है, प्राप्त होता है। आहाहा!

फिर से। भगवान आत्मा में दो प्रकार। एक व्यवहार आत्मा, एक समय की पर्याय, वह व्यवहार आत्मा। चाहे तो क्षायिक केवलज्ञान हो, क्षायिक समकित हो या राग हो या क्षयोपशमज्ञान चार ज्ञान चौदह पूर्व का हो, परन्तु वह एक समय की पर्याय, वह व्यवहार आत्मा है। उससे रहित त्रिकाल निश्चय आत्मा... वस्तु की स्थिति की खबर नहीं और धर्म हो जाये। भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में वर्तमान विद्यमान त्रिकालभावस्वभाव एक (समय की) पर्याय के सिवाय, राग और धर्म की पर्याय के सिवाय... 'सिवाय' कहते हैं? अलावा। जो चीज़ है नित्य अविनाशी आदि-अन्त बिना की, ऐसा परमभाव, वह चार भाव से अगम्य है अर्थात् चार भाव के आश्रय से वह प्रगट नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? पहले बहुत बात आ गयी है।

यह तो परम भगवान आत्मा क्षयोपशम समकित, उपशम समकित, क्षायिक समकित के गम्य है, परन्तु उसके आश्रय से गम्य नहीं। आहाहा! भारी सूक्ष्म बहुत! भगवान नित्यानन्द परमात्मा 'अप्पा सो परमप्पा' ऐसा जो आत्मा त्रिकाली परमभाव, सदृशभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, द्रव्य की अस्ति का त्रिकाली भाव। आहाहा! उसे यहाँ परमपारिणामिकभाव कहने में आया है। वह भाव अपने आश्रय से प्रगट होता है। चार भाव के आश्रय से भी प्रगट नहीं होता। आहाहा! कहो, सेठी! क्या हुआ अब? चार विभावस्वभाव... त्रिकाली भाव, वह स्वभावभाव है और जो पर्याय का भाव, वह विभाव-स्वभाव है। पर्याय है न। वह द्रव्यस्वभाव त्रिकाली। ज्ञान, आनन्दादि गुण जो सदृश ध्रुव, वह त्रिकाली स्वभावभाव, वह स्वभावभाव, वह पारिणामिकभाव और एक समय की पर्याय, वह विभावभाव। चाहे तो राग हो या चाहे तो क्षायिकसमकित हो—सबको यहाँ विभावस्वभाव कहने में आया है। आहाहा! जिसमें कर्म के निमित्त की उपस्थिति का भाव है, वह विकार और कर्म की उपस्थिति का अनुदय अथवा अभाव का भाव है (अर्थात्) जिसमें कर्म की निमित्तता और निमित्त का अभाव, ऐसे अपेक्षित जो चार भाव हैं, उसको यहाँ विभावस्वभाव कहा गया है। समझ में आया?

५०वीं गाथा में चार विभावस्वभाव को परद्रव्य कहा है। अपना त्रिकाली द्रव्य

नहीं। परम भगवान पूर्णानन्द प्रभु जो अनुभूति का विषय है, वह सम्यग्दर्शन का ध्येय है, वह सम्यग्ज्ञान—ज्ञान में आश्रय करनेयोग्य चीज़ है, आहाहा! गजब बातें, भाई! यह तो चार विभावस्वभाव से अगम्य है। वह पारिणामिकभावरूप स्वभाव ऐसा कहा। जो त्रिकाली भाव, वह स्वभाव और चार भाव, वह विभाव। आहाहा! चार भाव के आश्रय से वह प्राप्त नहीं होता, इस अपेक्षा से चार भाव से अगम्य कहा जाता है। बाकी तो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय से ही गम्य है, परन्तु उसके आश्रय से गम्य नहीं, इसलिए उससे अगम्य कहा गया है। अरे! गजब बात, भाई! समझ में आया? वास्तव में आत्मा, भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमेश्वर जिनेश्वर ने जो वास्तव में आत्मा देखा, वह ध्रुवस्वरूप है, वह परमपारिणामिकभाव है। ऐसा देखनेवाले को अपना स्वभाव का आश्रय लेता है तो देखने में आता है। पर्याय का आश्रय लेने से देखने में नहीं आता। पर्याय के आश्रय से विकल्प उठते हैं। समझ में आया?

**इसीलिए वह पंचम भाव उदय, उदीरणा, क्षय, क्षयोपशम...** लो, ऐसा लिया। देखो! उदय-उदीरणा ऐसे विविध विकारों से रहित है। उसमें पहले चार विभाव कहे समुच्चय। पश्चात्, त्रिकाली भाव उदय से भी रहित, उदीरणा से भी रहित है। उदीरणा करना, पुरुषार्थ करके राग को टालना, यह उदीरणा-फुदीरणा वस्तु में है नहीं। आहाहा! अन्तर में पुरुषार्थ करके राग का नाश करना, कर्म का नाश करना, ऐसी जो उदीरणा, वह भी विविध विकार है—विशेष अवस्था है। उससे भी भगवान ध्रुव प्रभु तो रहित है। आहाहा! समझ में आया? **उदीरणा, क्षय, क्षयोपशम...** उदीरणा डाला उसमें। उपशम उसमें रखा और यहाँ उदीरणा डाला। ... चार भाव। समझ में आया? उपशम के बदले उदीरणा डाला। क्यों? कि पुरुषार्थ से उदीरणा (अर्थात्) नाश होता है कर्म का और राग का। यह दशा तो वर्तमान पर्याय की विशेष आकृतिवाली दशा है। गुण का विशेष (कार्य)—विकार है। उससे त्रिकाली रहित है। आहाहा! नहीं पकड़ में आया? वह की वह बात आयी।

पर्याय में जो भाव आया, वह गुण का विकार है। विकार का अर्थ गुण का विशेष कार्य है। चाहे तो क्षयोपशम हो या क्षायिक हो, परन्तु गुण का विशेष कार्य है। तो विशेष

कार्यरूपी जो भेद, उससे वह रहित है। पर्याय है न! आता है न जैनसिद्धान्त प्रवेशिका में? पर्याय किसको कहते हैं? गुण के विकार को पर्याय कहते हैं। आता है न प्रेमचन्दजी? क्या आता है? गुण के विशेष कार्य को परिणाम कहते हैं, पर्याय कहते हैं। कहते हैं कि रागादिभाव या राग का नाश करने का उदीरणाभाव, क्षयभाव या क्षयोपशमभाव—ऐसे विविध—अनेक प्रकार की विकार अर्थात् विशेष दशा से रहित है। आहाहा! शरीर रहित तो है ही, वह तो मिट्टी-जड़ है। तत्त्व क्या है उसकी खबर नहीं। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी का कहा हुआ आत्मा वह सम्यग्दृष्टि को गम्य है, परन्तु गम्य है, वह सम्यग्दर्शन की पर्याय के आश्रय से गम्य नहीं। समझ में आया?

वर्तमान चलती पर्याय निर्मल अवस्था भी त्रिकाली में नहीं, धर्म की पर्याय भी त्रिकाली में नहीं। धर्म की पर्याय से रहित पारिणामिकभाव है। आहाहा! निश्चय मोक्ष का मार्ग जो है, अपना भगवान पूर्णस्वरूप उसकी श्रद्धा—निर्विकल्प समकित, उसका ज्ञान—राग बिना का स्वसंवेदनज्ञान और चारित्र—स्वरूप की रमणता, ऐसा जो निश्चय मोक्षमार्ग है, उस पर्याय से भी रहित द्रव्य है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो अभी शरीर की क्रिया से रहित मानने में पसीना उतरता है। पाटनीजी! जीवित शरीर की क्रिया से धर्म होता है या नहीं? खानियाचर्चा जयपुर... जयपुर हुई न? तुम्हारे सामने हुई है। तुम थे या नहीं उपस्थित? हाँ, वह। वह प्रश्न था। जीवित शरीर की क्रिया से धर्म होता है या नहीं? हमारे राजमलजी कहते हैं कि ऐसा प्रश्न क्या करते हैं? ऐसे प्रश्न अभी जैन में चले! पाटनीजी! तुम उपस्थित थे या नहीं? आहाहा! फूलचन्दजी। फूलचन्दजी न? थे न, वहाँ सब उतरे थे न? आहाहा!

कहते हैं, अरे भगवान! तेरी सत्य चीज़ जो नित्यानन्द प्रभु... तुम अविनाशी हो या नाशवान हो? पर्याय नाशवान है। पर्याय नाशवान है। परन्तु त्रिकाली चीज़ नाशवान है? आहाहा! ऐसा त्रिकाली अविनाशी प्रभु जो पर्याय में लक्ष्य में आता है, वह चीज़ तो त्रिकाली परमस्वभावभाव पर्याय के विविध प्रकार के भाव से रहित है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव की परम्परा के सिवाय कहीं है नहीं। समझ में आया? क्योंकि वह आत्मा है, परन्तु है तो किस प्रकार से है? क्या

पर्याय से वह आत्मा त्रिकाली है ? क्या पर्याय है तो त्रिकाली आत्मा है ? त्रिकाली भी है और पर्याय भी है। परन्तु वह पर्याय से रहित द्रव्य है, नहीं तो द्रव्य सिद्ध होता नहीं। कार्य करना है जिस दशा में, कार्य, उस कार्य से कारण त्रिकाली भिन्न है। आहाहा! समझ में आया ? भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु अखण्ड अभेद वस्तु एक आत्मा, हों! सब मिलकर नहीं। प्रत्येक आत्मा अपनी अखण्डता, अभेदता भिन्न रखता है। पर से तो भिन्न रखता है, परन्तु अपनी पर्याय से अखण्डता, अभेदता, द्रव्यता भिन्न रखता है। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं, **ऐसे विविध विकारों से रहित है। इस कारण से इस एक को परमपना है,...** परमपना तो, त्रिकाली ध्रुवपने को ही परमपना है। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक जो विकारी पर्याय और अविकारी पर्याय, अधर्म पर्याय और धर्म पर्याय है—उसकी अपेक्षा से वह त्रिकाली भाव परमभाव है (और) चार अपरमभाव हैं। आहाहा! समझ में आया ? अपरमभाव में स्थित, उसे व्यवहार का उपदेश है, यह दूसरी बात है। (समयसार) १२वीं गाथा में आता है न! उसका उल्टा अर्थ करते हैं। वह तो कहते हैं, जब उसको आत्मा का पूर्ण अनुभव और शुद्धनय की दशा प्रगट हो गयी, उसको तो शुद्धनय जाननेयोग्य है अर्थात् उसका ज्ञान हो गया। परन्तु जब तक वह आत्मा साधकस्वभाव में है, अपने परमस्वभाव की ओर के झुकाव में श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र में है, परन्तु अभी पूर्ण दशा हुई नहीं, तो निचलीदशा में अपने में जो रागादि की अपूर्ण शुद्धता है, उसको जानना, वह प्रयोजनवान है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ?

जानना प्रयोजनवान है। उपदेश करने की बात वहाँ है ही नहीं। आहाहा! साधारण मिथ्यादृष्टि है, उसको तो व्यवहार का ही उपदेश करना, ऐसा कहते हैं। ऐसी बात है ही नहीं वहाँ। समझ में आया ? यह बात दूसरी, वह बात दूसरी। वहाँ तो पूर्णदशा हुई नहीं और दृष्टि के विषय में दृष्टि तो पड़ी है। निश्चय के ऊपर दृष्टि है, परन्तु पर्याय में पूर्णता की प्राप्ति न हो, तब तक अपूर्ण शुद्धता और राग को जाना हुआ प्रयोजनवान है। वह अपरमभाव में स्थित को व्यवहार का उपदेश यह है। उल्टे अर्थ करे, क्या करें ? समझ में आया ? यहाँ, क्षायिकभाव पूर्ण न हो, तो निचलीदशा में अपूर्ण भाव को

अपरमदशा कहा जाता है। वह जाननेयोग्य है ऐसा। यहाँ कहते हैं कि जो त्रिकाली परमस्वभावभाव है, वह परमभाव है और चार भाव पर्याय है, वह अपरमभाव है, बस इतना। यह परमभाव नहीं तो अपरमभाव है। आहाहा! क्या हो? क्या करे?

**चार विभावों को अपरमपना है।** देखो! **इस कारण से इस एक को परमपना है,...** एक को परमपना है। त्रिकाली अविनाशी अंश जो ध्रुव सदृश रहनेवाला भगवान ऐसा है... है... है... है... है... अनादि, उसको परमपना है कि जो आश्रय करनेयोग्य है। और **शेष चार विभावों को अपरमपना है।** क्षायिक केवलज्ञान भी अपरमभाव है। भाई! यह यहाँ नहीं, वहाँ बात की, वह यहाँ नहीं। यहाँ थी वह वहाँ नहीं। यहाँ तो, क्षायिक केवलज्ञान भी अपरमभाव है। वहाँ अपरमभाव में स्थित है, वह केवलज्ञान में नहीं। समझ में आया? वहाँ कहा अपरमभाव अर्थात् केवलज्ञान—वह नहीं। केवलज्ञान प्रगट हो गया तो शुद्धनय की पूर्ण दशा हो गयी। बस, वह तो ज्ञाता-दृष्टा अकेला है, हो गयी पूर्णता और निचलीदशा में पूर्ण दशा का अभाव, उसका नाम अपरमभाव कहने में आया है। समझ में आया?

यहाँ त्रिकाली भाव परमभाव की अपेक्षा से चार पर्याय को अपरमभाव कहने में आता है। चार तो पूर्ण हुआ है... **'सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो'** परमभाव जो पूर्ण पर्याय प्रगट हो गयी, उसको भी यहाँ अपरमभाव कहने में आया है। समझ में आया? मीठाभाई! यह तो अपरमभाव का अपरमभाव है। आहाहा! विवाद उठाते हैं वापस। भाई! वास्तविक वीतरागमार्ग सर्वज्ञ ने कहा वह तत्त्व जगत का सत्त्व है। वह कोई कल्पना से या अनुमान से ऐसा है—फैसा है, एक ही आत्मा है, दूसरा है ही नहीं (ऐसा) कल्पना से सिद्ध करना, ऐसी यह चीज़ नहीं है। आहाहा! यह तो सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ और वाणी में आया, उस अनुसार पदार्थ की व्यवस्था है। समझ में आया? **इस कारण से इस एक को परमपना है,...** कौन एक? सेठ! त्रिकाली परमपारिणामिकस्वभाव। **शेष चार विभावों को अपरमपना है।** चाहे तो केवलज्ञान हो या अनन्त आनन्द हो, चतुष्टय चार प्रगट हुए हों, तो भी त्रिकाली परमभाव की अपेक्षा से अपरमभाव है। और वहाँ (समयसार) १२वीं गाथा में जो अपरमभाव कहा, वह केवलज्ञानादि नहीं। वहाँ अपरमभाव केवलज्ञान नहीं। समझ में आया?

वहाँ तो अपना आत्मा द्रव्यदृष्टि सम्यक् में तो द्रव्य का पूर्ण आश्रय लिया, निश्चय का आश्रय लेकर सम्यक्त्व हुआ, परन्तु अभी पर्याय में पूर्णता प्राप्त नहीं हुई तो अपूर्ण शुद्धता और राग का भाव जो पर्याय में है, उसको जाना हुआ प्रयोजनवान (कहा) है। समझ में आया? गजब! शास्त्र का अर्थ करने में बड़ी गड़बड़ हो, एक गड़बड़ी हो तो सबमें गड़बड़ी (आती है)। एक और दो = चार। फिर चार चौके सोलह, और सोलह तिया अड़तालीस और अड़तालीस दूने छियानवे। करोड़ों में चले (जाये), परन्तु वह मूल में भूल है। तो वे पाँच-पच्चीस ऐसे पृष्ठ देखे (तो कहे) कि भूल नहीं है। परन्तु मूल में भूल है। समझ में आया? एक और दो = चार हो गये हैं। फिर चार चौके सोलह और सोलह तिया अड़तालीस और अड़तालीस दूने छियानवें और छियानवे.... मूल में भूल। अपने प्रकाशित हुई है न वह पुस्तक 'मूल में भूल'। यह शब्द तो भाई ने दिया ....लाल। समझ में आया?

कहते हैं, आहाहा! क्या परन्तु टीका! आलुंछन है न! 'आ' अर्थात् समस्त प्रकार से, लुंछन—छेद डालना। मेरे द्रव्य में पर्याय नहीं। आहाहा! पर्याय अपरमभाव है; परमभाव, मेरी त्रिकाली चीज़, वह परमभाव है। उसका दृष्टिवन्त अपरमभाव का आश्रय नहीं लेता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? साधारण समाज को अभ्यास नहीं और ऊपर जो अभ्यास साधारण शब्दों का किया हो, वह दिये रखे जय महाराज! जय महाराज! मूलचन्दभाई! कमाने के कारण निवृत्ति नहीं। भाई कहते हैं कि .... चला ही ऐसा है, भाई, हों! आहाहा!

**समस्त कर्म...** अब अर्थ आया। यह भाव की व्याख्या की न! अब '**कम्ममहीरुह-मूलच्छेदसमत्थो**' उसकी बात आयेगी। आहाहा! गजब बात है! कुन्दकुन्दाचार्य एक-एक शब्द में, एक-एक पद में... '**कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो**' यह पहला पद। अब, **समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष के मूल को उखाड़ देने में समर्थ ऐसा यह परमभाव,...** लो, पहले व्याख्या की दो की। समझ में आया? कहते हैं, समस्त कर्मरूपी जहर के वृक्ष... आठ कर्म जहर का वृक्ष। आहाहा! अरे, भगवान! तीर्थंकरगोत्र बँधे उसे? जहर का वृक्ष है। ऐ, भीखाभाई! यह कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, तीर्थंकरगोत्र प्रकृति बँधी, वह जहर का वृक्ष है। समस्त १४८ प्रकृति, हों! आहाहा! समस्त कर्मरूपी जहर का वृक्ष...

अब इतना तो प्रकृति को दृष्टान्त दिया है जहर का वृक्ष। भाव तो जहर है ही, जिस भाव से प्रकृति बँधे, वह भाव तो जहर है। षोड्शकारण भावना, वह भाव जहर है। जयन्तीलालजी! आहाहा!

यह तो दिगम्बर सन्त यह बात करें, हों! जगत की परवाह नहीं। सत्य यह है। मानो—न मानो, समझो—न समझो, परन्तु मार्ग यह है। दूसरा (मार्ग) करेगा (मानेगा) तो तेरा नाश हो जायेगा और संसार में परिभ्रमण करेगा। आहाहा! यह परमभाव कैसा है? त्रिकाली है। समस्त कर्म के जहर के वृक्ष को उखाड़ने में समर्थ। उसका अर्थ कि उसमें कर्म का जहर वृक्ष है ही नहीं। एक बात। दूसरी, उसका आश्रय करो तो आठों कर्म का नाश होगा, ऐसा वह परमभाव है। समझ में आया? आहाहा! अरे! मनुष्यदेह में आया और सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसा तत्त्व प्रसिद्ध किया, सन्तों ने सरल भाषा में मार्ग सरल कर दिया है। समझ में आया? ऐसा जार्ग जो उसकी समझ में न आवे तो क्या किया? बाहर में मान मिले, दुनिया महिमा करे कि बड़ा विद्वान है, बड़ा पण्डित है। क्या है? मुझमें आया है क्या? समझ में आया?

ओहोहो! कहते हैं, तेरा जो परम पंचम भाव, वह कर्मरूपी वृक्ष को उखाड़ने में... '**आलुंछण**' है न? '**आलुंछण**'=मूल में से उखाड़कर। आहाहा! ऐसा यह परमभाव है, **उखाड़ देने में समर्थ ऐसा यह परमभाव है,...** पाठ है न! '**कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो**' पहले पद की व्याख्या इतनी है। आहाहा! **त्रिकाल निरावरण निज कारणपरमात्मा के स्वरूप की श्रद्धा से प्रतिपक्ष...** क्या कहते हैं अब? कि त्रिकाल निरावरण परमात्मा अपना निजस्वरूप, परमात्मा निजस्वरूप परमस्वरूप... परम आत्मा को परम स्वरूप कहो या परमभाव कहो। समझ में आया? अपना त्रिकाली परमात्मा, एक समय की पर्याय के बिना का त्रिकाली परमात्मा, परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप अथवा परमभाव। ऐसा **निरावरण निज कारणपरमात्मा...** अपना निज परमात्मा, ऐसा। अरिहन्त या भगवान का परमात्मा नहीं।

इस निज कारणपरमात्मा के स्वरूप की श्रद्धा, स्वरूप की श्रद्धा समकित। उससे विपरीत **तीव्र मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण कुदृष्टि को,...** आहाहा! जिसकी दृष्टि

राग और एक समय की (पर्याय)—अपरमभाव पर दृष्टि पड़ी है, आहाहा! ऐसा कहते हैं। उसको त्रिकाल निरावरण की दृष्टि है नहीं। समझ में आया? ....गजब! ऐसा उपदेश कैसा? कहे, दस अपवास करना दसलक्षणी पर्व में, ऐई! यह सेठिया कहे, भाई दान देना; यह शरीर के बलवाले को अपवास करना, बुद्धिबलवाले को शास्त्र पढ़ना, यह तो कुछ आया नहीं। वक्तापने का भाव हो, उसे उपदेश देना, शरीर का बल हो उसे अपवास आदि तप करना और लक्ष्मीवाला हो, उसे दान देना। यह चीज़ है ही तुझमें, क्या दे किसको? बोले कौन? बोले वह दूसरा—जड़, वह आत्मा नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **त्रिकाल निरावरण निज कारणपरमात्मा के स्वरूप की श्रद्धा से प्रतिपक्ष...** उसका अर्थ क्या हुआ? कि **मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण कुदृष्टि...** कुदृष्टि... उसकी दृष्टि त्रिकाल निरावरण परमात्मा को स्वीकार न कर, एक समय की पर्याय और राग को स्वीकार करती है, वह कुदृष्टि है। आहाहा! गहन गम्भीर विषय है। आहाहा! वापस, **तीव्र मिथ्यात्वकर्म के उदय के कारण कुदृष्टि को, सदा निश्चय से विद्यमान होने पर भी,...** जिसकी दृष्टि में पर्याय और राग पड़ा है, उसको त्रिकाल विद्यमान होने पर भी भगवान अविद्यमान ही है।

**मुमुक्षु :** होते हुए भी नहीं है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं है। क्या कहा? भाई ने क्या कहा? होने पर भी नहीं है। वस्तु तो विद्यमान है न! दृष्टि पर्याय के ऊपर और राग के ऊपर है। तो विद्यमान होने पर भी उसको तो है नहीं। समझ में आया? जिसकी दृष्टि एक समय की पर्याय या विकल्प—व्यवहार राग की मन्दता आदि पर दृष्टि है, वह कुदृष्टि है। तो कुदृष्टि में विद्यमान पर्याय और राग दिखते हैं। उस कुदृष्टि को परमस्वभाव होने पर भी—विद्यमान होने पर भी, उसको तो अविद्यमान है। आहाहा! जिसकी दृष्टि में आवे, उसको विद्यमान है। दृष्टि में आवे नहीं, उसको क्या है? आहाहा! समझ में आया?

**कुदृष्टि को, सदा निश्चय से विद्यमान होने पर भी, अविद्यमान ही है...** परम अविनाशी त्रिकाल ध्रुवस्वभाव... दृष्टि में 'यह है' ऐसी तो मान्यता है नहीं। उसकी दृष्टि में तो पर्याय और राग है, ऐसी मान्यता है। आहाहा! तो त्रिकाल भगवान विराजता होने

पर भी उसके लिये तो अविद्यमान है। सेठ! समझ में आया? निश्चय से, **सदा निश्चय से विद्यमान होने पर भी,...** भगवान ध्रुव तो त्रिकाल सदा—नित्य विद्यमान है। कब नहीं है? त्रिकाल है, त्रिकाल है। ऐसे **सदा निश्चय से विद्यमान होने पर भी, अविद्यमान ही है (कारण कि मिथ्यादृष्टि को उस परमभाव के विद्यमानपने की श्रद्धा नहीं है)।** आहाहा! बस, मैं राग हूँ, मैं पुण्य हूँ, मैं एक समय की पर्याय जितना हूँ, एक समय की पर्याय जितना हूँ। (ऐसे) मिथ्यादृष्टि को विद्यमान होने पर भी अविद्यमान है। नजर में तो पड़ता नहीं, नजर करता नहीं। आहाहा!

ऐसी चीज़ अभी सुनने में न मिले, (वह) कब उसका जानपना करे, कब उसकी रुचि करे, कब उसका—द्रव्य का आश्रय करे? आहाहा! इसके बिना सब मिथ्या थोथा है। सम्यग्दर्शन का आश्रय परमपारिणामिकभाव है, इसके आश्रय बिना कुछ भी किया जाये—क्रिया, व्रत, नियम और तप—सब रण में शोर है। वह अरुण्यरुदन है। सेठ! ऐसा सुननेवाला तैयार नहीं था। आहाहा! क्या सन्तों ने मार्ग को सादी भाषा में... सादी भाषा में सरल... सरल कर दिया है। समझ में आया? पर्यायदृष्टि और द्रव्यदृष्टि का कितना स्पष्ट कथन! जिसकी पर्यायदृष्टि है, उसको द्रव्य विद्यमान होने पर भी नहीं है। आहाहा! **मिथ्यादृष्टि को उस परमभाव के विद्यमानपने की श्रद्धा नहीं है।** श्रद्धा में आया, तब परमभाव विद्यमान है, (ऐसा) उसको ख्याल आया। वह तो त्रिकाली चीज़ है। वह त्रिकाली है। नया हुआ है, मैं नये की श्रद्धा करता हूँ—ऐसा कुछ नहीं है। मैं श्रद्धा करनेवाली पर्याय नयी हूँ, परन्तु वह चीज़ नयी नहीं है। समझ में आया?

**मिथ्यादृष्टि को उस परमभाव के विद्यमानपने की श्रद्धा नहीं है।** आहाहा! श्रद्धा हुई तो सब हो गया? पश्चात् चारित्र बिना मुक्ति होगी? परन्तु सुन तो सही! चारित्र देवलोक में नहीं, मनुष्यपने में है, इसलिए चारित्र ले लो। परन्तु किसका चारित्र? कहाँ से ले लेना? बाहर मिलता है कहीं? पंच महाव्रत का विकल्प लिया, वह चारित्र हो गया? समझ में आया? नग्नपना हुआ, वह चारित्र हो गया? अभी तो पहले त्रिकाली भगवान परमानन्द ऐसा आश्रय करके निर्विकल्प अनुभव न हो, तब तक उसको सम्यग्ज्ञान भी नहीं तो चारित्र तो कहाँ से आया? आहाहा! गजब बात, भाई!

एक व्यक्ति कहता था वहाँ ललितपुर में। एक पण्डित था। हरिचन्द... गुजर गये

हरिचन्द ललितपुर में। यह बात तुम्हारी ऐसी है कि कोई एकाध व्यक्ति समझे तो। परन्तु सच्ची है या नहीं ? अब एकाध समझे—न समझे, क्या काम है यहाँ ? ऐई ! एक पण्डित था। रामजीभाई थे वहाँ। वे खड़े होकर बोले थे खलबलाहट करने को। रात्रिचर्चा के बाद, हों ! तुम्हारी बात तो कोई एकाध समझे... एकाध समझे—न समझे, यह बात नहीं, बात (मार्ग) यह सत्य है। समझ में आया ? क्या असत्य मार्ग से तुम्हें लाभ होगा ? उन्हें तो ऐसा कि ऐसा हमको तो कुछ खबर नहीं और तुमने ऐसा निकाला ? वह पण्डित पढ़-पढ़कर पढ़े तो भी हमने ऐसा तो निकाला नहीं था। तुम्हारी यह बात बैठे किसे ? सच्ची है या नहीं, यह बात कर न ? बैठे—न बैठे, वह तेरे घर रही।

**मुमुक्षु :** स्वयं को बैठती नहीं इसलिए दूसरे को....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बात यह। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो दो बातें कीं। परमभाव—त्रिकालीभाव। अपरमभाव—वर्तमान पर्याय का चार भाव। उसको विविध विकार कहा, तो त्रिकाली को अविकारी एकरूप कहा। और अपरमभाव के आश्रय से परमभाव मिलता नहीं, यह कहा। परमभाव के आश्रय से परमभाव की प्राप्ति होती है और परमभाव विद्यमान होने पर भी, जिसकी दृष्टि परमभाव पर नहीं है और जिसकी दृष्टि में बाह्य—एक समय का तत्त्व, वह भी बाह्यतत्त्व है। वह आ गया है ३८ गाथा में। एक समय की पर्याय बाह्यतत्त्व है और त्रिकाली भगवान आत्मा अन्त:तत्त्व है। समझ में आया ? ऐसे बाह्यतत्त्व पर जिसकी दृष्टि है, एक समय का आत्मा—पर्याय के ऊपर दृष्टि है, उसको अन्त:तत्त्व विद्यमान होने पर भी उसके लिये तो अविद्यमान है। आहाहा ! समझ में आया ?

**परमभाव के विद्यमानपने की श्रद्धा नहीं है।** आहाहा ! नित्य ध्रुव पर अपनी पर्याय को झुकायी नहीं तो विद्यमान है, वह उसकी प्रतीति में आया नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? 'मूल मारग सुन लो जिनवर का रे...' श्रीमद् में आता है न यह ? 'मूल मारग सुन लो जिनवर का रे, करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख... करि वृत्ति अखण्ड सन्मुख, मूल मारग सुन लो जिनवर का रे...' त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमेश्वर जिनवरदेव का कहा हुआ यह मूल मार्ग सन्त जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। समझ में आया ?

कहते हैं, **नित्यनिगोद के जीवों को भी...** नित्य निगोद है न! (जो) कभी त्रस हुआ नहीं, कभी एकेन्द्रिय पृथ्वी आदि हुआ नहीं, ऐसे नित्य निगोद के जीव अनन्त हैं। विद्यमान भगवान अनन्त निगोद के जीव नित्य निगोद में से, इतना-इतना अनन्त काल अभी हुआ, (फिर भी कभी) उसमें से एकेन्द्रिय पृथ्वी नहीं हुआ, प्रत्येक पृथ्वी नहीं हुआ। ऐसे पड़े हैं। ओहोहो! **नित्यनिगोद के जीवों को भी शुद्धनिश्चयनय से...** उसका स्वभाव देखो तो **वह परमभाव 'अभव्यत्व-पारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है...** वह प्रगट होनेयोग्य नहीं है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। अभव्य को तो परमस्वभावभाव है सही, प्रगट होनेयोग्य नहीं है। समझ में आया?

अभव्यत्वपारिणामिकभाव ऐसे नामसहित नहीं है। अभव्य का पारिणामिकभाव कभी व्यवहारयोग्य होता नहीं। ऐसा (इसे) नहीं है। समझ में आया? गजब! ऐसा शास्त्र और ऐसी सूक्ष्म अटपटी बातें, लो। नित्य निगोद। सिद्ध जीव से अनन्तगुने जीव, जो एकबार कभी एकेन्द्रिय हुआ नहीं। प्रत्येक... उसी और उसी में पड़े हैं। समझ में आया? उसका जीव का स्वभाव भी शुद्ध है, परमभाव पड़ा ही है। **'अभव्यत्व-पारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है ( परन्तु शुद्धरूप से ही है )।** आहाहा! अभव्य को तो पर्याय में प्रगट नहीं होगा। यह तो कोई निकले तो प्रगट योग्य है, ऐसा कहते हैं। हाँ, निकलता है न। नित्यनिगोद में से निकलते हैं। छह महीने आठ समय में छह सौ आठ (जीव मोक्ष) जाते हैं, इतने निगोद में से निकलते हैं। आहाहा! इसकी विशेष बात कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**भाद्र शुक्ल १०, मंगलवार, दिनांक - ३१-८-१९७१**
**गाथा-११०, श्लोक-१६०-१६१, प्रवचन-११०**

दशलक्षणी पर्व में छठवाँ दिन है। उत्तम संयम धर्म की आराधना। दस प्रकार के धर्म हैं, वे निश्चय से तो अपनी स्वरूप की दृष्टिपूर्वक वीतराग परिणति है। उसका नाम दशलक्षण पर्व अथवा धर्म कहने में आता है। बीच में विकल्प आता है, वह व्यवहार(धर्म) कहने में आता है। यह यहाँ कहते हैं। दो प्रकार कहेंगे। उत्तम संयम। उत्तम शब्द है न? आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञानस्वभावी पदार्थ, उसकी अनुभव, दृष्टिपूर्वक जो स्वरूप में लीनता, वह तो उत्तम संयम है। और सम्यग्दर्शन बिना अकेली पंच महाव्रतादि की क्रिया, वह द्रव्यसंयम है; वह कोई वास्तविक स्थिति नहीं है। वह धर्म नहीं, पुण्य हो। पुण्य से स्वर्गादि मिले, उसमें कोई आत्मा की शान्ति है नहीं।

**जो जीवरक्खणपरो गमणागमणादिसव्वकज्जेसु।**
**तणछेदं पि ण इच्छदि, संजमधम्मो हवे तस्स॥३९९॥**

(-कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

अपना जीव चैतन्यस्वरूप—स्वभाव की यत्ना करने में तत्पर है धर्मात्मा। उसके सिवा परजीव की रक्षा से भी दु:ख न हो, ऐसा उसका भाव होता है, वह विकल्प है (और) पश्चात् स्वरूप में स्थिरता है, वह संयम है। **जीवों की रक्षा में तत्पर होता हुआ... 'गमणागमणादिसव्वकज्जेसु'** मुनि को तो आहारादि में गमन करना (होता) है, दूसरा तो कोई काम नहीं है। **गमन-आगमन आदि सब कार्यों में... 'तणछेदं पि ण इच्छदि' तृण का—**तिनके का टुकड़ा करना, इतनी भी उनकी इच्छा नहीं। जीव को मारना, वह तो है ही नहीं, तृण का कटका—टुकड़ा हो जाये, ऐसी भी जिसकी भावना—इच्छा नहीं है। '**तणछेदं पि ण इच्छदि**' आहाहा! ऐसे तो तृण का छेदन आत्मा कर नहीं सकता। यहाँ तो '**ण इच्छदि**' शब्द है। एक तृण के टुकड़े करना, वह आत्मा का अधिकार नहीं है। कोई आत्मा कर नहीं सकता। वह तो जड़ की पर्याय है। परन्तु जड़ की पर्याय का

टुकड़ा करना, ऐसा अस्थिरभाव—इच्छा, वह भी उनको नहीं। समझ में आया?

श्रीमद् ने लिखा है एक बार। जब एक तृण के दो टुकड़े करने की शक्ति न हो, तब संयम और ध्यान होता है। ऐ पोपटभाई! यह सब करते हैं न कितने काम? एक टुकड़ा भी... इतना करना, वह क्रिया आत्मा की है ही नहीं। वह तो जड़ की पर्याय होती है। ऐसी दृष्टि, अनुभवपूर्वक जिसको तृण का छेद करने की भी अस्थिरता की इच्छा नहीं। समझ में आया? यह संयम तो परमेश्वर पद है। जिसको, चार ज्ञान और चौदह पूर्व के रचनेवाले गणधर जिसको नमस्कार करें, वह संयम कैसा है? समझ में आया?

अन्तर में '**संजमधम्मो हवे तस्स**' संयम के दो प्रकार है, ऐसा लिखा है। एक अपेक्षा वीतराग हुआ... संयम। विकल्प से रहित वीतरागता अन्दर में यह उपेक्षा, पर से उदासीन वीतरागता, वह संयम। यह उत्कृष्ट संयम। और अपहृत संयम। गमनागमन करने में कोई प्राणी को बचाकर चलना, वह अपहृत संयम में पहले नम्बर का सच्चा भाव। बाहर की बात तो विकल्प है, परन्तु अन्दर में लीनता की ओर का जोर है, वह बात यहाँ है। समझ में आया? और प्राणी को देखकर... प्राणी को हठात्—हठाये बिना चलना, यह अपहृत संयम का पहला भेद है। दूसरा भेद, मयूरपिच्छी से थोड़ा हटाना, वह दूसरा भेद है। तीसरा, चलने में जीव को दु:ख न हो, ऐसा कोई तृण आदि से या हाथ आदि से हटाना, वह अपहृत संयम का तीसरा प्रकार है। ऐसी शास्त्र में बहुत बात है। समझ में आया? परन्तु वह तो आत्मा का जहाँ अनुभव है....

**मुमुक्षु :** बाह्य की क्रिया सहज होती है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह सहज क्रिया तो होती है, परन्तु विकल्प भी सहज आ जाता है। समझ में आया? और निर्विकल्पता की दृष्टिपूर्वक स्थिरता, वह संयम है। यह संयम मुक्ति का मार्ग है। विकल्प आता है ... आता है। वह छठवाँ धर्म है। छठवाँ दिन है न! सुगन्ध, क्या कहलाता है? सुगन्धदशमी। देखो न! कितनी पूजा। यहाँ तो इक्यावन पूजा है। उसमें ऐसा ही चले व्यवहार में। व्यवहार की स्थिति ऐसी है।

अब अपने यहाँ ११० गाथा, नियमसार। दूसरा पेराग्राफ है। **नित्यनिगोद के जीवों को भी...** नियमसार चलता है (अर्थात्) निश्चय मोक्षमार्ग। अपने आत्मा के आश्रय से—

परमपारिणामिकस्वभावभाव भगवान आत्मा, उसके आश्रय से—निश्चय स्वाश्रित सम्यग्दर्शन, निश्चय स्वाश्रित ज्ञान और निश्चय स्वाश्रित लीनता, वह मोक्षमार्ग। तो कहते हैं, शक्ति तो सब जीव की है परमपारिणामिकस्वभावभाव(रूप), परन्तु प्रगट होने की अभव्य की योग्यता नहीं है। समझ में आया? और भव्य की योग्यता है। **नित्यनिगोद के जीवों को भी शुद्धनिश्चयनय से वह परमभाव...** परमभाव भगवान... राग के विकल्प से रहित और एक समय की प्रगट—व्यक्त पर्याय से भी रहित, ऐसा जो परमभाव, वह निगोद में **'अभव्यत्व-पारिणामिक' ऐसे नामसहित नहीं है...** अभव्य में तो कभी प्रगट नहीं होता। ऐसा (यहाँ) नहीं है। उसमें प्रगट होने की योग्यता नित्यनिगोद में है, अभव्य में नहीं।

**मुमुक्षु :** नित्यनिगोद में अभव्य भी होते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभव्य भी होते हैं, परन्तु अभव्य तो दूसरे कहे....

**मुमुक्षु :** नित्यनिगोद में से अपने सब वहाँ से आये....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पहले तो सब नित्यनिगोद में थे। पीहर-पीहर, मातृस्थान। पहला पीहर तो वह था। कन्या हो, वह पीहर में बड़ी होती है न? बड़ी होती है न पहले, पश्चात् ससुराल जाती है। इसी प्रकार पहले निगोद में ही था जीव अनादि से, नित्यनिगोद। (जितने की) छह महीने आठ समय में मुक्ति होती है, तो इतने छह महीने आठ समय में निगोद में से निकलते हैं। आहाहा! इतने जीव की राशि है... लोगों को समझने में, प्रतीति में कठिन पड़े, ऐसी है। आहाहा!

तो कहते हैं, यहाँ भी एक अंगुल के असंख्यवें भाग में खाली भाग है न, वहाँ भी नित्यनिगोद है। सम्पूर्ण चौदह ब्रह्माण्ड में—चौदह राजुलोक में। एक इतना तृण जितना टुकड़ा लो, इतने भाग में भी असंख्य निगोद शरीर हैं और एक शरीर में सिद्ध से अनन्तगुने जीव हैं। समझ में आया? ऐसे जीव को भी शुद्ध निश्चयनय से परमभाव शुद्धभाव है ही। उसको परमभाव है। आहाहा! अभव्यपारिणामिक.... (नहीं)।

**जिस प्रकार मेरु के अधोभाग में स्थित सुवर्णराशि को भी सुवर्णपना है,...** मेरु है, मेरु। (उसके) नीचे के भाग में सोना है, सोना—स्वर्ण। परन्तु वह स्वर्ण किसी काम

का नहीं है किसी को। किसे खोद कौन, जाये कौन? 'खोदना' समझे? क्या कहते हैं? कहाँ निकाले? नीचे पड़ा है, मेरुपर्वत के नीचे। **उसी प्रकार अभव्यों को भी परमस्वभावपना है;...** अभव्य में परमस्वभावपना तो है। **वह वस्तुनिष्ठ है,...** वस्तु में पड़ा है, परन्तु **व्यवहारयोग्य नहीं है...** पर्याय में प्रगट होनेयोग्य नहीं। जैसे मेरु के नीचे के भाग में स्वर्ण है, वह कोई काम का नहीं। इसी प्रकार अभव्य जीव का परमस्वभाव है, परन्तु पर्याय में काम का नहीं। आहाहा! समझ में आया?

**व्यवहारयोग्य नहीं है...** भाषा देखो! मोक्षमार्ग की पर्याय व्यवहारयोग्य है। व्यवहार है न! त्रिकाल द्रव्यस्वभाव परमभाव, वह निश्चय। आहाहा! और अपना शुद्ध द्रव्य का अवलम्बन लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय उत्पन्न हो, वह व्यवहार है। आहाहा! व्यवहार मोक्षमार्ग विकल्प, वह नहीं। यहाँ तो निश्चय मोक्षमार्ग, वही व्यवहार है, क्योंकि वह पर्याय है। और परमभाव त्रिकाली, वह द्रव्य है। समझ में आया? आहाहा! अरे! घर में क्या चीज़ है और कैसी भूल है, उसकी खबर नहीं।

कहते हैं, **व्यवहारयोग्य नहीं है (अर्थात् जिस प्रकार मेरु के नीचे स्थित सुवर्णराशि का सुवर्णपना सुवर्णराशि में विद्यमान है किन्तु वह उपयोग में नहीं आता,...** व्यवहारयोग्य नहीं, ऐसा। **उसी प्रकार अभव्यों का परमस्वभावपना आत्मवस्तु में विद्यमान है किन्तु वह काम में नहीं आता...** पर्याय में काम नहीं कर सकता, ऐसा नालायक है। समझ में आया? **क्योंकि अभव्य जीव परमस्वभाव का आश्रय करने में अयोग्य हैं।** देखो! आहाहा! भव्य जीव और अभव्य—दोनों में परमस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, आनन्दस्वभाव, नित्यस्वभाव, परमभाव तो पड़ा ही है। अभव्य, वह परमभाव का आश्रय करने में अलायक है। समझ में आया? और भव्य जीव परम त्रिकाली स्वभाव का आश्रय करने में लायक है। समझ में आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह पुरुषार्थ राग की क्रिया का। अपने स्वभाव के आश्रय का नहीं। शरीर की क्रिया... शरीर का छेद हो जाये, टुकड़ा हो जाये—टुकड़ा हो जाये तो भी क्रोध न करे, ऐसी क्रिया करे, परन्तु वह भी पराश्रय है। अन्तर भगवान पूर्णानन्द पर

नजर करना, ऐसी उसकी योग्यता नहीं है। समझ में आया? अभव्य बहुत थोड़े हैं, भव्य से अनन्तवें भाग में हैं। भव्य जीव अनन्तगुने हैं। ऐसा नहीं समझना... यह तो अभव्य की बात की है। भव्य और अभव्य—दोनों (योग्यता वह) आत्मा नहीं; आत्मा तो परमभाव-स्वभाव, वह आत्मा। समझ में आया? आता है न मार्गणा में? चौदह मार्गणा में आता है। भव्य-अभव्य आते हैं उसमें। भव्य-अभव्य आत्मा है नहीं। आत्मा तो है, वही है। समझ में आया?

यहाँ तो उसकी पर्याय में प्रगट करने की योग्यता है। अन्तर्मुख ढलना, उसके योग्य है नहीं। बहिर्मुख से सब क्रिया करता है। पंच महाव्रत पालना, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, शरीर का कष्ट, छह-छह महीने के उपवास, उपवास के पारणे में भी साधारण रूखा आहार—ऐसी क्रिया करे, परन्तु वह तो सब पुण्य की क्रिया है। अन्तर भगवान आत्मा का आश्रय लिये बिना सम्यग्दर्शन और धर्म की शुरुआत नहीं होती। समझ में आया?

**सुदृष्टियों को—अति आसन्न भव्य जीवों को...** आहाहा! अति आसन्न भव्य-(जीव) (अर्थात्) जिसके संसार का किनारा नजदीक आ गया है और आत्मा की परम पवित्र पूर्ण दशा, ऐसा जो मोक्ष, उसको अति निकट है। आहाहा! अति आसन्नभव्य—सुदृष्टियों को... वह सुदृष्टि है, जिसकी दृष्टि द्रव्यस्वभाव पर पड़ी है। एक समय की पर्याय, राग और निमित्त में जो रुचि अनादि की थी, वह पर्यायबुद्धि थी। वह हट गयी। भगवान पूर्णानन्द प्रभु शुद्ध चैतन्य आनन्दघन, ऐसी जहाँ दृष्टि हुई, ऐसे दृष्टिवन्त को... ऐसे दृष्टिवन्त को—**अति आसन्न भव्य जीवों को—यह परमभाव सदा निरंजनपने के कारण...** परमस्वभाव त्रिकाल ऐसा प्रतिभास में आने के कारण... सदा निरंजनपने के कारण का अर्थ कि सदा निरंजनरूप से प्रतिभासित होता है। ओहो! भगवान पूर्णानन्दस्वरूप त्रिकाल ऐसा शुद्ध आनन्दघन है, ऐसी दृष्टि में, पर्याय में शुद्धता प्रगट हुई, उसके कारण यह आत्मा **सदा निरंजनरूप से प्रतिभासित होने के कारण...** अंजनरहित है, निर्मलानन्द है। ऐसा प्रतिभासित (होता है अर्थात्) सम्यग्दृष्टि को—सुदृष्टि को—धर्मात्मा को इस निधि का दर्शन होता है। समझ में आया?

**सदा निरंजनरूप से प्रतिभासित होने के कारण...** ऐसा स्पष्टीकरण किया। सदा

निरंजन तो है ही, अभव्य को भी है, परन्तु प्रतिभासित हुआ तो 'सदा निरंजन' ऐसा आया। समझ में आया? दृष्टि में निर्मलता प्रगट होकर स्व का निधान जो देखा तो आत्मा सदा प्रतिभासित है। **सफल हुआ...** सम्यग्दृष्टि को पंचम भाव सफल हुआ। समझ में आया? आहाहा! यह धर्म भारी कठिन भाई! यह तो कहे, व्रत करो, तप करो, अपवास करो और मर जाओ, सूख जाओ, धर्म होगा। धूल में भी नहीं होगा, सुन न! यहाँ तो कहते हैं, जो परम ध्रुवस्वभाव आत्मा अविनाशी अनादि-अनन्त, ऐसी अन्तर में दृष्टि हुई, उसको सफल हुआ। यह परमभाव है, वह सफल हुआ। अज्ञानी को सफल है नहीं। आहाहा! समझ में आया? **सुदृष्टियों को...** ऐसी भाषा है। एकवचन नहीं, बहुत सुदृष्टि है, बहुत। सम्यग्दृष्टियों को... आहाहा! निजनिधान अतीन्द्रिय आनन्द का रस, उसके भान में आया, प्रतीति में आया, प्रतिभासित हुआ, सम्यग्दृष्टि को सफल है। परमभाव की सफलता तो उसको है। समझ में आया?

**जिससे, इस परम पंचमभाव द्वारा...** आहाहा! इस परम भगवान ध्रुव सामान्य स्वभाव, नित्यस्वभाव, उसके द्वारा... अति आसन्नभव्य जीव को इसके द्वारा... देखो! **पंचम भाव द्वारा...** पर्याय द्वारा नहीं, निमित्त द्वारा नहीं, विकल्प द्वारा नहीं। **पंचमभाव द्वारा अति-आसन्न भव्य जीव को निश्चय-परम-आलोचना के भेदरूप से...** आलोचना का यह दूसरा भेद। दूसरा भेद है न आलुंछन। **उत्पन्न होनेवाला 'आलुंछन' नाम सिद्ध होता है,...** आहाहा! क्या कहते हैं? आलोचना का दूसरा भाग आलुंछन किसको सिद्ध होता है? कि परम भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप त्रिकाल पवित्र की दृष्टि करनेवाले को आलुंछन सफल होता है। उसने मिथ्यात्व और राग-द्वेष का मंथन—नाश कर दिया है। आहाहा! भारी सूक्ष्म... मूलचन्दभाई! यह क्रियाकाण्ड में फँसा दिये, बेचारे की जिन्दगी व्यर्थ (गयी)। दान करो, भक्ति करो, पूजा करो और व्रत करो। यह तो राग की मन्दता हो (तो) शुभभाव है और शुभभाव का कर्ता होना, वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा!

कहते हैं, इस परम पंचमभाव द्वारा... **निश्चय-परम-आलोचना के भेदरूप से उत्पन्न होनेवाला 'आलुंछन' नाम सिद्ध होता है,...** जिसको स्वभाव नित्यानन्द प्रभु की ओर का सम्यग्दृष्टि जीव का झुकाव है, तो त्रिकाली प्रतिभास में आया, उसको आनन्द का वेदन हुआ, उसको परम पंचमभाव सफल है। समझ में आया? क्या कहा? आलुंछन

साबित हुआ। पंचम परमभाव स्वभाव ध्रुवभाव द्वारा... क्योंकि उस पर दृष्टि दी तो दृष्टि का कारण वह द्रव्य हुआ। समझ में आया? तो उस कारण से अति आसन्न भव्य जीव को... आहाहा! अल्प काल में जिसकी मुक्ति तैयार है, केवलज्ञान जिसको नजदीक में है। आहाहा! समझ में आया? पंचम परम पंचम भाव द्वारा आलोचना का यह भेद सफल हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भाषा भी कठिन कैसी? आलुंछन और आलोचन (ऐसी) दो भाई ने बैठकर बात की है कभी? बीड़ी की बातें की हो वहाँ। समझ में आया?

ऐसा करो, ऐसा करो, उसे ऐसे दो, उसे दो, यह करो। यह कहते हैं कि प्रभु! तेरी चीज़ अन्दर आनन्दघन परमस्वरूप अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त स्वभाव से भरी है। आहाहा! उसके द्वारा... भाषा तो देखो! पर्याय द्वारा नहीं, निमित्त द्वारा नहीं, विकल्प द्वारा नहीं। आहाहा! त्रिकाली स्वभाव के द्वारा... क्योंकि उसमें दृष्टि पड़ी तो दृष्टि का कारण तो यह परमपारिणामिकभाव है। तो उसके द्वारा... अज्ञान और राग-द्वेष को मूल से आलुंछन—उखड़ जाते हैं। समझ में आया? गधा हो न, घास खाता है गधा। मूल में से उखाड़कर खाता है। है गधा, परन्तु काम ऐसा करता है, ऐसा कहते हैं। और गाय है, वह घास खाती है, ऊपर-ऊपर से खाती है। नीचे उसका (मूल) हो तो बड़ा होगा। गधा ऐसा है कि घास ऊपर से नहीं खाता, खींचकर खाता है। इसी प्रकार ज्ञानी राग और अज्ञान को खींचकर नाश कर देते हैं, ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! अरे! यह बात, भगवान के नजदीक में आने की बात भी महा अपूर्व बात है। आहाहा! कहा है न! पद्मनन्दि में आया न? बात सुनना, यह वार्तापि... अध्यात्म की वार्ता सुनना भी भावि निर्वाण का भाजन है। आहाहा! परन्तु 'बराबर सुना' का अर्थ रुचि में हुई, ऐसा। आहाहा! समझ में आया?

**सफल हुआ है; जिससे, इस परम पंचमभाव द्वारा...** टीका भी भारी सूक्ष्म हैं, हों! **अति-आसन्न भव्य जीव को...** आहाहा! मोक्ष तो जिसे नजदीक में वर्तता है, संसार का किनारा आ गया है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी दृष्टि जहाँ पंचम भाव भगवान पर पड़ी, भगवान अर्थात् महिमावन्त, उस द्वारा आलुंछन हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में

आया ? उस द्वारा विकार का मूल में से नाश हुआ। दूसरे कारण से मूल में से विकार नाश होता नहीं। राग की मन्दता तो अपना विकारीभाव है, उससे—शुभभाव से तो बन्ध पड़ता है। उसमें आलुंछन तो आया नहीं, उल्टा बन्धन पड़ा। समझ में आया ? आहाहा! लोग शुभभाव... शुभभाव को बहुत माहात्म्य देते हैं न। यहाँ तो कहते हैं, आत्मा का—परमपंचमभाव का सम्यक्-भान नहीं, वहाँ शुभभाव जो है, वह तो मिथ्यात्वसहित है। और इस शुभभाव में दर्शनमोह का रस पड़ता है। समझ में आया ? आहाहा! इस शुभभाव में भी दर्शनमोह में, चारित्रमोह में, दूसरे में रस पड़ता है। आहाहा! यहाँ तो पंचम भगवान आत्मा परमस्वभावभाव का आश्रय किया, उसकी दृष्टि की, तो उसके द्वारा संसार का मूल में से नाश हो जाता है। फिर संसार उगता नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

वह आता है न (प्रवचनसार) में ? उत्पाद बिना का व्यय और व्यय बिना का उत्पाद। प्रवचनसार। समझ में आया ? क्या कहा ? संसार का व्यय, वह संसार के उत्पाद बिना हुआ। कभी अब संसार उत्पन्न नहीं होगा। आलुंछन (अर्थात्) मूल में से नाश हो गया। आहाहा! समझ में आया ? परम भगवान आत्मा चैतन्य का दल, आनन्द का पिण्ड प्रभु ध्रुव के द्वारा... आहाहा! पुण्य के द्वारा तो कर्म में रस पड़ता है। यहाँ आत्मा स्वभाव के द्वारा मूल में से संसार का लोप हो जाता है। आहाहा! समझ में आया ? यह चीज़ दुनिया को दृष्टि में आवे नहीं और फिर धर्म करे। ऐसा धूल में भी धर्म नहीं, सुन तो सही! प्रसन्नभाई! आहाहा! प्रसन्न हो। आता है या नहीं ? आहाहा!

एक बार प्रसन्न हो। क्यों ? तेरी चीज़ तेरे पास पूर्ण है, ऐसा तुमको बता दिया। प्रसन्न हो, खुशी हो। आहाहा! वह आता है २३-२४-२५वीं गाथा (समयसार)। **'उवओगलखखणो णिच्चं सव्वण्हुणाणदिट्ठो'** भगवान ने तो सर्वदा त्रिकाल उपयोगरूप देखा है। ऐसा पड़ा ही है त्रिकाल। तेरी चीज़ तुझे आच्छादन में बता दी तुझको कि देख! ऐसी है। प्रसन्न हो जा एकबार। आहाहा! मैं तो ऐसा ही हूँ त्रिकाल। समझ में आया ? ऐसी दृष्टि करके प्रसन्न हो जा। प्रसन्नजी! तुम्हारे नाम का बना है। आहाहा! ऐ सेठी! पहले आता है ऐसा। यह तो नियमसार है। समयसार है न ? जड़-चेतन कभी एक नहीं हो सकते, ऐसा तू सर्व प्रकार से प्रसन्न हो। **'तत्सर्वथा प्रसिद'** **'प्रसिद'** का अर्थ किया।

संस्कृत में '**प्रसिद**' है। '**प्रसिद**'—प्रसन्न हो। ऐ मूलचन्दभाई! आहाहा! मूल तेरी वस्तु तेरे पास पड़ी है, तू प्रसन्न हो जा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो! '**जीवदव्यीभवत् उपयोग-अनुपयोगयोः प्रकाशतमसोरिव सहवृत्तिविरोधावादनुभूयते। तत्सर्वथा प्रसिद विबुद्धस्य स्वद्रव्य मम एत इति अनुभव॥** (गाथा २३-२४-२५ की टीका)।

हे भगवान! तेरा स्वभाव तुझमें परिपूर्ण पड़ा है, यह तुझे बता दिया। वह कभी रागरूप हुआ नहीं। सर्व प्रकार से प्रसन्न हो। सर्व प्रकार से प्रसन्न हो। आहाहा! तेरा चित्त उज्ज्वल करके सावधान हो और स्वद्रव्य को 'यह मेरा' ऐसा अनुभव कर। यह ज्ञायक त्रिकाली परमस्वभाव, वह मैं हूँ, ऐसा अनुभव (कर)। राग और परवस्तु मेरी है, ऐसा अनुभव तो अनन्त बार किया, जो तेरी है नहीं। और है, उसका तो कभी लक्ष्य किया नहीं। आहाहा! यह सर्वज्ञ भगवान के पेट (अभिप्राय) का स्पष्टीकरण है। समझ में आया? स्वद्रव्य को 'यह मेरा' इसका अर्थ कि वह परमपंचमभाव, वह स्वद्रव्य.... पर्याय में। आहाहा! जीव-अजीव अधिकार है न? जीव अधिकार है। जीव का अर्थ यह कि परमस्वभावभाव। यह जीव वास्तव में वह जीव। वह जीव ऐसा का ऐसा है। नरक में गया तो ऐसा है, निगोद में रहे तो ऐसा है, ऐसा का ऐसा है। तेरी श्रद्धा में ला। समझ में आया? आहाहा!

**'आलुंछन' नाम सिद्ध होता है, कारण कि वह परमभाव समस्त कर्मरूपी विषम-विषवृक्ष के विशाल मूल को उखाड़ देने में समर्थ है।** आहाहा! यह परमभाव... आहाहा! महिमा करते-करते उनको यहाँ शब्द मिलते नहीं। दिगम्बर सन्त वनवासी सन्त हैं। आहाहा! अन्दर प्रभु तेरी चीज़ है, अन्तर्मुख अवलोकन बिना वह चीज़ तेरी दृष्टि में आयी नहीं। बहिर्मुख अवलोकन में तो वह चीज़ है नहीं। बहिर में तो पर्याय, रागादि निमित्त है। वह तो तेरी कायम की चीज़ है नहीं। तो इस अवलोकन में तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? **परमभाव समस्त कर्मरूपी...** समस्त कर्म, उसका विषम-विषवृक्ष... विपरीत जहर का वृक्ष—जहर का वृक्ष। आहाहा! उसका यह फल आये पैसा और धूल, कहते हैं, सब जहर के वृक्ष-फल हैं। जहर के वृक्ष के फल हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहो, लड़का अच्छा और पैसा अच्छा। कहते हैं, यह जहर के वृक्ष के फल हैं।

आहाहा! यह अमृत वृक्ष तो भगवान पूर्णानन्दस्वरूप परमभाव, वह अमृत वृक्ष है। उसमें तो अमृत फल पकता है। अ-मृत अर्थात् कभी मरे नहीं, अवतार न हो, ऐसा मुक्तिफल उसमें से पकता है। आहाहा! समझ में आया? इस बात की खबर नहीं। पोपटभाई! लोगों को ऐसा लगे यहाँ का कि अरे! सोनगढ़वाले तो व्यवहार का उच्छेद कर डालते हैं। ऐ जेठाभाई! उसे और कहे कि कर्म से होता है, ऐसा मानो तो चर्चा करो। यहाँ तो कहते हैं कि कर्म से तो विकार होता नहीं, परन्तु अपने से विकार होता है, ऐसी दृष्टि विकार के ऊपर रखना, वह भी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! अपने से विकार अपने कारण से होता है, वह दृष्टि (भी) पर के ऊपर है। समझ में आया? यह तो कर्म से विकार नहीं होता, इतना सिद्ध करने को, पर्याय में विकार होता है, (ऐसा कहा)। पर्याय में पर्याय कारण करके, हों! द्रव्य कारण करके नहीं। आहाहा! कर्म से विकार होता है, (ऐसा) माननेवाला तो अत्यन्त पर्याय की स्वतन्त्रता का भी खून करता है। सेठी! कड़क भाषा है कड़क। मीठालालजी मीठा बोलते हैं। मतलब की यह चीज़ है। आहाहा!

कहते हैं, इस **विषम**—विपरीत **विषवृक्ष के विशाल मूल को...** विशाल मूल—गहरा मूल है। भिण्डी का छिलका नहीं। समझ में आया? गहरा... गहरा। वड़ का मूल बहुत गहरा होता है। वड़ होता है न वड़, मूल (जड़) बहुत गहरा होता है। वह आता है। भिण्डी उगती है न। भिण्डा समझते हो? भिण्डी-भिण्डी होती है न। तो भिण्डी का वृक्ष उगा वड़ के पास। वड़ था बड़ा वड़। दो महीने में तो इतना हो गया। वड़ को कहता है, भिण्डी भादो मास की, वड़ को कहे जरूर। भाद्र महीने की... वर्षा अभी होती है न, भिण्डी उगी हो और एकदम इतनी (हो)। 'भिण्डी भादो मास की, वड़ को कहे जरूर, हम बढ़ गये, जगह करो तुम दूर।' दो महीने में इतने तो बारह महीने में कितना होगा? तेरे वृक्ष से बढ़ जायेगा, निकल जा।

वड़ कहे, धीरज रख धीरज। दो-चार दिन धीरज रख, तेरा मूल उखड़ जायेगा। दो महीने में इतना चार हाथ ऊँचा हुआ तो बारह महीने में इतना होगा—यह तुझे लागू नहीं पड़ता। हम तो रहनेवाले पुराने... पुराने हैं, वहाँ रहूँगा। तू तो दो महीने में इतना हो गया, सूख जायेगा अभी। यह वद... वद हुई, सूख जायेगा तू। रहने दे। यह छजा का छिलका नहीं हम। छजा समझते हो? दीवाल में डालते थे पहले। गारा-पंक फिर काँटा

डाले। पहले तो यही था न? तो उसमें बीज उगे। बीजा पड़ा हो न कोई निंबोली का, पीपल उग जाये। तो लम्बा कहाँ जाये? वह तो छजा का छिलका है। छह महीने में सूख जायेगा। मूल है नहीं। इसी प्रकार रागादि का गहरा मूल अज्ञान के कारण से है। स्वभाव का गहरा मूल तो स्वभाव से है। आहाहा! समझ में आया? **उखाड़ देने में समर्थ है।**

**अब, इस ११०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं:**—लो।

**एको भावः स जयति सदा पञ्चमः शुद्धशुद्धः**
**कर्मारातिस्फुटितसहजावस्थया सन्स्थितो यः।**
**मूलं मुक्तेर्निखिल-यमिना-मात्मनिष्ठा-पराणां,**
**एकाकारः स्वरस-विसरापूर्ण-पुण्यः पुराणः॥१६०॥**

आहाहा! **श्लोकार्थः—जो कर्म की दूरी के कारण...** भगवान आत्मा तो कर्म से भिन्न... भिन्न... अत्यन्त भिन्न है। **कर्म की दूरी के कारण प्रगट**—वर्तमान **सहजावस्थापूर्वक...** सहजस्वभावपूर्वक **विद्यमान है...** आहाहा! अवस्था का अर्थ अव-निश्चय, स्थ। त्रिकाली विद्यमान रहनेवाला है, ऐसा। पर्याय की बात नहीं। **कर्म की दूरी के कारण...** मेरा भगवान तो कर्म की दूरी के कारण प्रगट सहज अवस्था—निश्चय स्वभावपूर्वक विद्यमान है। आहाहा! **जो आत्मनिष्ठापरायण...** आत्मा में स्थित है। **समस्त मुनियों को मुक्ति का मूल है,...** त्रिकाल परमभाव है, वह समस्त मुनियों का मुक्ति का मूल है। वह संसार प्रकृति जहर का वृक्ष है। दो खान है—जहर की खान और यहाँ मुक्ति के मूल की खान। आहाहा! इसलिए यह साधारण पण्डित-बण्डित को... नहीं बैठता। ऐसी बात में कुछ व्यवहार-ब्यवहार रहता नहीं और (कहे), टीका नहीं। टीका में अन्तर है, अमुक में अन्तर है, ढींकणा में अन्तर है। आहाहा! .... आहाहा! समस्त मुनियों—संसार पर्याय का अभाव करनेवाले सन्तों को संसार के अभाव में मुक्ति का मूल परमस्वभाव है। जिसका आदर करने से मुक्ति मिलती है। समझ में आया?

**जो एकाकार है (अर्थात् सदा एकरूप है),...** पर्याय-बर्याय का भेद नहीं, द्रव्यस्वरूप। **जो निज रस के विस्तार से भरपूर होने के कारण पवित्र है...** कैसा है

अपना त्रिकाली अन्तर भगवान आत्मा ? कि निजस्वभाव का रस ऐसा विस्तार... अपनी शक्ति के रस से विस्तार है। **भरपूर...** आहाहा! भगवान नित्यानन्द प्रभु निज अनन्त शक्ति से भरपूर, निजशक्ति से भरपूर है। **पवित्र है...** उस कारण से पवित्र है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी धर्म की पद्धति! पर्यूषण में तो कुछ अपवास करो... यह उपवास अर्थात् वस्तु जो त्रिकाल है, उप अर्थात् उसके समीप वस, वह उपवास है, बाकी सब लंघन है। समझ में आया ? निजरस के विस्तार से भरपूर... ओहोहो! भगवान आत्मा अपना ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि निज शक्तियाँ, उसका विस्तार अनन्त उससे भरपूर है। इस कारण से पवित्र है। **और पुराण है...** पुराणपुरुष है, यह **( सनातन )** है। आहाहा! समझ में आया ? **पुराण...** पुरुष है।

**वह शुद्ध-शुद्ध...** आहाहा! द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध—ऐसा **एक पंचम भाव सदा जयवन्त है।** सम्यग्दृष्टि को पर्याय में वस्तु की विद्यमानता वर्तती है, पर्याय में पूरे द्रव्य की विद्यमानता वर्तती है (वह) जयवन्त है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसा जैनधर्म होगा ? और अन्यत्र यह होता ही नहीं। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमात्मा ने जानकर कहा। समझ में आया ? आहाहा! एक-एक वस्तु... भगवान अपना पंचम भाव शुद्ध... शुद्ध है। ऐसे समकिती को पर्याय में शुद्धता प्रगट हुई तो त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा प्रतिभास हो गया। समझ में आया ? आहाहा! शुभ और शुद्धता में बड़ी विपरीतता है। उसकी खबर नहीं होती। वह तो शुभक्रिया करो, शुभभाव करो, करते... करते होगा। मिथ्यादृष्टि है तो शुभ नहीं रहेगा लम्बे काल (तक)। अशुभ हो जायेगा और मिथ्यात्व का अशुभभाव तो साथ में है ही। समझ में आया ?

**सदा जयवन्त है।** ऐसा कहकर क्या कहते हैं ? हमारी दृष्टि में विद्यमानता प्रत्यक्ष भासित होती है। समझ में आया ? पर के ऊपर दृष्टि थी तो 'विद्यमान है' ऐसा पहले ख्याल नहीं था। अब हमारी दृष्टि वहाँ गयी तो 'विद्यमान है' ऐसा हमको भासित होता है। समझ में आया ? आहाहा! सदा जयवन्त, सदा भगवान। अहो! जिसका शरण लिया वह चीज़ तो सदा जयवन्त वर्तती है। समझ में आया ? आहाहा! साधारण बुद्धिवाले को, व्यवहार के पक्षवाले को यह बात एकान्त लगे, एकान्त, हों! पकड़ में नहीं आती अभी तो। क्या कहते हैं ?

दो नय है या नहीं सिद्धान्त में? या एक नय का उपदेश है? दो नय है या नहीं? यह तो अकेला निश्चय... निश्चय... निश्चय कहते हैं। अरे! सुन तो सही! यह पर्याय उस ओर झुकी, वह पर्याय ही व्यवहार है। यह आ गया उसमें। समझ में आया? है, इतनी बात है। परन्तु व्यवहार से कोई निश्चय होगा, पर्याय के आश्रय से या राग से निश्चय होगा—यह है नहीं। है, व्यवहार है, अस्तिरूप से है, परन्तु उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, (ऐसा) तीन काल में नहीं है। ऐसे शुभराग हो, पर्याय भी हो, है। है सही। न हो तो तीर्थ का नाश होता है। पर्याय में मोक्षमार्ग की पर्याय का नाश होता है। आहाहा! यह व्यवहार है, मोक्षमार्ग व्यवहार है। आ गया पहले। आहाहा! त्रिकाली भगवान मेरा नाथ, सच्चिदानन्द आनन्द की मूर्ति, वह जयवन्त वर्तता है। जय हो और जयवन्त है, ऐसा कहते हैं। लो, भगवान की जय, ऐसा कहते हैं न? यह कहे, मेरे परमात्मा स्वभाव की जय वर्तती है। आहाहा! १६० कलश हुआ न! अब १६१।

**आसन्सारादखिल-जनता-तीव्रमोहोदयात्सा,**
**मत्ता नित्यं स्मरवशगता स्वात्मकार्यप्रमुग्धा।**
**ज्ञानज्योतिर्धवलितककुभ्मण्डलं शुद्धभावं,**
**मोहाभावात्स्फुटितसहजावस्थमेषा प्रयाति॥१६१॥**

**श्लोकार्थः—अनादि संसार से समस्त जनता को ( -जनसमूह को )...** समस्त जनता—समस्त जीव अनादि काल से **तीव्र मोह के उदय के कारण...** आत्मा की श्रद्धा बिना, पर्याय में राग की श्रद्धा के तीव्र मोह के कारण **सदा मत्त है...** आहाहा! गहल हो गयी है आत्मा की पर्याय, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **ज्ञानज्योति...** ज्ञानज्योति भगवान पूर्णानन्द, वह राग में एकत्व होकर मत्त हो गयी है—पागल हो गयी है ज्योति। समझ में आया? **काम के वश है...** आहाहा! काम अर्थात् विषय की मिठास के वश पड़ गयी है। **निज आत्मकार्य में मूढ़ है।** आहाहा! अपने निज कार्य में मूढ़ है और परकार्य में मत्त—गहल हो गयी है ज्ञानज्योति। समझ में आया? दो विशेषण दिये। मोह उदय के कारण अर्थात् विकार की पर्याय प्रगट करने के कारण ज्ञानज्योति सदा मत्त-पागल हो गयी है। आहाहा! अपने में आनन्द है, ऐसा न मानकर, विषय में, भोग में, पैसे में और लक्ष्मी में सुख है, (ऐसा मानकर) ज्ञानज्योति पागल हो गयी है। समझ में आया?

और काम के वश हो गयी है। इच्छा की वृत्ति उत्पन्न हुई, उसके आधीन हो गयी है। **निज आत्मकार्य में मूढ़ है।** अनादि से ऐसा है। ऐसा न हो तो परम आनन्द का अनुभव होना चाहिए। **मोह के अभाव से यह ज्ञानज्योति शुद्धभाव को प्राप्त करती है...** लो, दोनों बातें कर दीं। अनादि के कर्म के कारण से, ऐसा नहीं कहा भाई यहाँ! यह मोह का उदय, उसमें जुड़ान होने से, स्वभाव साक्षात् विराजमान है, उसकी ओर का झुकाव नहीं होने से या उदय में जुड़ान होने से अपनी पुरुषार्थ की विपरीतता की है। ज्ञानज्योति मत्त हो गयी, काम के वश हो गयी, अपना कार्य करने में मूढ़ हो गयी। आहाहा! कहो, सेठ!

यह पुण्य-पाप का काम करने में प्रवीण हो गयी। बीड़ियाँ-बीड़ियाँ का काम नहीं। बीड़ी तो पर पदार्थ है। उसका तो काम आत्मा कर सकता नहीं। मूढ़ भी नहीं कर सकता है। आहाहा! मात्र पुण्य और पाप के संकल्प-विकल्प के आधीन होकर वह कार्य करने में कुशल ज्ञानज्योति मूढ़—अपने कार्य में मूढ़ है। **मोह के अभाव से यह ज्ञानज्योति शुद्धभाव को प्राप्त...** बस। पर की दृष्टि छोड़कर स्वभाव की दृष्टि करने से, मोह का अभाव होने से शुद्धभाव को प्राप्त करती है। त्रिकाल भाव शुद्ध ध्रुव विद्यमान है, उसको प्राप्त करती है। **कि जिस शुद्धभाव ने दिशामण्डल को धवलित (-उज्ज्वल) किया है...** शुद्धभाव में उज्ज्वलता प्रगट हुई है। सारी पृथ्वी पर प्रकाश प्रगट हो गया है। **तथा सहज अवस्था प्रगट की है।** जिसमें अपनी निर्मलदशा, वीतरागीदशा प्रगट की, उसका नाम मोक्ष का मार्ग और उसका नाम मोक्ष है। संसार के सामने मोक्ष—दोनों बता दिये।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**भाद्र शुक्ल ११, बुधवार, दिनांक - ०१-९-१९७१**
**गाथा-१११, श्लोक-१६२-१६४, प्रवचन-१११**

इस प्रकार के धर्म हैं, उसे दसलक्षणी पर्व कहा जाता है। उसका सातवाँ दिन है—तपधर्म। तप किसको कहते हैं? यह उत्तम तपधर्म की व्याख्या है। (कार्तिकेयानुप्रेक्षा की) ४०० गाथा है यहाँ।

**इहपरलोयसुहाणं, णिरवेक्खा जो करेदि समभावो।**
**विविहं कायकिलेसं, तवधम्मो णिम्मलो तस्स॥४००॥**

जो कोई **मुनि इसलोक-परलोक के सुख की अपेक्षा से रहित होता हुआ...** इसलोक की भी इच्छा नहीं और परलोक की भी इच्छा नहीं। **सुख-दुःख...** में समभाव... अनुकूल-प्रतिकूल संयोग में जिसे समभाव वर्तता है। **शत्रु-मित्र...** में भी समभाव वर्तता है। चारित्र में उपयोग की उग्रता का थम्भन (स्थिरता), उसका नाम तप है। अपना स्वरूप सम्यग्दर्शन में, अनुभव में आत्मा पूर्ण शुद्ध है, ऐसा आया है और फिर स्वरूप में आश्रय करके स्थिरता—चारित्र प्रगट की हो, उस चारित्र में अपने उपयोग को उग्ररूप से जोर करके स्थिर करना, उसका नाम ताप कहते हैं। यह तप की व्याख्या है। आहाहा! तो कहते हैं कि सुख-दुःख, अनुकूल-प्रतिकूल संयोग में, शत्रु-मित्र, **तृण-कंचन...** तृण हो या सोना हो—सब ज्ञेय हैं। मैं तो आनन्द में रमनेवाला आत्मा हूँ। ऐसा जिसको दृष्टिपूर्वक चारित्र में उग्र पुरुषार्थ वर्तता है, उसका नाम तप कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? व्याख्या तो देखो! जिसको सम्यग्दर्शन नहीं, सम्यग्ज्ञान नहीं, चारित्र नहीं, उसको चारित्र में उग्ररूप से स्थिर होना तो है ही नहीं। समझ में आया?

**निन्दा-प्रशंसा आदि में राग-द्वेषरहित समभावी होता हुआ, अनेक प्रकार के कायक्लेश करता है...** निमित्त का कथन आया। काय-क्लेश में संयोग में ऐसी चीज़ वर्तती है अपवास आदि, परन्तु मुनि को निर्मल तपधर्म होता है। अन्तर में आनन्द में चारित्र में स्थिर तो है, परन्तु चारित्र में अपने उपयोग को जोर करके विशेष स्थिर करना,

बलपूर्वक करना, जोर करके करना, उसका नाम तप है। तप की व्याख्या यह है। मूलचन्दभाई! जोरपूर्वक... आगे आयेगा। **चारित्र के लिये जो उद्यम और उपयोग करता है, वह तप है....** देखो! चारित्रवन्त हो, अपने शुद्धस्वरूप में रमणता है, यह चारित्र में उद्यम और उपयोग करता है, उसमें विशेष पुरुषार्थ और उपयोग जोड़ता है, वह तप है। समझ में आया? उसका नाम सम्यग्दृष्टि का, मुनि का तप कहने में आता है। **वह कायक्लेशसहित होता है।** शरीर में भी ऐसा होता है न कायक्लेश आदि। पण्डितजी!

**इसलिए आत्मा की विभावपरिणति के संस्कार मिटाने के लिये...** स्वरूप की दृष्टि है, अनुभव हैं, चारित्र है, परन्तु विभाव का जरा अंश है, इस संस्कार को मिटाने के लिये **उद्यम करना।** आहाहा! यह तप है। **अपने शुद्धस्वरूप उपयोग को चारित्र में रोकता है...** देखो! अपना शुद्धस्वरूप त्रिकाल आनन्द ध्रुव का जो उपयोग को चारित्र में, स्वरूप में, रमणता में विशेष रोकता है। **बड़े बलपूर्वक रोकता है...** और **ऐसा बल करना ही तप है।** शुद्ध आनन्दस्वरूप निर्विकल्प परमात्मा अपना निजस्वरूप, उसकी दृष्टि और अनुभव है, इसके उपरान्त स्वरूप में लीनता और आनन्द की रमणता भी है, परन्तु विशेष बलपूर्वक—बड़े बलपूर्वक उपयोग को स्वरूप में रोकता है, ऐसा बल करना, वह तप है। अपना शुद्ध ध्रुव चैतन्यस्वरूप भगवान की दृष्टि करना—सम्यग्दर्शन करना, वह सम्यग्दर्शन और उसका ज्ञान करना, वह सम्यग्ज्ञान, उसमें लीनता करना, वह चारित्र और लीनता में उग्र पुरुषार्थ से उसमें एकाकार होना, उसका नाम तप। यहाँ तो एक अपवास किये और दो उपवास किये और हो गया तप। मूल चीज़ तो नहीं मिलती, परन्तु बाह्य के निमित्तपने के तप की व्याख्या... परन्तु उसको निमित्तपना लागू नहीं पड़ता। समझ में आया?

**बड़े बलपूर्वक रोकता है, ऐसा बल करना ही तप है।** किसमें बल करना? चारित्र में। यह चारित्र की व्याख्या की न अभी। अपना आत्मा आनन्दसहित है, ऐसा अनुभव हुआ हो सम्यग्दर्शन में, पश्चात् स्वरूप में बड़ा—उग्र द्रव्य का आश्रय लेकर स्थिरता हुई हो, वह चारित्र है। नग्नपना और पंच महाव्रत का विकल्प, वह कोई चारित्र है नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शनपूर्वक स्वरूप में स्थिरता की रमणता विशेष हुई हो, उसका नाम चारित्र और उसमें जोरपूर्वक स्थिरता करना, उसका नाम तप। समझ में आया? चारित्र से आस्रव

रुकता है और तप से पूर्व का कर्म झरता है। विभाव संस्कार थोड़ा हो, स्वभाव के उग्र पुरुषार्थ से चारित्र में विभावसंस्कार का नाश होता है। आहाहा! यह व्याख्या भी अलग। आहाहा! कहो, समझ में आया? वह तपधर्म है, लो!

अपने तो १११। नियमसार की १११ गाथा। तीनों एकड़ा।

**कम्मादो अप्पाणं भिण्णं भावेइ विमलगुणणिलयं।**
**मज्झत्थ-भावणाए वियडी-करणं ति विण्णेयं॥१११॥**

**निर्मलगुणाकर कर्म-विरहित अनुभवन जो आत्मा का।**
**माध्यस्थ भावों में करे, अविकृतिकरण उसे कहा॥१११॥**

यह तीसरा बोल है। आलोयण के चार प्रकार हैं न! आलोचना, आलुंछन, अविकृतिकरण, भावशुद्धि। उसमें तीसरा बोल है।

**टीका:—यहाँ शुद्धोपयोगी जीव की परिणतिविशेष का (मुख्य परिणति का) कथन है।** क्या कहते हैं? अपना शुद्ध ध्रुव चैतन्य भगवान, उसमें अपने उपयोग—शुद्ध उपयोग को लगाया। पुण्य-पाप का शुभ-अशुभभाव नहीं, वह तो बन्ध का कारण है। अविकृतिकरण है न! **शुद्धोपयोगी जीव की परिणति...** अर्थात् अवस्था **विशेष का (मुख्य परिणति का) कथन है।** परिणति विशेष है न! विशेष अर्थात् मुख्य। वह शुद्ध उपयोग मध्यस्थ भावना में आ गया। मध्यस्थ भावना है न, वीतरागी परिणति। शुद्धोपयोग में, शुभ-अशुभ उपयोग को छोड़कर... यह नास्ति की बात यहाँ की नहीं। अपना आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से जिसका पूर्ण स्वरूप भरा है भरपूर, ऐसी चीज़ में अनुभव करके उसमें स्थिरता का शुद्ध उपयोग करना, वही अविकृतिकरण है। आहाहा! समझ में आया?

**पापरूपी अटवी को जलाने के लिए...** भाई ने लिखा है न नीचे। पापाटवी भाव को... यह कहते हैं, यह वाक्य रह गया है। मध्यस्थभाव का अर्थ टीका में नहीं आया बराबर स्पष्ट। ध्याता में खेंचना चाहिए...

**मुमुक्षु :** टीका में 'ध्याता है' नहीं, अध्धर से डाला।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अध्धर से डाला। 'ध्याता है' उसमें आ जाये। ... नहीं, यह तो

रह गया है। 'मध्यस्थभावना' का अर्थ ही रह गया पूरा। समझ में आया? **पापरूपी अटवी...** पुण्य और पाप के भाव दोनों अग्नि हैं। राग आग दाह शुभ और अशुभ, आहाहा! अग्नि दाह है। यह पापरूपी अटवी, शुभ-अशुभभाव(रूपी) विशाल—बड़ा वन है। उसको जलाने के लिये—उसको नाश करने के लिये **अग्नि समान ऐसा जो जीव द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से भिन्न आत्मा को...** अपना भगवान आत्मा, जड़कर्म से भिन्न, पुण्य-पाप के भावकर्म—विकल्प से भिन्न और नोकर्म शरीर-वाणी से भिन्न—ऐसे आत्मा को... भिन्न ऐसे आत्मा को... कैसा है आत्मा?

**कि जो सहज गुणों का निधान है...** स्वाभाविक आनन्दादि शक्तियों का तो निधान है। आहाहा! भगवान आत्मा अपना—निज स्वभाव ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता, विभुता ऐसी अनन्त शक्तियों का निधान है। आहाहा! गुणों को प्रगट करना हो तो गुणों का धरनेवाला आत्मा के ऊपर एकाग्र होने से प्रगट होता है। निधान वह है। पुण्य और पाप के विकल्प में एकाग्र होने से जहर उत्पन्न होता है। भीखाभाई! बहुत कठिन। लो, .... एक बात। पाठ में है न! '**विमलगुणणिलयं भिण्णं**' भिन्न—पर से भिन्न, पुण्य-पाप के विकल्प से, कर्म से, नोकर्म से भिन्न। परन्तु यह चीज़ क्या है? भगवान आत्मा कर्म, शरीर और विकल्प पुण्य-पाप का भाव, उससे पृथक् है—अलग है। उससे अलग पड़ा है। वह अलग है, परन्तु वह है क्या? समझ में आया?

**सहज गुणों का निधान... 'विमलगुणणिलयं'** निलय अर्थात् स्थान... स्थान। आनन्दादि अनन्त गुणों का स्थान—आयतन—घर है। निलय है न, उसका अर्थ निधान किया है। टीका। 'निधानं'। आहाहा! यहाँ तो वर के गीत हैं। आत्मा बिना बारात जोड़ दे, वर बिना बारात। दूल्हा नहीं, बारात मिली। पाँच सौ लोग, हजार लोग और उनका मूल वर रह गया। दूल्हा रह गया। और दूल्हा भी हो, परन्तु उसके साथ—दूल्हे के साथ... क्या कहते हैं तुम्हारे? अणवर। उसके साथ होता है न? 'विनायक' कहते हैं? दूल्हे के साथ। हमारे यहाँ अणवर कहते हैं। वर के साथ रहता हो न, हमारे यहाँ अणवर कहते हैं। विनायक। दूसरा एक आदमी हो सम्हाल करनेवाला। समझ में आया? ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा अपना निजस्वरूप, वह तो वर है। और उसके साथ व्यवहाररूपी अणवर होता है, दया, दान, व्रतादि विकल्प। वर को कन्या ब्याहते हैं। अणवर को

ब्याहते हैं ? खाने को मिलता है साथ में। लड्डू मिले एक थाली में। एक थाल हो न बड़ा, उसमें पाँच बैठे—पंचोलुं बैठे। तो ऊँची-ऊँची चीज़ उसको बर्फी, क्या कहलाता है ? मिठाई मिले। परन्तु कहीं कन्या मिले ? इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा ! कहते हैं, साथ में राग की मन्दता का व्यवहार हो, परन्तु उससे तो वह भिन्न है। समझ में आया ? और राग के फलरूप तो कोई स्वर्गादि मिले, उसमें मुक्ति की परिणति मिलती नहीं। समझ में आया ?

भगवान आत्मा स्वाभाविक गुणों का तो निलय—घर—आयतन—निधान—भण्डार है। आहाहा ! अपना प्रभु आत्मा अविनाशी आदि-अन्त बिना की चीज़ है, उसमें स्वाभाविक अतीन्द्रिय आनन्द आदि गुण का तो यह भण्डार—निधान है। आहाहा ! उसको ध्याता है। टीका में नहीं है। गुणों का निधान, वह आत्मा। यह तो वही हुआ न उसका अर्थ। '**मज्झत्थभावणाए**' उसे वीतराग परिणति से आत्मा को ध्याओ, उसका नाम अविकृतिकरण '**विडीकरणं**' लो। उस जीव को अविकृतिकरण—विकार नहीं होना और निर्विकारी दशा होना, उसका नाम आलोचना का तीसरा भाग है। आहाहा ! समझ में आया ? भाषा भी अलग प्रकार की इसमें। मूलचन्दभाई ! कभी सुनी थी वहाँ ? अविकृतिकरण और यह। यह करो और अपवास करो, यह करो और मरो, फिर चार गतियों में भटको। आहाहा ! समझ में आया ? वीतरागपरिणति ध्याता कहो, मध्यस्थभाव कहो या वीतरागपरिणति कहो। उस द्वारा अन्तर का ध्यान करता है, उसे सहज गुण नामक **आलोचना का स्वरूप वर्तता ही है।** आहाहा !

उसे स्वाभाविक गुण नामक परम आलोचना का स्वरूप पर्याय में वर्तता है, यह वीतराग पर्याय वर्तती है, उसका नाम अविकृतिकरण नाम का आलोयण (—आलोचना) का तीसरा भेद कहने में आता है। आचार्य ने कहा था कि भगवान की दिव्यध्वनि में आया है। भगवान की दिव्यध्वनि परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव... कल वह आया था। शुरुआत की न वहाँ ? चार भेद किये न, वहाँ आया। १०८ (गाथा)। **भगवान अर्हन्त के मुखारविन्द से निकली हुई...** भगवान की वाणी में चार प्रकार की आलोचना आयी है। आहाहा ! और... सुनो ! बहुत नहीं बोलो। **गौतम महर्षि के मुखकमल से निकली हुई...** समझ में आया ? भगवान की वाणी में आया और गौतम महर्षि ने गुंथन

किया। यह भगवान की वाणी में आये हैं, चार प्रकार। समझ में आया? परम आलोचना का स्वरूप अर्थात् सहज गुण का निधान, उसको देखते हैं, उसमें स्थिर होते हैं, उसको आलोचना वर्तती है। आहाहा! वह पर्याय है। त्रिकाली गुण का निधान, उसको देखना, उग्र पुरुषार्थ से देखना, वीतराग परिणति से देखना, मध्यस्थभावना से देखना। आहाहा! यह **आलोचना का स्वरूप वर्तता ही है**। लो।

**अब इस १११वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज नौ श्लोक कहते हैं:**—११२ में नौ आयेंगे। इसमें नौ (कलश)। १६२। १६२ कलश।

**आत्मा भिन्नो भवति सततं द्रव्यनोकर्मराशे-**
**रन्तःशुद्धः शमदमगुणाम्भोजिनी-राजहन्सः।**
**मोहाभावा-दपरमखिलं नैव गृह्णाति सोऽयं,**
**नित्यानन्दाद्यनुपमगुणश्चिच्चमत्कारमूर्तिः ॥१६२॥**

अम्बोजिनी—कमल। अम्बो में उत्पन्न हुआ। आहाहा! इन्हें शब्द थोड़े पड़ते हैं! भगवान आत्मा अन्दर वस्तु चैतन्यस्वभाव सम्पन्न, ऐसे अनन्त-अनन्त शक्ति सम्पन्न, भगवान **आत्मा** अपना **निरन्तर—**अन्तर पड़े बिना—कायम—सदा... **'सततं'** है न? **द्रव्यकर्म...** आठ कर्म जड़ निरन्तर भिन्न है उससे। **और नोकर्म के समूह से भिन्न है,...** शरीर के रजकण, वाणी के रजकण, उनको नोकर्म कहते हैं। उससे भिन्न है। है कैसा? अब कहते हैं। **अन्तरंग में शुद्ध है...** अन्तर-अंग जिसका शुद्ध निर्मल आनन्दघन है। ओहोहो! **और शम-दमगुणरूपी कमलों को राजहंस है...** आहाहा! अतीन्द्रिय वीतरागी परिणाम, इन्द्रिय का दमन—अतीन्द्रिय भावरूप दम गुणरूपी कमल का राजहंस है। भगवान आत्मा... आहाहा!

**अर्थात् जिस प्रकार राजहंस कमलों में केलि करता है,...** कमल... कमल में केली करे। बड़े-बड़े कमल होते हैं न बड़े-बड़े। राजहंस उसमें—कमल में केलि करता है। समझ में आया? एक मानसरोवर है बड़ा, उसमें राजहंस रहते हैं। और जिसका मोती का चारा है, मोती का चारा। बालू तो नहीं, परन्तु अनाज भी नहीं, मोती का चारा। मानसरोवर है।

**मुमुक्षु :** उसमें मोती पकते होंगे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हो, पुण्यवन्त प्राणी हो वहाँ सब हो। उसको टिकना है न! महिमा कहाँ आयी ? यह तो ज्ञान आया। ऐसा पुण्यवन्त प्राणी है तो वहाँ ऐसा साधन हो, उपस्थित हो। उससे कोई आत्मा को लाभ है, वह कहाँ आया ? लाभ की बात है नहीं। आहाहा!

पुण्यवन्त प्राणी जहाँ जन्मे, सिद्धान्त कहता है, वहाँ का आसपास का पत्थर का दल हो तो वह नीलमणि शिला हो जाती है। उसमें आत्मा में क्या आया ? समझ में आया ? और पुण्यवन्त प्राणी आराधक होकर यदि जन्मे, वहाँ आसपास में समुद्र हो तो मछलियाँ ऐसी पकें कि जिसमें करोड़ों मोती पकें, अरबों मोती। वह आया वहाँ मच्छी—मछली ऐसी होती है कि जिसके मुख में मोती (पके)। आसोज महीने का पानी गिरे न, मोती पक जाये। उसमें है क्या ? वह जगत की चीज़ है। भगवान जन्मे तो आकाश में रजकण हैं, वे रत्न होकर ढ़ेर पड़े नीचे। समझ में आया ? हाँ, मोती पके, वह न पके। वह तो गोंडल दरबार भी कहते थे कितनी बार। उनके जमींदार हो न, क्या कहे ? भागीदार। उसके खेत में बरसात न आवे और हमारे खेत में आवे। साथ में खेत, हों! गोंडल दरबार का खेत हो, वहाँ वर्षा आवे। साथ में खेत हो भागीदार का—भायात का (तो वहाँ) न आवे। वह तो जगत की... दुनिया नहीं कहती ? कर्म-धर्म है। कर्म में धर्म है उसका। जैसा कर्म है वैसा संयोग आता है। उसमें आत्मा को क्या है ? वह बात है ही नहीं यहाँ।

यहाँ तो कहते हैं कि (राजहंस) कमलों में केलि करता है, **उसी प्रकार आत्मा शान्तभाव और जितेन्द्रियतारूपी गुणों में रमता है।** आहाहा! राजहंस कमलों में केलि करता है, उसी प्रकार आत्मा शान्त शुद्धभाव—पुण्य-पाप के राग से रहित ऐसा शुद्धभाव और जितेन्द्रियता में रमे। गुण शब्द पर्याय है। आहाहा! **सदा आनन्दादि अनुपम गुणवाला...** कैसा है ? आनन्द पहले लिया है। सुख का सागर है आत्मा। ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द लबालब—ठसाठस भरा है आत्मा में। समझ में आया ? जैसे बर्फ में शीतलता भरी है, आईसक्रीम में मिठास भरी है, वैसे भगवान में आनन्द भरा है। भगवान आत्मा, हों! **सदा आनन्दादि अनुपम गुणवाला और चैतन्यचमत्कार की मूर्ति...** आहाहा! यह तो चैतन्य-चमत्कार... एक क्षण में तीन काल—तीन लोक जाने, ऐसा चमत्कार आत्मा में है।

किसी का करे नहीं, किसी का सम्बन्ध करे नहीं, किसी से ले नहीं और अपने में अनन्त-अनन्त ज्ञान और आनन्द का चमत्कार ऐसा है। चैतन्य चमत्कार अनन्त प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया?

**चैतन्यचमत्कार की मूर्ति ऐसा वह आत्मा,...** आहाहा! .... मोह का अभाव। **मोह के अभाव के कारण...** जिसमें मिथ्यादृष्टिपना रहा नहीं, जिसमें शुभाशुभभाव रहा नहीं। अकेली आत्मा शुद्ध के साथ क्रीड़ा की। ऐसी क्रीड़ा में मोह का अभाव है। **समस्त पर को ग्रहण नहीं ही करता।** शुभविकल्प को भी नहीं ग्रहण करता। सम्यग्दृष्टि आत्मा अपने में—रागरहित में रमण करता है, तो रमण रागरहित है। राग नहीं ग्रहण करता, राग में रमता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कायर को तो (लगे कि) ऐसा धर्म? साधारण समाज के लिये कुछ धर्म हल्का... हल्का होगा या नहीं? हल्का कहो या जो कहो, वह मार्ग तो यह है। समझ में आया? आहाहा!

**मोह के अभाव के कारण समस्त...** यह कारण दिया। राग को क्यों नहीं ग्रहण करता? कि जहाँ राग का अभावभाव है, वहाँ राग का ग्रहण कैसे हो? समझ में आया? १६२। राग को ग्रहण नहीं करता अर्थात् धर्मात्मा अविकृतिकरण—विकार बिना की परिणति में रमता है, वह राग में नहीं आता। आहाहा! उसका नाम आलोचना का तीसरा भाग कहा जाता है। नियमसार। यह तो नियमसार है। **'नियमेण य जं कज्जं'** जो निश्चय से करनेयोग्य हो तो यह है। अपना भगवान आत्मा ध्रुव सत् का कन्द—अकेला सत्स्वभाव का कन्द आत्मा है, उसका अनुभव करके स्थिर करना, रागभाव को छोड़ देना। वह छूट जाता है, परन्तु कथन तो ऐसा आवे न! उसको आलोचना कहते हैं। १६३। कलश। कलश।

**अक्षय्यान्तर्गुणमणिगणः शुद्धभावामृताम्भो-**
**राशौ नित्यं विशदविशदे क्षालितांहः कलङ्कः।**
**शुद्धात्मा यः प्रहतकरण-ग्राम-कोलाहलात्मा,**
**ज्ञानज्योतिःप्रतिहततमोवृत्तिरुच्चैश्चकास्ति॥१६३॥**

आहाहा! एक गाथा का नौ तो श्लोक! **श्लोकार्थः—** कहते हैं, **अक्षय अन्तरंग गुणमणियों का समूह है,...** कैसा है आत्मा? क्षय न हो, ऐसा अन्तरंग गुणमणियों का

समूह है। भगवान आत्मा में ऐसे अनन्त गुण पड़े हैं, ज्ञान-आनन्द आदि शक्तियाँ अनन्त, अक्षय—कभी नाश न हो, अविनाशी है। **जो अक्षय अन्तरंग गुणमणियों का समूह है,...** गुणमणि—गुणरूप रत्न का समूह भगवान आत्मा है। **जिसने सदा विशद-विशद (अत्यन्त निर्मल) शुद्धभावरूपी अमृत के समुद्र में...** लो। '**विशदविशदे**' जिसने सदा निर्मल... निर्मल शुद्धभावरूपी अमृत के समुद्र में... शुद्धभावरूपी अमृत का समुद्र प्रभु... आहाहा! **शुद्धभावरूपी अमृत के समुद्र...** अन्दर भगवान आत्मा, वस्तु है न वस्तु, तत्त्व है न! तत्त्व है तो उसका भाव है या नहीं? भाववान है तो भाव है या नहीं? वस्तु है तो उसकी शक्तियाँ—गुण है या नहीं? समझ में आया? आहाहा! कभी सुना नहीं कि आत्मा क्या है। करो धर्म अपनी चीज़ को समझे बिना! समझ में आया? वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में यह आया, यह मुनि जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं कि भगवान ने तो ऐसा आत्मा कहा है।

**जो शुद्धभावरूपी अमृत के समुद्र में...** कोई धर्मात्मा **पापकलंकों को धो डाला है...** आहाहा! कहते हैं, जिसने अन्दर में... वस्तु ही ऐसी है कि जिसमें पुण्य-पाप का नाश है अथवा पुण्य-पाप है नहीं। अर्थात् शुद्धभाव अमृतसमुद्र में एकाग्र होने से पुण्य-पाप उत्पन्न नहीं होता (इसका अर्थ) पुण्य-पाप को धो डाला। आहाहा! समझ में आया? पापकलंक... 'पाप' शब्द से पुण्य-पाप दोनों, हों! निश्चय में तो शुभभाव भी पाप है। आहाहा! 'पाप पाप को सब कहे, परन्तु अनुभवीजन पुण्य को पाप कहे।' योगसार (दोहा ७१) में आता है न। व्यवहाररत्नत्रय को पाप कहे। यहाँ तो कहे, व्यवहाररत्नत्रय से निश्चयरत्नत्रय होगा। व्यवहाररत्नत्रय कारण और निश्चय कार्य। यह तो निमित्त का कथन है। ऐसा निमित्त होता है, उसका ज्ञान कराया। कठिन काम है, भाई!

**शुद्धभावरूपी अमृत के समुद्र में...** चिदानन्द सत्ता, अपनी चिदानन्द ज्ञानानन्द महासत्ता में लीन होकर... पहले तो सत्ता में पुण्य-पाप है नहीं, ऐसा (कहा)। वह चीज़ ही ऐसी है। यह चीज़ ही है ऐसी। दूसरे नम्बर में लो तो चीज़ का आश्रय करने से पुण्य-पाप का नाश होता है। समझ में आया? ऐसी धर्मकथा कैसी? एक राजा था और एक रानी थी। उसने उपवास किये आठ दिन के। ...में यह बहुत वाँचते। पर्यूषण में यह रखे। श्रेणिक राजा की... रानी। एक-एक इतने उपवास किये। बहुत नाम आवे...,

फलाना। तप का नाम आता है। एक-एक रानी ने यह अपवास किये, यह अपवास किये। परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान था या नहीं ? यह तो कह पहली बात। सीधी बात।

अन्तघर में आता है, अन्तघर सूत्र है न ? ग्यारह अंग है न, अन्तघर में आता है। श्रेणिक की रानियाँ... एक-एक रानी ने भिन्न-भिन्न मुक्ताफल और फलाना, क्या कहलाता है ? वह तप की व्याख्या। तप की अलग बात, हों! .... यह तो बाहर की क्रिया के तप की बात है। पर्यूषण में झुक जाये बेचारे आठ-आठ अपवास, दस-दस अपवास, पन्द्रह-पन्द्रह, महीने-महीने के। आहाहा! हाँ, उसमें राग मन्द हो तो मिथ्यात्वसहित पुण्य बँधता है। मिथ्यात्व साथ में पड़ा है न! जहाँ स्वरूप का आदर है नहीं, वहाँ राग का आदर है ही। राग के आदरपूर्वक होता है तो मिथ्यात्वसहित पुण्य बँधता है। उसमें क्या है ? आहाहा!

**तथा जिसने इन्द्रियसमूह के कोलाहल को नष्ट कर दिया है,...** आहाहा! भगवान आत्मा अमृत का सागर प्रभु अपना निजस्वभाव ध्रुव नित्य, उसमें इन्द्रिय के समूह का विकल्प है ही नहीं। अणीन्द्रिय भगवान आत्मा है। आहाहा! उसने इन्द्रियसमूह के कोलाहल को तो नष्ट कर दिया है। एक बात।—उस अणीन्द्रिय में इन्द्रिय का विकल्प है नहीं। दूसरी बात—अणीन्द्रिय भगवान आत्मा का आश्रय लेता है, उसको इन्द्रिय का विकल्प उत्पन्न होता नहीं। आहाहा! ऐसा धर्म कैसा ? वह कहे, बाहर ऐसा करे, ऐसा करे।

उसमें आया था न, कल आया था। राणा प्रताप ने तो ऐसी प्रतिज्ञा ली थी कि जब तक हमारा मेवाड़ स्वतन्त्र न हो, तब तक थाली में अनाज नहीं खाना। ...ऐसा कोई निकले अपने देश के लिये प्रतिज्ञा करनेवाला ? लो, कैसा लगे लोगों को ? ऐई! लोग भी कुछ... आहाहा! यह आया था कल। भाई ने नहीं देखा, नहीं ? वह प्रगति... एक प्रगति नाम का मासिक अभी निकलता है। भिलाई... भिलाई। जैनमिलन। सब जैन (ने) इकट्ठा होकर किया है। सब जैन का डाला है। उसमें यहाँ का फोटो पहला डाला है पहले पृष्ठ पर। सबका... सबका। विद्यानन्द का। विद्यानन्द ऐसा कहते हैं कि राणा प्रताप ने प्रतिज्ञा ली। ऐसा है कोई देश के लिये करनेवाला ? प्रतिज्ञा ली। महँगाई बढ़ती जाती है। अरे भगवान!

अखबार आये तीन। एक साथ तीन आये। एक तो पहले का प्रगति का तीन। तीन भेजे एकसाथ। यहाँ का नाम डाला है, सामने बड़ा फोटो। सामने पहले पृष्ठ पर, बाहर। बड़ा फोटो और 'निश्चयनय के मुख्य प्रवक्ता सोनगढ़ के सन्त कानजीस्वामी'

ऐसा लिखा है। विरोध करते नहीं, अनुकूलता का है। सब... सबका डालते हैं। आवे कहाँ से? दूसरा .... लिखा है उसमें। श्वेताम्बर हो या दिगम्बर हो, सबको समभाव रखे तो मुक्ति होगी। दूसरे पृष्ठ पर यह लिखा है। यहाँ नहीं? वहाँ होगा। तीन आये एक साथ तीन। परन्तु जैन... सब इकट्ठे होकर किया होगा, तेरापंथी। जैनमिलन। आहाहा! जैनमिलन तो अपना आत्मा आनन्दस्वरूप, उसमें एकाग्र होना, यह जैनमिलन है। हसमुखभाई!

'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, इसी वचन से समझ ले, जिनप्रवचन का मर्म। जिन सो ही है आत्मा...' भगवान आत्मा वह स्वयं जैनस्वरूप है। 'अन्य सो ही है कर्म।' पुण्य-पाप विकल्पादि सब अन्य है। 'इसी वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' भगवान त्रिलोकनाथ (की) दिव्यध्वनि का सार यह है। समझ में आया? यह कोई पक्ष की बात है नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। ऐसा जिनस्वरूप भगवान शुद्धस्वभाव का पिण्ड, उसमें एकाग्र होना, वह सब जैनमिलन है। बाकी राग में मिलन है, वह जैनमिलन नहीं। आहाहा!

बहुत काम भी... इतना सब बदल गया—इतना सब बदल गया है कि यह बात कान में पड़े तो ऐसे हं... हं... कोई अकेला मनुष्य कर सकता है? ....कोई दिगम्बर होगा, ऐसा लगता है। मूल सामने डाला है। अच्छा दिखता है। पाँच-छह लाईन फोटो के नीचे। सब डाला, उस लड़के का डाला, यह राणा प्रताप का डाला। प्रताप क्या कहलाये? राणा। कहो, उनका डाला। ... परन्तु यहाँ देश का कौन, देश किसका था? यहाँ, राग आत्मा का नहीं, फिर देश कहाँ से आया? ऐई! भगवान आत्मा राग से भिन्न है, तो देश से भिन्न तो है ही। देश तो उसमें है ही नहीं। अपना असंख्य प्रदेश-देश में परदेश तो है नहीं। जेठाभाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु अरूपी है। उसमें इन्द्रियाँ—पाँच इन्द्रियों का विकल्प शुभ-अशुभ तो है ही नहीं। और उसका आश्रय लेनेवाले को भी, उसमें है नहीं तो उसका आश्रय लेनेवाले को इन्द्रिय का विकल्प उत्पन्न होता नहीं। आहाहा! मुनि ने भी भिन्न-भिन्न प्रकार से आत्मा को ढाला है न! आहाहा! नष्ट कर दिया है... **वह शुद्ध आत्मा ज्ञानज्योति द्वारा अन्धकारदशा का नाश करके...** देखो! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य ध्रुव अनादि-अनन्त वस्तु है। ज्ञानज्योति

द्वारा... अपने ज्ञान की एकाग्रता द्वारा... आहाहा! **अन्धकारदशा का नाश करके...** अज्ञान और राग का नाश करके **अत्यन्त प्रकाशमान होता है।** जैसे सूर्य हजार किरणों से खिलता है, चन्द्र सोलह कला से खिलता है; उसी प्रकार भगवान आत्मा अपनी चिदानन्दज्योति का आश्रय लेकर ज्ञान के प्रकाश द्वारा राग का अन्धकार छेद डालता है। आहाहा! **अत्यन्त प्रकाशमान होता है।** और ऐसा। चैतन्यज्योति जलहल ज्योति केवलज्ञान का पिण्ड वह तो है। समझ में आया?

जैसे छोटी पीपर होती है, (उसमें) चौंसठ पहरी चरपराहट भरी पड़ी है। छोटी पीपर इतनी छोटी होती है, छोटी। कद में छोटी, रंग में काली, स्वभाव से चौंसठ—पूर्ण शक्तिवन्त। घोंटते हैं तो आता है, वह कहाँ से आता है? पत्थर में से आता है? चौंसठ पहरी होती है न, चौंसठ पहरी चरपरी। छोटी पीपर में से ही घोंटने से चौंसठ पहरी चरपराई होती है न! कहाँ से आयी? पत्थर में से आयी? पत्थर में से आती हो तो कोयला और कंकड़ घूँट डाले। (वहाँ) कहाँ है अन्दर? यह तो थी अन्दर में। हाँ। चौंसठ क्या कहते हैं? चौंसठ पहरी कहते हैं न? जलहलज्योति... उसी प्रकार भगवान आत्मा सर्वज्ञ जलहल चौंसठ पहरी से भरा है। आहाहा! भगवान आत्मा... चौंसठ अर्थात् चौंसठ पैसा—पूरा-पूरा रुपया—सोलह आना—रुपया एक अखण्ड। इसी प्रकार भगवान आत्मा एक-एक आत्मा चौंसठ अर्थात् पूर्ण ज्ञान-आनन्द से भरा पड़ा है। उसमें एकाग्रता घोंटने से जलहल ज्योति प्रगट होती है। प्राप्त की प्राप्ति है। है, उसमें से आता है। आहाहा! समझ में आया?

दिशा बदलनी पड़े। जेठाभाई! ऐसी दिशा है। आहाहा! मुख बदलना पड़े। वर्तमान समय की प्रगट दशा राग और विकार सन्मुख है। वह संसार है। उस पर्याय में, अन्तर वस्तु ऐसा बेहद—अपरिमित गुण का निधान भगवान, उस ओर झुकने से पर्याय में अत्यन्त प्रकाशमान ज्योति प्रगट होती है। कहो, समझ में आया? आहाहा! यह क्रिया है। अन्धकार दशा का... देखो न! दशा कही न। रागादि सब अन्धकारदशा है। **नाश करके अत्यन्त प्रकाशमान होता है।** सोलह कला से जैसे चन्द्र खिले, हजार किरण से सूर्य खिले। क्षेत्र छोटा—बड़े का प्रश्न यहाँ है नहीं। बड़ा स्वभाव, उसमें अनन्त-अनन्त भरा है। उसका विश्वास लाकर, अन्तर्मुख होकर, एकाग्रता की ध्यान की धारा लगावे

तो उसको चैतन्यप्रकाश प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। मध्यस्थभावना में यह डाला है। 'ज्ञानज्योति द्वारा' में शुद्ध उपयोग डाला है। आहाहा! १६४।

**सन्सार-घोर-सहजादिभि-रेव रौद्रै-**
**र्दुःखादिभिः प्रतिदिनं परितप्यमाने।**
**लोके शमामृतमयीमिह तां हिमानीं,**
**यायादयं मुनिपतिः समताप्रसादात्॥१६४॥**

**श्लोकार्थः—संसार के घोर, सहज इत्यादि रौद्र दुःखादिक से...** आहाहा! संसारी चौरासी के अवतार, चाहे तो सेठिया का अवतार, राजा का अवतार, नरक का अवतार और देव का अवतार। **सहज इत्यादि रौद्र दुःखादिक से प्रतिदिन परितप्त होनेवाले...** आहाहा! सहज है न, सहज। नीचे स्पष्टीकरण। **सहज=साथ में उत्पन्न अर्थात् स्वाभाविक। निरन्तर वर्तता हुआ आकुलतारूपी दुःख तो संसार में स्वाभाविक ही है,...** शुभाशुभ विकल्प आकुलता उत्पन्न होना, वह तो संसार का स्वरूप ही है। घोर आकुलता सहज... सहज अर्थात् निरन्तर होनेवाली दशा। आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दघन को भूलकर वर्तमान संसार में, कोई (भी) स्थान संसार में आकुलता से भरा हुआ स्थान है। समझ में आया? प्रतिकूल हो तो भी आकुलता, अनुकूल हो तो भी आकुलता। आकुलता ही है है वहाँ तो। आहाहा! समझ में आया?

स्वाभाविक इत्यादि रौद्र दुःखादिक... रौद्र... आहाहा! प्रतिदिन—निरन्तर। **प्रतिदिन परितप्त होनेवाले...** सारा संसार विकार अग्नि से जला हुआ है। ऊपर से भले सुन्दर दिखे, पैसावाला दिखे, बँगले में बैठा हो। ऐई! आहाहा! अन्दर में राग और द्वेष, संकल्प और विकल्प की अग्नि से जल रहा है। रौद्र दुःख है। कहो, सेठ! यह तुम्हारे पैसेवाले को दुःख है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा! सब अनुकूलता स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लड़का, पैसा, मकान, कहते हैं, यह सुविधा की ओर लक्ष्य जाता है तो अकेली आकुलता है। आहाहा! दो लड़के अमेरिका में... याद करे। याद करे तो राग है, आकुलता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! इस वर्ष में बहुत कमाई है, बहुत कमाई है। क्या हुआ तुझे? तुझे क्या हुआ? समझ में आया? आकुलता हुई। तुझको आकुलता का लाभ हुआ। समझ में आया? आहाहा!

भूरा भाई के लड़के हैं न, लोग ऐसा कहते हैं कि ओहो... गाँव में महिमा होती है। पोरबन्दर। बीस-बीस लाख की आमदनी एक वर्ष की। ऐई! कौन जाने कहाँ से आता होगा? बीस लाख गत वर्ष थे। अभी भी कहते हैं बीस लाख। खजूर के धन्धे में। लोग गाँव में बात करे कि ऐसा। होवे तो उसमें क्या है? खजूर था न खजूर का गोदाम भरा हुआ। खजूर के गोदाम बहुत। चार भाई हैं। दूसरे सब कहे कि अरे! नुकसान जाता है। खजूर समझे? खोट। गोदाम भरे हुए बहुत। भाव-बाव कुछ ख्याल नहीं आवे। नुकसान जाता है। खोट कहते हैं न? नुकसानी। छोटाभाई शान्तिभाई को कहे, ताला लगा दो गोदाम को, चाबी लाओ मेरे पास, तुम बोलना नहीं, तुम्हारे कुछ करना नहीं है, मैं चाबी लेकर जाता हूँ। उसमें थोड़ा समय हुआ, सरकार का हुकम हुआ। हिन्दुस्तान में खजूर लाना बन्द करो। बाहर से बन्द हुआ। ऐसा यहाँ से खरीद हुआ। सारे हिन्दुस्तान को मिले, इतनी खजूर—इतनी खजूर। बहुत लाखों पैदा किये। कोई कहता था कि बीस लाख हुए। लोगों को ऐसा हो जाये कि आहाहा... क्या है?

यह ८२ का चातुर्मास किया न? जयन्ती ८२वीं उन्होंने मनायी थी न। पच्चीस हजार खर्च किये थे, बाईस-पच्चीस। कहते थे, चालीस हजार खर्च करना था, परन्तु लोग आये नहीं बहुत। पच्चीस हजार खर्च किये। वैशाख शुक्ल दूज। लोगों को ऐसा हो जाये कि आहाहा... यह तो बहुत सुखी। सुखी धूल में भी नहीं। आकुलता का पार नहीं। आहाहा! 'सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुखिया।' राग से भिन्न करके आत्मा का भान करते हैं, वे सुखी हैं। जगत में जितना राग में रहनेवाला, वह सब अज्ञानी महा आकुलता से दुःखी है। आहाहा! **इस लोक में यह मुनिवर समता के प्रसाद से शमामृतमय जो हिम-राशि...** आहाहा! वह 'परितप्य' कहा न (उसके) सामने शमामृतमय—समतारूपी अमृतमय आत्मा हित की राशि। **( बर्फ का ढेर ) उसे प्राप्त करते हैं।** मुनि आकुलता को छोड़कर स्वभाव की दृष्टि करते हैं, समता का ढ़ेर—बर्फ को प्राप्त करते हैं। दूसरा कुछ .... मिलती नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**भाद्र शुक्ल १२, गुरुवार, दिनांक - ०२-९-१९७१**
**श्लोक-१६५-१६८, प्रवचन-११२**

... की बात है न यहाँ। उत्तम क्षमादि दस प्रकार का धर्म चारित्रवन्त को होता है। पहले जानना तो पड़े न वस्तु को कि ऐसा धर्म है (और) धर्म की आराधना कैसे हो सकती है।

**जो चयदि मिट्ठभोज्जं, उवयरणं रायदोससंजणयं।**
**वसदिं ममत्तहेदुं, चायगुणो सो हवे तस्स॥४०१॥**

(-कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

जो मुनि... **मुनि को संसार के भोग से ममत्व का त्याग तो पहले से ही है।** विरक्त व्यक्ति ही मुनिपद लेने का अधिकारी है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन हो, अपने आत्मा का अनुभव किया हो, पश्चात् आसक्ति से भी विरक्त हो, राग-द्वेष आदि की रुचि से तो विरक्त है ही, परन्तु आसक्ति से भी विरक्त हो, वह विरक्त व्यक्ति ही मुनिपद का अधिकारी है। और मुनिपद में विरक्तता है तो संसार के भोग से ममत्व का त्याग तो पहले है ही। संसार अर्थात् द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव संसार है, उसका त्याग तो है अन्दर में। भोग का त्याग है। राग का अनुभव, विषय-भोग का भोगना, उसका तो अन्तर में त्याग है। आनन्द के भोगने में लवलीन, ऐसे सन्तों को भोग का तो त्याग ही है। ममत्व का त्याग है, देह का त्याग है। देह... देह। देह की रुचि तो छूट गयी, परन्तु देह की आसक्ति छूट गई है। समझ में आया?

**जिन वस्तुओं से काम पड़ता है, उसको मुख्यरूप से कहा है** यहाँ। ऐसे तो विरक्त मुनि हैं, दिगम्बर हैं, सन्त हैं, अन्तर वीतरागता प्रगट हुई है, एक राग के कण का भी कर्ता नहीं, रजकण का और राग का। विरक्त है। परन्तु उनको भी **जिन वस्तुओं से काम पड़ता है, उसको मुख्यरूप से कहा है। आहार से काम पड़े तो सरस-निरस का ममत्व नहीं करे।** ओहोहो! 'शरीर की उत्पत्ति देखते... रहना।' आहाहा! शरीर की

उत्पत्ति माता के गर्भ में वीर्य का एक बिन्दु और ऋतु का बिन्दु, ऐसे उत्पन्न हुआ। शरीर, माता के पेट में से ऐसा शरीर परमाणु से पुष्ट होकर बड़ा हुआ। यह शरीर की उत्पत्ति। ऐसे शरीर से मुनि को ममत्व तो पहले से है ही नहीं।

परन्तु **आहार से काम पड़े तो सरस-निरस का ममत्व नहीं करे। धर्मोपकरण पुस्तक, पिच्छी, कमण्डलु जिनसे राग तीव्र बँधे—ऐसे न रखे...** राग तो है ही इतना, जितना उपकरण रखे। शुभराग है, परन्तु तीव्र राग हो ऐसे उपकरण न रखे। **जो गृहस्थजन के काम न आवे ऐसी...** मोरपिच्छी, कमण्डल रखे। आहाहा! मुनिमार्ग तो परमेश्वर का मार्ग है। जंगलवासी, नग्नपना, वर्षाऋतु में वृक्ष के नीचे, गर्मी में पर्वत के ऊपर शिखर के ऊपर, सर्दी में सरोवर—नदी के तट पर। आहाहा! समझ में आया? नदी बहती हो और किनारे बैठे सर्दी के दिन में। गर्मी के दिन में शिखर की टोंच पर गर्मी जहाँ धूप लगे... आहाहा! चातुर्मास में वृक्ष के नीचे। आहाहा! यह तो बड़े शहर और राजा आदि के... वहाँ तो सड़कें-बड़कें बहुत अच्छी हो न।

अभी भी यहाँ है न वह वड़ोदरा मकरपुरा... मकरपुरा। क्या कहलाता है? मकरपरा की... बहुत सेठियों के मकान इतने, स्पष्ट रास्ते जाने-आने के अभी—अभी। हमारे काम पड़ा था न, ६३ के वर्ष की बात है। सवा महीने काम पड़ा था। सेठिया था वहाँ का। उसका बड़ा बाग था। नहीं, वह तो जति का बाग था। सेठिया का बाग... जति उस समय था बड़ा। हमारे गांडाभाई को पहिचानते थे। जति का बड़ा बाग। सड़क-बड़क, बाग उसका कैसा... रास्ता बड़ा। सवा महीने हम रहे थे वहाँ। आते-जाते थे। अफीम का केस चलता था। झूठा केस चलता था।

अभी भी ऐसा रास्ता है। कहा, ओहोहो... मकरपरा कहलाये न? क्या कहलाये? इस ओर... हाँ, वह पहला रास्ता अमुक हो। उसके पहले रास्ता अमुक हो। राजा-महाराजा हो तब सब हो। पुण्यवन्त प्राणी हो, धर्मात्मा को भी अपना निभाव करने में ऐसा संयोग होता है। सड़क-बड़क बराबर तैयार। जंगल में रहे। ओहोहो! वह तो ऐसा बाग वहाँ है। मकान भी है बाग में, हों! कोई आवे-जावे नहीं। वहाँ हमारा निवास था। ६३ की बात है। मुनियों को क्या...? जहाँ पुण्यवन्त प्राणी... पवित्रता जहाँ है और निभने का पुण्य हो तो ऐसा मिले बिना रहे नहीं। पुण्य न हो तो देह छूट जाये। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, पुस्तक, कमण्डल आदि में राग तीव्र हो, ऐसा नहीं। गृहस्थ जन के... **बड़ी वसतिका रहने की जगह से...** ऐसा भी काम पड़े जंगल में। **तो ऐसी जगह न रहे जिससे ममत्व उत्पन्न हो...** आहाहा! धन्य अवतार जिसकी दशा! मुक्ति लेने की झंखना, तैयार। मुक्त... मुक्त दशा, इसका नाम यहाँ त्यागधर्म कहा जाता है। समझ में आया? अकेले सम्यग्दर्शन-ज्ञान से कोई मुक्ति नहीं होगी। चारित्र साथ में आयेगा, तो बाह्य में सबका त्याग होगा, तब उसको मुक्ति की प्राप्ति होगी। तो ऐसी भावना सम्यग्दृष्टि करते हैं। 'अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा...' आता है न? श्रीमद् में आता है। 'कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब...' बाह्य और अभ्यन्तर निर्ग्रन्थ। किसी की जिसमें अपेक्षा नहीं, सबकी उपेक्षा। उपेक्षा कहो, उदासीनता कहो, वीतरागता कहो, पर का त्याग कहो। समझ में आया? ये (बँगले) में रहते हैं, खाते-पीते मुनिपना हो जायेगा—ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐ सेठ!

**मुमुक्षु :** भरत महाराज को तो हो गया?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भरत महाराज को (भी) नहीं हुआ। अन्दर से त्याग हो गया था, नौ कोटि त्याग हुआ तो मुनिपना हुआ। द्रव्यसंग्रह में लिया है, भाई! अल्पकाल था न (तो) ख्याल नहीं आया लोगों को। नौ कोटि त्याग। अरिसाभवन में देखते थे बाल। सफेद बाल आया (तो दिखा)। ओहो! ऐसी शरीर की अवस्था! वृद्धावस्था हुई शरीर की। एक सफेद बाल देखकर वैराग्य हो गया। नौ कोटि त्याग होकर ध्यान में बैठ गये। केवलज्ञान, अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान। छह लाख पूर्व तक चक्रवर्ती के पद का आसक्ति का पाप था, अन्तर्मुहूर्त में चूरा (हो गया)। अन्तर स्वभाव में जहाँ झुक गये, अन्तर में उतर गये, गहरे-गहरे अन्दर में गये, समाप्त हो गया। चार घातिकर्म का नाश हुआ। ऊंडे अर्थात् अन्तर में... अन्तर में... अन्तर में प्रवेश करे। असंख्य प्रदेश में अनन्त गुण—शक्तिरूप स्वभाव में पर्याय को अन्दर में मोड़े। आहाहा! समझ में आया? उसका नाम त्यागधर्म है, लो!

अपने यहाँ १६५ (कलश)। यह आया न? १६५ कलश। १६४ हो गया।

**मुक्तः कदापि न हि याति विभावकायं,**
**तद्धेतुभूत-सुकृतासुकृत-प्रणाशात्।**

**तस्मादहं सुकृत-दुष्कृत-कर्मजालं,**
**मुक्त्वा मुमुक्षुपथमेकमिह व्रजामि ॥१६५ ॥**

आहाहा! यह आलोचना का तीसरा भाग चलता है, अविकृतिकरण। मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव भावना करते हैं, उस द्वारा सत्य का स्वरूप जगत को समझाते हैं।

**श्लोकार्थः—मुक्त जीव विभावसमूह को कदापि प्राप्त नहीं होता...** सिद्ध भगवान—अशरीरी परमात्मा... उसकी दृष्टि में पहले लिया कि ओहोहो! सिद्ध भगवान तो कभी विकल्प और विभाव को तो प्राप्त होते नहीं। समझ में आया? **क्योंकि उसने उसके हेतुभूत सुकृत और दुष्कृत का नाश किया है।** शुभ-अशुभभाव का ही नाश किया है। आहाहा! **इसलिए अब मैं...** मैं भी **सुकृत और दुष्कृतरूपी कर्मजाल को छोड़कर...** शुभ और अशुभ जो विकल्प—राग है, महाव्रत का राग शुभ, अव्रत का भाव अशुभ। यह सुकृत और दुष्कृतरूपी कर्मजाल है। आहाहा! मैं सिद्ध समान हूँ। सिद्ध को पर्याय में विभाव की प्राप्ति नहीं, तो मैं भी शुभाशुभभाव को छोड़कर... आहाहा! **एक मुमुक्षु मार्ग में जाता हूँ...** मोक्ष के अभिलाषी अन्त में जिस मार्ग में गये, अन्तर मार्ग में गये, उस मार्ग में मैं जाता हूँ। समझ में आया?

**( अर्थात् मुमुक्षु जिस मार्ग पर चले, उसी एक मार्ग पर चलता हूँ। )** उसी 'एक' मार्ग पर चलता हूँ। 'एक'। निश्चय एक मार्ग, ऐसा कहते हैं। दो (मार्ग) नहीं वहाँ। आहाहा! सुकृत और दुष्कृत ऐसे शुभाशुभभाव, उसे (छोड़कर), मेरा मुमुक्षु मार्ग का रास्ता था, वह रास्ता मैं अंगीकार करता हूँ। शुभभाव मोक्ष का मार्ग नहीं था। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो 'छोड़कर' कहते हैं। मुनि हैं, छठवें गुणस्थान में विकल्प आया और शास्त्र बनता है, उस भूमिका में बात करते हैं। समझ में आया? ओहो! **इसलिए अब मैं...** आहाहा! मैं जो आत्मा पूर्णानन्द शुद्धस्वरूप, मुमुक्षु जो सुकृत-दुष्कृतमार्ग को छोड़कर एक मुमुक्षुमार्ग (पर) जाते थे, वहाँ मैं जाता हूँ। आहाहा! जिस पंथ पर वे गये, वही पंथ मेरा है, ऐसा कहते हैं। कोई पंथ दूसरा है नहीं। आहाहा! भूतकाल में अपने शुद्धस्वरूप में रमणता करते (हुए), मुक्ति में जाते थे और अभी पंचम काल में दूसरा कोई मार्ग है, व्यवहार से जाते हैं, व्यवहार (मार्ग है)—ऐसे दो (मार्ग) नहीं हैं, ऐसा कहते हैं। जिस मार्ग में अनन्त तीर्थंकर और केवली और मुमुक्षु अनन्त...

अनन्त—बेहद आनन्द और ज्ञान ऐसे स्वभाव में झूलते थे, अन्तर के मार्ग में प्रवेश करते थे, तो मुक्ति की प्राप्ति होती थी। मैं भी उस रास्ते जाता हूँ।

'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ' ऐसा कहते हैं। पंचम काल के साधु का दूसरा पंथ है, चौथे काल के साधु का दूसरा पंथ है, महाविदेह का दूसरा पंथ है और भरतक्षेत्र के मुनि का दूसरा पंथ है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। मूलचन्दभाई! कितने ही ऐसा कहते हैं कि यह तो पंचम काल है, देश-काल प्रमाण होता है। परन्तु देश-काल प्रमाण क्या? जो मार्ग मुनि का महाविदेह में है, जो पंचम काल पहले चौथे काल में था, वही वर्तमान में है। मार्ग कोई दूसरा नहीं। आहाहा! इसलिए सन्धि की है। क्या सन्धि? कि पूर्व के सन्त दुष्कृत और सुकृत को छोड़कर अन्तरपंथ में गये। मैं भी वह छोड़कर मुमुक्षुमार्ग में जाता हूँ। आहाहा! मुमुक्षु जिस मार्ग (पर चले, उस पर) चलता हूँ। मार्ग पर चलता हूँ, ऐसी खबर पड़ती है, ऐसा कहते हैं। जिस मार्ग में गौतम गणधर गये, सन्त गये, उस मार्ग में हम जाते हैं, आहाहा! धन्य अवतार! पंचम काल के मुनि। ९०० वर्ष पहले हुए। भगवान अनन्त आनन्द का नाथ सच्चिदानन्दस्वरूप के पंथ में अन्दर जाते थे पहले, मैं भी उस पंथ में जाता हूँ। १६६ (कलश)।

**प्रपद्येऽहं सदाशुद्ध-मात्मानं बोध-विग्रहम्।**
**भवमूर्तिमिमां त्यक्त्वा पुद्गलस्कन्धबन्धुराम्॥१६६॥**

आहाहा! **श्लोकार्थः**—अरे! **पुद्गलस्कन्धों द्वारा जो अस्थिर है...** यह शरीर। सन्ध्या के रंग जैसे क्षण में बदल जाये, वैसे शरीर का रंग, पोल निकले घड़ीक में। घड़ीक में उल्टी, जीवांत या दर्द, यहाँ ऐसा हो गया, यहाँ सन्धि में पीड़ा—चोट लगे ऐसा होता है। पोपटभाई! ऐसा शरीर है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **पुद्गलस्कन्धों द्वारा जो अस्थिर है ( अर्थात् पुद्गलस्कन्धों के आने-जाने से जो एक-सी नहीं रहती )...** आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

आज गोदिका का समाचार आया है न मुम्बई से। एकदम कुछ हो गया है गोदिका को।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसकी यहाँ बात नहीं। गोदिका की अभी चिन्ताजनक (स्थिति) हो गयी मुम्बई। यह क्या कहा? ब्लडप्रेशर हुआ मुम्बई में। अभी आये थे गोदिका। कल पत्र आया। गोदिका की चिन्ताजनक देह(स्थिति) हो गयी है। ऐसा कल पत्र आया है। रामजीभाई ने पढ़ा। किसका था? चिमनभाई का। गोदिका २५ तारीख को आये मुम्बई और एकदम ब्लडप्रेशर। नीचे उतरता है, ऊपर चढ़ता है। देखो! यह देह। उसका स्वयं का। स्त्री को तो.... एक क्षण में बदल जाये। यह जड़, मिट्टी है, धूल है। आहाहा! एक शरीर में पाँच करोड़, अड़सठ लाख, नब्बे हजार, पाँच सौ चौरासी रोग हैं। सेठी! यह शरीर की मूर्ति मिट्टी है। भगवती आराधना में शिवभूति महाराज कहते हैं कि भगवान आत्मा जहाँ विराजता है, वहाँ शरीर ऐसा है। आत्मा में अनन्त-अनन्त आनन्दादि गुण हैं, तो शरीर में पाँच करोड़, अड़सठ लाख, नब्बे हजार पाँच सौ चौरासी रोग हैं। आहाहा! यह जरा ठीक लगे तब ऐसा मानो कि अपने आहाहा! अरे! धूल भी नहीं। आहाहा! व्याधिमंदिरम्।

अभी दो-तीन व्यक्तियों का ऐसा सुना। बहिन को—कंचनबहिन नेमिदासभाई के घर से, उन्हें क्या कहलाता है? केन्सर, पेट का केन्सर—पेट का केन्सर। अब उसने लिख दिया। उसे हो वह सही। वहाँ तो इसे केन्सर हुआ। नवनीतभाई को व्याधि, वे आ सके नहीं दो पर्यूषण में। अब ठीक है। वहाँ यह और सुना कल गोदिका को। अस्पताल में ले गये हैं। घर? ब्लडप्रेशर। शब्द ऐसा था। मनाही, बिल्कुल बोलना नहीं। ... नहीं चाहिए। आहाहा! यह देह। मिट्टी का पिण्ड।

कहते हैं, यह पुद्गल अस्थिर है। भगवान आनन्दस्वरूप ध्रुव स्थिर है। उसमें कोई आना-जाना नहीं। कोई गुण जाये और कोई गुण आता है, ऐसा है नहीं। अगुरुलघु की व्याख्या करते थे पहले एक। भगत था न, कस्तूर भगत। ऊपर से समझे, कुछ समझे नहीं बात। कांप में थे न कस्तूर भगत। ऐई अमुलखभाई! यह और ऐसी गप्प मारे। यहाँ सुना था एक बार। अगुरुलघु अर्थात् मूँग का ढ़ेर हो और जितने मूँग जाये और आये, ऐसे कितने ही गुण आये और जाये। वांचन नहीं होता और ऊपर से चल निकले। ऐसा कहीं चले? यह तो वीतरागमार्ग है, केवलियों का मार्ग-पंथ है। समझ में आया?

सौ इन्द्र जिसको पूजते थे, ऐसे तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव धर्मराजा

धर्मचक्रवर्ती... यह नमोत्थुणं में आता है न भाई? यहाँ अपने भी आता है, हों! कल वाँचा था, नहीं? प्रतिक्रमण की पुस्तक। कल वह दूसरा देखते थे। हाँ, वह भक्ति। बारह भक्ति आयी न उसमें—उस पुस्तक में। उसमें... ऐसी भक्ति की पुस्तक है, प्रतिक्रमण की दस भक्ति। वह वाँची है पहले। उसमें धर्मचक्रवर्ती, तीर्थंकर तो धर्म के चक्रवर्ती हैं। आहाहा! उनके मुख से निकला हुआ धर्म... कहते हैं, ओहोहो! मेरी चीज़ तो अन्दर स्थिर वज्र के बिम्ब जैसी चीज़ है। यह शरीर अस्थिर, क्षण में राख हो जाये, क्षण में कीड़े पड़े, यह पुद्गल द्वारा अस्थिर है। आहाहा! **ऐसी इस भवमूर्ति...** यह भवमूर्ति शरीर—भव की मूर्ति काया...

कहा था न एक बार? हमारे दामनगर... लाठी... लाठी। एक बाई / लड़की छोटी—छोटी उम्र की। माता... शीतला कहते हैं? क्या कहते हैं? शीतला। दाने-दाने में कीड़े पड़े, कीड़े-जीवांत। छोटी उम्र बेचारी। हमने देखा था। पूरे शरीर में... ऐसे करवट बदले तो कीड़े निकले नीचे, ऐसे करे तो ऐसे कीड़े गद्दे में। कीड़े... कीड़े... यह शरीर। अमृत के कुम्भ जैसा लगे, वह धूल जैसा है। तब ऐसा बोलती थी। विवाह थोड़े समय में (हुआ था)। माँ! ऐसी पीड़ा! ऐसे पाप मैंने इस भव में नहीं किये। ऐसा कहती थी। गद्दे में सोती थी, परन्तु जीवांत पड़ी उसे। दाने-दाने में कीड़े। हो तो भी अन्दर कीड़े। ईयळ नहीं समझते? कीड़े। लट पड़ती है दाने-दाने में। ऐसा शरीर करे... यहाँ... यहाँ सैकड़ों कीड़े निकले। ईयळ समझते हैं? सफेद जीवांत। ऐसे फिरे तो....

**ऐसी इस भवमूर्ति को ( -भव की मूर्तिरूप काया को )...** मैं तो आनन्द की मूर्ति हूँ, मोक्ष की काया हूँ मैं तो। आहाहा! देखो! आयेगा, हों! इस **भवमूर्ति को छोड़कर...** उस ओर का लक्ष्य मैंने छोड़ दिया है। आहाहा! **मैं सदा शुद्ध...** मैं तो आत्मा सदा शुद्ध हूँ। पवित्रता का सरोवर प्रभु आत्मा है। आहाहा! उसमें से तो पवित्रता झरती है। आहाहा! उसमें से (शरीर में से) रोग झरते हैं, भगवान (आत्मा) में से पवित्रता झरे। ऐसा मैं आत्मा। समझ में आया? **ऐसा जो ज्ञानशरीरी आत्मा...** देखो! जिसको ज्ञानशरीर है, वह मैं। यह शरीर-फरीर मुझमें है नहीं। ज्ञानशरीर, समझण का पिण्ड, ज्ञान का सागर ऐसा ज्ञानशरीरी मैं आत्मा हूँ, यह जड़ शरीर है, वह मैं नहीं। उसमें चाहे जो हो। हुआ था न शिखरचन्दजी को। शिखरचन्दजी को हुआ न... सेठ कहते थे। शरीर ऐसा

है। उसमें माँस और हड्डियाँ भरी हैं। परमाणु की एकदम पर्याय पलटे। भगवान अमृत का सागर अन्दर में भिन्न पड़ा है, वह मैं हूँ। आहाहा!

**ज्ञानशरीरी आत्मा उसका आश्रय करता हूँ।** देखो! देखो भाषा। आहाहा! मैं तो ज्ञानशरीरी चैतन्यस्वभाव का आश्रय मैं करता हूँ। शरीर का नहीं, राग का आश्रय नहीं, मुझे पर का आश्रय है ही नहीं। आहाहा! कहो, देव-गुरु-शास्त्र का आश्रय नहीं, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** यह देव-गुरु-शास्त्र .... समझावे तो पूरा न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह आयेगा अभी। वाणी से समझ में नहीं आवे, वह गुरु द्वारा समझ में आता है, ऐसा कहेंगे। इसका अर्थ कि ऐसा समझाने में पहले वे होते हैं। परन्तु उनका लक्ष्य छोड़कर जब स्वयं समझे, तब उसका लक्ष्य किया कहने में आता है। ऐसी बात, गजब बात है।

**मुमुक्षु :** गुरु आवे तब इसे समझ में आये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आये-जाये कहाँ? उन्होंने सुनाया था मार्ग कि तेरा मार्ग तेरे सन्मुख कर, यही मार्ग है। यह सुना और अन्दर में दृष्टि की, भगवान का भान हुआ, तब गुरु ने सुनाया था ऐसा हुआ—ऐसा कहा जाता है। ओहोहो!

**मुमुक्षु :** इस उपाधि में हो ऐसा नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसका लक्ष्य तो एकदम निकाल देने योग्य है। साव अर्थात् समझे? सर्वथा। हमारी काठियावाड़ी भाषा है। ज्ञानशरीरी भगवान... आहाहा!

मैं व्यवहार का—राग का आश्रय करता हूँ, वह भी नहीं। शरीर का आश्रय अर्थात् पर का आश्रय... ऐ सेठ! पर का आश्रय अर्थात् सबका आश्रय। आहाहा! मैं तो ज्ञानशरीरी प्रभु आत्मा का आश्रय करता हूँ, उसका मैं अवलम्बन लेता हूँ, उसको मैं मेरी पर्याय का आधार बनाता हूँ। आहाहा! '**उवओगे उवओगो**' (गाथा १८१, समयसार)। आता है न! 'उपयोग में उपयोग है।' अपनी निर्मल परिणति में आत्मा है। आहाहा! यह संवर अधिकार। उपयोग में उपयोग है। उपयोग में—शुद्ध परिणति में उपयोग—आत्मा है, ऐसा।

**मुमुक्षु :** त्रिकाल आत्मा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। आहाहा! स्व का आश्रय लिया तो शुद्ध परिणति में आत्मा का भान हुआ। समझ में आया? आहाहा! कठिन बातें, भाई! ऐसा मार्ग। जैन में जन्मे तो भी, जैन परमेश्वर वस्तु की जो स्थिति है, ऐसा बताते हैं, वह भी सुनने में मिले नहीं और उल्टा मिले तो कहाँ से रास्ता निकले? आहाहा!

दो बातें की अपने यहाँ। एक ओर पुद्गल स्कन्ध के रजकण आने-जानेवाले अस्थिर शरीर और मुमुक्षु जिस मार्ग पर जाते हैं, वहाँ हम जाते हैं। यह भवमूर्ति, यह (शरीर) भव की मूर्ति, वेदना की मूर्ति। आहाहा! अष्टपाहुड में कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, एक तसु—एक अँगुल में छियानवें रोग। छियानवें... छियानवें—सौ में चार कम। यह अँगुली, इतने में। समझ में आया? आहाहा! आत्मा के एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण, शरीर में एक-एक अंगुल में छियानवें-छियानवें रोग। अरे भगवान! तेरी चीज़ में आश्रय कर, ऐसा कहते हैं। अपनी बात करके दुनिया को कहते हैं, हों! भगवान! तेरी ज्ञानशरीरी चीज है न अन्दर? उसका आश्रय कर, उसका अवलम्बन ले। आहाहा! वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। यह अविकृतिकरण। समझ में आया? एक ज्ञान से आश्रय करना, वह पर्याय हुई, वह अविकृतिकरण है। १६६ (कलश) हुआ। आहाहा!

किसका मानना? यहाँ अरेरे! इकलौता लड़का मर गया, साठ वर्ष की उम्र। २० वर्ष का था, विवाह किया, छह महीने का विवाह और गुजर गया। किसका मान? क्या तेरा लड़का? यह शरीर तेरा नहीं तो लड़का कहाँ से (तेरा) आया? आहाहा! दामनगर। मावजीभाई का लड़का बड़ा, छह महीने में मर गया। ७५ में गुजर गया। ७॥ २५ और २७ = ५२ वर्ष हुए। गृहस्थ। दस लाख रुपये तब साठ वर्ष पहले। चालीस हजार की आमदनी। यह दामनगर सेठ। पुत्र दो। एक बड़ी उम्र का हुआ, बड़ी धूमधाम से विवाह किया। गृहस्थ था न इस ओर एक ...जाननेवाले थे। दो-दो महीने पहले तो बड़ा पाटला ऊँचा और .... फलाना, ढींकणा। यह छह महीने में वैशाख में विवाह, आसोज शुक्ल पूर्णिमा को देह छूट गया। एक ही वर्ष में। ७५। क्या करे वहाँ लाखों रुपये...? ऐ सेठ! आहाहा!

उसकी माँ अच्छे परिवार की थी। लींबड़ी, वजुभाई दीवान। उसकी माँ... होती है। उसकी माँ थी और वह गुजर गया था। लींबड़ी से आयी... क्या उसका कहलाता

है ? काणे सब आये। बड़ा गृहस्थ का घर। लेंघीयुं (रुलानेवाली महिलायें) साथ में लेकर। बड़ा दीवान और लेंघीयुं अर्थात् बाईयाँ आवे। रुलावे। छाती कूटे और रुलावे। ऐसी वे सीखी हुई ही हों। जब गाँव में आयी। दामोदर सेठ कहते, मर गया तब ऐसा नहीं हुआ था, ऐसा गाँव में कोलाहल हो गया। सैकड़ों महिलायें, लेंघीयुं रुलावे। पूरे गाँव के बीच में। नगरसेठ का यह लड़का। छह महीने का विवाह। और वह बाईयाँ रोवे तो छातीफाट। गाँव के लोगों को शोक हो गया कि आहाहा... किसका करे ? वह तो मरण की स्थिति में मरे, मरे और मरे। उसमें क्या है ? आहाहा! किसे रोता है तू ? रोनेवाला क्या रहनेवाला है कि तू उसे मांडकर रोता है ? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अरे! हमारा चैतन्यशरीर वज्र जैसा है। जिसमें एक कण जाये नहीं और एक कण आवे नहीं। उसका मैं तो आश्रय करता हूँ। आहाहा! मिट्टी का पिण्ड, जड़, धूल पड़े, खिरे, झरे। 'जैसा माटी का भांड...' आता है, मिट्टी का बर्तन। 'लागे खोखुं' ऐसा आता है। 'सहजानंदी रे आत्मा' उसमें आता है। 'जैसा माटी का भांड रे...' खोखला अन्दर बजे खोखला। मिट्टी का बर्तन हो और एक धक्का कहीं लगा पत्थर का, दरार पड़ जाये और दो टुकड़े। इसी प्रकार यह है मिट्टी का पिण्ड। आहाहा! अरेरे! यह चीज़ मेरी कहाँ है ? मैं तो, आनन्दघन आत्मा का मैं आश्रय लेता हूँ। उसको (-काया को) मैं दृष्टि में छोड़ता हूँ। है तथापि उसमें है, मुझमें नहीं। आहाहा! समझ में आया ? १६७ (कलश)।

**अनादिममसन्साररोगस्यागदमुत्तमम्।**
**शुभाशुभविनिर्मुक्तशुद्धचैतन्यभावना॥१६७॥**

**श्लोकार्थः—शुभ और अशुभ से रहित...** देखो! यह अविकृतिकरण। शुद्ध उपयोग लिया था न पहला। शुद्ध उपयोग लिया था। शुभभाव और अशुभभाव से रहित **शुद्धचैतन्य की भावना...** मेरी शुद्ध चैतन्यवस्तु की भावना अर्थात् एकाग्रता... आहाहा! शुभ और अशुभ जो परिणाम, उससे रहित मेरी शुद्ध चैतन्यदशा... चैतन्य वस्तु की भावना, वह पर्याय। शुद्ध चैतन्य, वह त्रिकाल; उसकी एकाग्रता, वह मेरी भावना, वह पर्याय। **भावना मेरे अनादि संसाररोग की उत्तम औषधि है।** लो। मेरा भगवान शुद्ध चैतन्यस्वरूप, जिसमें शुभ-अशुभराग का अभाव है, ऐसी चीज़ की एकाग्रतारूप मेरी

भावना... भावना अर्थात् यहाँ कल्पना नहीं, हों! चैतन्य शुद्धभाव की भावना, अर्थात् एकाग्रता। आहाहा! परिणमन शुद्ध... वह शुद्ध परिणमन अर्थात् निश्चय मोक्षमार्ग। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह शुद्धचेतना की भावना है। आहाहा! दिगम्बर मुनियों ने तो मोक्ष का मार्ग खड़ा कर दिया है। यह मार्ग है, भाई! समझ में आया? उससे उल्टा मार्ग, वह संसारमार्ग है। जहाँ रुचि कर, वहाँ जा। आहाहा!

अहो! एक तो अस्ति कहा कि शुद्धचैतन्य, यह मेरी अस्ति। दूसरी शुभाशुभ परिणाम की मुझमें नास्ति, तीसरी शुद्ध चैतन्य में एकाग्रता। क्योंकि शुभाशुभभाव से रहित हुआ तो शुद्धभाव की एकाग्रता अर्थात् शुद्ध परिणति, वह अविकृतिकरण। यह शुद्धपरिणति अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, जो मेरे शुद्धचैतन्य की एकाग्रता, स्वसन्मुख की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र... अनादि संसाररोग... अनादि संसार अर्थात् पुण्य-पाप राग, वह मेरा रोग है (उसकी) उत्तम औषधि है। उस रोग की यह औषधि है। आहाहा! समझ में आया? देखो! (यह) एक ही भावना मेरे रोग मिटाने की औषधि है, दूसरा व्यवहार मार्ग-फार्ग औषधि है, ऐसा है नहीं। मना करते हैं। एक-एक गाथा में इनकार करते हैं, व्यवहार नहीं... व्यवहार नहीं। व्यवहार से तो रहित कहते हैं। शुभभाव से रहित, व्यवहार से तो रहित। आहाहा! जेठाभाई! कुछ था ऐसा तुम्हारे वहाँ? .... कितने वर्ष इसने किये, गर्म पानी पीया और ढींकणा किया। आहाहा! मार्ग की ज्वाजल्य ज्योति सन्तों ने प्रसिद्ध की, जगत के समक्ष प्रसिद्ध की। मार्ग यह है, भाई! मार्ग सरल कर दिया है, अन्तर में समझनेवाले को। समझ में आया?

कितने शब्द रखे हैं! है तो डेढ़ लाईन। शुभाशुभभावरहित, व्यवहार से रहित, शुद्ध चैतन्यरूप वस्तु की भावना, वह निर्मल पर्याय। वह निर्मल पर्याय मेरे अनादि संसाररोग—मिथ्यात्व और रागादि के टालने में उत्तम औषधि है। यह औषध है। समझ में आता है न?

**आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजान,**
**गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान।**

आत्मसिद्धि में आता है। गुजराती है। उत्तम औषधि। अनादि संसाररोग का नाश करने में मेरी चैतन्य की भावना, यह उत्तम औषधि है। मेरे सन्मुख जाकर एकाग्र होना, वह परसन्मुख भाव का नाश करने का उपाय है। समझ में आया? आहाहा! १६८ (कलश)।

**अथ विविधविकल्पं पञ्चसन्सारमूलं,**
**शुभमशुभसुकर्म प्रस्फुटं तद्विदित्वा।**
**भव-मरण-विमुक्तं पञ्च-मुक्ति-प्रदं यं,**
**तमह-मभिनमामि प्रत्यहं भावयामि॥१६८॥**

आहाहा! **श्लोकार्थः—पाँच प्रकार के (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव के परावर्तनरूप) संसार...** क्या कहा वह? कि जितने पुद्गल (परमाणु) हैं जड़, वे सब एक बार सम्बन्ध में आ जाये, उसका नाम द्रव्य—पुद्गलपरावर्तन है। एक। जगत की चीज़ है सब यह शरीरादि, वाणी आदि पुद्गल, एक जीव के साथ एकबार सम्बन्ध में परावर्तन में आ जाये, तब उसको एक द्रव्य—पुद्गलपरावर्तन कहते हैं। यह **संसार का मूल...** है। और क्षेत्रपरावर्तन। आकाश के एक-एक प्रदेश,... प्रदेश से लेकर एक-एक प्रदेश... सारे लोक प्रमाण से अनन्त बार क्षेत्र में उपजना, यह क्षेत्रपरावर्तन। कालपरावर्तन, उत्सर्पिणी का एक समय, पहले में अनन्त बार उपजना, दूसरे में अनन्त बार, तीसरे में अनन्त बार, ऐसे सारे असंख्य समय एक अवसर्पिणी का। अनन्त बार उत्पन्न होना, मरना, वह कालपरावर्तन। भवपरावर्तन—एक-एक गति नरकादि में अनन्त-अनन्त भव करके चार गति अनन्त बार हुई, वह भवपरावर्तन। भावपरावर्तन—असंख्य प्रकार का शुभ और असंख्य प्रकार अशुभ विकार अनन्त बार हुआ, सारे लोक में जितना शुभाशुभ परिणाम, वह अनन्त बार हो जाये, तब उसका नाम भावपरावर्तन।

**पाँच प्रकार के परावर्तन (रूप) संसार का मूल...** आहाहा! **विविध भेदोंवाला शुभाशुभ कर्म है...** इन पाँच प्रकार के परावर्तन का मूल क्या? कि विविध भेदोंवाला शुभाशुभ कर्म। शुभ और अशुभ कर्म। आहाहा! इन पाँच परावर्तन का मूल कारण यह है। अनन्त बार सर्व पुद्गल... आया था न? सर्व पुद्गल ऐंठवत् अथवा स्वप्न समान। 'सकल जगत वह ऐंठवत्...' ऐंठ समझे? ऐंठ। जूँठा। सारा जगत का सर्व पुद्गल अपने पास अनन्त बार आ गया है। वह ऐंठ है। पैसे रूप से, शरीर रूप से, वाणी रूप से, कीर्ति रूप से अनन्त बार आ गया है। ऐ सेठ! बीड़ियों रूप से, तम्बाकू रूप से, यह मोटर रूप से... मोटर को भेजे न यहाँ जाओ। दे आओ इतनी पाँच करोड़ बीड़ियाँ, यहाँ दो करोड़ बीड़ियाँ। मोटरें... ऐसे पुद्गल परमाणु की जितनी संख्या है, (वह) सब

आत्मा के साथ सम्बन्ध में आ जाये, उसका कारण शुभाशुभपरिणाम है। आहाहा! क्षेत्र में अनन्त बार गया, उसका कारण शुभाशुभभाव। काल, भव और भाव। आहाहा!

**ऐसा स्पष्ट जानकर,...** आहाहा! देखो! विकल्प का जाल, आहाहा! भगवान आत्मा निर्विकल्पस्वरूप... यह आगे लेंगे। ऐसा विकल्प—शुभाशुभभाव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव का मूल है। **ऐसा स्पष्ट जानकर...** प्रत्यक्ष जानकर... आहाहा! **जो जन्ममरण रहित है...** 'उसको जानकर', इतना है। कैसा है आत्मा? आत्मा कैसा है? वह शुभाशुभ ऐसा है कि पंच परावर्तन देनेवाला है। आहाहा! भगवान आत्मा उससे रहित है। जन्म-मरणरहित आत्मा है, उसमें जन्म और मरण है नहीं। अनादि परमात्मा निजस्वरूप जन्म और मरण से रहित है।

**और पाँच प्रकार की मुक्ति देनेवाला है...** वह पाँच प्रकार (रूप) परिवर्तन में शुभाशुभ(भाव) मूल कारण थे। शुभाशुभपरिणाम पाँच प्रकार के परावर्तन देने में कारण थे। आहाहा! तब भगवान आत्मा जन्म-मरणरहित और पाँच प्रकार की मुक्ति देनेवाला है। यह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव से रहित होनेवाला भगवान आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? **पाँच प्रकार की मुक्ति देनेवाला है...** वह पाँच प्रकार का परावर्तन(रूप) संसार देनेवाला शुभाशुभभाव है; तो भगवान आत्मा जन्म-मरणरहित है, पाँच प्रकार की मुक्ति (देनेवाला है)। ऐसे **शुद्धात्मा को मैं नमन करता हूँ...** आहाहा! दूसरी भाषा ली। आश्रय करता हूँ, नमन करता हूँ। मेरे परिणाम त्रिकाल ध्रुव की ओर झुकते हैं। जो आत्मा पाँच परावर्तन से मुक्ति देनेवाला है और जन्म-मरणरहित है, ऐसे मेरे **शुद्धात्मा को मैं नमन करता हूँ...** निर्विकल्प पर्याय द्वारा मैं अन्तर ढलता—झुकता हूँ। शुभाशुभ-परिणाम तो पाँच परावर्तन देनेवाला है, मेरा आत्मा ही मुक्ति देनेवाला है, पाँच परावर्तन से छूटने का। आहाहा! यह भटकन, यह पैसे आये, बँगला बनाया, लड़के का विवाह किया, छह महीने में मर गया। आहाहा! होली! पागल हो गया है। आहाहा!

भगवान! तेरी चीज़ ऐसी है अन्दर में कि उसको नमन करने से, उसका आदर करने से, उसकी परिणति करने से, वह आत्मा तो मुक्ति को देनेवाला है, पंच परावर्तन (रूप) संसार से छूटनेवाला है। क्योंकि वह जन्म-मरणरहित है। आहाहा! कितना गाना है आत्मा का! ऐसी बात कभी सुनी नहीं। आहाहा! बाहर के... **नमन करता हूँ और**

**प्रतिदिन भाता हूँ।** भाषा है ? '**प्रत्यहं**' है न। यह न ? '**प्रत्यहं भावयामि**' समय-समय में चैतन्य ध्रुव सन्मुख की मेरी भावना है। उसकी मैं भावना करता हूँ। शुभाशुभराग की भावना शुभभाव हो.. समझ में आया ? अभी तो चलता है न पूजा में, नहीं ? '(दरश) विशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर पद पाय, जय जय नाथ परमगुरु हो।' शुभ की भावना है क्या करने को ? यह तो बीच में आ जाता है समकिती को, ऐसा विकल्प आता है, परन्तु हेय है। भावना है ? भारी कठिन काम ! चलती पद्धति से दूसरी बात समझना। आहाहा ! पण्डितजी !

**मुमुक्षु :** मोक्ष पाने के लिये भावना का मतलब एकाग्रता नहीं होगी ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** राग की भावना करे तो क्या ? परन्तु यह तो समकिती को सहज आ जाता है। मैं तीर्थंकरगोत्र भाव करूँ, ऐसा है नहीं। वह तो राग है। राग की भावना होती है धर्मी को ? परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव को उसकी पर्याय में सहज ऐसा भाव आ जाता है। वह कोई लावे कि मैं बनाऊँ, ऐसा नहीं बन सकता है। आहाहा ! वह तो जीव की जाति ही अनादि की ऐसी है। समझ में आया ? उस जाति में ही चारित्रगुण की पर्याय ऐसे होनेवाली है। उसके लिये बात है। आहाहा ! अभी मिथ्या दृष्टि—मिथ्यात्व है और भावना भावे तीर्थंकरगोत्र की। समझ में आया ? आहाहा !

मैं तो, भगवान मेरा शुद्धचैतन्य पुण्य-पाप के राग से, जन्म-मरण से रहित, ऐसी चीज़ की मैं तो भावना भाता हूँ, ऐसा कहते हैं। मैं तीर्थंकरगोत्र की भावना भाता हूँ, मैं तीर्थंकर हो जाऊँगा, परमगुरु हो जाऊँगा—(ऐसा नहीं)। भारी कठिन, भाई ! यह सब प्रचलित मार्ग से विरुद्ध। पाटनीजी ! यह सब सेठियाओं ने—तुमने ऐसा चलाया। सब लोग गाये न, षोडशकारण भावना भाय, तीर्थंकरगोत्र पदवी पाय, परमगुरु होय। यह परमगुरु ऐसे नहीं होते, भाई ! तुझे खबर नहीं। यह तो राग है। राग की भावना भावे ? वह तो 'मेरा आत्मा शुद्ध है', उसकी भावना भाता हूँ। उतना विकल्प आ जाये तो उसे मैं छोड़ता हूँ, ऐसा कहते हैं। सेठी ! अभी तक क्या किया तुमने सेठिया होकर ? ऐसा मार्ग बनाया,... प्रसन्नभाई ! ऐसे **प्रतिदिन भाता हूँ...** आहाहा ! समय-समय में शुद्ध प्रभु की ओर की मेरी एकाग्रता सदा शुरु है। दिन-दिन सदा शुरु है, पर की भावना मुझे है नहीं, उसका नाम आलोचन अविकृतिकरण कहा जाता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

**भाद्र शुक्ल १३, शुक्रवार, दिनांक - ०३-०९-१९७१**
**श्लोक-१६९-१७०, गाथा-११२ प्रवचन-११३**

दसलक्षणी पर्व का नौवाँ दिन है। अकिंचन (अर्थात्) अपने सिवाय कोई चीज़ मेरी है नहीं। वह बात कहते हैं।

**तिविहेण जो विवज्जदि, चेयणमियरं च सव्वहा संगं।**
**लोयववहारविरदो, णिग्गंथत्तं हवे तस्स॥४०२॥**

(-कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

**जो मुनि लोकव्यवहार से विरक्त होकर...** उनको धन्धा-पानी, वह तो कोई है नहीं, यह तो है ही नहीं (क्योंकि) मुनि हैं, परन्तु संघ और शिष्य के साथ जो सम्बन्ध है, वह लोकव्यवहार है, वह भी छोड़े।

**मुमुक्षु :** गुरु के साथ शिष्य का सम्बन्ध.... ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह सम्बन्ध छोड़े।

**मुमुक्षु :** वह लोकव्यवहार में आता है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह लोकव्यवहार। व्यवहारनय का विषय सब लोकव्यवहार है।

**मुनि, अन्य परिग्रह तो छोड़ता ही है...** भावार्थ में। **परन्तु मुनित्व के योग्य...** एक वस्त्र का टुकड़ा भी, मुनि है उसको नहीं होता। परन्तु वर्तमान में मुनियोग्य **ऐसे चेतन शिष्य, संघ और अचेतन पुस्तक, पिच्छिका, कमण्डलु धर्मोपकरण और आहार, वसतिका...** आहार और रहने का स्थान और **देह—ये अचेतन...** चेतन और अचेतन—दोनों लिये। ऐसे तो मुनि बाह्य से तो परिग्रहरहित हैं। वस्त्र आदि मुनि को रहते नहीं। व्यवहारनय से शिष्य और संघ का सम्बन्ध है और पुस्तक, पिच्छिका, कमण्डल, शास्त्र वह निमित्त... आहार, वसतिका, देह **इनसे भी सर्वथा ममत्व...** छोड़े। **'सव्वहा'** (शब्द) है न ? सर्वथा। मेरी कोई चीज़ बाह्य में है ही नहीं। मुझमें है, वह बाह्य में नहीं, बाह्य में है वह मुझमें नहीं। एक राग का कण, वह भी मेरी चीज़ नहीं।

'रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की, सर्वे माना पुद्गल एक स्वभाव जब।' सम्यग्दृष्टि को, अपने सिवाय कोई चीज़ अपनी है नहीं, ऐसी अनुभव दृष्टि तो है, परन्तु यहाँ तो मुनिपने की बात चलती है। सम्यग्दर्शन में भी अकिंचन (है अर्थात्) राग या परवस्तु मेरे में है ही नहीं। मैं तो निर्ग्रन्थ आत्मस्वरूप हूँ। राग की गाँठ विकल्प से रहित ऐसा मेरा स्वभाव है, तो एक समय का राग, वह भी मेरी चीज़ नहीं। सम्यग्दर्शन में, ऐसा अकिंचनभाव सम्यग्दर्शन जितना होता है। श्रद्धा में कोई एक विकल्पमात्र नहीं। यह रजकण जो शरीर है... बिच्छू के डंक का जो जहर था, उसरूप भी अनन्त बार शरीर का रजकण परिणमा था, वह परमाणु यहाँ आया। आहाहा! समझ में आया? इन्द्रियों का परमाणु बिच्छू के डंकपने, जहरपने अनन्त बार परिणमा था, वही रजकण यहाँ शरीर की अवस्थारूप हुआ है। मेरी चीज़ तो है नहीं। आहाहा!

बिच्छू के डंक के समय क्यों भागते थे? ऐसा। काला नाग जहर (वाला) ऐसा फण उठाकर ऐसे चलता हो... मैंने एक बार देखा था। जामनगर जाते थे, रास्ते में सर्प—बड़ा सर्प था। मैं और जीवणलाल—दोनों। जोरदार था। उसे ऐसे जाना और हमारे ऐसे रास्ते जाना। उसे डर लगा। ऐसा बड़ा सर्प, ऐसे फण उठाये। यह लाल हों, काला नहीं। बड़ा-मोटा था। फिर तो हम खड़े रहे जरा। वह परमाणु जो उसके फण और जहरपने परिणमे हैं, वह परमाणु यहाँ आये हैं। सेठी! वहाँ भागते थे, यहाँ क्यों नहीं भागते? बात ऐसी है नहीं। सेठ!

**मुमुक्षु :** बाहर में ऐसी चीज़ दिखती है....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** क्या दिखता है बाह्य में? ... यह कमण्डल तो पर है, अपना है ही नहीं। लक्ष्य जाता है तो राग है। यह लोकव्यवहार भी छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उत्कृष्ट अकिंचनस्वभाव की बात है न! यह विचारे कि **मैं तो आत्मा ही हूँ...** मैं तो आत्मा हूँ। अकिंचन... रागादि किसी चीज़ में मेरी आसक्ति थी, सम्यग्दर्शन में 'मेरा है' ऐसी दृष्टि छूट गयी, परन्तु आसक्ति थी। मुनि हैं तो आसक्ति भी छोड़ देते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **( अन्य ) मेरा कुछ भी नहीं है...** ओहोहो! मैं अकिंचन हूँ। कोई भी परचीज़ मुझमें नहीं। जगत का रजकण, वह तो जगत की चीज़ अजीव है। वह अजीव मेरी चीज़ कैसे हो? समझ में आया? एक समय की पर्याय भी हमारे

त्रिकाल में नहीं आती है, (तो) वह चीज़ कहाँ से मुझमें आवे? आहाहा! सेठ! यह समकिती के लिये पहले कहा। पहले कहा था....

धर्म की पहली सीढ़ी में, 'एक रजकण और राग मेरी चीज़ नहीं', ऐसी दृष्टि हुए बिना आत्मा का स्वीकार होता नहीं। समझ में आया? आहाहा! चाहे तो शरीरादि सुन्दर दिखे या असुन्दर दिखे, वह कोई चीज़ मेरी नहीं, ऐसा सम्यक् दृष्टि में—अन्तर के स्वभाव के स्वीकार में, पर कोई चीज़ मेरी नहीं, ऐसा अस्वीकार हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? गृहस्थाश्रम में हो, सम्यग्दृष्टि हो, वह वास्तव में गृहस्थाश्रम में है ही नहीं। वह तो अपने आत्मा में है। गृहस्थाश्रम की रागदशा, वह उसमें है नहीं। समझ में आया? आहाहा! व्यापार-धन्धा, छह खण्ड का राज, उसमें कहाँ से आत्मा आया? ऐसा दृष्टि में पहले अकिंचनपना प्रगट होना चाहिए। पश्चात् स्वरूप की स्थिरता में अकिंचनपना (होकर) आसक्ति का राग भी छूट जाता है। पहली (बाह्य) चीज़ में आसक्ति तो सब छोड़ दी है, परन्तु वर्तमान शिष्य, संघ और पिच्छी, कमण्डल, धर्मोपकरण के साथ सम्बन्ध है, वह भी छोड़ देते हैं। ऐसी निर्ग्रन्थदशा, यह कहते हैं, देखो!

**अन्य मेरा कुछ भी नहीं है; मैं अकिंचन हूँ ऐसा निर्ममत्व हो, उसके आकिंचन्यधर्म होता है।** उसको निर्ग्रन्थ... देखो! उसमें लिखा है। '**णिग्गंथत्तं हवे तस्स**' वह मुनि तो निर्ग्रन्थ ही होता है। निर्ग्रन्थ... आत्मा निर्ग्रन्थस्वरूप ही है, परन्तु यह तो पर्याय में निर्ग्रन्थता लाया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन अलौकिक चीज़ है, पश्चात् मुनिपना... आहाहा! अकेला भगवान परमानन्द का नाथ, उसके अतिरिक्त कोई चीज़ मेरी नहीं। आसक्ति का राग भी छूट गया है। बाह्य में नग्नपना और अन्दर में रागरहित निर्ग्रन्थपना— ऐसी दशा में अकिंचनधर्म होता है। नौवाँ। एक रहा एक।

यहाँ पर नियमसार, १६९ कलश है। है? २२२ पृष्ठ पर। अविकृतिकरण नाम का आलोचन का तीसरा भेद चलता है। उसके नौ कलश हैं। सात हो गये है, दो बाकी हैं।

**अर्थ सुललितवाचां सत्यवाचामपीत्थं,**
**न विषयमिदमात्मज्योतिराद्यन्तशून्यम्।**
**तदपि गुरुवचोभिः प्राप्य यः शुद्धदृष्टिः,**
**स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः ॥१६९॥**

**श्लोकार्थः —इस प्रकार आदि-अन्त रहित...** मैं तो आदि-अन्तरहित आत्मज्योति हूँ। आहाहा! यह आलोचना का तीसरा भेद। ऐसा अपने को देखना। आदि-अन्तरहित— जिसकी शुरुआत नहीं, जिसका अन्त नहीं **ऐसी यह आत्मज्योति...** भगवान चैतन्यज्योति ज्ञान का तेज, अकेला ज्ञानस्वभाव का तेज प्रभु, वह **सुललित वाणी का...** विषय नहीं। चाहे जितनी मधुर वाणी कहो, परन्तु उस वाणी का विषय नहीं। आहाहा! दिव्यध्वनि का विषय नहीं। आहाहा! **अथवा सत्य वाणी का भी विषय नहीं है;...** अब वह आया। वीतराग की दिव्यध्वनि, वह सत्य दिव्यध्वनि है, उसका भी विषय नहीं। दिव्यध्वनि से भी जो जाना जाता नहीं, जानने में आता नहीं। आहाहा! यह दूसरे प्रकार से व्याख्या है, दूसरी पद्धति से। **तथापि गुरु के वचनों...** अर्थात् गुरु के वचन ऐसा कहते हैं कि तू तेरी अभेददृष्टि कर। अभेददृष्टि करे, तब वह निमित्त कहने में आता है। भीखाभाई! आहाहा! यह कहने का अर्थ यह है कि गुरु को यह कहना है कि तेरी चीज़ अखण्ड आनन्दकन्द है। समझ में आया? ऐसी 'दृष्टि' शब्द लिया न। **गुरु के वचनों द्वारा उसे प्राप्त करके जो शुद्ध दृष्टिवाला होता है,...** अपनी दृष्टि अन्दर द्रव्य पर पड़ती है, तब 'गुरु ने कहा था' ऐसी बात कहने में आयी है।

**मुमुक्षु :** .... पहले गुरु का वचन आया है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आया, परन्तु वह निषेध के लिये आया है। पण्डितजी! आहाहा! अपना गुरु आत्मा है। तो उस पर दृष्टि करना, वह सुदृष्टिवन्त... वह वाणी का विलास नहीं, गुरु से समझ में नहीं आता, ऐसा कहते हैं। वाणी ली है न गुरु की। गुरु नहीं लिये हैं। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** गुरु के भाव पर वजन अधिक है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भाव, वह कहते हैं—वह बताते हैं कि तेरी चीज़ अखण्ड... बताते हैं, परन्तु (श्रोता) देखता है तो बताते हैं, ऐसा कहा जाता है। नहीं तो अनन्त बार सुना, दिव्यध्वनि अनन्त बार सुनी। तीन लोक के नाथ परमात्मा समवसरण में विराजते हैं, ऐसे समवसरण में अनन्त बार गया। 'भवोभव जिन पूजिया' ऐसा पाठ है। भव में भव 'जिन' की पूजा की। समझ में आया? वह शुभराग था। वह तो परलक्ष्यी चीज़ है। भगवान आत्मा परलक्ष्यी नहीं। आहाहा! वह तो अपने स्वभाव से जानने में आता है,

ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता आत्मा है। सर्वथा अपने ज्ञान से जानने में आता है, ऐसा आत्मा है। कहो, सेठ! आहाहा! वह आयेगा आगे विशेष।

जिसकी दृष्टि में.... **शुद्ध दृष्टिवाला होता है,...** ऐसा कहा न? तो शुद्ध दृष्टि क्या? सम्यग्दर्शन। उस सम्यग्दर्शन का विषय यह ध्रुव, ऐसा गुरु ने कहा था, बस इतनी बात। उसका लक्ष्य छोड़कर, वाणी का लक्ष्य छोड़कर और वाणी से जानने में आया— ख्याल में आया, उसका भी लक्ष्य छोड़कर... प्रसन्नभाई! सेठी! यह प्रसन्नभाई को रस है, हों! वाणी में रस आया है। आहाहा! समझ में आया? इस रस बिना चलेगा। कुछ शब्द था सही कहीं। यह रस फीका है सब। ऐ सेठ! आहाहा!

'**शुद्धात्मतत्त्वनियताचरणानुरूपा**' यह १७२ कलश। आचरण तो शुद्ध आत्मतत्त्व के आश्रित होता है। नीचे है। १७२ नीचे। अपना आचरण द्रव्य के आश्रय से होता है। समझ में आया? इस ओर है पृष्ठ पर नीचे। नियत, **आत्मतत्त्व में नियत आचरण...** आहाहा! भगवान पूर्णानन्दस्वरूप के आश्रय से आचरण होता है। गुरु के आश्रय से, विकल्प के आश्रय से आत्मा का आचरण होता नहीं। बात तो ऐसी है। समझ में आया? गुरु ने कहा, तू तेरी दृष्टि कर, हमारा लक्ष्य छोड़ दे। ऐसा कहा था। हीराभाई! आहाहा! कहते हैं, तथापि वचन का विषय नहीं, ऐसा पहले तो निषेध किया, परन्तु ऐसा आलोचन आये बिना रहता नहीं। जब पाते हैं अन्तरदृष्टि में, तो ऐसा निमित्त था। सुना तो पाया, ऐसा नहीं है। अन्दर पाया तो उसको निमित्त कहा जाता है। ऐसी बात है। पण्डितजी! तो निमित्त कहने में आता है। आहाहा! भगवान! तुम तो निरपेक्ष हो, ऐसा कहते हैं। किसी की अपेक्षा से जानने में आवे, ऐसा तेरा स्वभाव नहीं है। आहाहा!

भान करते हैं, वह अपनी अपेक्षा से, पर से नहीं—ऐसा कहते हैं। सेठ! आहा! पर की अपेक्षा से भान हो, ऐसा आत्मा है ही नहीं। आत्मा ऐसा है नहीं। वह आ गया है नियमसार में, पहले आ गया है। उसमें है। लो, सातवें पृष्ठ पर है। सात पृष्ठ। पृष्ठ ७। दूसरी गाथा है। दूसरी गाथा, अन्तिम दो लाईनें। **शुद्धरत्नत्रयात्मक मार्ग परम निरपेक्ष होने से मोक्ष का उपाय है।** है अन्दर? अँगूठे के पास। शुद्धरत्नत्रयस्वरूप मार्ग... भगवान आत्मा... यहाँ तो ऐसी बात है, दुकान उठाने की बात है। समझ में आया? भगवान आत्मा... **निज परमात्मतत्त्व के सम्यक्-श्रद्धा-ज्ञान-अनुष्ठानरूप**

**शुद्धरत्नत्रयात्मक मार्ग परम निरपेक्ष होने से...** कोई विकल्प, निमित्त आदि की अपेक्षा है ही नहीं। आया है या नहीं? ऐई! कहाँ? वाँचना चाहिए। हाँ, बस यह। शुद्धरत्नत्रयस्वरूप मार्ग, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय, वह मोक्ष का मार्ग, उसको पर की कुछ अपेक्षा है नहीं। ऐसा पर्याय का स्वभाव है। द्रव्य के स्वभाव की बात करना ही क्या! कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई!

अन्तर्मुख देखना है या बहिर्मुख देखने से अन्तर्मुख देखना होगा? बात ऐसी है। आहाहा! यह कहीं पोपाबाई का राज नहीं कि बाहर से मिल जाये। कहते हैं, वाणी का विषय नहीं, भगवान की सच्ची वाणी का विषय नहीं। आहाहा! यह **शुद्ध दृष्टिवाला होता है...** भाई! वजन यहाँ दिया। आहाहा! अन्तर भगवान पूर्णानन्द ध्रुवस्वरूप, वह दृष्टिवाला होता है। शब्द लिया है, **शुद्ध दृष्टिवाला होता है...** आहाहा! **वह परमश्रीरूपी कामिनी का बल्लभ होता है...** उसको मुक्ति अल्पकाल में प्राप्त होती है कि जो मुक्ति उससे दूर न हो। आहाहा! मार्ग और मार्ग का फल दोनों लिये। यहाँ तो, **दृष्टिवाला होता है...** इतना जोर दिया। आहाहा! **शुद्ध दृष्टिवाला होता है, वह...** अन्तर्मुख दृष्टि पूर्णानन्द प्रभु द्रव्य पर गयी है, उस कारण से **वह परमश्रीरूपी कामिनी का बल्लभ होता है...** अनन्त आनन्दरूपी परमश्री लक्ष्मी—मुक्ति उसको कभी छोड़ती नहीं। आहाहा! समझ में आया? **( अर्थात् मुक्तिसुन्दरी का पति होता है। )** १७० कलश।

**जयति सहज-तेजःप्रास्त-रागान्धकारो,**
**मनसि मुनिवराणां गोचरः शुद्धशुद्धः।**
**विषय-सुख-रतानां दुर्लभः सर्वदायं,**
**परम-सुख-समुद्रः शुद्धबोधोऽस्तनिद्रः ॥१७०॥**

निद्रा अस्त हो गयी है। मुनि हैं न! निद्रा एक अल्प किसी समय पौन सेकेण्ड के अन्दर (होती है)। आहाहा! मुनि... मुनि किसको कहें? भाई! दुनिया कुछ का कुछ मान बैठी है। मुनि परमेश्वर पद में आये। कहते हैं, '**अस्तनिद्रः**' हमें तो निद्रा अस्त हो गयी है। आहाहा! ऐसा शुद्धात्मा जयवन्त वर्तता है हमारी दृष्टि में, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? मुनिपना किसको कहें? भाई! दो-दो घण्टे, पाँच-पाँच घण्टे, आठ-आठ घण्टे निद्रा ले और हम मुनि। व्यवहार से भी मुनि नहीं है। समझ में

आया? सेठ! ऐसी कड़क बात है। 'पिछली रयनि में...' आता है न छहढाला में?

**मुमुक्षु :** भू माहिं पिछली रयनि में कछु (शयन) एकासन....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** एकासन। एक आसन में ऐसे रहे या ऐसे रहे। 'पिछली रयनि...' रात्रि के चौथे भाग में पिछली (रात्रि में) थोड़ा... आहाहा! जागृत हुआ है, तीन कषाय का नाश हुआ है। आहाहा! निद्रा मोहनीयकर्म का नाश करने को तो तैयार हो गया है। आहाहा! प्रमाद है, निद्रा प्रमाद है।

**श्लोकार्थः—जिसने सहज तेज से रागरूपी अन्धकार का नाश किया है,...** आहाहा! भगवान आत्मा जिसका सहज तेज... चैतन्यस्वभाव के तेज से... जहाँ तेज सहज में आया, वहाँ अन्धकार कहाँ से रहे? **जिसने—**ऐसा आत्मा, **सहज तेज से...** स्वाभाविक ज्ञानतेज... ज्ञान का तेज... **रागरूपी अन्धकार...** देखो! भाषा। यह व्यवहार का राग है, दया-दान (आदि) राग अन्धकार है। आहाहा! समझ में आया? यह चैतन्य तेज है भगवान (आत्मा और) राग अन्धकार है। सूर्य की किसी किरण में कोयले की किरण आती है? चैतन्यसूर्य भगवान।

क्या कहते हैं तुम्हारे वे? वह निकलता है न तुम्हारे बाहुबलीजी? वह रखा है, बड़ा प्रकाश—लाईट—सर्चलाईट। इस ओर रखी है। बाहुबली के सामने रखी है, दो लाईटें रखी हैं। उसमें से किरण निकलती है लाईट में से। उसी प्रकार भगवान (आत्मा) अनन्त लाईटवाली चीज़ है। वह तो हजार किरण, क्या कहलाये? नम्बर होते हैं न? एक हजार बोल्ट। क्या कहलाता है वह? बोल्ट। हजार बोल्ट, यह अनन्त बोल्ट। चैतन्य सूर्य अनन्त बोल्ट से (भरा) पड़ा है अन्दर। उसके तेज से... आहाहा! ऐसी स्वभाव की चीज़ का स्वीकार जहाँ हुआ, उसके तेज से राग अन्धकार नाश हो गया। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार कहते हैं, राग से राग का नाश नहीं होता। कहते हैं न वे कि शुभराग से अशुभराग टलता है और फिर शुभराग चला जायेगा। कहते हैं। रेच लेते हैं न रेच? क्या कहते हैं? अरण्ड का रेच लेते हैं न, दस्त साफ करने को। जुलाब। जुलाब में ऐरण्डी लेते हैं तो ऐरण्डी भी कभी निकल जायेगी और विष्टा भी निकल जायेगी। ऐसे

शुभभाव है, अशुभ भी निकल जायेगा और शुभ भी निकल जायेगा, ऐसा कहते हैं। ऐसा है नहीं। शुभभाव करने से अशुभ भी निकल जायेगा और फिर शुभ भी निकल जायेगा, ऐसा कहते हैं। ऐसा है नहीं। तेरे दृष्टान्त यहाँ लागू नहीं पड़ते। यहाँ तो सहज तेज भगवान आत्मा... मन मर जायेगा, चैतन्य के ऊपर दृष्टि पड़ने से तो मन मर जाता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा, चैतन्य के तेज से रागरूपी अन्धकार का जिसने नाश किया है भगवान आत्मा ने।

**जो मुनिवरों के मन में वास करता है,...** उत्कृष्ट बात चारित्र की ली है न! सम्यग्दृष्टि के हृदय में आत्मा का वास है। समझ में आया? पहले आ गया है। सम्यग्दृष्टि के गोचर हैं। अन्तर ज्ञान की पर्याय से यह आत्मा गम्य है। यहाँ तो उत्कृष्ट बात लेना है। **मुनिवरों के मन में वास करता है,...** हृदय में वह त्रिकाली आत्मा बसता है। आहाहा! समझ में आया? **जो शुद्ध-शुद्ध है,...** वस्तु से शुद्ध और पर्याय से भी शुद्ध। ऐसा भगवान आत्मा अविकृतिकरण उसको कहा जाता है।

**जो विषयसुख में रत जीवों को सर्वदा दुर्लभ है,...** जिसको शब्द में, रूप में, गन्ध में, रस में, स्पर्श में सुखबुद्धि उत्पन्न होती है, उसको आत्मा दुर्लभ है। समझ में आया? शब्द इज्जत का, कीर्ति का सुनकर हर्ष आता है। उसको कीर्ति में सुखबुद्धि है, मूढ़ है, आहाहा! रूप—शरीर की सुन्दरता, अवयव की कोमलता—अवयव की कोमलता ऐसे देखकर जिसको सुखबुद्धि हो, ऐसे विषय की बुद्धि में—सुखबुद्धि में आत्मा दुर्लभ है। समझ में आया? **विषयसुख में रत...** ऐसा लिया है न? ज्ञानी को आसक्ति आती है, (परन्तु) रत नहीं है। आहाहा! जिसको शब्द, रूप, रस, स्वादिष्ट चीज़—मक्खन, आम का रस ऐसी चीज़ में रस आता है, उसमें सुखबुद्धि होती है, उस विषय के लोलुपी को 'आत्मा सुखवाला है' ऐसी दृष्टि दुर्लभ है। समझ में आया? आहाहा!

**विषयसुख में रत जीवों को...** शब्द, रस, रूप, गन्ध... फूलझाड़ में बैठे हों, सब फूल... फूल... फूल। कितने ही तो और अच्छे ऊँचे फूल, कली सुगन्धित हो, नाक में डाले, फिर घूमने जाये। यह तो सब देखा है। यह रसिकभाई है न राजकोट के। त्रंबकलाल के मकान में। उसके वृक्ष थे वह कलियाँ, वृक्ष की एक-एक कलियाँ बाहर पड़ती। नरभेरामभाई है न जैतपुरवाले। मैं सामने निकला और वे पीछे थे। वह कलियाँ

निकालकर लगावे नाक में। घूमने जाये तो हवा आवे। मुख से हवा आवे, यहाँ उससे हवा आवे। ऐई! ऊँचा फूल होता है न कली। बहुत खिली हुई न हो। गुलाब की, चम्पक, मोगरा। ऐसी बारीक कली हो न, एक यहाँ डाले और एक यहाँ। फिर क्या कहलाये घूमे उसे? चक्कर। रेसकोर्स। घोड़ा घुमावे न, वहाँ घूमे। रेसकोर्स। आहाहा! भगवान कहते हैं, तुझे पाँच इन्द्रिय के किसी भी विषय में रुचि है, उसको भगवान आत्मा दुर्लभ है। क्योंकि वह विषय नहीं फिरा सकता। पर के ऊपर जहाँ रुचि है, वहाँ विषय नहीं फिरा सकता—गुलांट नहीं खा सकता। आहाहा! समझ में आया?

**जो विषयसुख में रत जीवों को सर्वदा दुर्लभ है,...** तीनों काल दुर्लभ है। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा में आनन्द है, उसको छोड़कर कोई भी विषय पाँच इन्द्रिय शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श... स्पर्श... स्पर्श... शरीर मक्खन जैसा देखकर अन्दर रस आवे कि आहा! भारी मजा आया। ऐसा विषयसुख में लोलुपी... रसवाले लोलुपी, हों! आहाहा! उसको सर्वदा भगवान (आत्मा) दुर्लभ है। क्योंकि आनन्द की मूर्ति, अपने स्वभाव में अतीन्द्रिय आनन्द है, उसकी रुचि ऐसे विषय की रुचिवाले को नहीं होती, दुर्लभ है। यहाँ पाँच हजार वेतन, दस हजार वेतन मिले महीने में, कुर्सी, एक हाथ में लकड़ी, सोने का मुठिया। मुठी... मुठी... कोट-पैन्ट पहने व्यवस्थित ऐसे, ओहोहो! हम बहुत सुखी हैं, हम आगे पड़ते हैं, दूसरे की अपेक्षा हम अधिक हो गये। 'आगळ पड़ता' समझे? हमारी काठियावाड़ी भाषा आ गयी। हम सबसे अधिक हो गये हैं। शरीर सुन्दर, कपड़ा ऐसा... लकड़ी, बड़ा टोपा ऊपर हो।

**मुमुक्षु :** बहुरूपिया का रूप बना दिया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बहुरूपिया ही है न! क्या है दूसरा? अपने एक रूप को छोड़कर ऐसा बहुरूप में रत हो गया। पण्डितजी! आहाहा! अपना निजानन्दस्वरूप परमानन्द का नाथ, उसके रूप को न देखकर इन पाँच इन्द्रिय के रूप में रत हो गया, उसको आत्मा दुर्लभ है। आहाहा!

**जो परम सुख का समुद्र है,...** देखो! लिखा है। बाह्य सुख में रत हुआ, परमसुख का समुद्र तो यह रहा। पाँच इन्द्रिय—शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में जिसे सुखबुद्धि

है, उसको यह वस्तु—सुख का समुद्र भगवान दुर्लभ है। आहाहा! क्या टीका परन्तु देखो! कलश कैसे किये हैं मुनिराज ने! ओहोहो!

**मुमुक्षु :** यह तो कलश है महाराज! कलश पर आप कलश चढ़ाते हो....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसमें है, उसका स्पष्टीकरण होता है। है न? आहाहा! परमसुख का समुद्र परमात्मा, अतीन्द्रिय आनन्द से छलाछल—लबालब भरा है। ऐसा आत्मा... इन्द्रियों के विषय में रुचिवन्त को सुखबुद्धि है, ऐसा नहीं,... दृष्टि नहीं स्थिर होगी तो उसे जानने में नहीं आयेगा। आहाहा! परमसुख का समुद्र है और **जो शुद्ध ज्ञान है...** दो बातें लेनी हैं यहाँ। अकेला ज्ञान का तेज प्रभु और अकेला सुख का सागर, ऐसी चीज़ परम शुद्ध है, पर्याय भी शुद्ध हुई।

**तथा जिसने निद्रा का नाश किया है,...** आहाहा! भगवान की जागृति में निद्रा होती नहीं, कहते हैं। कितनी भाषा...! समझ में आया? **निद्रा का नाश किया है,...** ऐसा करके मुनिराज अपनी बात करते हैं। ....निद्रा का नाश कर दिया। अल्प निद्रा हो थोड़ी एक सेकेण्ड के अन्दर—पौन सेकेण्ड। आठ-आठ घण्टे, नौ-नौ घण्टे घोरते हैं। 'घोरते' समझे? हं... खर्राटे चले न खर्राटे। नसकोरा बोले, वह खर्राटे चले। ऐसा दूसरा क्या? ...हो। आठ-आठ घण्टे, नौ-नौ घण्टे। ऐ सेठ! यहाँ तो दूसरी बात है समकिती हो तो... परन्तु यहाँ तो आठ-आठ, नौ-नौ घण्टे, पाँच घण्टे, चार घण्टे निद्रा (हो तो), कहते हैं, आत्मा की जागृति उसे उत्कृष्ट हुई नहीं। समझ में आया? आहाहा! मुनिपने की जिसे जागृति अन्दर में हो, उसको तो निद्रा अल्प-अल्प है (अर्थात्) नहीं जैसी है... नहीं जैसी है। समझ में आया? देखो! यह जागृतदशा का फल। आहाहा!

**मुमुक्षु :** नींद न आवे तो सिर चढ़े।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो अज्ञानी को जिसे अज्ञान और प्रमाद हो उसे। समकिती हो, उसे भी होती है, परन्तु यहाँ तो मुनिपने की उग्र जागृति जहाँ हुई, वहाँ निद्रा लेने की आवश्यकता ही नहीं रही। आहाहा! जागती ज्योति केवलज्ञान लेने की तैयारी हो गयी, उसे निद्रा क्या? आहाहा! ऐसा स्वभाव जाने तो सही (कि) इसका स्वभाव ऐसा है। आहाहा!

**निद्रा का नाश किया है, ऐसा यह ( शुद्ध आत्मा ) जयवन्त है।** आहाहा! क्या कहते हैं? क्या कहते हैं? ऐसा आत्मा जयवन्त है। हमारा आत्मा जयवन्त है। आहाहा! दृष्टि और स्थिरता हमें जगी है तो उसमें यह आत्मा जयवन्त, ऐसा आत्मा हमारे हृदय में जयवन्त वर्तता है। धन्य रे धन्य मुनिराज! देखो! अपनी दशा वर्णन की है, हों! **जयवन्त है।** आहाहा! जागती ज्योति ऐसी की ऐसी हमारे में विराजमान है। निद्रा, निद्रा का नाश कर दिया। वह आता है न नियमसार में। आगे आयेगा। मुनि को जरा राग होता है, (मुनि और) केवली में इतना अन्तर है, परन्तु निश्चय से देखो तो (मुनि) और भगवान में कोई अन्तर है नहीं, राग है नहीं। (अन्तर) मानते हैं, वे जड़ हैं। केवली और मुनि में अन्तर माने, वे जड़ हैं। ऐसा कलश है। केवली और मुनि में अन्तर मानते हैं, वे जड़ हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसा लिया है एक जगह।

**मुमुक्षु :** भावलिंगी की बात है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भावलिंगी की बात नहीं। मूल तो भाव है ही नहीं। बाह्य का क्रियाकाण्ड (करे, वह) साधु नहीं, वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसको (साधु) मानते नहीं। आहाहा! भगवान! तेरा मार्ग अलग प्रकार का है, भाई! यहाँ तो अधमण का पोटला रखे, पात्र का पोटला रखे, रंग-रोगन का ढ़ेर रखे, रुपया रखे और अपने नाम के रखे लाख-दो लाख, पाँच लाख और ऐसे साधु (नाम धरावे)। कुकर्म करते हैं, प्रभु! तुझे नुकसान होगा भाई! तेरे आत्मा को नुकसान होता है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा यह जयवन्त है। ऐसा कहते क्या? कि हमारा आत्मा—हम हमारे सुखसमुद्र में गये (तो) पाँच इन्द्रिय के विषय की बुद्धि नाश हो गयी है और निद्रा भी हमको नाश हो गयी है। आहाहा! ऐसी वाणी दिगम्बर सन्तों के सिवाय कहाँ हो? जागृतदशा हुई नहीं, संयमदशा, स्थिरता, निर्विकल्पता हुई नहीं उसको यह आवे कहाँ से? समझ में आया? आहाहा! यह कोई पक्ष नहीं, वस्तु की स्थिति ऐसी है। समझ में आया? यह १११ गाथा हुई। आलोचना की अन्तिम गाथा ११२।

**मदमाणमायलोहविवज्जियभावो दु भावसुद्धि त्ति।**
**परि-कहियं भव्वाणं लोयालोय-प्पदरिसीहिं॥११२॥**

**अर्हंत लोकालोक दृष्टा का कथन है भव्य को—**
**है भाव-शुद्धि मान, माया, लोभ, मद बिन भाव जो॥११२॥**

अर्हंत—लोकालोक के दृष्टा का यह कथन है। भव्य के लिये यह कथन है। आहाहा!

**टीका : यह, भावशुद्धिनामक परम-आलोचना के स्वरूप के प्रतिपादन द्वारा शुद्ध निश्चय-आलोचना अधिकार के उपसंहार का कथन है।** चार बोल आये थे न पहली गाथा में? आलुंछन, आलोचना, अविकृतिकरण, भावशुद्धि—चार। तीन हो गये, चौथा है। भावशुद्धि किसे होती है? कि जिसे मद नहीं। मद नहीं, उसे भावशुद्धि होती है। मद की व्याख्या—**तीव्र चारित्रमोह के उदय के कारण पुरुषवेद नामक नोकषाय का विलास...** मुनि है न, तो मुनि (की भूमिका) से बात की है। समझ में आया? स्त्री है, जिसको स्त्रीवेद हो, उसको तो मुनिपना होता नहीं। समझ में आया? जिसका शरीर स्त्री का हो, उसको तो मुनिपना तीन काल में होता नहीं।

जिसका शरीर पुरुष का हो, तो कहते हैं कि अन्दर में किसी को स्त्री का वेद होता है और किसी को पुरुष का... यहाँ पुरुष का लिया है। **तीव्र चारित्रमोह के उदय के कारण पुरुषवेद नामक नोकषाय का विलास...** विषय की वासना का जो विलास, **वह मद है। यहाँ 'मद' शब्द का अर्थ 'मदन' अर्थात् कामपरिणाम है।** यहाँ मद अर्थात् अभिमान नहीं लेना। मद अर्थात् कामपरिणाम लेना। यह जिसको नहीं है। समझ में आया? उसकी भावशुद्धि है। मद शब्द का अर्थ मदन—कामपरिणाम, यह जिसको न हो। एक बात।

दूसरी। **(१) चतुर वचन-रचनावाले वैदर्भकवित्व के कारण,... एक प्रकार की साहित्यप्रसिद्ध सुन्दर काव्यरचना...** ऐसे काव्य बनावे कि लाखों लोग ऐसे आहा... डोल उठे। ऐसी कवित्वशक्ति और उस कारण से **आदेयनामकर्म का उदय होने पर...** कवित्वशक्ति है और आदेयनामकर्म का उदय है, नामकर्म का। **समस्त जनों द्वारा पूजनीयता से,...** ऐसे लोग आहा... आहा...! वाह रे वाह कवि! जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि। एक बार यहाँ बोले थे ९२ में। साठ वर्ष का मनाया था न वह नानालाल कवि का। तब यह चारित्रविजय बोले थे, 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि।' यह

कहते हैं, ऐसी कवि की चतुराई का मान, वह अभिमान है। आहाहा! अन्दर में आ जाये कि मैं बड़ा हूँ, हों! लाखों मनुष्य... ओहो! मेरी कविता की सुन्दरता में मुग्ध है। मैं भी महा उत्कृष्ट हूँ। राजा-महाराजा बैठा हो, वे भी प्रसन्न हो जाये कवित्व... है।

एक बार सीकर गये थे, उस रात्रि में रखा था। क्या कहलाता है? रिकॉर्डिंग। एक बाई की आवाज थी। परन्तु बहुत मीठी-बारीक। हिन्दी भाषा में थी। सीकर... सीकर, जयपुर के पास। सीकर .... रात्रि में रखा। बहुत बारीक ऐसा कोई कण्ठ। अभी अपने वहाँ जयपुर... गये थे न, क्या कहलाता है? आदर्शनगर। छोकरी—लड़की नहीं थी पन्द्रह-सोलह वर्ष की? बोली थी न। देखो तो ऐसा कण्ठ... ऐसा कण्ठ। बोले तो सुनने में ऐसे स्तब्ध हो जाए। पन्द्रह-सोलह वर्ष की थी। आदर्शनगर में गये थे। सेठ थे? वह लड़की गायन बोली थी। ऐसी माँ... ऐसा सुनते हुए लोग दस-दस, पचास-पचास हजार लोग हों ऐसे... लोग कहे, उसमें से अन्दर अहंकार आहा... मैं कुछ हूँ। यह अभिमान मिथ्यात्व है। कोई नहीं कहता था? उस बाई का नहीं कण्ठ? सरोजनी नायडू। वह बात करते हों कोई, हमने सुना हो ऊपर से। .... उसका कण्ठ ऐसा ऐसी टोकरी बजे, टोकरी। टोकरी समझते हैं? घण्टी। वह महिला थी कोई सरोजनी नायडू। परन्तु उसका कण्ठ ऐसा...

यह **वैदर्भकवित्व के कारण, आदेयनामकर्म का उदय होने पर...** वापस वह आदेयकर्म का उदय जोड़ा, ऐसा कहते हैं। तब उसे आकर्षण होता है। आहाहा! नहीं तो... **समस्त जनों द्वारा पूजनीयता से,...** समझ में आया? उसमें मान आ गया। ऐसी चीज़ हो तो भी मानरहित है। अरे! मेरे स्वरूप का मान तो मैं करूँ। दुनिया को क्या खबर है? दुनिया मान दे, अभिनन्दन दे, उसमें क्या मान आया? समझ में आया? ऐसे मानरहित हो, उसको भावशुद्धि होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? गजब की मिठास। लोग झेले तो ऐसा हो जाये अन्दर, आहाहा! एक बोल बोले, झेले। आहाहा! प्रसन्न हो जाये। इस पूजनीयता से मान होता है। यह मान जो छोड़ देते हैं, ऐसा कहते हैं। मूल तो बात है, .... बताना है न! इन चारों भावों से रहित शुद्धभाव, वही भावशुद्धि। आगे कहेंगे। ऐसे भाव से रहित आत्मा का भाव, उसको शुद्ध होता है। ऐसा भाव हो, उसका तो अशुद्धभाव है। समझ में आया? आहाहा! ओहोहो! नियमसार गजब काम!

और, **माता-पिता सम्बन्धी कुल-जाति की विशुद्धि से,...** माता की जाति और पिता का कुल। आड़े-टेढ़े शब्द रखे हैं। नहीं तो माता की जाति है और पिता का कुल है। उस सम्बन्धी विशुद्धि.... महारानी जैसी माता हो, बड़े परिवार की हो, अरबपति की लड़की हो। मेरी माता का मैं पुत्र हूँ। यह अभिमान। मेरी माँ ऐसी थी। समझ में आया? माँ कहाँ तेरी है? माता तेरी नहीं है, आत्मा तो... वह माता का जाति संज्ञा करके अभिमान (करना कि) किसकी लड़की का? मैं दीवान की लड़की का बेटा हूँ। ऐसी बात आवे न। आहाहा! दीवान का लड़का हूँ, मेरी माता ऐसी थी। अभिमान है, कहते हैं। ऐसे अभिमान रहित है, उसको भावशुद्धि होती है—ऐसा कहते हैं। हम तो भगवान के कुल के हैं, परम्परा का कुल है हमारा। वह (बाह्य) कुल-कुल हमारा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

'अे अम कुळवट रीत...' अनन्त तीर्थंकर केवलज्ञान के मार्ग में गये और पूर्ण प्राप्त किया, उनके कुल के हम हैं, माता-पिता के कुल के तो हम हैं नहीं। आहाहा! हिम्मतभाई! पिता... पिता का कुल बहुत ऊँचा हो, स्वयं भले तेजहीन हो। पिता का कुल बड़ा ऊँचा है, बड़ा अरबोंपति, सुन्दर शरीर, राजकुमार... समझ में आया? उसके हम पुत्र हैं। ऐसा अभिमान है, उसको भावशुद्धि नहीं होती। मुनि जो होते हैं, राजकुमार मुनि हो, चक्रवर्ती मुनि हो, चक्रवर्ती का लड़का... आता है न वह, क्या नाम? १०८। अर्ककीर्ति नहीं। रविकीर्ति आदि १०८ राजकुमार मणिरत्न के पुतले। गेंद से खेलते थे। जहाँ वैराग्य हो गया, भगवान के पास जाकर साधु हो गये। मणिरत्न के पुतले जैसा शरीर। अरे! यह हम नहीं। हम तो आनन्द के धाम चैतन्य निर्लेप, वह चीज़ हम हैं। यह चीज़ कहाँ हमारे में है? आहाहा! ऐसे मान से रहित, उसका नाम भावशुद्धि कहा जाता है। माया की बात.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**भाद्र शुक्ल १४, शनिवार, दिनांक - ०४-०९-१९७१**
**गाथा-११२, श्लोक-१७१-१७२ प्रवचन-११४**

आज दसलक्षणी पर्व का दसवाँ दिन है। स्वामी कार्तिक लगभग २२०० वर्ष पहले हो गये, ऐसा इतिहास में है। उनकी यह कृति है 'स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा।' इस प्रकार के धर्म। वे बालब्रह्मचारी थे। आज ब्रह्मचर्य का दिन है न, उन्होंने यह दस प्रकार के धर्म (के श्लोक) बनाये, उसमें आज दसवें बोल (द्वारा) ब्रह्मचर्यधर्म को कहते हैं। ब्रह्म अर्थात् आत्मा, अपना आत्मा ब्रह्मानन्दस्वरूप में चरना, रमना, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। समझ में आया? स्वामी कार्तिक ने पाँच बालब्रह्मचारी तीर्थंकरों को शास्त्र में याद किये हैं। पाँच बालब्रह्मचारी तीर्थंकर हैं न, उनको याद करके वन्दन किया है। कहते हैं, ब्रह्म अर्थात् आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप—रूप, उसकी दृष्टि करके... उसमें दृष्टि करना, वह तो सम्यग्दर्शन है। ब्रह्मानन्द भगवान आत्मा पूर्ण निर्विकल्प आनन्द का धाम परमात्मस्वरूप, उसकी दृष्टि, अनुभव करना, वह तो सम्यग्दर्शन है। उसके उपरान्त ब्रह्म अर्थात् आत्मा में उग्रता, पुरुषार्थ से स्थिर / रमना, जमना, उसका नाम ब्रह्मचर्य कहा जाता है।

**जो परिहरेदि संगं, महिलाणं णेव पस्सदे रूवं।**
**कामकहादिणियत्तो, णवहा बंभं हवे तस्स॥४०३॥**

(-कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

**श्लोकार्थः—जो मुनि, स्त्रियों की संगति नहीं करता है...** क्योंकि विषय में प्रधान मन में स्त्री का विकल्प उत्पन्न होना, यह पहले... अन्दर है अर्थ में। **परद्रव्यों में आत्मा लीन हो, उनमें स्त्री में लीन होना प्रधान है।** स्वद्रव्य में लीन होना, वह ब्रह्मचर्य है और परद्रव्य में, रागादि में लीन हो, वह अब्रह्मचर्य है। उसमें भी स्त्री प्रधान है। **क्योंकि काम, मन में उत्पन्न होता है; इसलिए यह अन्य कषायों से भी...** स्त्री की विषयवासना **प्रधान है और इस काम का आलम्बन स्त्री है; अतः इसका संसर्ग छोड़ने पर अपने**

**स्वरूप में लीन होता है।** अपना संसर्ग करता है, ऐसा। अपना आनन्द—पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द की कली अन्तर भगवान आत्मा है। उसकी एकाग्रता, वह ब्रह्मचर्य का खिलना है। शान्ति और आनन्द की खिलावट अन्दर होती है, उसका नाम दसवाँ (धर्म) ब्रह्मचर्य कहा जाता है।

**इसलिए स्त्री की संगति करना, रूप निरखना...** अपना संसर्ग करते (ही) स्त्री का संसर्ग छूट जाता है, अपना आनन्दरूप निरखते (ही) पर का रूप निरखना छूट जाता है। आहाहा! आज बराबर ब्रह्मचर्य का आया है, देखो! स्वामी (कार्तिक) याद आये, पंच बालब्रह्मचारी तीर्थंकर याद आये और इस अधिकार में ब्रह्मचर्य आयेगा नियमसार में। नियमसार में पहले वह आ गया। अभी अधिकार चलता है न, उसमें (वह है)। ओहोहो! **कथा करना...** स्त्री की कथा करना, वह छोड़ना और आत्मा की कथा करना। आनन्दस्वरूप है, उस ओर के विकल्प से अन्तर में एकाग्रता होती है। **स्मरण करना...** स्त्री को याद करना कि ऐसी थी, ऐसी थी (वह) छोड़ना (और) आनन्दमूर्ति आत्मा का स्मरण करना। **उसके ब्रह्मचर्य होता है।** उसको ब्रह्मचर्य कहने में आता है। ऐसे अठारह हजार भेद ब्रह्मचर्य के लिये हैं।

**'णव विह बंभं हवे तस्स णव' 'णव विह'** मन-वचन-काया, कृत-कारित-अनुमोदन से ब्रह्मचर्य करता है। मन-वचन-काया, कृत-कारित-अनुमोदन से पर को छोड़ देता है। अपना आनन्दस्वरूप भगवान... देखो न! अन्तिम दिन ब्रह्मचर्य है। उसके—शील के अठारह हजार भेद हैं। शील कहो या ब्रह्मचर्य कहो। आहाहा! अपना अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु, उसकी सन्मुखता छोड़कर राग में लीनता—विकल्प में लीनता हो, वह अब्रह्मचर्य है। स्वद्रव्य में लीनता, यह ब्रह्मचर्य और परद्रव्य में लीनता, यह अब्रह्मचर्य। आहाहा! समझ में आया? पीछे विशेष बात की है। उस मुनि को ब्रह्मचर्य धर्म होता है। मुनि की प्रधानता है न! सम्यग्दृष्टि भी अपनी योग्यता प्रमाण से अपने स्वभाव की दृष्टिपूर्वक अन्तर में ब्रह्म अर्थात् आनन्द में एकाग्र होता है, उस प्रमाण में उसको ब्रह्मचर्यधर्म कहने में आता है। मुनि तो धन्य अवतार! जिसकी दशा ब्रह्मानन्द में लिप्त हुई है अन्दर में, एकाकार हो गया है। अपने आनन्द के अतिरिक्त कोई चीज़ (सुखरूप) भासित नहीं होती। आहाहा! यह दसवाँ धर्म हुआ।

अपने चलते अधिकार में भी वही आता है। देखो! मान। मान है न! मान का त्याग करना, वह भावविशुद्धि है, ऐसा बताना है। आहाहा! किसका मान? हमारी माता तो उत्तम कुल की थी, हमारे पिता उत्तम कुल के हैं, उसमें हम जन्मे हैं। अरे! पिता क्या और माता क्या? जन्म क्या और मरण क्या? आत्मा में तो यह है ही नहीं। माता और पिता की विशुद्धि—उज्ज्वलता। हमारी माता महा आठ-आठ पीढ़ी से उज्ज्वलता की जाति में थी, उनके हम पुत्र हैं। उसका अहंकार—मान है, वह छोड़ना और अपनी भावशुद्धि—चैतन्य भगवान निर्मलानन्द की शुद्धि प्रगट पर्याय में करना, वह आलोचना का चौथा बोल भावविशुद्धि कहने में आता है। आहाहा! पीछे लिया।

**प्रधान ब्रह्मचर्यव्रत द्वारा...** मान की बात करते हैं। ब्रह्मचर्य शरीर से-मन-वचन से इतना पले कि **उपार्जित लक्षकोटि सुभट...** लाख-करोड़ अथवा कोटि अर्थात् समूह भी होता है। लाख समूह सुभट **समान निरुपम बल से,...** शरीर से-मन-वचन से ब्रह्मचर्य पालने से अपने में निरुपम बल—सामर्थ्य उत्पन्न होता है। उसका अभिमान करना, यह भाव-अविशुद्धि है। समझ में आाय? शरीर का बल तो जड़ बल है। समझ में आया? उसका मान छोड़ना। **लक्षकोटि सुभट समान...** शरीर में, लो। लाखों मनुष्य सामने आवे तो भी ब्रह्मचारी ब्रह्म के तेज के बल से हार सके नहीं, दूसरों को हरा दे, ऐसी बल—शक्ति हो, तो भी उसका अभिमान नहीं करना। यह तो जड़ की बात है। समझ में आया?

चौथा बोल। **दानादि शुभकर्म द्वारा...** दान, पूजा, भक्ति, नामस्मरण आदि शुभकर्म द्वारा **उपार्जित सम्पत्ति की वृद्धि...** ऐसी पुण्य प्रकृति बँधी हो शुभभाव से कि जिसके उदय में सम्पत्ति की वृद्धि हो, करोड़ों-अरबों रुपये एक-एक महीने में वृद्धि हो पूर्व के कर्म के कारण से, उसका मान नहीं करना। वह तो पूर्व का पुण्य था तो मिलती है। देखो! **दानादि शुभकर्म द्वारा उपार्जित सम्पत्ति की वृद्धि...** लक्ष्मी वृद्धि हो करोड़ों-अरबों, अरबों के अरबों... समझ में आया? खर्व, निखर्व, महापद्म, शंकु, जलधी,... मध्य और पारध।

अभी अरब तक चलता है। हमारे समय तो शाला में पारध तक चलता था। सौ करोड़ का अरब, सो अरब का खर्व—ऐसे चलता था। खर्व, निखर्व, सो खर्व का

निखर्व। उस समय चलता था ६० वर्ष पहले उमराला में। उपाश्रय के सामने है न पुरानी शाला। वहाँ अभी, क्या कहलाता है? झाड़—वनस्पति। सब्जी... सब्जी। सब्जी बेचते हैं। सब्जी मार्केट है वहाँ शाला हो गयी, उपाश्रय के सामने। खर्व, निखर्व, शंकु, जलधी,... मध्य और पारध—इतनी संख्या। लक्ष्मी बढ़ती ही जाये। अरब और खर्व, खर्व में से निखर्व, निखर्व में से शंकु ऐसे बढ़ती जाये। पूर्व के पुण्य के कारण की बात है। समझ में आया? उसका अभिमान नहीं करना कि हम बराबर ध्यान रखते हैं, व्यवस्थित करते हैं तो हमें लक्ष्मी मिलती है। ऐसा अभिमान नहीं करना। समझ में आया?

दानादि किया हो... ऐ पोपटभाई! यह दानादि किया हो, उसका फल हो तुम्हारे साला को, ऐसा कहते हैं। कोई पूर्व में शुभभाव किया होगा। समझ में आया? अरबों रुपये हैं, इनके साले के पास। गोवा... गोवा। शान्तिलाल खुशालदास। पोपटभाई का साला है। बहुत पैसा है। दो अरब चालीस करोड़। दो सौ चालीस करोड़। ऐ सेठ! तुमको करोड़पति कहते हैं, दोनों भाईयों को। हो वह सही। लोग तो पचास-साठ लाख हो तो करोड़ कहे। सेठ! कहनेवाले कहे उसमें क्या है? उसको ख्याल होगा अन्दर में कि मेरे पास इतना है। चालीस-पचास लाख... लोग करोड़ कहते हैं। कहे, समझे और माने। परन्तु यह तो कितना पैसा उसके पास? दो अरब चालीस करोड़। बनिया दशाश्रीमाली। वह तो पूर्व का कोई शुभभाव हो, उसका कर्म बँधा हो तो उसमें लक्ष्मी मिले। जहाँ पुण्य फिरेगा तो अन्धकार हो जायेगा। या तो स्वयं बैठा हो और (लक्ष्मी) चली जाये और (लक्ष्मी) हो और स्वयं चला जाये। दो में से एक तो होगा या नहीं? मूलचन्दभाई! मान नहीं करना। प्रसन्नभाई! **सम्पत्ति की वृद्धि के विलास से,...** अरबों-अरबों महीने में बढ़े। ओहोहो! क्या है? चक्रवर्ती की सम्पदा भी मिली, उसमें है क्या? अहमिन्द्र हुआ नौवें ग्रैवेयक मिथ्यादृष्टि हो, पश्चात् निकलकर मनुष्य हुआ, पश्चात् तिर्यंच होकर निगोद में चला गया। आहाहा! समझ में आया?

पाँचवाँ बोल। **बुद्धि...** बुद्धि का अभिमान नहीं करना। बहुत बुद्धि हो संसार में इतनी... **तप...** का अभिमान नहीं करना। मैं इतना तप करता हूँ, महीने, दो महीने, चार महीने के अपवास... **विक्रिया...** विक्रियालब्धि प्रगटी हो एक शरीर में से लाखों करने की। वह कोई आत्मा को लाभ करने की चीज़ है नहीं। उसका अभिमान नहीं करना।

**औषध...** शरीर की एक-एक चीज़ औषध हो जाये, ऐसी लब्धि हो जाये। कोढ़ हो तो यहाँ थूंक लगावे तो कोढ़ मिट जाये। कोढ़ समझे? गलित कोढ़ होता है, ऐसे सफेद होता है। ऐसी लब्धि प्रगटी हो कि उसका थूंक या पेशाब (लगावे तो) मिट जाये। वह तो पूर्व के पुण्य की लब्धि है, उसमें कोई अभिमान करना (नहीं)। मिथ्यादृष्टि अभिमान करते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

विष्णुकुमार, देखो न! अपनी लब्धि थी, खबर भी नहीं थी। सात सौ मुनि जलाये न हस्तिनापुर में। सात सौ मुनि। आहाहा! मुनि को खबर भी नहीं थी कि मुझमें लब्धि है। क्षुल्लक आये (और कहा) महाराज! सात सौ मुनियों को जलाने की तैयारी हो गयी है। आसपास लकड़ी, अग्नि... रक्षा करो नाथ! क्या करें? मुझमें तो कुछ नहीं। अरे महाराज! आपको लब्धि है, विक्रियालब्धि हुई है। विक्रियालब्धि की खबर नहीं। आत्मा का साधन करने निकले, उसमें विक्रियालब्धि हुई, उसका काम क्या है? आहाहा! लम्बा हाथ करो महाराज! जरा। लम्बा हाथ किया, लाख योजन चला गया हाथ। ओहो! लब्धि हुई है। जाओ, रक्षण करो। उसका अभिमान नहीं था। समझ में आया? अरे! यह मुनि हैं (उन्हें) मुनिपना छोड़कर करना (ऐसा) कर्तव्य तो है नहीं, परन्तु मुझे ऐसा वात्सल्यभाव आ गया है। ओहोहो! मुनि जलते हैं। गये, (जमीन) माँगी और समाधान हो गया। सबको बचाया। आयुष्य था। मन्त्री भी जैनधर्मी हो गया। परन्तु उसका अभिमान नहीं। समझ में आया? वह भावशुद्धि कहने में आता है। आलोचना का चौथा भाग भावशुद्धि।

औषध, **रस...** रस। शरीर का रस। जितना रस, इतनी औषधी हो गयी हो। पसीना कोई पोंछे, रोग मिट जाये। उसका अभिमान नहीं करना, वह तो परचीज़ है। अपना आनन्दरस बढ़ जाये, केवलज्ञान हो जाये, वह अपनी चीज़ है। बाह्य की चीज़ में क्या हुआ? आहाहा! ऐसी चीज़ है। आहाहा! पहले-वहले भाई! हम गये न जैतपुर। भाई थे वहाँ। क्या नाम? शामळजीभाई। शामळजीभाई न? शामळजीभाई सेठ थे। बहुत पुण्यवन्त ऐसा...

**मुमुक्षु :** इतनी बड़ी थाली....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अरे! थाली क्या, हम तो पहले-वहले गये थे। (संवत्)

१९७० की दीक्षा। पहले-वहले गये। मगसिर महीना था। ७०... ७०। सित्तेर क्या कहते हैं? सात और शून्य। दीक्षा हुए ५८ वर्ष हुए न। हम पहले गये। हम तो बाहर नहीं निकलते थे। नये दीक्षित थे। हमारे गुरु थे सम्प्रदाय में, वे भिक्षा लेने जाते थे।

तो शामजी खोरा कहे, महाराज! उसकी बंदी थी बाहर निकलने की। गृहस्थ बहुत इज्जतदार। पैसे थोड़े। परन्तु उस समय पैसा नहीं, परन्तु इज्जत बड़ी, बड़ी इज्जत। खोरा पुंजा नहीं, शामळजी खोरा। बहुत रूपवान शरीर, शरीर सुन्दर, .... परन्तु तब पैसे को... महाराज के दर्शन करना है भाई! मैं गया। परन्तु वे भोजन करते थे, उसमें इतनी सामग्री! सेठ! रोटी, दाल, सब्जी, पूरणपोली, हलुवा, कितने प्रकार की दाल, कितने प्रकार की सब्जी, कितने प्रकार की बाजरे की रोटी, रोटला उसका गर्भ, उसमें शक्कर, उसमें घी। ऐसी चीज़ कितनी चीज़ पड़ी थी। प्रतिदिन इतनी चीज़... और गर्म पानी का तो, क्या कहलाता है? पाणियारा। पाणियारा समझे? यह पानी लेते हैं न। पानी नहीं रखते? क्या कहते हैं? पनिहारा। पनिहारा में सारा पानी गर्म था, सब गर्म। बेवड़ा के बेवड़ा भरे हों। वह गृहस्थ थे न। गृहस्थ बनाते थे अपने लिये। गृहस्थ अपने लिये बनाते थे गर्म पानी। गृहस्थ व्यक्ति ऐसा राजा जैसा मनुष्य। ७० की बात है। जीमने की चीज़ तो इतनी... पाटनीजी! बादशाही... परन्तु पुण्य में जरा ऐसा हो जाये कि आहा...! मैं पुण्यशाली हूँ, यह अभिमान है। आहाहा!

चक्रवर्ती देखो न! ३६० तो रसोईया। एक रसोईया का अधिकारी। बनानेवाला नहीं, परन्तु उसका अधिकारी। बारह महीने में एक बार कहा जाता है कि तुम रसोई बनाओ। ऐसा अधिकारी। समझ में आया? और वह भोजन... एक दिन में एक बार वह भोजन करे बत्तीस ग्रास का। एक ग्रास ९६ करोड़ सैनिक न पचा सकें, ऐसी चीज़। अरे! वह तो मिट्टी है। सारी सेना है न ९६ करोड़। तो एक ग्रास न पचा सके, ऐसा ३२ ग्रास का आहार था। मात्र भस्म। तुम पाँच हजार की भस्म बनाते हो न, वह तो करोड़ों और अरबों की भस्म। समझ में आया? मात्र ताँबे की, मोती की, हीरा की भस्म। समझ में आया?

इतना भोजन कि घी... घी है न, गर्म करके उसमें हीरा-माणेक डाले और ऐसी औषधि डाले कि एकरस हो जाये, फिर उसमें पचास-सौ, पाँच सौ-हजार गेहूँ-गेहूँ का दाना डाले। दो-चार मण घी, उसमें हीरा-माणेक अन्दर डाले। हीरा-माणेक डाले और

औषधि डाले, वहाँ (एक) रस—गल जाये और उसमें मण—दो मण गेहूँ (डाले) तो सब घी पी जाये, उसमें से रोटी बनावे।

**मुमुक्षु :** गेहूँ किस दिन बोवे ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बोवे सवेरे। गेहूँ बोवे सवेरे आठ बजे। वावे समझे ? बोये और दस बजे रोटी हो जाये। गेहूँ तेयार और पीसन तैयार। जब चक्रवर्ती हाथी के नीचे उतरे, वहाँ तो उसके लिये मकान बना दे पच्चीस-पचास मंजिल का। नीचे उतरे और घण्टा हो, रसोई तैयार। नया-नया गेहूँ पका—बनाया हों। यह तो पूर्व के पुण्य की ऋद्धि है, उसमें आत्मा क्या आया ? समझ में आया ? ऐसी ऋद्धि का अभिमान छोड़ना, उसका नाम भावविशुद्धि कहा जाता है। यह जड़ की वस्तु है। आहाहा !

**बल...** बल... शरीर का बल बहुत होता है न ! **अक्षीण...** रसोई दो लड्डू की हो और करोड़ों आदमी जीम जाये, (फिर भी) कम नहीं पड़े। ऐसी लब्धि। दो लड्डू हो चूरमा का, कपड़ा ढाँक दे, निकाले तो कम नहीं पड़े, ऐसी लब्धि, उसका अभिमान छोड़ना। वह तो पर की चीज़ है, उसमें आत्मा कहाँ आया ? अपना आनन्दमूर्ति प्रभु, उसमें एकाग्र होकर अपनी शुद्धि की वृद्धि करना, उसका नाम भगवान धर्म कहते हैं। **सात ऋद्धियों से, अथवा सुन्दर कामिनियों के लोचन को आनन्द प्राप्त करनेवाले शरीर-लावण्यरस के विस्तार से होनेवाला जो आत्म-अहंकार ( आत्मा का अहंकारभाव )...** आहाहा ! ऐसा शरीर सुन्दर हो, अवयव सुन्दर हो, नरम हो—कोमल हो और सुन्दर कामिनी के लोचन को, आनन्द करानेवाला सब लावण्यरस—शरीर की लावण्यता शोभा हो, उसका अहंकार कि मैं ऐसा हूँ। क्या तुम हो ? भाई ! तेरा स्वरूप तो आनन्दमूर्ति अन्दर है। यह (शरीर) तो मिट्टी-जड़ है। आहाहा ! इस शरीर की लावण्यता एक दिन राख हो जायेगी, भस्म होकर उड़ जायेगी। लावण्यता कहाँ तेरी चीज़ है ? आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा सुन्दर दिखे (और) अग्नि निकल जाये यहाँ, चिंगारी अग्नि की उठ जाये। हळ... हळ... हळ... वह तो जड़ है। समझ में आया ? ऐसी अपनी सुन्दरता का प्रेम जिसको लगा है, उसको ऐसी (जड़ की) सुन्दरता का अभिमान होता नहीं। लो, मान छोड़ देना, ऐसा कहा।

अब माया। **गुप्त पाप से माया होती है।** यह माया छोड़ देना, ऐसा कहते हैं।

गुप्त—चुपचाप पाप करने से कपट होता है, वह छोड़ देना। आलोचना, स्वरूप में अन्दर स्थिर करके छोड़ देना। **योग्य स्थान पर धनव्यय का अभाव, वह लोभ है;...** मुनि को नहीं, परन्तु यह गृहस्थ की बात है। समझ में आया? योग्यस्थान में धन के व्यय का अभाव... अपने लड़के का विवाह होता हो तो पाँच-दस लाख खर्च कर डाले, परन्तु धर्म के काम के योग्य स्थान में खर्च करने में कंजूस। वह लोभी प्राणी है, ऐसा कहते हैं। ऐ मलूकचन्दभाई! है अन्दर?

तो भी अभी एक... क्या कहा? क्या कहा भाई तुम्हारी भाषा! लाख का कहा न। पूनमचन्द ने कहा था। ऑफर... ऑफर... अहमदाबाद में ऑफर की है पूनमचन्द ने। एक लाख तुम निकालो तो लाख मैं दूँ। दो लाख निकालना है अहमदाबाद में। न्यालभाई ने कोई ऑफर निकाली? बड़े भाई के पास दो करोड़ हैं। कन्या एक ही थी, उसका विवाह हो गया, छह लाख खर्च किये, छह लाख। कोई तो खानगी—गुप्त पन्द्रह (लाख) कहते हैं। कोई कहते हैं गुप्त में। आहाहा! कहते हैं, योग्य स्थल में... जहाँ अवश्य धर्म की प्रभावना आदि हो, वहाँ व्यय न करे। आहाहा! पाटनीजी! यह तो एक दृष्टान्त। वहाँ सर्वत्र करते हैं न। उसका नाम लोभ। सब लोभ छोड़ना। अपने स्वरूप की आनन्द की भावना करके, इस लोभ को छोड़ देना, उसका नाम भावविशुद्धि कहा जाता है। आलोचना का चौथा भेद है।

**निश्चय से समस्त परिग्रह का परित्याग...** भगवान आत्मा ऐसा अखण्डानन्द प्रभु है कि जिसमें सर्व परिग्रह का त्याग है। वस्तु में कुछ है नहीं। राग नहीं, रजकण तो कहाँ से आया? राग नहीं, ऐसा मेरा प्रभु... **निश्चय से समस्त परिग्रह का परित्याग जिसका लक्षण है, ऐसे निरंजन निज परमात्मा...** निर्मलानन्द मेरा परमात्मा निज स्वरूप, उसके **परिग्रह से...** उसके अन्तर एकाग्रता से सबका त्याग हो जाता है। **अन्य परमाणुमात्र द्रव्य का स्वीकार, वह लोभ है।** अपने स्वभाव की भावना के अतिरिक्त एक रजकण लेना या इच्छा (करना), वह सब परिग्रह है, लोभ है। लोभ की दो व्याख्यायें की हैं। समझ में आया? आहाहा! निज परमात्मतत्त्व के परिग्रह... अपना स्वरूप का परिग्रह—पकड़ करना। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द से लबालब भरा है प्रभु, उसमें निर्विकल्प रस पीना, निर्विकल्प अंजुली द्वारा आत्मा का रस पीना, वह भावशुद्धि है। आहाहा! उसके

सिवाय अन्य परमाणुमात्र—एक रजकण की भी इच्छा करना, वह लोभ है। आहाहा!

**इन चारों भावों से परिमुक्त...** चार भाव हुए न—मद, मान, माया और लोभ। ऐसा लिया है, मद लिया है। मदन... मदन... वासना। यहाँ तो भावशुद्धि की बात है। भावशुद्धि की बात है। वहाँ मद लिया है, ऐसा। ... अधिकार आया न! मद, मान... क्रोध नहीं लिया। माया, लोभ के दो भेद लिये। यथार्थ स्थान में लक्ष्मी का व्यय नहीं करना और अपने भगवान आत्मा के अतिरिक्त एक भी रजकण का लेना, वह लोभ है। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** महाराज! मुनि की बात है या श्रावक की?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो श्रावक की बात है न! मुनि को कहाँ परिग्रह है? परन्तु (उपदेश) तो सबको दिया जाता है न! यहाँ तो गृहस्थाश्रम की बात साथ में है न! अन्दर है। मुख्य मुनि की बात करते हैं, परन्तु गर्भित में सब है। श्रावक, श्राविका, आर्यिका सब है उसमें। समझ में आया? आहाहा! मुनि के पास जो उपकरणादि हो, सब देने का भाव हो, कोई ले जाओ। हमारे पास कुछ है नहीं। हम तो आनन्दमूर्ति हैं। समझ में आया? आचार्य की उपदेश की शैली मुनि की प्रधानता में सबको लिया है। समझ में आया?

चारों भाव से रहित **शुद्धभाव,** देखो! **वही भावशुद्धि है...** यह चौथा बोल। आहाहा! यह भावशुद्धि पर्यायशुद्धि है। त्रिकालभाव तो शुद्ध है ही। समझ में आया? परन्तु पर्याय में शुद्धि को यहाँ भावशुद्धि कहा जाता है। आहाहा! **ऐसा भव्य जीवों को...** ऐसा उपदेश भव्य जीवों को **लोकालोकदर्शी...** कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, अरे! लोकालोकदर्शी... लोक और अलोक को देखनेवाले सर्वज्ञ, सर्वदर्शी वीतराग परमात्मा **परमवीतराग सुखामृत के पान से परितृप्त अरहन्त भगवन्तों ने कहा है।** आहाहा! कैसे हैं भगवान? तीर्थंकरदेव वीतराग परमेश्वर अरिहन्तदेव ने कहा है न, तो अरिहन्त लिये। सिद्ध को तो वाणी है नहीं। आहाहा! भगवान अरिहन्त तीर्थंकरदेव **लोकालोकदर्शी, परमवीतराग सुखामृत के पान से परितृप्त...** उन्हें कोई आहार और पानी होता नहीं। आहाहा! अनन्त आनन्द का भोजन, अनन्त निर्विकल्प रस—पानी का पीना, परितृप्त... परितृप्त... समझ में आया? ऐसे अरिहन्त भगवन्तों ने भावविशुद्धि इस प्रकार कही है। आहाहा!

**इस परम-आलोचना अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव नौ श्लोक कहते हैं:**—नौ... नौ। आहाहा! कितना प्रमोद है! आहाहा! अपने पूर्णानन्द का आलोचन करना, ध्रुव में—उसमें स्थिर होना, उसमें इतने दोषादि हो तो निकाल देना। विकल्प जाता है न! १७१ कलश।

**अथ जिनपति-मार्गालोचना-भेद-जालं,**
**परिहृतपरभावो भव्यलोकः समन्तात्।**
**तदखिलमवलोक्य स्वस्वरूपं च बुद्ध्वा,**
**स भवति परमश्री-कामिनी-कामरूपः ॥१७१॥**

**श्लोकार्थः—जो भव्य लोक ( भव्यजनसमूह )...** पात्र—प्रिय जीव... आहाहा! **जिनपति के मार्ग में कहे हुए...** जिनपति वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव... जिनपति—गणधर जिन उनके भी पति। ऐसे मार्ग में—**जिनपति के मार्ग में कहे हुए...** ऐसी चीज़ दूसरे में होती नहीं। इसलिए कहते हैं। जिसने राग और अज्ञान का नाश कर, वीतराग और सर्वज्ञ पद प्राप्त किया, ऐसे जिनेन्द्रदेव ने भव्य लोक के लिये... **समस्त आलोचना के भेदजाल को देखकर...** ऐसे मार्ग में आकर समस्त आलोचना के प्रकार देखकर... **तथा निज स्वरूप को जानकर...** देखो! मेरा स्वरूप आनन्द और शुद्ध है, ऐसा जानकर **सर्व ओर से परभाव को छोड़ता है,...** चारों ओर से राग को—विकल्प को छोड़ता है और निर्विकल्प में घुस जाता है। आहाहा! **वह परमश्रीरूपी कामिनी का बल्लभ होता है...** परमश्री अर्थात् लक्ष्मी, केवलज्ञानरूपी मुक्ति लक्ष्मी, उसरूपी सुन्दरी का वल्लभ अर्थात् पति होता है। १७१ हुआ। ब्रह्मचारी मुनि हैं। बात करने में क्या पाप है? समझ में आया? दृष्टान्त देने में क्या है? शास्त्र में बहुत दृष्टान्त आते हैं... उसमें क्या हुआ? सत्य उपदेश उसको ख्याल में आ जाये ऐसा देना। उसके अनुभव की, लोक की बात हो तो उसको (दृष्टान्त) देकर समझाते हैं। समझ में आया?

रात्रि को प्रश्न हुआ था न? कामिनी... काम... उसमें क्या है? कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसे बहुत दृष्टान्त दिये हैं। पाठ में दिये हैं, टीका में दिये हैं, उसमें क्या है? ओहो! आत्मा को ऐसी बात सुनने से राग होता है, परन्तु यह तो वीतरागी कथा है। समझ में आया? वैराग्य कराने को ऐसी बात करते हैं। तेरी सुन्दर स्त्री माँस, हड्डियोंवाली, छोड़

लक्ष्य, कहते हैं। परम सुन्दर परमात्मदशा ऐसी मुक्तिरूपी वधू का वल्लभ होता है। भगवान आत्मा में आनन्द में झूलनेवाला मुक्ति को प्राप्त करता है, यह बताना है। यह स्त्री तो मर जाती है, पच्चीस-पचास वर्ष रहे वहाँ यह... अरेरे! तू जा तो मैं क्या करूँ? वह जाये तो (कहे), तुम जाओ तो मैं क्या करूँ?

छोटी उम्र में हो तो ऐसे मुँह फट... बाद में विवाह करना, मर जाये वह कहती जाये। तुम्हारी प्रकृति जरा वैसी है। ऐसे घर के लोग नहीं सम्हाल सकेंगे। समझ में आया? ५०-५५ वर्ष की उम्र हो ५०-६० की, तो भी मरती हो तो कहती जाये। अरे! ...होली सलगी है तू वहाँ... अब तेरे शरीर की तो होली होनेवाली है वहाँ। किसकी शिक्षा करती जाती है तू? ऐसे के ऐसे मूढ़ जीव। पति का प्रेम है पत्नी को, इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि मोक्षमार्ग की क्रिया करनेवाले को तो मुक्तिरूपी वल्लभा प्राप्त होगी, जो उसको एक क्षण भी छोड़ेगी नहीं। समझ में आया? बहुत दृष्टान्त हैं न! सब बहुत बात सुनी है न! (कलश) १७२।

**आलोचना सततशुद्धनयात्मिका या,**
**निर्मुक्तिमार्गफलदायमिनामजस्त्रम्।**
**शुद्धात्मतत्त्व-नियता-चरणानुरूपा,**
**स्यात्संयतस्य मम सा किल कामधेनुः॥१७२॥**

आहाहा! यह आलोचना शुद्धनयस्वरूप है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मेरी आलोचना तो मेरी कामधेनु है। जैसे कामधेनु गाय होती है न? क्या कहलाती है वह? कामधेनु नहीं कहते? जब माँगे तब दे। वहाँ थी न बढवाण। चुनीलाल दादभा बढ़वाण। दादभा को थी। जब चाहिए तब दूध देती। दोहे तब दूध दे। मेहमान आयें हों और दोहे तो दूध दे। सवेरे और दोपहर में दे, ऐसा कुछ नहीं। जब चाहे तब दे। कामधेनु कहते थे। दादभा बढ़वाण। ऐसी कामधेनु गाय होती है लौकिक में पुण्यवन्त प्राणी को (होती है)। चौबीस घण्टे रात्रि को बारह बजे चाय पीना हो तो दूध दे। वह तो पुण्य का फल है। उसमें है क्या? यह तो कहे, हमारी आलोचना, हमारे आत्मा की हम आलोचना देखते हैं, यह आलोचना कामधेनु गाय है हमारे। जब-जब देखते हैं, तो आनन्द की धारा उठती है। आहाहा! समझ में आया? वह आनन्द टपकता है अन्दर में से।

**श्लोकार्थः—संयमियों को सदा मोक्षमार्ग का फल देनेवाली...** है आलोचना। अपना भगवान पूर्णानन्द को अन्तर में देखना, अन्तर में घुसकर गहरे-गहरे जाकर उसकी खोज करना कि आत्मा कैसा है ? ...दुनिया से बात दूसरी है। आहाहा! वहाँ निज भगवान विराजता है। सत्त्व... सत्त्व आनन्द का सत्त्वरूप प्रभु, उसमें जाकर, एकाग्र होकर, **संयमियों को सदा मोक्षमार्ग का फल देनेवाली...** आहाहा! **तथा शुद्ध आत्मतत्त्व में नियत आचरण के अनुरूप...** आहाहा! **लीन; परायण। आचरण शुद्ध आत्मतत्त्व के आश्रित होता है।** क्या कहते हैं ? अपनी शुद्ध धर्मदशा, यह आत्मा ध्रुव शुद्ध के आश्रय से होती है। वह पर्याय या विकल्प के आश्रय से नहीं होती। आहाहा! **संयमियों को सदा मोक्षमार्ग का फल देनेवाली...** आहाहा! मोक्ष के मार्ग का फल, वह आनन्द की शुद्धता। मोक्षमार्ग का फल अर्थात् पूर्ण परमात्मदशा नहीं, सुख यहाँ। **शुद्ध आत्मतत्त्व में नियत आचरण के अनुरूप ऐसी जो निरन्तर शुद्धनयात्मक आलोचना...** निरन्तर अपने स्वरूप-सन्मुख की एकाग्रता, अपने को देखने में ही लीनता। समझ में आया ? आहाहा!

एक जगह कहा है कि पर को देखने में अन्धा हो जा और अपने को देखने में हजार सूर्य जैसा नेत्र प्रगट कर। समझ में आया ? पर को देखने में अन्धा हो जा और अपना चिदानन्द प्रभु अनन्त स्वभाव, एक-एक शक्ति का अनन्त स्वभाव, ऐसा अनन्त स्वभाव—स्वरूप भगवान, उसको देखने में हजार सूर्य जैसा नेत्र खोल दे। आहाहा! यह तो अन्तर की बातें हैं, भगवान! बाहर से कोई सुनने में आती नहीं। आहाहा! सेठी! आहाहा! निरन्तर शुद्धनयस्वरूप आलोचना... भाषा देखो! यह आलोचना की पर्याय शुद्धनयस्वरूप है। क्योंकि त्रिकाली ज्ञायकभाव को देखने में लीन हो, वह आलोचना की पर्याय शुद्धनयस्वरूप है। शुद्धनयस्वरूप तो ध्रुव है, परन्तु उसके आश्रय से हुई दशा को ही शुद्धनयस्वरूप कहा जाता है। आहाहा!

सन्त—पंचम काल के मुनि, पंचम काल के तो मुनि हैं। काल-फाल कैसा ? आत्मा में चौथा-पाँचवाँ काल कैसा ? वह आत्मा तो आत्मा ही है। त्रिकाल ज्ञानानन्दस्वभाव से भरा, ऐसे आत्मा में नियत आचरण के अनुरूप शुद्धात्मतत्त्व के आश्रित... आचरण उसके अनुकूल, ऐसा। क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा परम शुद्ध चैतन्यतत्त्व के आश्रय से जो आचरण हुआ, उस आचरण को अनुरूप—आचरण के अनुरूप ऐसी निरन्तर

शुद्धनयात्मक आलोचन। आहाहा! भाषा तो देखो! समझ में आया?

निरन्तर भगवान आत्मा अपना परमानन्द का धाम, उस ओर की निरन्तर देखने की दशा, वह परमात्मतत्त्व के आश्रय से जो आचरण है, उसके अनुरूप है। शुद्धनय (स्वरूप) आलोचना **वह मुझे...** आहाहा! देखो! यह पंचम काल के मुनि। यह तो ९०० वर्ष पहले हुए। विश्वास... विश्वास... विश्वास... अनन्त आनन्द का धाम मैं, ऐसा विश्वास ज्ञान होकर हुआ है, हों! आहाहा! उसमें एकाग्रता... आहाहा! लो, भाई! आज बड़ा दिन है अनन्त चतुर्दशी। बात भी बड़ी अच्छी आयी है। आहाहा! पहले समझ में तो ले। निज परमात्मा निजानन्दस्वरूप में लीन होना, वही शुद्धभाव है। शुद्धभाव कोई पर के आश्रय से उत्पन्न नहीं होता, यह बताया है। स्व के आश्रय से उत्पन्न होता है। देव-गुरु-शास्त्र के आश्रय से भी शुद्धता उत्पन्न नहीं होती। समझ में आया? आहाहा! शास्त्र श्रवण करने से शुद्धता उत्पन्न नहीं होती, ऐसा कहते हैं। गजब बात करते हैं न! यह तो विकल्प उत्पन्न होता है। समझ में आया?

दूसरे को सत्य उपदेश देने में विकल्प है। विकल्प उत्पन्न होता है, वह स्वाश्रय नहीं। आहाहा! समझ में आया? उदयभाव है, राग है, पराश्रय है। तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि सुनने में विकल्प होता है। आहाहा! भाई ने—निहालभाई ने तो स्पष्ट कर दिया है न थोड़ा खुल्ला (कि) भगवान की वाणी सुनने में भी तेरा नाश होता है। हाय... हाय! लोग चिल्लाहट मचाये। ऐई! आता है या नहीं? वाँचन में, सुनने में, भगवान के सन्मुख देखने में विकल्प होता है और अपनी शान्ति का नाश होता है। आहाहा! चिल्लाहट मचाये या नहीं? यहाँ तो क्या कहा? आत्मतत्त्व के आश्रय से शुद्ध आलोचना होती है, पर के आश्रय से नहीं। आहाहा! आगम और प्रतिमा—दोनों जीव को आधार। आणंदजी कहते हैं न वह? उसे याद है। समझ में आया? 'भव्यजीवनकूं आधार...' राग का आधार है। यह वाणी... शुद्धभाव का आधार और आश्रय तो एक आत्मा है। यह त्रिलोकनाथ की वाणी है। आहाहा!

**शुद्ध आत्मतत्त्व में नियत-निश्चय आचरण के अनुरूप...** व्यवहार-फ्यवहार नहीं। उसके अनुरूप अपनी आलोचना, अपने आश्रय से आलोचना उत्पन्न होती है। गुरु के पास जाकर (कहे कि मुझे) ऐसा हो गया, ऐसा... यह सब पराश्रय विकल्प है।

समझ में आया ? आहाहा ! छह खण्ड नहीं साधते चक्रवर्ती। भाई ने कहा न निहालभाई ने। निहालभाई को कहाँ उपदेश का समय था ? उपदेश थोड़ा ... वह बात आ गयी। देवीलालजी ! चक्रवर्ती ने छह खण्ड साधा ? कि, नहीं। वे तो अखण्ड साधते थे। आहाहा ! ऐई ! यहाँ तो कहते हैं, व्याख्यान सुनने में अपना नाश होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! गजब बात है न ! क्योंकि उसमें पर का आश्रय है। आता है।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वस्तुस्थिति ऐसी है। यह तो जब... स्पष्ट करना हो, तब (कहे कि) अकेले आत्मा के आश्रय से ध्यान होता है, धर्म होता है। पर के आश्रय से तो विकल्प ही उत्पन्न होता है। ऐ चिमनभाई ! बहुत भारी कठिन काम, हों ! आहाहा !

**मुझे संयमी को वास्तव में कामधेनुरूप हो।** आहाहा ! कामधेनु... जब-जब मैं अन्तर में एकाग्र होता हूँ, तब अतीन्द्रिय आनन्द आता है। कामधेनु गाय है। आहाहा ! समझ में आया ? मेरा प्रभु मेरे पास ही है, अरे ! मैं ही हूँ। आहाहा ! पर्याय के पास कहना, वह तो दूसरी (चीज़ हो गयी)। वह तो मैं ही हूँ। ऐसी अन्तर में दृष्टि करना और स्वतत्त्व का आश्रय करना, वही भगवान ने भावशुद्धि कहा है। आहाहा ! लोगों को यह व्यवहार के पक्षवालों को ऐसा कठिन लगे। भीखाभाई ! सुना नहीं। बापू ! तेरी चीज़, भाई ! व्यवहार आवे, सुनना-सुनना, वाँचना हो, आवे, परन्तु वह तो विकल्पस्वरूप है, भगवान ! पर का आश्रय है। भाई ! यह सबका सार तो उसको छोड़कर अन्तर आश्रय करना, वह है। आहाहा !

**कामधेनुरूप हो। 'स्यात्संयतस्य मम सा किल कामधेनुः'** हो या है ? क्या लेना है ? 'स्यात्' वह 'स्यात्' है इसलिए। नीचे लिया है न, आत्मतत्त्व में नियत—निश्चित। भगवान आत्मा, उसमें निश्चित एकाग्रता दृढ़ता, लीनता, स्वरूप में परायणता। आहाहा ! 'आचरण शुद्ध आत्मतत्त्व के आश्रित होता है।' उसे अनुरूप आलोचना है। आहाहा ! यह आलोचना भावशुद्धि में होती है। उसको भावशुद्धि कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

भाद्र शुक्ल १५, रविवार, दिनांक - ०५-०९-१९७१
श्लोक-१७३-१७५ प्रवचन-११५

नियमसार शास्त्र चलता है। परम आलोचना अधिकार। जिसकी ११२ गाथा है, उसका कलश है १७३। १७३ कलश है न! क्या अधिकार चलता है यह? आलोचना। आलोचना अर्थात्? आत्मा की परिपूर्ण दशा—स्वभाव को देखना। अपना जो स्वभाव त्रिकाल ध्रुव शुद्ध चैतन्य, उसे अन्तर में उग्र पुरुषार्थ से देखना, इसका नाम आलोचना कहा जाता है। दूसरे प्रकार से कहें तो आलोचना अर्थात् संवर। संवर अर्थात् आस्रव का निरोध। विकारी भाव का रुकना और निर्विकारी दशा उत्पन्न होना, इसका नाम आलोचना अथवा संवर कहा जाता है। वह यहाँ १७३ कलश।

**शुद्धं तत्त्वं बुद्ध-लोक-त्रयं यद्,**
**बुद्ध्वा बुद्ध्वा निर्विकल्पं मुमुक्षुः।**
**तत्सिद्ध्यर्थं शुद्ध-शीलं चरित्वा**
**सिद्धिं यायात् सिद्धिसीमन्तिनीशः ॥१७३॥**

धर्मात्मा मोक्ष के अभिलाषी जीव ने... '**मुमुक्षु**' शब्द पड़ा है न? आज गुजराती हो गया अब। हिन्दी चल गया, समाप्त। हक हो गया। बहुत लोग आये न। यह तो वह कक्षा (शिविर) और यह दस दिन, इतना हिन्दी। जिसे हिन्दी सुनना हो, उसे पहले आना चाहिए। देरी से आवे तो हिन्दी नहीं मिले। वे आये इसलिए गुजराती चले न। यहाँ तो सदा ही गुजराती चलता है। आज से गुजराती। समझ में आया? **मुमुक्षु जीव...** मुमुक्षु अर्थात् जिसे आत्मा में परम आनन्दस्वभाव, ऐसी जो मुक्तदशा, उसकी जिसे अभिलाषा है, उसे मुमुक्षु कहा जाता है। समझ में आया? राग और विकार के अर्थी को संसारार्थी—परिभ्रमण का अर्थी कहा जाता है। तो कहते हैं, **मुमुक्षु जीव...** आत्मा की पूर्ण आनन्दरूपी मुक्तदशा, उसे प्रगट करने की जिसे जिज्ञासा है। वह **तीन लोक को जाननेवाले...** भगवान आत्मा का स्वभाव तीन काल—तीन लोक को मात्र जानना, वह उसका स्वभाव

है। किसी का करना या किसी के साथ सम्बन्ध करना, वह उसका स्वभाव नहीं। समझ में आया?

**तीन लोक को जाननेवाले निर्विकल्प शुद्ध तत्त्व को...** अभेद चैतन्यस्वभाव, नित्यानन्द परमपारिणामिकस्वभाव, परम ज्ञायकभाव, वह अभेद शुद्ध तत्त्व है। उसे **भलीभाँति जानकर...** है न दो बार? पण्डितजी को पूछा कि यह '**बुद्धा बुद्धा**' दो बार क्यों? बराबर जानकर, ऐसा। ऐसे तो जाना-जाना अर्थात् नहीं जाना, ऐसा हो। 'जाना-जाना' ऐसा कहे न? इसका अर्थ 'नहीं जाना' होता है। समझ में आया? 'जाना-जाना' यह चर्चा हुई थी गोरा के साथ। यूरोपियन, एक था यूरोपियन। उसके साथ चर्चा होने पर यूरोपियन कहे, मैं सब जानता हूँ। गुजराती सब जानता हूँ। बहुत अच्छी बात। उसने कहा, सब नहीं जान सकते। तुम्हारी देशभाषा अलग, हमारी देशभाषा अलग। फिर गुजराती (व्यक्ति ने) एक लड़के को बुलाया, लड़के! यहाँ आओ। अमुक क्या? कुछ पूछा। उसका उसने उत्तर दिया। इसलिए इसने कहा, जाना... जाना। करो साहेब! अर्थ अब। तुमने ऐसा कहा कि जाना-जाना। पूछो लड़के को कि मैंने क्या कहा। कुछ नहीं जाना, ऐसा वह कहता है। समझ में आया? इसलिए यहाँ '**बुद्धा बुद्धा**' में पूछना नहीं।

यहाँ तो 'जाना-जाना' है (अर्थात्) यथार्थ जैसा है, (वैसे) बराबर जाना है। ऐसा भगवान आत्मा निर्विकल्प—एक विकल्प—राग नहीं, परन्तु एक समय की पर्याय भी नहीं, ऐसा जो अभेद भगवान... आहाहा! देखो! यह नियमसार। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह मोक्ष का मार्ग, वह नियमसार। वह नियमसार कैसे प्रगट हो? कि तीन लोक को जाननेवाला आत्मा, उसका स्वभाव, हों! उसका स्वभाव तो जानना... जानना... जानना... जानना। ऐसा कहा कि तीन लोक का जाननेवाला उसे—**निर्विकल्प शुद्ध तत्त्व को भलीभाँति जानकर...** अर्थात् कि अकेली शास्त्र की धारणा से जानकर, ऐसा नहीं। आहाहा! '**बुद्धा बुद्धा**' ऐसे वीतराग सर्वज्ञदेव तीर्थंकर परमात्मा ने कहा हुआ यह नियमसार—मोक्ष का मार्ग है। यह मोक्ष का मार्ग त्रिकाली ध्रुव निर्विकल्प अभेद चीज़, उसे बराबर जानकर... जैसा उसका स्वरूप है, वैसा जानकर... सर्वज्ञ ने कहा, वैसा उसका स्वरूप है, सर्वज्ञ के अतिरिक्त दूसरे आत्मा की बात करे, वह आत्मा बराबर है नहीं। समझ में आया?

भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा जिन्होंने एक समय में तीन काल—

तीन लोक जाने हैं, उसमें आत्मा कैसा, यह भी ज्ञात हो गया। ऐसे भगवान ने कहा हुआ जैसा आत्मा, द्रव्यस्वभाव, हों! **भलीभाँति जानकर उसकी सिद्धि के हेतु...** जानकर, यह तो सम्यग्दर्शन और ज्ञान हो गया। समझ में आया? 'जानकर' उसमें तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान—दो हुआ। समझ में आया? नियमसार है न! तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र—तीन लेना है। तब अब कहते हैं कि भगवान आत्मा निर्विकल्प अभेद ऐसा आत्मा, उसे जानकर... उसमें श्रद्धान साथ में आ गया। अब, **सिद्धि के लिये...** उसकी पूर्ण प्राप्ति के लिये अथवा वह दृष्टि में और स्थिरता में आवे, इस प्रकार से **शुद्ध शील का (चारित्र का) आचरण करके,...** यह चारित्र आया। आहाहा! भगवान आत्मा... पहले समझ में तो ले। वह चीज़ ज्ञायकभाव तीन काल—तीन लोक को देखे, वही उसका स्वभाव है। ऐसी चीज़ को बराबर जानकर अर्थात् कि राग और मन का संग छोड़कर, जैसी चीज़ निर्विकल्प है, उसे निर्विकल्प दृष्टि और ज्ञान द्वारा जानकर... आहाहा! समझ में आया? ऐसे शास्त्र से वाँचकर या पढ़कर, उसे जानकर नहीं कहा। समझ में आया?

ज्ञानमूर्ति चैतन्य तीनों काल को जाननेवाला प्रभु, उसे **बुद्धा—**जैसा है, वैसा जानकर... आहाहा! स्वभाव सन्मुख ज्ञान की पर्याय को झुकाकर... जो वस्तु ज्ञान की (एक) समय की पर्याय में पूरी चीज़ जानने में आयी, उसने यथार्थरूप से आत्मा को जाना। समझ में आया? उसे जानकर **उसकी सिद्धि के हेतु शुद्ध शील का आचरण करके,...** शील अर्थात् चारित्र को शुद्ध शब्द प्रयोग किया है। पंच महाव्रत के विकल्प आदि, वह कहीं चारित्र नहीं। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति, उसका ज्ञान करके। उसमें शील को—चारित्र को शुद्ध आचरण करना (अर्थात्) उसमें रमणता करना, उसका नाम चारित्र है, उसका नाम शील कहा जाता है। **शुद्ध शील का आचरण करके,...** पूर्ण शुद्ध स्वभाव का आचरण करके... स्वभाव उसका वीतराग है, तो वीतराग का वीतरागरूप से आचरण करके... आहाहा! यह चारित्र। यह पाँच महाव्रत और यह ढींकणा... फींकणा, यह चरना, खाना, पीना और लेना—यह सब विकल्प है; चारित्र नहीं। यह चारित्र से विपरीत है। विकल्प चारित्र से विपरीत है। आहाहा!

जैसा निर्विकल्प चैतन्य है, ऐसा शब्द प्रयोग किया है न? ऐसी ही निर्विकल्प दृष्टि और रागरहित ज्ञान, इस प्रकार से आत्मा को जानकर अर्थात् राग बिना की स्वरूप

में स्थिरता—शील... शील को आचरण कर... ब्रह्मानन्द भगवान, ब्रह्म अर्थात् आनन्द का चरना, रमना। ब्रह्मानन्द में लीन होना—लीन होना, वह चारित्र। समझ में आया? **सिद्धिरूपी स्त्री का स्वामी होता है।** द्रव्य वर्णन किया, उसका ज्ञान और श्रद्धा कही, उसका आचरण कहा, उसके फलरूप से मुक्ति कही। समझ में आया? सिद्धिरूपी स्त्री—मुक्ति का वह मालिक—स्वामी होता है। उसे पूर्ण आनन्द की दशा प्राप्त होती है, ऐसा यहाँ कहा जाता है। आहाहा! व्यवहार का तो कुछ भुक्का उड़ाया इसमें। कहाँ गये चिमनभाई नहीं आये? चिमनभाई! व्यवहार का तो यहाँ नाम लिया नहीं। व्यवहार तो बाद में बात... भगवान आत्मा का अन्तर आचरण, आनन्द में रमणता, वह अन्तर आचरण। उसे यहाँ चारित्र और उसे मोक्ष का मार्ग, साक्षात् चारित्र—ऐसा कहा जाता है। गुजराती सरल भाषा है। बहुत कठिन नहीं है। कहो, समझ में आया?

**सिद्धिरूपी स्त्री का स्वामी होता है।** अर्थात् कि **सिद्धि को प्राप्त करता है।** आहाहा! द्रव्य सिद्ध किया, द्रव्य की शक्ति, तीन काल—तीन लोक को जानने की ऐसी शक्ति सिद्ध की, ऐसे आत्मा को वर्तमान में बराबर जानना और श्रद्धा करना, यह बात सिद्ध की, ऐसे आत्मा में—स्वरूप में स्थिर होना, ऐसा सिद्ध किया और वह स्थिर होने से उसे मुक्ति की पर्याय प्राप्त होती है, ऐसा मोक्ष भी सिद्ध किया। समझ में आया? द्रव्य, गुण, पर्याय—अपूर्ण और पूर्ण ऐसा सिद्ध किया है। आहाहा! जीव तीन लोक को जाननेवाला कहा न, यह गुण को सिद्ध किया। अन्दर जाननेवाला... जाननेवाला अभेद वस्तु, वह शुद्ध तत्त्व है। समझ में आया? वह आत्मतत्त्व है, ऐसा। उसे 'बराबर जानकर' यह सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। और उस आत्मा की पूर्ण प्राप्ति के लिये शुद्ध चारित्र को आचरण कर... यह चारित्र की व्याख्या की। सिद्धिरूपी स्त्री, यह मुक्ति की व्याख्या की। १७३ हुआ। १७४ (कलश)

**सानन्दं तत्त्वमज्जज्जिनमुनिहृदयाम्भोजकिञ्जल्कमध्ये,**
**निर्व्याबाधं विशुद्धं स्मरशरगहनानीकदावाग्निरूपम्।**
**शुद्धज्ञान-प्रदीप-प्रहत-यमिमनोगेह-घोरान्धकारं,**
**तद्वन्दे साधुवन्द्यं जननजलनिधौ लङ्घने यानपात्रम्॥१७४॥**

आहाहा! श्लोक का अर्थ नीचे। **श्लोकार्थः—तत्त्व में मग्न ऐसे जिनमुनि के**

**हृदयकमल की केसर में जो आनन्द सहित विराजमान है,...** आहाहा! यह शुद्ध तत्त्व। मुनि तत्त्व में मग्न... भगवान पूर्णानन्दस्वरूप वह तत्त्व, उसमें जो मग्न, वह पर्याय। **ऐसे जिनमुनि के हृदयकमल की...** जिनमुनि के हृदयकमल में... यह अज्ञानी में नहीं होता वह। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो मुनिपना कहा और जो द्रव्य-गुण-पर्याय कहे, उसका जाननेवाला हो उसे... वह जिनमुनि के अतिरिक्त यह बात अन्यत्र कहीं नहीं हो सकती। **जिनमुनि के हृदयकमल की केसर...** कमल में होता है न बीच का तार—तन्तु। तन्तु होते हैं, फूल में होते हैं। बहुत जगह देखे हैं। यह हृदयकमल के तन्तु अर्थात् तार। लम्बे होते हैं। कमल हो न, (उसके तार) लम्बे होते हैं।

एक जगह बहुत देखे हैं, नजदीक (थे)। यह उतरे वहाँ... भाई का गाँव है न? नरसिंह डॉक्टर का। नरसिंह डॉक्टर का राजकोट, हडमतालु। दूर उगे थे। वहाँ गये थे एक बार। तब बाजार में उतरे थे, वहाँ साथ में इतने कमल और सब केसर निकले हुए, ऐसे लम्बे-लम्बे दल... हडमताला राजकोट से है न। बहुत देखे तब केसर। बड़े-बड़े सब कमल थे। साथ में कोई मकान था। उसमें केसर थी। इसी प्रकार हृदयकमल ज्ञानानन्दरूपी कमल खिला हुआ कमल है, ऐसा कहते हैं। चैतन्यकमल खिला हुआ है। उसमें जो आनन्दसहित विराजमान है, वह केसर अर्थात् आनन्द की दशा, उसमें वह तत्त्व विराजमान है। आत्मा में आनन्द विराजमान, इस अपेक्षा आनन्द की दशा में आत्मा विराजमान है। समझ में आया?

(समयसार) दूसरी गाथा में कहते हैं कि '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' जीव स्वयं ज्ञान-दर्शन में (स्थित है)। उस राग में और पुण्य में अनादि से ऐसा है, वह अन्दर चारित्र-दर्शन-ज्ञान में आता है, उसका अर्थ कि स्वसन्मुख हो तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र में आत्मा आता है, आत्मा वहाँ आता है, ऐसा। समझ में आया? इसी प्रकार कहते हैं कि अहो! जिन्होंने वीतरागभाव प्रगट किया है और उस तत्त्व में मग्न हैं, ऐसे हृदयकमल के केसर में मुनियों को आनन्दसहित प्रभु विराजता है। **आनन्दसहित...** आत्मा आनन्द की पर्याय में विराजमान है। आहाहा! समझ में आया? **जो बाधारहित है,...** कैसा है वह तत्त्व भगवान? निजस्वरूप नित्य तत्त्व वह **बाधारहित...** विघ्न-विघ्न उसे कुछ है नहीं। वस्तु को विघ्न क्या हो?

**जो विशुद्ध है...** देखो! यह तो त्रिकाली द्रव्य को विशुद्ध सिद्ध किया। विशुद्ध,

पुण्यपरिणाम को विशुद्ध कहते हैं, मोक्षमार्ग सच्चा—निश्चय, उसे भी विशुद्ध कहते हैं और त्रिकाली स्वभाव को भी विशुद्ध कहते हैं। समझ में आया? 'विशुद्ध' शब्द के जहाँ-जहाँ लागू पड़े, वैसे अर्थ होते हैं। इस 'विशुद्ध' तत्त्व के स्वभाव की अपेक्षा से है। त्रिकाल स्वभाव विशुद्ध है। त्रिकाल विशुद्ध के आश्रय से निश्चय मोक्षमार्ग प्रगटे, वह भी विशुद्ध है और उसमें राग की मन्दता का शुभराग हो, उसे भी व्यवहार से विशुद्ध कहा जाता है। निश्चय विशुद्ध तत्त्व और उसका आश्रय लेकर प्रगट दशा, वह निश्चय मोक्षमार्ग की विशुद्धता। आहाहा! वह निश्चय और उसमें राग की मन्दता आवे, उसे व्यवहारविशुद्ध का आरोप देकर उसे विशुद्ध कहा जाता है। पण्डितजी! विवाद करे कि अरे! यह विशुद्ध हुआ, शुभभाव को विशुद्ध कहा। भई! कहा है, सुन न! वह त्रिकाली विशुद्ध भगवान आत्मा है, उसकी अनुभव दृष्टि हुई है, वह अनुभव दृष्टि, वह विशुद्ध है—निर्मल है, वह वीतरागी पर्याय है। उसका आरोप कषाय की मन्दता में (करके) व्यवहार से विशुद्ध है, ऐसा कहा जाता है। तीनों विशुद्ध हो गये। समझ में आया?

यहाँ तो एक ही विशुद्ध का काम है। आहाहा! जिसे अपनी अवस्था को भगवान के साथ भेंट की है। वर्तमान दशा से दशावान को देखा, जाना और अनुभव किया है, उस त्रिकाली चीज़ को यहाँ विशुद्ध कहा जाता है। **जो कामदेव के बाणों की गहन (-दुर्भेद्य) सेना को जला देने के लिए दावानल समान है...** आहाहा! कामवासना, पाँचों इन्द्रियों के विषयों की ओर की अनुकूलता की वृत्ति—भाव जो उठे... आहाहा! अनुकूल पैसा, अनुकूल कीर्ति आदि, अनुकूल विषय-भोगवासना, उस सब वासना को... आहाहा! कामदेव के बाणों की दुर्भेद्य सेना—जो भेदी न जा सके, ऐसी सेना... क्योंकि पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर की वासना अनादि से प्रीति में उसे पड़ी है। समझ में आया? वहाँ उसे प्रेम है। पाँच इन्द्रियों के भोग का विकल्प जो है, उसमें उसकी प्रीति, प्रेम और रुचि पड़ी है। ऐसी जो कामवासना, उसका जो बाण आत्मा की पर्याय को घातता है। शान्ति... शान्ति... शान्ति को कामवासना घातती है। ऐसी जो उसकी सेना, उसे जला डालने के लिये... दो बातें। एक बात कि वस्तु में कामवासना है नहीं, इसलिए जला डालने में समर्थ है, ऐसा कहा। समझ में आया?

त्रिकाली तत्त्व कहना है न यहाँ! **उस शुद्ध तत्त्व को—मैं वन्दन करता हूँ।** ऐसा

है न आगे? भगवान आत्मा शुद्धतत्त्व जो ज्ञानानन्द सहजानन्द की मूर्ति, वह कैसी है? कामवासना को जला डाले। अर्थात्? कामवासना उसमें है ही नहीं। दूसरे प्रकार से, कामवासना जिसने नहीं, उसका आश्रय लेने से कामवासना का नाश हो जाता है। समझ में आया? अरे, गजब बात! ऐसा धर्म का स्वरूप। लोगों को यह सब दस दिन, आठ दिन ऐ... अपवास करो, यह करो, यह वासना रही है धर्म की। लो, दस अपवास हों, आठ अपवास चतुर्विध आहारत्याग—कितने ही पानी-बानी न लेते हों न। यह अभी वर्षा बहुत पड़ी है। तीन-चार... यहाँ... अपवास किये थे निर्जल। दो ने किये थे, निर्मलाबेन ने सोलह अपवास किये थे। पानी लेते होंगे।

यहाँ कहते हैं, आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध तत्त्व के सन्मुख देखने से विषय की वासना नाश हो जाती है। अणीन्द्रिय... यह पाँच इन्द्रियाँ ली न? पाँच इन्द्रिय के विषय की वासना के बाण छेदना कठिन है। आहाहा! राग के प्रेम को छेदना... तथापि भगवान आत्मा, राग के प्रेम की उस चीज़ में गन्ध नहीं। समझ में आया? आगे आयेगा अभी। कठिन बात निकली है। समझ में आया? आगे आयेगा शब्द का... यह याद आ गया। निरन्तर सुलभ है। '**सतत सुलभं**' (कलश) १७६ में हैं। सतत सुलभ है। आहाहा! भगवान आत्मा चिदानन्द प्रभु निरन्तर सुलभ है, क्योंकि उसका स्वरूप ही, अपने ज्ञान से ज्ञात हो, ऐसा उसका स्वभाव है। वह किसी चीज़ के कारण—आश्रय को लेकर ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! भाषा देखो न! प्रयोग की है। '**सतत सुलभं**' तत्त्व है, उसका जहाँ स्वीकार हो, वह सतत सुलभ है, कहते हैं। सेठ!

मुनि, यह पद्मप्रभमलधारि स्वयं मुनि हैं। आहाहा! मुनि सच्चे हों तो जंगल में रहते हो, नग्नदशा हो, विकल्प हो तो पंच महाव्रतादि के विकल्प का—आस्रव का बन्ध हो, परन्तु उसके पीछे जो आत्मा, आहाहा! वह तो निर्मलानन्द धर्मी को तो तृप्ति है। समझ में आया? जिसने उसका आदर किया, उसे तो सरल है, कहते हैं। राग की रुचि और पुण्य की रुचि करनेवाले को दुर्लभ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परन्तु उसकी रुचि करनेवाले को वह सुलभ है। आहाहा! समझ में आया? **दावानल समान है...** सेना को जला डालने के लिये दावानल... दावानल समान है। सेना को जला डालने की अपेक्षा से कहना है न! जलाना अर्थात् खड़े न होने देना, ऐसा। उसे खड़े न होने देना, ऐसा वह

भगवान है, ऐसा कहते हैं। कठिन काम, भाई! भगवान 'है' ऐसा जहाँ स्वीकार होता है, कहते हैं कि उसमें काम की वासना की उत्पत्ति की गन्ध भी नहीं। वह दावानल ऐसा। आहाहा! समझ में आया?

**और जिसने शुद्धज्ञानरूप दीपक द्वारा मुनियों के मनोगृह के घोर अन्धकार का नाश किया है,...** आहाहा! किसने? **जिसने शुद्धज्ञानरूप दीपक द्वारा मुनियों के मनोगृह के...** जिसने अर्थात् उस तत्त्व ने। भगवान ज्ञायक... शब्द भी कम पड़ते हैं, इन मुनियों को! क्या कहना, किस प्रकार कहना? देखो न! कैसी कही है!

**मुमुक्षु :** बहुत....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बहुत नहीं, जैसा है वैसा कहते हैं। बहुत तो कब कहलाये कि उसमें न हो और अधिक कहे, वह 'बहुत' कहलाये। वाणी में कितना आवे? बहुत कम में कम आवे। अरे! उसकी क्या बात! दिव्यध्वनि में अनन्तवें भाग आता है और सुननेवाले गौतम भी दिव्यध्वनि में से अमुकवाँ भाग उद्धरण करते हैं और उसका अमुकवाँ भाग रचना में आता है। जिसका अनन्त आनन्द और चैतन्य स्वभाव, उसकी क्या मलाल करना? कहते हैं। आहाहा! ऐसा भगवान तू है। तेरा स्वरूप ही ऐसा है। जैसा है, वैसा वाणी द्वारा आ नहीं सकता।

श्रीमद् ने कहा न। 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब।' वह गूँगा का गुड़... गूँगा गुड़ खाये। क्यों गूँगा! कैसा गुड़? ऐसा कहे। परन्तु कैसा? चन्दुभाई! क्या कह दिया? कहो। स्वाद जानता है या नहीं? कैसा? आहाहा! तीन लोक का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द, उसे वाणी द्वारा किस प्रकार कहना? कहते हैं। वाणी जड़, यह चैतन्य। यह अरूपी, वह रूपी। यह जड़, चैतन्य का वैरी। उस जड़। वैरी द्वारा आत्मा की महिमा कराना... आहाहा! समझ में आया? आहाहा! मुनियों ने तो काम किये हैं न! दिगम्बर सन्तों ने तो सिद्ध को नीचे उतारा है। ऐसी बात सुनने को मिले, वह भाग्यशाली है। वस्तु ऐसी है। आहाहा! कहते हैं, उस **शुद्धज्ञानरूप दीपक द्वारा...** जिस तत्त्व ने... उस तत्त्व का जहाँ ज्ञान हुआ, तत्त्व का स्वीकार हुआ, ऐसे ज्ञान द्वारा मुनियों के मनोगृह के घोर अन्धकार कर जिसने नाश किया है। राग का नाश (और) ज्ञानदीपक की प्रगट ज्वाला प्रगट हुई। ऐसा जो शुद्धतत्त्व भगवान, उसके

कारण, कहते हैं, घोर अन्धकार का नाश होकर दीपक प्रगट हुआ है। आहाहा!

**उसे—साधुओं द्वारा वन्द्य...** सन्तों द्वारा वह तत्त्व वन्द्य है। आहाहा! क्योंकि शुद्ध दशा जहाँ प्रगट हुई है, वह पूरे शुद्ध का स्वीकार करती है कि यह पूरा शुद्ध ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? जिसे अन्तर में वीतरागता—शुद्धता प्रगट हुई है, उसे वह वन्द्य है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि उसने ऐसा देखा, जाना और उसमें स्थिर हुआ। समझ में आया? आहाहा! विकल्प द्वारा वन्द्य है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसका आदर तो निर्विकल्प परिणति द्वारा होता है। साधु द्वारा वह आत्मा वन्द्य है। असाधु—अज्ञानी द्वारा, राग द्वारा वन्द्य है नहीं। आहाहा! **तथा जन्मार्णव को लाँघ जाने में नौकारूप...** कैसा है भगवान? आहाहा! जन्मार्णव—संसाररूपी समुद्र। जन्म अर्थात् .... संसार में, राग के उदय में उपजना। ऐसा जो महासमुद्र, उसे उल्लंघ जाने में नौका है, नौका। भगवान आत्मा शुद्धतत्त्व, वह जन्मरूपी संसार समुद्र को तिरने—उल्लंघ जाने में, वह भगवान आत्मा वस्तु ही ऐसी है कि उल्लंघ जाने में नौका समान है और वस्तु के आश्रय से प्रगट दशा हुई, वह नौका समान है। आहाहा!

'नाव तरे रे मोरी नाव तरे...' कहा था न एक बार। श्वेताम्बर में आता है। परन्तु वह तो सब कल्पना है। अतिमुक्तकुमार राजकुमार था। छोटी उम्र, बहुत छोटी उम्र आठ वर्ष की। गौतम गणधर आहार लेने—भिक्षा के लिये आये। उसमें वह स्वयं राजकुमार अपने बँगले के बाहर खड़ा था और गौतमस्वामी की अँगुली पकड़ी। आहार लेने निकले। श्वेताम्बर में तो ऐसा होता है न झोली और पात्र। सब बातें खोटी है। महाराज! कहाँ जाते हो आप? आठ वर्ष का बालक राजकुमार। भाई! हम भिक्षा के लिये जाते हैं। पधारो मेरे घर महाराज! मेरी माता आपको भिक्षा देगी। राजकुमार है, मणिरत्न के पुतले जैसा शरीर। वह बँगले के बाहर खेलता था। अन्दर गये, भिक्षा ली। महाराज! तुम कहाँ रहते हो? मेरे गुरु हैं भगवान वहाँ। तो मैं साथ आऊँ? अँगुली पकड़कर गये।

जहाँ वीतराग की वाणी सुनी, वैराग्य हो गया, दीक्षा ली, पात्रवाली, हों! वह कहीं दीक्षा है नहीं। यह तो उनमें बात आती है। ऐसा कथन है। रतिभाई! भगवती (सूत्र) में ऐसा कथन है। फिर भिक्षा के लिये जाते हैं। भिक्षा क्या, साधु साथ में जंगल में दिशा को (दस्त को जाते हैं)। छोटे साधु, सात-आठ वर्ष का साधु, छोटा रजोहरण, छोटा पात्र

और जाता है। ऐसा कथन भगवती (सूत्र) में आता है। सब बातें कल्पित की हुई है। मुनि को रजोहरण ऐसा हो नहीं सकता। कपड़ा-बपड़ा कैसा मुनि को? अपनी बात सिद्ध करने के लिये ऐसी कथा रची है। उसमें जंगल जाते हुए वापस मुड़ते हैं, वहाँ वर्षा आयी। वर्षा आयी और पानी आया बहुत। स्वयं बैठ गये। पाल बाँधी ऐसी मिट्टी की। पाल बाँधकर उसमें पानी इकट्ठा किया। पानी जाये न, इकट्ठा करके, स्वयं का पात्र था न... सुना होगा या नहीं? ऐ भीखाभाई! बहुत वर्ष से वहाँ मुंडाया है न इसने। फिर पात्र डालकर कहता है, 'नाव तरे रे मोरी नाव तरे, मुनिवर जल सु खेल करे, अे मोहनीय कर्मना अे चाळा...' कवि बनाते हैं। 'मोहनीय कर्मना अे चाळा, मुनिवर दौड़े नानडीया बाळ।' एक ये थे और एक गजसुकुमार—दोनों की बात है। वहाँ बड़ी सज्झाय है। सज्झाय पुस्तक में आता है। है न चार सज्झायमाला? यह तो दुकान पर सब पढ़ी हुई है। यह कितना ही कण्ठस्थ हो गया था। बारम्बार वाँचते न! ऐई! (संवत्) १९६४-६५ की बात है।

'मुनिवर दौड़े नानडीया बाळ।' भगवान को पूछने जाते हैं। पानी में डाला न वह, भगवान को पूछने जाते हैं। प्रभु! यह साधु ऐसे कैसे? कितने भव में मोक्ष जायेंगे? महाराज! भगवान कहते हैं कि यह इस भव में मोक्ष जायेंगे। अभी इन्हें राग आया है, परन्तु सेवा करो। ... समझ में आया? इस भव में मोक्ष जायेंगे, ... जायेंगे। अपने यह नहीं लेना, परन्तु जिसने आत्मा की नौका प्रगट की, द्रव्यस्वभाव में 'नाव तरे रे मोरी नाव तरे, मुनिवर जलमां खेल करे।' अन्तर आनन्द में खेल करे। उसकी मुक्ति नजदीक में है। उसका नाम अतिमुक्त। अतिमुक्त नाम ही यह है। रचा हुआ सब रचा हुआ। लोगों को कठिन पड़े, कठोर पड़े। सेठ लोगों कों... भाई! ऐसा नहीं होता, बापू! वह चीज़ ही ऐसी नहीं होती। यह तो भगवान आत्मा को यहाँ नौका कहा है। आहाहा! हाँ, पात्र-फात्र कहाँ थे और ... कहाँ थे? भाई! और भगवान आत्मा त्रिकाली जन्मार्णव को उल्लंघ जाने में नौकारूप **उस शुद्ध तत्त्व को...** आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय, जो श्रद्धा सम्यक् निर्विकल्प का आश्रय, ऐसा जो शुद्ध तत्त्व, वह नौका समान है, अर्थात् कि उस तत्त्व का आश्रय लेनेवाले को संसार नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया?

भाषा सरल है, हों! शोभालालजी! अब थोड़ा तुम्हारे रखना पड़ेगा न! हमारे गुजराती में क्या ऐसा... सेठ को हिन्दी में (चाहिए) हो तो आना पड़ेगा पहले। नये हों

तो पहले समझने का अभ्यास करना। जन्मार्णव... कैलाशचन्दजी ने लिखा था एक बार। कैलाशचन्दजी ने बड़ा लेख लिखा था। वहाँ जाना हो तो उनकी भाषा में समझना। अपने गुजराती समझकर वहाँ जाना, ऐसा लिखा है। (उनसे) हिन्दी बुलाना, वह ठीक नहीं, ऐसा लिखा है। यह तो लेख था। आहाहा! भगवान! कहते हैं कि स्वयं नौका तिरती है, आत्मा ऐसे तिरता है, ऐसा कहते हैं। तीनों काल में भगवान राग से, पर से, संसार से तिरता—भिन्न है। आहाहा! और जिसने उसका आश्रय लिया, उसे पर्याय में मोक्षमार्ग की नौका प्रगट हुई। उसे अज्ञान का और राग का अन्धकार नाश होकर अल्पकाल में मुक्ति होगी। आहाहा! समझ में आया? महाभगवान कल्पवृक्ष, कामधेनु... आहाहा! चिन्तामणि रत्न... आहाहा! तीनों काल को जाननेवाला, वह सर्वज्ञ भगवान। कलिकाल सर्वज्ञ नहीं, परन्तु तीनों काल का जाननेवाला सर्वज्ञ। समझ में आया? आहाहा! भाषा भी तो देखो! परन्तु कितनी की है! मुनियों को लगता है कि आहाहा! किस प्रकार रखना जगत के समक्ष! ए नवरंगभाई! हाँ, शब्द कम पड़े। भाई ने लिखा है, हिम्मतभाई ने लिखा है सामने प्रस्तावना में। आहाहा! यह १७४ हुआ। १७५ (कलश)।

**अभिनवमिदं पापं यायाः समग्रधियोऽपि ये,**
**विदधति परं ब्रूमः किं ते तपस्विन एव हि।**
**हृदि विलसितं शुद्धं ज्ञानं च पिण्ड-मनुत्तमं,**
**पदमिदमहो ज्ञात्वा भूयोऽपि यान्ति सरागताम्॥१७५॥**

आहाहा! अरेरे! मुनि! **श्लोकार्थः—हम पूछते हैं कि—जो समग्र बुद्धिमान...** बहुत बुद्धिवाले तुम सब जाननेवाले, ऐसा मानते हो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? हम मानो बहुत बुद्धिवाले हैं, बुद्धिवन्त हैं, विद्वान हैं, हमने बहुत शास्त्रों को जाना, इसलिए हम विद्वान हैं। अरे! ऐसे समग्र बुद्धिवाले **होने पर भी दूसरे को 'यह नवीन पाप कर' ऐसा उपदेश देते हैं,...** आहाहा! राग कर, तुझे लाभ होगा, ऐसा कहते हैं। यह वह तू कौन है? तपस्वी है? ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** लाभ करो ऐसा तो न कहे, पुण्य करो ऐसा कहे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो वह का वह हुआ। पुण्य कर, तुझे लाभ होगा। अरेरे! यह बुद्धिवाले बड़े! तूने यह क्या किया? ऐसा कहते हैं। बड़े-बड़े विद्वान बनकर (कहे),

नहीं, यह पुण्यपरिणाम करते-करते कल्याण होगा। व्यवहार क्रियाकाण्ड करते-करते, महाव्रत पालते हुए कल्याण होगा। महाराज! मूर्ख है? बुद्धिवाला कहकर तो मूर्ख सिद्ध किया है। वह भोला है, राजा व्यक्ति है, ऐसा नहीं कहते? अर्थात् मूर्ख कहा जाता है, इसका अर्थ (यह है)। यह राजा व्यक्ति है, भाई! अर्थात् इसक अर्थ, बिना भान का है। आहाहा! ऐसी बुद्धि तूने कही बहुत जानपने को... राग कहेंगे, पाठ में है न, '**सरागताम्**' अन्तिम शब्द है। मूल हेतु यह सिद्ध करना है। आहाहा!

अरे! बहुत बुद्धिवाला होने पर भी (कहे), यह नया पाप कर। अरे! पुण्य के राग को कर। यह तुझे क्या हुआ? मूलचन्दभाई! ऐसी बात है, भाई! साधु नाम धराकर, शास्त्र का जानपने का सार यह है। ऐ... राग करते-करते होगा। अरे! वस्तु का स्वरूप यह नहीं। समझ में आया? डालना है तो यह कि 'व्यवहार कर' ऐसा कहनेवाला तू ऐसी बुद्धिवाला क्या करता है तू यह? वीतराग भगवान आत्मा तीन लोक का नाथ... समझ में आया? कहेंगे। आहाहा! भगवान! हृदय में शुद्ध ज्ञान और सर्वोत्तम पदार्थ ऐसा लक्ष्य में तुझे आया होने पर भी, लक्ष्य में (अर्थात्) शास्त्र से जानने में, आया होने पर भी (कहे), यह राग करनेयोग्य है, पुण्य करनेयोग्य है। क्या कहता है तू यह? तेरा सिर घूम गया है? तपस्वी को कहते हैं। मोहनलालजी! आहाहा! तू भगवान का दास नहीं, राग का दास है। समझ में आया?

'तू नया पाप कर' ऐसा उपदेश (देनेवाले) **वे क्या वास्तव में तपस्वी हैं?** वे क्या कोई साधु हैं? ऐसा कहते हैं। मोक्षमार्ग कहना है न! निश्चय मोक्षमार्ग तो द्रव्य के आश्रय से वीतरागता हो, उस वीतरागता से मुक्ति होती है और यह तूने कहाँ से विपरीतता की? आहाहा! मूलचन्दभाई! यह सब सुना था अभी तक। यह सेठ ने कहाँ सुना है वहाँ? यह दान-बान दे, यह हो, तुम्हारा धर्मधुरन्धर... उसमें समाजभूषण करे, यहाँ धर्मधुरन्धर।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यही कहते हैं, परन्तु यह उपदेशक किसका तू? तू यह वीतराग के नाम का वेश तेरा नग्न और तू राग से लाभ मनावे, कौन है तू यह? तपस्वी है? ऐसा कहा, देखो न! **वे क्या वास्तव में तपस्वी हैं?** जेठाभाई! आहाहा!

भगवान! तेरे स्वरूप की स्थिति वीतरागस्वरूप ही है। 'जिन सो ही आत्मा...'

तो यह वीतराग की परिणति—जो वस्तु है, उसकी परिणति—द्वारा प्राप्त होता है, वह राग से प्राप्त होता नहीं। आहाहा! गजब... कहा है, हों! पहले आ गया है। व्यवहाररत्नत्रय नाममात्र, परन्तु अनन्त बार तूने सेवन किया है। ....में आ गया है। कथनमात्र, व्यवहाररत्नत्रय अर्थात् कथनमात्र। वस्तु है व्यवहार? वह निजघर की चीज़ है? परघर की चीज़ से निजघर मिलेगा? क्या कहता है तू यह? कौन है तू? वीतराग नाम धरावे और यह तो तू अज्ञान पाखण्ड सेवन करता है, ऐसा कहते हैं। भाई! यह क्या चीज़ है? वीतराग के वेश धारण किये, वीतराग का वेश लिया नग्नपना आदि। वस्त्र हो तो वीतराग का वेश भी नहीं। आहाहा! ऐ जयन्तीभाई! यह क्या कहते हैं?

अरे! तू राग की कणिका से भिन्न (है और कहे राग से) लाभ होता है, ऐसी प्ररूपणा का उपदेश वह तू तपस्वी है? या रागी है? आहाहा! उलाहना देते हैं, उलाहाना—ठपका। माँ कहे न लड़के को कि .... पागल है? यह मैं बैठी हूँ और तूफान करता है? इसी प्रकार भगवान यहाँ कहते हैं, आहाहा! मुनि, हों! ऐ! परमात्मा अन्दर विराजता है वीतराग। उसे तू राग के कारण लाभ होता है, ऐसा बताता है? क्या करता है तू यह? आहाहा! अमरचन्दभाई! आहाहा! व्यवहार आलोचना में आया था न भाई! विधि-निषेध। मश्करी करी है। व्यवहार आलोचना की मश्करी की है। ऐसा होता है और ऐसा करना और ऐसा नहीं करना, यह सब वस्तु कहाँ है? राग करना और अशुभराग टालना और शुभराग करना—यह वस्तु में कहाँ है? यह क्या तू...? समझ में आया?

अरेरे! **हम पूछते हैं...** आहाहा! **जो समग्र...** अर्थात् स्थूल **बुद्धिमान होने पर भी...** बहुत बुद्धि यह धारणा की। **दूसरे को 'यह नवीन पाप कर'...** अरे! तू राग कर और राग से तुझे लाभ होगा, ऐसा जो उपदेश है, वे वास्तव में मुनि हैं? आहाहा! समझ में आया? **अहो! खेद है कि वे हृदय में विलसित शुद्धज्ञानरूप और सर्वोत्तम पिण्डरूप इस पद को जानकर पुनः भी...** जानकर फिर से भी **सरागता को प्राप्त होते हैं।** अरे! राग से लाभ पावे (ऐसा कहे), क्या करता है तू यह? आहाहा! भगवान तो वीतरागमूर्ति है। वीतराग परिणति द्वारा उसे मुक्ति होती है। उसके बदले इस राग से होती है, मोक्ष के मार्ग दो, राग से होता है और वीतरागता से होता है... आहाहा! तू क्या कर रहा है? समझ में आया? जेठाभाई! ऐसा ही सब सुनने को मिलता है, यही सुना है। जादवजीभाई!

समझ में आया यह ? यह सब प्रमुख थे वहाँ। हाँ, ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो। शुभक्रिया सदाचरण करो और सदाचरण से... परन्तु सत् आचरण कहना किसे, यह खबर है तुझे ? सत्-आचरण, राग वह सत्-आचरण है ? वह तो असत् आचरण है। सत्-आचरण किसे कहते हैं ? सत् ऐसा भगवान त्रिकाली वीतरागमूर्ति में एकाग्रता का जो आचरण, उसे सत्-आचरण कहते हैं। रागभाव, वह सत्-आचरण है ? जेठाभाई कहे, हमको भी खबर नहीं थी। धीरुभाई ! आहाहा !

मुनिपना वस्तु एक है न अन्दर। आहाहा ! वीतरागभाव का... अरे ! **हृदय में विलसित शुद्धज्ञानरूप और सर्वोत्तम पिण्ड...** पदार्थ—बल जो बलवन्त चैतन्य प्रभु, उसे निर्बल, नालायक, पामर, राग, रंक से प्राप्ति होती है, (ऐसा) तू कहता है, यह क्या कर रहा है ? ऐसा कहते हैं। **फिर से जानकर...** (अर्थात्) लक्ष्य में है कि ऐसा है, ऐसा। जानकर... जाना है मस्तिष्क में। वह तो उसमें नहीं आता सर्वविशुद्ध में। आगे आता है न भाई ! जानकर भी शिवबुद्धि को पाता नहीं। है ? गुलाबचन्दभाई ! सर्वविशुद्ध अधिकार। ऐसा तुझे ख्याल—क्षयोपशम में आया, तो भी तू शिवबुद्धि को पाता नहीं। हाँ, मानसिक ख्याल में आया जरा ऐसा का ऐसा, वह क्षयोपशमभाव है, ऐसा कहते हैं। उसे उड़ाया है यहाँ। समझ में आया ? आहाहा ! **सर्वोत्तम पिण्डरूप...** पिण्ड अर्थात् पदार्थ अथवा बल। इस पद को जानकर, ऐसा तेरे ख्याल में—क्षयोपशम में आया है, परन्तु फिर से वापस गुलांट खाकर राग से लाभ होता है, (ऐसी) सरागता को प्राप्त करता है, (तो) तू मुनि नहीं, हों ! तू तपस्वी नहीं, तू संसारी मूढ़ है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

सर्वोत्तम प्रभु महा... यहाँ तो तत्त्व की—आत्मा की बात लेनी है न ! जो महाप्रभु चैतन्य वीतराग की कातली, अरे ! अतीन्द्रिय आनन्द का चूसना, उसे चूसने से अतीन्द्रिय आनन्द आवे। ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द राग से प्राप्त होता है—ऐसी बात तू करता है, क्या करता है तू यह ? आहाहा ! सेठ ! बाण मारे... अरे ! हमारे वीतराग पंथ में आकर, वीतराग की गद्दी पर बैठकर ऐसा धन्धा तेरा ? समझ में आया ? तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव, उनके मुनीम की गद्दी कैसी हो ? वह बैठा और ऐसी बातें करता है, वहाँ तेली के तेल जैसी ? समझ में आया ? आहाहा ! **सर्वोत्तम पिण्डरूप इस पद...** तेरे ख्याल में सुनकर आया है, तथापि तुझे रुचि बैठी नहीं। इसलिए **सरागता को प्राप्त करता है।** रागभाव को प्राप्त करता है, तू पापी है। तू तपस्वी और साधु नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

**भाद्र कृष्ण २, सोमवार, दिनांक - ०६-०९-१९७१**
**श्लोक-१७६-१७९ प्रवचन-११६**

नियमसार, परम आलोचना अधिकार, उसका १७६ कलश। आलोचना के चौथे भाग की गाथा है। उसके सब कलश हैं। कैसे हैं भाई को—राजमलजी को? चक्कर आये थे।... चक्कर आये थे दो बार। गिर गये वहाँ। गुनावाले राजमलजी।.... ऐसे सब निकले और गिर गये, चक्कर में गिर गये।.... ले गये ऐसे।... कैसे हैं? ....लालजी? ठीक हैं। कमजोरी हो गयी है, कमजोरी। कमजोरी है। १७६ कलश।

**जयति सहजं तत्त्वं तत्त्वेषु नित्य-मनाकुलं,**
**सतत-सुलभं भास्वत्सम्यग्दृशां समता-लयम्।**
**परम-कलया सार्धं वृद्धं प्रवृद्ध-गुणैर्निजैः,**
**स्फुटितसहजावस्थं लीनं महिम्नि निजेऽनिशम्॥१७६॥**

क्या कहते हैं? **श्लोकार्थः—तत्त्वों में वह सहज तत्त्व जयवन्त है...** सात तत्त्व है, उनमें पर्यायतत्त्व से यह द्रव्यतत्त्व सहज जयवन्त है, ऐसा कहते हैं। सात तत्त्वों में जीव की पर्याय एक समय की, अजीव, संवर, निर्जरा, बन्ध, आस्रव, मोक्ष आदि—उसमें एक तत्त्व परमतत्त्व निर्मल है। त्रिकाल ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, सात तत्त्व में वह एक ही तत्त्व निर्मल है। संवर, निर्जरा, मोक्ष भी निर्मल नहीं कहा। निर्मल कहा, परम निर्मल नहीं। समझ में आया? सहज तत्त्व... आहाहा! जयवन्त है। जो सदा अनाकुल है। नित्य भगवान आत्मा जो सम्यग्दर्शन का विषय है, सम्यग्दर्शन का ध्येय है, वह **सदा अनाकुल है...** त्रिकाली आनन्दस्वरूप है। आहाहा! करके यह करना है। लाख वाँचे, पढ़े, समझे, परन्तु त्रिकाली अनाकुल आनन्दकन्द पर दृष्टि देना और उसमें स्थिर होना, वह कर्तव्य है। आहाहा! समझ में आया?

**जो सदा अनाकुल है,...** आहाहा! जयवन्त है। कैसा जयवन्त है? कि त्रिकाल आनन्दरूप जयवन्त है। और **जो निरन्तर सुलभ है,...** आहाहा! पर के अभ्यास से वह

दुर्लभ दिखता है। अपना निज स्वभाव सत् है, वह सरल है, सर्वत्र उसकी प्राप्ति है। श्रीमद् में आता है, 'सरल है, सुलभ है।' दुर्लभरूप से माना है, ऐसा कहते हैं। भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु, निर्विकारी आनन्दस्वरूप, चैतन्यबिम्ब सतत् सुलभ है। आहाहा! अपना निज स्वभाव वह अपने को प्राप्त करने के लिये दुर्लभ कैसे हो? ऐसा कहते हैं। राग और रजकण को अपना करना हो तो वह दुर्लभ है। दुर्लभ नहीं, परन्तु अशक्य है। राग का कण, दया, दान, व्रत, गुरुभक्ति, (जिन)वाणी की भक्ति इत्यादि—वह राग का कण अपना करना, वह अशक्य है। कभी नहीं होगा। रजकण तो नहीं होगा, शरीर, वाणी, मन, लक्ष्मी आदि का एक रजकण भी आत्मा का नहीं होगा। क्योंकि उस भिन्न तत्त्व को अपना करना अशक्य है। राग और रजकण दोनों परवस्तु, उन्हें अपनी करना अशक्य है। परन्तु स्वयं अपना स्वरूप है, वह अशक्य कैसे हो? ऐसा कहते हैं। जिसकी नजर करने से, जो वस्तु पड़ी ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अन्तर्मुख ज्ञायकभाव यह, यह है, वह जयवन्त है, ऐसा कहा, आनन्द है ऐसा कहा, सरल है, सहज है, सुलभ है। अन्तर ज्ञान... 'यह ज्ञान है, ज्ञान' ऐसी जो चीज़ है, उसे पाना तो सुलभ है। आहाहा! समझ में आया? **जो प्रकाशमान है,...** वह प्रकाशवन्त है अकेला ज्ञान का नूर, ज्ञान का पूर प्रभु, चैतन्य का पुंज, चैतन्य का पुंज—प्रकाश का पुंज है। ओहो! **जो सम्यग्दृष्टियों को समता का घर है,...** जिसे देखा है, उसे समता का घर है, ऐसा कहते हैं। जिसे खबर नहीं, उसे समता का घर कहाँ से आवे? ऐसा कहते हैं। यह आत्मा अकेला समता का पिण्ड है, वह वीतरागमूर्ति आत्मा, अनादि-अनन्त वीतरागमूर्ति आत्मा... आहाहा! ऐसा सम्यग्दृष्टि को भासित हुआ है। अन्तर में देखा और जाना है, इसलिए उसे समता का घर है। इसलिए उसे समता का स्थान वह है। समझ में आया? आहाहा! आत्मा के गीत!

**जो परम कला सहित विकसित निज गुणों से प्रफुल्लित (खिला हुआ) है,...** त्रिकाल हो अन्दर। परमकला अन्दर की। जो कला आती है, वह प्रगट हुई है। वह परमकला अन्दर ज्ञान और आनन्द की कला से... जैसे मोर खिले, वैसी खिली हुई शक्ति ही ऐसी पड़ी है, कहते हैं। **जो परम कलासहित विकसित निज गुणों से...** अपने अनन्त गुणें से प्रगटरूप—प्रगट व्यक्तरूप—विकसित—खिला हुआ ही है अन्दर।

आहाहा! समझ में आया? अरे! एक भी बोल यथार्थ द्रव्य का पकड़े (तो) निपटारा हो जाये, लाख बात दूसरी हो कुछ। भगवान आत्मा, कहते हैं, अनन्त गुणों से खिला हुआ अर्थात् अनन्त गुण विकसित पड़े ही हैं, ऐसा कहते हैं। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता—ऐसे अनन्त गुण की खिली हुई शक्ति सब प्रगट है, ऐसा कहते हैं।

**जिसकी सहज अवस्था स्फुटित (-प्रकटित) है...** अवस्था शब्द से त्रिकाली वस्तु। अवस्था अर्थात् पर्याय नहीं लेना। जिसका अस्तित्व—अव-स्थ, अपना निश्चय सहज स्थ—रहनापना है, वह प्रगट ही है। आहाहा! समझ में आया? जिसकी सहज शक्ति—स्वभाव प्रगट ही है, पूरा प्रगट भगवान है। इसे विश्वास में आना चाहिए, ऐसा कहते हैं, तो प्रगट है, ऐसा भासित हो। विश्वास में न आवे, राग और एक समय की पर्याय का विश्वास है, उसे 'यह प्रगट है', ऐसा विश्वास कैसे आवे? आहाहा! देखो न! एक मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव की टीका! दिगम्बर सन्त, वनवासी। सिद्ध के साथ बातें करते हैं। प्रभु! मैं तो थोड़े काल में सिद्ध होकर वहाँ आऊँगा। प्रभु! परन्तु मुझमें 'तुम पूर्ण हो' यह मुझे एक बार अनुभव में आया, इसलिए तेरे समीप में—नजदीक में आनेवाला हूँ। समझ में आया?

**और जो निरन्तर निज महिमा में लीन है।** आहाहा! उसकी महिमा क्या? कहते हैं। सहजात्मस्वरूप... सहजात्मस्वरूप... स्वाभाविकस्वरूप... स्वाभाविक आनन्द और निर्विकल्प पिण्ड की महिमा में वह लीन है, उसकी महिमा में ही वह स्थित है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह बाहर आते नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसे, कहते हैं कि पर की कोई महिमा की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की महिमा करे तो यह महिमावाली वस्तु प्रगट हो, ऐसी वह चीज़ नहीं। वह चीज़ तो निज महिमा में ही लीन पड़ी है। आहाहा! उसके सामने देखने से वह निज महिमावाला जो तत्त्व है, उसे दूसरे किसी तत्त्व की महिमा की कुछ आवश्यकता नहीं। आहाहा! सच्चिदानन्द निर्मलानन्द प्रभु अपनी परमेश्वरता से शोभित महिमा में निरन्तर लीन है। आहाहा! वस्तुस्वभाव एक समय की पर्यायरहित है, रागरहित तो है ही, राग तो कहीं रह गया, परन्तु जो पर्याय—अवस्था त्रिकाली की ओर झुकती है, उस पर्यायरहित वह तत्त्व है। समझ में आया?

परिपूर्ण लक्ष्मी, स्वरूप की लक्ष्मी की महिमा में परिपूर्ण लीन है। महिमा में लीन... **निरन्तर निज महिमा में लीन...** ऐसा है न? '**अनिशम्**' पहले आया था। '**सतत सुलभं**' यहाँ '**अनिशम्**' निरन्तर निजमहिमा... ओहो! केवलज्ञान की महिमा गाते हैं लोग। यह तो ऐसी-ऐसी अनन्त-अनन्त केवलज्ञान की पर्याय का पिण्ड प्रभु, ऐसी निज महिमा में लवलीन-लीन है स्वयं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे तत्त्व को दृष्टि में, ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय बनाना, इसके लिये यह कहा जाता है। समझ में आया? प्रथम में प्रथम कर्तव्य यह है। १७६ हुआ न। १७७ (कलश)।

**सहज-परमं तत्त्वं तत्त्वेषु सप्तसु निर्मलं,**
**सकलविमलज्ञानावासं निरावरणं शिवम्।**
**विशदविशदं नित्यं बाह्य-प्रपञ्च-पराङ्मुखं,**
**किमपि मनसां वाचां दूरं मुने-रपि तन्नुमः ॥१७७॥**

**श्लोकार्थः—सात तत्त्वों में...** जो **सहज परम तत्त्व निर्मल है,...** आहाहा! देखो! उन तत्त्वों में सहजतत्त्व जयवन्त है, ऐसा कहा था। **सात तत्त्वों में सहज परम तत्त्व निर्मल है,...** ऐसा कहते हैं। मोक्ष की पर्याय से भी यह जो त्रिकाली तत्त्व है, वह परम... परम... परम निर्मल, परम तत्त्व निर्मल है। आहाहा! स्वभाव है न! स्वभाव की महिमा क्या करे? उसे महिमा नहीं होती? ऐसा कहते हैं। आहाहा! एक समय का केवलज्ञान, उसकी महिमा दुनिया गाये... ओहोहो! केवलज्ञान एक समय की पर्याय तीन काल—तीन लोक को जाने एक समय में। ऐसी-ऐसी तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त पर्याय का एक गुण ज्ञान, ऐसी एक-एक श्रद्धा की पर्याय, ऐसी अनन्त का एक श्रद्धागुण; ऐसे अनन्त गुण के माहात्म्यवाला पूरा तत्त्व। आहाहा! समझ में आया?

**सात तत्त्वों में सहज परम तत्त्व...** स्वाभाविक परमतत्त्व... वह संवर, निर्जरादि सहज नहीं, ऐसा। वह तो प्रगट होते हैं, प्रगट होते हैं। वह तो स्वाभाविक त्रिकाल है। समझ में आया? प्रगट हो, तब उसे तत्त्व कहना। यह तो त्रिकाली प्रगटरूप त्रिकाल निर्मलानन्द है। आहाहा! आत्मा क्या चीज़ है, उसके स्वभाव के गीत सुने नहीं। यह दया करो और व्रत पालो और अपवास करो। ऐ सेठ! दान करो, ऐसा कहे, लो। अनन्त-अनन्त निर्मल पर्याय का दान आत्मा अपनी पर्याय में दे, निर्मल वीतरागी पर्याय

का, हों! ऐसी अनन्त पर्याय का दानरूप सम्प्रदान नाम का गुण में पड़ा है। आहाहा! 'सम्प्रदान' नाम का गुण है न आत्मा में। 'सम्प्रदान' ४७ शक्ति में आता है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। राग का दान, वह कहीं वस्तु ही नहीं। पर का दान, वह आत्मा दे नहीं सकता। परन्तु आत्मा की वीतरागी पर्याय प्रगट करके स्वयं अपने को दे, उससे भी अनन्तगुणा.... अनन्त-अनन्तगुणा दान सम्प्रदानगुण में पड़ा है। ऐसा वह तत्त्व निर्मल है। आहाहा!

**सकल-विमल ( सर्वथा विमल ) ज्ञान का आवास है,...** सर्वथा निर्मल ज्ञान का क्षेत्र है। परम ज्ञान का क्षेत्र (अर्थात्) परम ज्ञान वहाँ रहता है, ऐसा कहते हैं। वह राग का आवास नहीं, पर्याय का आवास नहीं। आहाहा! रहनेवाले को रहने का स्थान वह है, ऐसा कहते हैं। आता है न निर्जरा में—निर्जरा अधिकार में? 'स्थाता का स्थान' (समयसार गाथा २०३)। ओहोहो! कहते हैं... यहाँ तो कहते हैं कि विमल ज्ञान का आवास त्रिकाल है। अब जो जीव, स्थिर जिसे रहना हो, उस स्थान में, तो वह स्थिर रहने का स्थाता का स्थान तो आत्मा है, रहनेयोग्य आवास वह है। आहाहा! यह मकान बनाकर रहते हैं न! मकान बनाये, यहाँ हमारे रहने के घर के मकान हुए। घर का घर कहना। भूखे-प्यासे परन्तु घर हो तो पड़े रहें, ऐसी बातें लोग करते हैं। ओटलो अर्थात् घर। मानते हैं ऐसा। ऐसा कि अपने मकान घर का हो तो भूख-प्यासे भी पड़े रहें, मकान घर का हो तो। ऐसी महिलायें बातें करें, फुरसत में हो न जरा।

कुछ मकान बनाया हो २५-५० हजार का, २५-५० हजार का बनाया हो, लाख-दो लाख का। ऐसी बातें करे। ओहो! अन्त में तो घर में रहने है न! घर हो न घर का, तो भूखे-प्यासे, रोगी हों तो पड़े रहें। यह रहने का निवास है अज्ञानी का। वह कहाँ रह सके, ऐसा है वहाँ? भरे घर में से मरकर जाये श्मशान में। शरीर। शरीर... वह (आत्मा) तो कहीं चला जाये। आहाहा! जरी के कपड़े, जवाहरात साथ में, बिछाये पलंग पर सोता हो, वह मरकर श्मशान में जाये शरीर। और वह (आत्मा) मरकर कहाँ जाये? कौआ-कुत्ता हो। ऐसी ममता में मरे, कौआ हो, कुत्ता हो, कंथवा हो। आहाहा! यह तो आवास ज्ञान का त्रिकाल और उसे जिसने दृष्टि में लिया, उसे रहने के ज्ञान में स्थिर हो गया है। आहाहा!

**निरावरण है...** भगवान आत्मा। आवरण कैसा? वस्तु—तत्त्व जो शक्ति के समूह का पिण्ड, उसे आवरण क्या? वह तो वस्तु है, निरावरण है। ज्ञानरस, आनन्दरस, शान्तरस (इत्यादि) ऐसी शक्तियाँ जो पूरी, उसका एकरूप निरावरण है। समझ में आया? ऐसे निरावरण तत्त्व को पकड़ना और स्थिर होना, वह दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। बाकी सब विकल्प की क्रिया यह और वह। आहाहा! भगवान तो ऐसा कहते हैं कि मेरा भजन करना, वह तुझे छोड़नेयोग्य है। ऐई! आहाहा! हो सही व्यवहार, परन्तु वह व्यवहार छोड़नेयोग्य है, कहते हैं। आहाहा! गजब बात है!

**शिव है...** वह भगवान शिव—कल्याणस्वरूप ही है। कल्याण करना, वह तो पर्याय में है। आहाहा! यह तो कल्याणस्वरूप ही है। नमोत्थुणं में आता है 'सिवमयलमरुयमणंत...' उसमें भी आता है, अपने भी आता है। परन्तु उन लोगों को यह कहाँ... नमोत्थुणं में आता है। नमोत्थुणं में पाठ आता है, प्रतिक्रमण में दिगम्बर में। 'नमोत्थुणं अरिहंताणं' ऐसा नहीं बोला जाता? .... उसमें अपने में आता है। 'सिवमयलमरुयमणंत मक्खयमव्वाबाह...' नमोत्थुणं में आता है। हे भगवान! आप शिवस्वरूप हो, कल्याणस्वरूप। शिव अर्थात् कल्याण। 'शिवं अयं अचलं' है शब्द। अचल है। अयं... 'शिवमयलयमरुयमणंत...' यह जन्म-मरण कुछ है ही नहीं आपको। अकेला भगवान आत्मा... 'अनन्त अव्याबाध' ऐसा शब्द है।

'अणंत अव्याबाह अपुणराविति...' फिर से आपका गमन संसार में है नहीं। नमोत्थुणं किया था या नहीं? अर्थ आते थे? अर्थ आते थे? ऐसा पूछा। ऐसे के ऐसे पहाड़े बोलते थे। णमोत्थुणं सामायिक में आता है। सामायिक में आता है। सामायिक का पाठ। पहला 'णमो अरिहंताणं,... तस्सउत्तरि,... लोगस्स... और सातवाँ णमोत्थुणं—सात पाठ आते हैं। सामायिक में आते हैं। सामायिक करे, उसे खबर पड़े न? सामायिकवाले को प्रतिदिन आवे। कायम सामायिक करते हों सात पाठ पहले बोले। णमोत्थुणं अरिहंताणं, भगवंताणं, आईगराणं, तित्थयराणं, सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिस-सीहाणं, पुरिस-वरपुंडरीयाणं... शिवमयलमरुयमणंत-मक्खयमव्वाबाहमपुरणराविति, सिद्धिगई नामधेयं ठाणं संपत्ताणं, णमो जिणाणं... समझ में आया?

**मुमुक्षु :** बँध गये हैं, छोड़ने की बात नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसे छोड़ने की कहाँ कोई भान है? पहाड़े बोले। भगवान आत्मा तो कल्याण की मूर्ति है। समझ में आया? जब-जब नजर डालो, तब उसमें से कल्याण प्रगट हो, ऐसा कहते हैं। ऐसा कल्याणस्वरूप है। निर्विकल्प, निराकुल आनन्द का धाम ऐसा शिव स्वयं मोक्षस्वरूप ही है।

**स्पष्ट-स्पष्ट है,... 'विशद'** कहा न? **'विशदविशदं'** स्पष्ट-स्पष्ट (अर्थात्) प्रत्यक्ष है। आहाहा! वस्तु प्रत्यक्ष ही है और पर्याय में प्रत्यक्ष हो, तब 'यह प्रत्यक्ष है' ऐसा भान होता है। समझ में आया? मति-श्रुतज्ञान में, मति-श्रुतज्ञान वस्तु को प्रत्यक्ष जाने, राग बिना, निमित्त के अवलम्बन बिना, सम्यग्ज्ञान की मति-श्रुतपर्याय आत्मा को प्रत्यक्ष जाने। तो कहते हैं, यह तो, प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष वस्तु है ही यह तो। तब उसमें से प्रत्यक्ष का अंश आया, ऐसा। समझ में आया? आहाहा! मति-श्रुतज्ञान में चैतन्य के स्वसंवेदन प्रत्यक्षपना हुआ, तब उसमें ज्ञात हुआ कि यह वस्तु तो प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष ही है। ऐसी प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष न हो तो आंशिक प्रत्यक्षपना आया कहाँ से? ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात है! हीरालालजी! समझ में आया?

प्रत्यक्षपना, सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञान में प्रत्यक्षपना हुआ (कि) यह आत्मा राग और निमित्त और मन के अवलम्बन बिना ज्ञात हो, ऐसी चीज़ है। ऐसा जब मति-श्रुत से जाना (कि) यह तो स्पष्ट प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष ही है। प्रत्यक्ष के अंश में जब आया तो वह वस्तु तो पूरी प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष ही है, ऐसा। आहाहा! मुनि ने भी किस प्रकार से कहा है न! आहाहा! अब ऐसी बात आती है न उसमें—पद्मनन्दि में। ऐसा आत्मा सुनना, ऐसा आत्मा पूछना, ऐसे आत्मा का चिन्तवन करना, ऐसे आत्मा का वाँचन करना, ऐसी आत्मा की वाँचणी देना। बहुत बोल आते हैं। योगसार में आता हैं, पद्मनन्दि में आते हैं। पद्मनन्दि में थोड़े आते हैं, उसमें अधिक हैं। समझ में आया? यह भगवान आत्मा अध्यासना, अभ्यासना, विचारना, चिन्तवन करना, ध्याना, सुनना, कहना, पूछना। आहाहा! पूर्ण प्रत्यक्ष है, यह आंशिक प्रत्यक्ष है न। यह आंशिक प्रत्यक्ष... नहीं, वह पूरी चीज़ ही प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष थी तो आंशिक प्रत्यक्षपना प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं। कहीं बाहर से आया नहीं। समझ में आया? आहाहा!

स्पष्ट—'**विशद**'—स्पष्ट। वह **नित्य है...** शाश्वत् तत्त्व है। मोक्ष और संवर-

निर्जरा तो बदलते हैं, नये (होते हैं), वह कहीं कायम तत्त्व नहीं है। कहो, मोक्ष की पर्याय भी कायम तत्त्व नहीं। एक समय की पर्याय है। आगे आ गया है ५४ कलश में। सात तत्त्व में दूसरे सब तत्त्व नाशवान हैं। ५४ कलश में आ गया। वहाँ भी पहले कहा जैतपुर। स्वागत... दस हजार लोग। पहले यह कहा। सब पर्याय नाशवान है। चाहे तो संवर-निर्जरा और मोक्ष हो, एक समय रहनेवाली, इसलिए नाशवान है। भगवान त्रिकाली चीज़ अविनाशी है। समझ में आया? आहाहा! अब यह शरीर और स्त्री-पुत्र तो कहीं रह गये। परन्तु लगा पड़ा है न! किसीकी चीज़ है, चोर पकड़कर बैठा है...। चोर... चोर। यह मेरी इज्जत, यह मेरे पुत्र, यह हमारे मकान, यह हमारा फर्नीचर। घरबखरी समझते हो? फर्नीचर। फर्नीचर डालते हैं या नहीं? धूल भी नहीं। चोर है...! किसी की वहाँ चीज़ है उसमें तू बैठा....? यह कहाँ से आया तेरा? तेरा भगवान तो अन्दर नित्यानन्द पड़ा है। आहाहा! तेरी कहने के लिये, तेरी मानने के लिये वह चीज़ तो त्रिकाल पड़ी है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** यह तो पर्याय अनित्य....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अनित्य नहीं, पर। (अपनी) पर्याय अनित्य, वह तो अनित्य (और) नित्य सब पर है। उसके साथ कुछ सम्बन्ध है नहीं। आहाहा!

**नित्य है...** कायम टिकता तत्त्व प्रभु तेरा है, कहते हैं। **बाह्य प्रपंच से पराङ्मुख है...** लो। यह सब बाह्य के प्रपंच यह धन्धा और पानी, रिपोर्ट लिखना, पत्र लिखना, बराबर छाप लगाना और अपने नाम की छाप लगावे ऐसे, लिखो... रिपोर्ट करते हैं न। सब प्रपंच है। उससे तो तत्त्व पराङ्मुख है। **और मुनि को भी मन से तथा वाणी से अति दूर है;...** वाणी और मन से दूर है। दूर कहीं... यह क्रिया, वाणी, यह क्रिया हो, उसका करे न? मन और वाणी से अति दूर है। मन को संकल्प, वाणी, उससे तो कहीं अति दूर, ऐसा। वह तो कहीं दूर रह गया। आहाहा! पर्याय से तो दूर, अपनी पर्याय से तो दूर, परन्तु बाह्य प्रपंच से अति दूर। आहाहा! मन और वाणी से अति दूर।

ओहोहो! मुनिराज कहते हैं, **उसे हम नमन करते हैं।** ऐसा जो भगवान तत्त्व... आहाहा! उसका हम परिणमन करते हैं, यह नमन करते हैं। समझ में आया? **'उसे हम'**

ऐसा है न ? '**मुनेरपि... मुनेरपि**' है न... मुनि को भी... मुनि को भी ऐसा मन से, वाणी से अगोचर है। क्रिया को क्या करना ? '**मुनेरपि**', ऐसा। '**तन्नुमः**' उसे हम नमन करते हैं। आहाहा! अनुभव से दूर है। अनुभव है, वह पर्याय है, उससे दूर है। यह ३८ (गाथा के ५४वें कलश) में आ गया। संवर-निर्जरा की पर्याय से दूर है। आहाहा! नाश पानेयोग्य सात तत्त्वों से भिन्न है। है न पहले, देखो! कहाँ? ३८, ३८ (गाथा का कलश ५४)।

**सर्व तत्त्वों में जो एक सार है, जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है।** मोक्ष और संवर और अनुभूति से दूर है। यह गजब है न! मोक्ष के मार्ग से दूर है। क्या कहते हैं ? अन्तर—वह दूर अनन्तगुना... आहाहा! दो के बीच में अभाव है। द्रव्य और पर्याय—दो के बीच में अभाव है। आहाहा! वीतरागी तत्त्व, परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने ऐसा जो कहा, वह लोगों के कान में भी न पड़े वह कब समझे और कब जाये आत्मा में ? भटक मरने के रास्ते में जिन्दगी बितावे। यह प्रभु! तेरे लक्षण देख न! नष्ट होनेयोग्य (भावों) से दूर... अनुभव नाश पानेयोग्य है, एक समय की पर्याय है। आहाहा! अति दूर... वाणी और मन से तो अति दूर। आहाहा! परवस्तु... राग से अति दूर। आहाहा! यह समुच्चय कहा है। सात तत्त्व से दूर... वास्तव में तो संवर, निर्जरा, मोक्ष से दूर, आस्रव और पुण्य-पाप से तो अति दूर है। आहाहा! १७७ (कलश) हुआ। १७८।

**जयति शान्तरसामृतवारिधि-**
**प्रतिदिनोदयचारुहिमद्युतिः।**
**अतुलबोधदिवाकरदीधिति-**
**प्रहतमोहतमस्समितिर्जिनः॥१७८॥**

आहाहा! हे जिन! ऐसा करके वीतराग की (बात करते हैं)। **श्लोकार्थः—जो (जिन) शान्तरसरूपी...** यह आया न! **अमृत के समुद्र को (उछालने के लिए)...** आहाहा! पानी का समुद्र जब उछले, वह चन्द्रमा के पूर्णिमा के काल में उछलता है। चन्द्र जब सोलह कला से खिले, चन्द्र जब सोलह कला से पूर्णिमा के दिन खिले, पूर्णिमा के दिन खिले। उसके कारण, कहते हैं, समुद्र भी खिल उठता है, ऐसे उछल जाता है। ज्वार के भरपूर प्रवाह में लोटमलोट होता है वहाँ तो। आहाहा! यहाँ पोरबन्दर

(में) होता है। एक बार गये थे। दो-तीन बार गये थे वहाँ। पूर्णिमा के दिन तो ऐसे तीन-चार आदमी आगे चले जायें और तीन-चार सिर डूब जाए उतना पानी आवे।

उसी प्रकार भगवान आत्मा शान्तरसरूपी अमृत का समुद्र अर्थात् वह तो अकषायरस का समुद्र है। भगवान आत्मा वीतरागरस से भरपूर है, अकषायस्वभाव का समुद्र है। उसे उछालने के लिये... लहर मारे पानी का, चन्द्रमा उगे पूर्णिमा का तो लहर मारे। उसके लिये **प्रतिदिन उदयमान सुन्दर चन्द्र समान है...** आहाहा! वह तो पूर्णिमा को एक ही दिन। आहाहा! मुनियों को भी... पूर्णिमा के दिन तो एक समय में सोलह कला खिले, दूसरे समय में घटे। आहाहा! यह **प्रतिदिन उदयमान सुन्दर चन्द्र समान है...** आहाहा! परम शान्ति को उछालने के लिये—ज्वार लाने के लिये, आहाहा! जिसका स्वभाव चन्द्र—सुन्दर चन्द्र समान है, वह जिन जयवन्त है, ऐसा कहना है न मूल। वह जयवन्त जिन, बाह्य जिन भी प्रगट जयवन्त है, अन्तर का जिनस्वरूप भी जयवन्त वर्तता है। आहाहा!

अरे! विश्वास ला... विश्वास ला। मेरा भगवान परिपूर्ण शान्तरस से भरपूर है। ऐसा भगवान आत्मा, उसकी नजर करने से, वह पूर्णिमा का चन्द्र जैसे उगे और समुद्र उछाला मारे, उसी प्रकार भगवान आत्मा शान्तरस के उछाले का कारण है। ज्वार लावे शान्तरस का। आहाहा! पुण्य और पाप के विकल्प लावे, वह उसमें है नहीं। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस भाव का उछाला उसमें नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! हाँ, परन्तु वह कहाँ है ? यह तो कहा। प्रभु! तेरी प्रभुता ऐसी है कि जहाँ उसकी नजर पड़ी, वहाँ वह पर्याय में, जैसे वह पूर्णिमा का चन्द्र उग्र और समुद्र उछले, वैसे नजर पड़ने से वह उछल जाता है, ऐसा कहते हैं। शान्तरस का ज्वार आता है। आहाहा!

अरे! इसके गीत भी सुने नहीं इसने, हों! आहाहा! विवाह में बहुत गाये हों। मोतियों से थाल भरे... थाल भरे रे सग मोतिये, सग मोतिये, हों! भले वह एक भी मोती न हो घर में। परन्तु थाल भरे सग मोतिये, वापस, ऐसा। थाल पूरा ऐसा... ऐसा ठेठ तक सग (ठसाठस) मोतियों से, उसी प्रकार आत्मा ठसाठस मोतियों से—आनन्द से भरपूर, शान्ति से भरा है। आहाहा! ऐसा वह थाल है। उसमें भी है न। 'हरखे वधावुं...' ऐसा

कुछ आता है न। बाईयों को बहुत आता हो। 'थाळ भर्यो रे सग मोतिअे रे।' नहीं आता? हरखे वधावुं, ऐसे यह हर्ष से बधाऊँ अन्दर, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

वीतरागी शान्तरस की परिणति द्वारा, ऐसा शान्तरस जिसमें से उछलकर आया, उसे मैं सम्मान करता हूँ। आहाहा! समझ में आया? ऐसी कहाँ से धर्मकथा आयी? यह व्रत करना, अपवास करना, ओळी करना, एकबार करना, एक बैठक में करना... क्या कहलाता है? आसन। आहाहा! वह तो राग की मन्दता है, होता है, वह दूसरी बात है, परन्तु वह कोई वस्तु है, ऐसा नहीं। उसे ऐसा भाव हो राग मन्द, तो जानना चाहिए कि यह तो पुण्य है। समझ में आया? परन्तु जिसमें पवित्रता भरी है, उसका जहाँ शरण और आश्रय लिया, पवित्रता की उछाला आवें पर्याय में उसका नाम धर्म है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! छोळुं नहीं कहते? उछाल। दो-दो मनुष्य डूबे, तीन-तीन मनुष्य डूबे समुद्र में पानी टकराये हों, ज्वार के दिन। बाढ़... बाढ़... समुद्र की बाढ़ (ज्वार)।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कौन कहता है? किसने किया। किया नहीं इसने। वह तो आत्मा के आनन्द में रहे तो। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में इतने लवलीन, अतीन्द्रिय स्वाद में, भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, उसे उछालकर पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द इतना आया कि इच्छा ही उत्पन्न नहीं हुई। आहार की इच्छा नहीं हुई, तब आहार नहीं आया, इसलिए उपवास किया कहा जाता है। ऐसी वस्तु है। अतीन्द्रिय आनन्द का नशा चढ़ गया है अन्दर। समझ में नहीं आया? तुम्हारे घर में स्त्रियाँ तो सब वहाँ प्रमुख थीं, नहीं? ऐसा सुना था। यहाँ अपने को कहाँ खबर थी? कोई बात करता था। मूलचन्दभाई के घर में महिलायें सामने। चन्दा करना... आहाहा! यह तो पहले हो तो सबको हो न। उसमें क्या है? यह तो सर्वत्र ही होता है न! उसमें क्या है? आहाहा! ओहोहो! मुनि ने भी... आनन्द में आ गये हैं न! देखो न! आहाहा! प्रभु! तेरा स्वरूप तो अतीन्द्रिय आनन्द को उछाले, ऐसा तू चन्द्रमा समान है। समझ में आया?

**और जिसने अतुल ज्ञानरूपी सूर्य की किरणों से...** आहाहा! **मोहतिमिर के समूह का नाश किया है,...** जिन ने नाश किया है और आत्मा में वह है नहीं। ऐसा कहकर आत्मा को भी जिन कहा जाता है। **अतुल ज्ञानरूपी सूर्य की किरणों से...**

मोहतिमिर का नाश किया है, **वह जिन जयवन्त हैं।** ऐसा जो भगवान आत्मा पूर्ण जिनस्वरूप जयवन्त वर्तता है। 'जिन सो ही आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, इसी वचन से समझ ले, जिन प्रवचन का मर्म।' आहाहा! (कलश) १७९।

**विजितजन्मजरामृतिसञ्चयः प्रहतदारुणरागकदम्बकः।**
**अघमहातिमिरव्रजभानुमान् जयति यः परमात्मपदस्थितः ॥१७९॥**

यह तो 'है, है', उसमें थोड़ा शब्दफेर है। शास्त्र की भाषा से तो समझ में आये ऐसा है। दृष्टान्त कोई आवे तो न समझ में आये।

**श्लोकार्थः—जिसने जन्म-जरा-मृत्यु के समूह को जीत लिया है,...** आहाहा! जिसके स्वरूप में जन्म-जरा और मृत्यु तीन काल में नहीं। आहाहा! जन्म-जरा और मृत्यु जिसे चीज़ में नहीं। आहाहा! जिस चीज को जन्म-जरा-मरण स्पर्शे नहीं, ऐसा जो भगवान आत्मा... **जिसने दारुण राग के समूह का हनन कर दिया है,...** बाहर में भी लिया जाता है कि जिसने आत्मा के आश्रय से कठोर रागादि को नष्ट कर जिसने वीतरागता प्रगट की है और भगवान आत्मारूप से लो तो उसे राग का समूह है ही नहीं। है नहीं अन्दर में, ऐसे भगवान आत्मा का शरण लेने से राग का नाश हो जाता है।

**जो पापरूपी महा अन्धकार के समूह के लिए सूर्य समान है...** सूर्य उगे और अन्धकार रहे? एक दृष्टान्त देते थे भाई एक बार। पण्डितजी, नहीं? जामनगर। लालन। लालन देते थे। भाई! अन्धकार और सूर्य को—दोनों को विवाद उठा। कोर्ट में अन्धकार फरियाद करने गया कि हमको आने नहीं देता। तो आओ दोनों साथ में, तुम्हारा फैसला कर दें। कोर्ट में दोनों साथ आओ। परन्तु दोनों (इकट्ठे) कहाँ से हों? सूर्य हो, वहाँ अन्धकार नहीं। अब फैसला कर दें, जज कहे, परन्तु दोनों साथ आना। तुम्हारी दलील तो करने आओ। यह सूर्य मुझे आने नहीं देता, अन्धकार कहता है। साथ में तो आओ। परन्तु साथ में कहाँ से आवे? सूर्य हो, वहाँ अन्धकार नहीं और अन्धकार हो, वहाँ सूर्य नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **पापरूपी महा अन्धकार के समूह के लिए...** वह ढ़ेर, हों! **सूर्य समान है...** आहाहा! **तथा जो परमात्मपद में स्थित है,...** अपना निजस्वरूप ही त्रिकाल

परमात्मस्वरूप ही है। साक्षात् प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष परमात्मा है वह। समझ में आया? उसमें जो स्थित है। आहाहा! **वह जयवन्त है।** जय हो उसकी, जयवन्त हो उसकी। जगत में उसकी जय हो। और जयवन्त हो तो वह विराजमान भगवान आत्मा। आहाहा! उसके ऊपर दृष्टि करना, उसका विश्वास लाना, उसकी दृष्टिसहित की स्थिरता करना और उसमें चारित्र में भी उग्र—जोर से पुरुषार्थ करके स्थिर होना, वह तप। समझ में आया? इसके लिये कहा जाता है। आहाहा! अब अधिकार सातवाँ।

**इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था...** मुनि पद्मप्रभमलधारिदेव... पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि ९०० वर्ष पहले जंगल में थे। ओहोहो! अमृतचन्द्र के पश्चात् (हुए)। **ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में...** भाषा तो क्या करे? देखो! रचा या नहीं? तुम कहते हो कि शास्त्र रचे नहीं। यह 'रचित' ऐसा कहते हैं। 'रचित है', यह तो कहते हैं कि वहाँ विकल्प उसका निमित्त था, बस। समझ में आया? **नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्‌भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत...** ओहोहो! **श्री नियमसार परमागम की...** इस नियमसार परमागम की, **निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में)...** इस परमागम की टीका उत्कीर्ण होनेवाली है इसमें—संगमरमर में, हों! समयसार, प्रवचनसार, नियमसार और पंचास्तिकाय, यह चारों टीकायें इसमें आनेवाली है और अष्टपाहुड़ की मूल गाथायें। कलश-बलश सब आयेंगे। अब यह रामजीभाई के ऊपर है। वजुभाई जरा कम... कहते हैं, यह टीका... आहाहा! अमृत के किरण जैसी है। समझ में आया? **परमालोचनाधिकार नाम का सातवाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।**

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

## — ८ —
# शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्ताधिकार

**भाद्र कृष्ण ३, मंगलवार, दिनांक - ०७-०९-१९७१**
**गाथा-११३, श्लोक-१८०, प्रवचन-११७**

यह नियमसार सिद्धान्त है। इसका यह आठवाँ अधिकार, शुद्धनिश्चय प्रायश्चित्त अधिकार। सात अधिकार पूरे हुए। प्रायश्चित्त अर्थात् क्या, उसका कथन कहते हैं।

**अब समस्त द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा नोकर्म के...** उनके त्याग का हेतुभूत, विकार के अभाव का कारणरूप **शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त अधिकार कहा जाता है।** प्रायश्चित्त अर्थात् पुण्य-पाप के भाव का छेदन और पवित्रता की परिणति की प्रगट दशा। समझ में आया? ... ११३ (गाथा)।

'**वदसमिदिसीलसंजमपरिणामो**' यह अस्ति से बात है। '**करणणिग्गहो भावो**' यह नास्ति से बात है।

**वदसमिदिसीलसंजमपरिणामो करणणिग्गहो भावो।**
**सो हवदि पायछित्तं अणवरयं चेव कायव्वो॥११३॥**

नीचे इसका हरिगीत है।

**व्रत, समिति, संयम, शील, इन्द्रिय-रोध का जो भाव है।**
**वह भाव प्रायश्चित्त है, अरु अनवरत कर्तव्य है॥११३॥**

इस जीव को मोक्ष के लिये हितरूप निरन्तर यह कर्तव्य है। क्या? **टीका:— यह, निश्चय-प्रायश्चित्त के स्वरूप का कथन है।** प्रायश्चित अर्थात् संसार का, पुण्य-पाप का, मिथ्यात्व का उदयभाव, उसे छेदना। यह नास्ति से बात है। और अपने परम

आनन्दस्वरूप का आश्रय लेकर एकाग्र होना और निर्दोष वीतराग परिणति के परिणाम होना, उसे प्रायश्चित्त कहते हैं।

**मुमुक्षु :** प्रायश्चित्त क्या है? द्रव्य है, गुण है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय। प्रायश्चित्त पर्याय है। वीतरागी पर्याय, को प्रायश्चित्त कहते हैं। परिणाम है। पाठ में ही है, देखो! इस ओर देखो! यह रहा। टीका देखो!

**पाँच महाव्रतरूप...** पंच महाव्रत यह विकल्पवाले नहीं। जो यह पंच महाव्रत, २८ मूलगुण विकल्पवाले कहे जाते हैं, वे नहीं। यह तो आत्मा में—शुद्धस्वभाव में एकाग्र होकर वीतरागरूपी परिणाम हो, उसे महाव्रत कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो निश्चय महाव्रत की व्याख्या है। समझ में आया? यह पर की दया पालने का भाव और सत्य बोलने का भाव, वह सब तो राग है, वह तो आस्रव है, वह वास्तविक महाव्रत नहीं। वास्तविक महाव्रत तो परमेश्वर उसे कहते हैं कि जो स्वयं महाव्रतरूप परिणाम, वीतरागी परिणाम, वीतराग स्वभावभाव ऐसा जो अपना द्रव्यस्वभाव, उसके आश्रय से मनन और चिन्तवन एकाग्रता से जो निर्दोष, अविकारी, वीतरागी परिणाम हों, उसे यहाँ महाव्रत कहा जाता है।

**मुमुक्षु :** इन पंच आचार को महाव्रत तो कहा?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह सच्चे महाव्रत। यह अब कहेंगे ११३वीं गाथा में। १३वीं क्या, आगे। इसके आगे की गाथा आती है। ध्यान, वह महाव्रत है। ११९वीं गाथा। समझ में आया? भारी सूक्ष्म बात है।

भगवान आत्मा नित्य अमृतस्वरूप... आत्मा नित्य अमृतस्वरूप है। अतीन्द्रिय अमृत वीतरागस्वरूप यह आत्मा तो है। ऐसे नित्य अमृतस्वरूप में राग की अपेक्षा बिना निर्विकल्परूप से अन्दर परिणति प्रगट करना, भगवान आत्मा अमृतस्वरूप प्रभु की अपेक्षा से प्रगट हुई परिणति वीतरागी, उसे यहाँ पंच महाव्रत का रूप कहते हैं। कहो, सेठ! निर्दोषभाव। भाव तो विकल्प भी भाव है। पंच महाव्रत का विकल्प भी भाव है, परन्तु वह तो विकारी है। समझ में आया? .... देखो! यह भगवान परमात्मा तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा पंच महाव्रत का स्वरूप क्या है, वह कहते हैं।

मूल तो शब्द है, '**वदसमिदिसीलसंजमपरिणामो**' बस, अस्ति से। भगवान आत्मा... यह आत्मा अर्थात् क्या चीज़, यह लोगों को खबर नहीं। आहाहा! यह तो अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है। अतीन्द्रिय आनन्द जो प्रगट सिद्ध को है, ऐसा ही यह प्रभु आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की कातली—गांठ है। उसे खोलने से, उसमें एकाग्र होने से वह अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति प्रगट हो, उसे यहाँ महाव्रत कहते हैं। जेठाभाई! यह महाव्रत का रूप भी अलग। पण्डितजी! यह कहे, हम महाव्रत पालते हैं, अहिंसा, सत्य और... यह कहाँ ठिकाना है? आहाहा!

**मुमुक्षु :** बाह्यक्रियाकाण्ड में लगे हुए हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बाह्यक्रिया (भी) व्यवस्थित कहाँ है? एक भी ठिकाना कहाँ है? २८ मूलगुण का कहाँ ठिकाना है? वस्तु शास्त्र से देखना चाहिए न! आगम क्या कहते हैं? परमेश्वर त्रिलोकनाथ की वाणी में क्या आया? ऐसा जानना चाहिए न! दुनिया क्या करती है, वह भी क्या? परमागम में यह बात आयी है कि भाई! परजीव को नहीं मारने का विकल्प और दया पालने का विकल्प, वह तो सब राग है, वह कोई महाव्रत नहीं, वह तो अचारित्र है। आहाहा! महाव्रतरूप चारित्र तो उसे कहते हैं कि पंच महाव्रतरूप वीतरागी परिणाम, निर्दोष परिणाम, अकेले अतीन्द्रिय आनन्द के भाव, प्रगटरूप अतीन्द्रिय आनन्द के परिणाम उसे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह कहा जाता है।

**पाँच समितिरूप...** पाँच समिति भी उसे कहते हैं कि जो आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रूप है, उसके अतीन्द्रिय आनन्द के रूप में प्रवेश करके, जिसकी अतीन्द्रिय परिणति पर्याय होती है, उसे पाँच समिति कहते हैं। 'सम इति प्रवृत्ति परिणति।' आत्मा को देखकर... आत्मा को देखकर जो दशा परिणति हो, वह ईर्यासमिति और वह समिति। सेठ!

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा ही है। भगवान आत्मा के अतिरिक्त दूसरी क्या चीज़ है? समझ में आया? ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदान और निक्षेपण—ये सब आत्मा। आत्मा

आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, ज्ञानस्वभाव, उस ज्ञानस्वभाव की ज्ञानस्वभावरूप से परिणति-पर्याय, उसे समिति कहते हैं। आहाहा! अभी तो चारित्र किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और बाहर के खोखा—नग्नपना और महाव्रत के विकल्प उठे, हो गया चारित्र। आहाहा!

अपने व्यवहार आचरण करना कि जिससे उससे निश्चय को पहुँचूँगा। यह झूठ बात है, ऐसा कहते हैं। लोक को किसे लाभ हो? जिस भाव से एक को लाभ हो, उस भाव से सबको लाभ हो। नियम कहीं दूसरा होगा? आहाहा! भाई! परमसत्य तो ऐसी चीज़ है (कि) लोग साधारण को तो रुचेगा भी नहीं, सुहाये भी नहीं। ऐसे हा-हो, हा-हो... ऐसा करना और यह करना, ऐसा करना और ऐसा करना। करना-करना होना, देह की क्रिया का करना-होना और राग का होना, वह मरण है। आत्मा का मरण है। आहाहा! भगवान तो ज्ञानस्वरूपी है। उसे करना, करना, यह राग करूँ, वह मिथ्यात्वभाव है। ओहोहो! वीतरागमार्ग लोगों को सुनने को मिलता नहीं। बाह्य की क्रिया राग की और देह की, वह धर्म, ऐसा है नहीं। भगवान आत्मा वह तो परद्रव्य और विकल्प—आस्रव से तो उदासीन भिन्न तत्त्व है। समझ में आया?

शरीर, कर्मादि बाह्य चीज़ें अजीवादि और विकल्प पुण्य का, दया, दान, व्रतादि, वह आस्रव, उस आस्रव और अजीव तत्त्व से तो भगवान उदासीन है। आत्मा तो उनसे रहित है। आहाहा! ऐसे आत्मा में अहिंसा, कहते हैं, भगवान आत्मा के अवलम्बन से रागरहित वीतराग अवस्था परिणमित हो, उसे अहिंसा कहते हैं। और सत्य उसे कहते हैं कि सत्य वस्तु प्रभु स्वयं सत् है, ज्ञान और आनन्द का भण्डार भगवान है, ऐसा जो सत्, उस सत्‌रूप से द्रवे—प्रवाहित हो, शुद्ध स्वभावरूप से द्रवे—प्रवाहित हो, वह सत्यव्रत है। और राग भी जो ग्रहे नहीं और पूर्णानन्दस्वभाव को ग्रहे और परिणति वीतरागी हो, वह अदत्त तीसरा महाव्रत है।

पाँचवाँ महाव्रत ब्रह्मानन्द ब्रह्मचर्य। भगवान ब्रह्मानन्दस्वरूप सर्वज्ञ वीतराग त्रिलोकनाथ ने देखा वह। अज्ञानी आत्मा... आत्मा कहे, उसकी बात नहीं है। अज्ञानी ने आत्मा देखा ही नहीं और उसे खबर नहीं। आत्मा... आत्मा सब बातें करे। तीर्थंकरदेव

सर्वज्ञ परमात्मा ने जो आत्मा देखा वह तो आनन्द की मूर्ति देखी। वह आनन्दमूर्ति ब्रह्म, उसमें चरना, उसमें रमना, उसमें एकाकार होकर, सराबोर होकर आनन्द की क्रीड़ा करना, उसे भगवान ब्रह्मचर्य कहते हैं। और एक विकल्प को न पकड़कर, पूर्ण स्वरूप परमात्मा को परिग्रह—पकड़ना, वह परिग्रह, उस परिग्रहरहित स्वभाव को पकड़ना, उसका नाम अपरिग्रहव्रत है। आहाहा! है या नहीं उसमें? देखो! परिणतिविशेष... उसमें है। टीका... टीका... इस ओर।

**पाँच महाव्रतरूप, पाँच समितिरूप,...** देखकर चलना, उसका अर्थ कि अन्दर ज्ञायकमूर्ति को देखकर अन्तर में परिणमन करना, वह ईर्यासमिति है। सत्य बोलना, वह तो विकल्प है, परन्तु सत्यस्वरूप भगवान आत्मा का सत्पना ही प्रगट करना, सत्य... सत्यस्वभाव का प्रगट करना, उसका नाम सत्य भाषासमिति कहते हैं। ऐषणा।—आहार निर्दोषरूप से लेना, वह तो विकल्प है। पूरा आत्मा, उसे अन्दर शोधना, शोधकर स्थिर होना, इसका नाम ऐषणासमिति है। भगवान आत्मा को ग्रहण करना और राग को छोड़ना, यह आदान-निक्षेपण समिति है। परिस्थापन—विकल्प को छोड़ देना सर्वथा (और) निर्विकल्प परिणति को प्रगट करना, इसका नाम पाँचवीं समिति है। आहाहा! समझ में आया? पंच महाव्रतरूप... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने तो गजब काम किया है। महाव्रत को अन्दर में उतारा। हम तो उसे महाव्रत कहते हैं, कहते हैं। प्रभु अन्दर परमात्मा प्रत्यक्ष, प्रगट, चैतन्यधातु से, आनन्द से भरपूर, आनन्द और चैतन्य को जिसने धारण किया है—ऐसे टिकाये हुए ऐसा जो तत्त्व भगवान, उसमें रमणता, उसे पाँच समिति और पाँच महाव्रत कहते हैं। कहो, मूलचन्दभाई!

**शीलरूप...** स्वरूप का आचरण... भगवान ज्ञान, आनन्द का त्रिकाल शीलस्वरूप ही है, उसमें रमणता, स्वरूप की लीनता, उसे यहाँ शील कहते हैं, वह आत्मा की परिणति की वीतरागीदशारूप अवस्था है। समझ में आया? आहाहा! यह अस्ति कहा। **सर्व इन्द्रियों के तथा मन-वचन-काया के संयमरूप परिणाम...** यह भी अस्ति है। इन्द्रियाँ और मन के, वचन और काया के संयमरूप परिणाम से हटकर (सम् अर्थात्) सम्यक् प्रकार से—सम्यग्दर्शनसहित, यम अर्थात् लीनता अन्दर होना, उसे प्रायश्चित्त

कहते हैं, उसे संवर कहते हैं। इन्द्रिय और मन को रोकना, (ऐसे) संयमरूप परिणाम अस्ति **तथा पाँच इन्द्रियों का निरोध...** यह नास्ति। अणीन्द्रिय भगवान आत्मा... आहाहा!

बढ़िया बात की। परन्तु किस प्रकार कहा है! अब अणीन्द्रिय डाला। अणीन्द्रिय ऐसा आत्मा, उसका अणीन्द्रिय का परिणमन करना, वह संयम परिणाम है, वह प्रायश्चित्त है और इन्द्रिय का निरोध, पाँच इन्द्रिय की ओर के झुकाव के विकल्प का अभाव है। आहाहा! यह भगवान की वाणी सुनना, उस ओर के जो विकल्प उसे रोकना, इसका नाम संयम है—ऐसा कहते हैं। ऐसा अद्भूताद्भूत भगवान आत्मा का स्वरूप अन्तर विराजमान है, उसकी इसे खबर नहीं। जहाँ निधान है, वहाँ नजर नहीं। जहाँ खाली खोखा रागादि, वहाँ इसकी नजर पड़ी है। समझ में आया?

कहते हैं कि पाँच... पाठ में है न? '**करणणिग्गहो भावो**' इन्द्रिय का निग्रह, वह ऐसे नास्ति से कहा। वह भी परिणतिविशेष को इन्द्रिय का निग्रह कहा। अणीन्द्रिय आत्मा... आहाहा! किसी लड़के का लेख है उसमें। क्या कहलाता है? आत्मधर्म में। अफ्रीका का कोई आया था? सत्रह वर्ष का जवान कोई है। नारणभाई हैं या नहीं? कौन बटुक? लड़के का लेख है उसमें—आत्मधर्म में। कुछ आया था। अफ्रीका का है न, नहीं? क्या नाम है? धनाणी... धनाणी। वह धनाणी आया था न अभी। वह आया था एक १७ वर्ष की उम्र का छोटा। आया था धनाणी। उसने—भाई ने बहुत सरस लिखा है। गढडा आया होगा। उसमें लिखा है, ओहोहो! ऐसी आत्मा की बात! अकेली आत्मा की ही बात है वहाँ। अफ्रीका के हैं। कैलाश.. कैलाश। हाँ, कैलाश धनाणी है। उसने लिखा है भाई! उसमें।

धनाणी... धनाणी। हाँ, लो। '१७ वर्ष का एक जवान अफ्रीका में रहता है। अभी पहली ही बार भारत में तीन महीने के लिये आया। जीवन में पहली बार गुरुदेव के दर्शन-वाणी का लाभ दो-तीन दिन से लेता है। उसका नाम ज्योतिन्द्र धनाणी है। वह लिखते हैं कि पूज्य गुरुदेवश्री के व्याख्यान में आत्मा के अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं मिलता। जीव की बात सुनकर अपने भी दिल में आनन्द आ जाता है।' जवान लड़का है। परन्तु वह तो अन्दर से प्रेम हो तो ही यह बात रुचे। अपने को भूल गये आत्मा को

शोधने का विचार हो। आत्मधर्म में एक जगह लिखा है, कि हे जीव! तू जाग। उसके ऊपर आधा पृष्ठ लिखा है। 'आधा पृष्ठ' उसकी भाषा है न। तुम्हारी भाषा... 'अनादि काल से तू भटकता है, इसलिए अब तू तेरी ओर ध्यान कर। पर का तो चाहे जितना करेगा तो उसका फल तुझे आनन्दवाला नहीं है। आनन्दवाला नहीं आयेगा, ऐसा। आनन्द का स्वाद नहीं आयेगा। परन्तु यदि तू कौन है, यह शोधकर आगे बढ़ूँगा तो अपने को वास्तविक सुख मिलेगा। दूसरे उपदेशक तो लौकिक संसारी बात कहेंगे, परन्तु जीव को संसार से कैसे छूटना, यह नहीं कहते। पुण्य और पाप तो तू अनादि से कर रहा है, पुण्य और पाप भी राग है, उससे हम छूटे तो ही अपने को सच्चा सुख मिलेगा।' लो, ऐसा लिखा है। कहो, समझ में आया? लड़के भी अब ऐसा बोलनेवाले हुए। चलना तो सीखे। ऐई!

भगवान! एक शुभविकल्प की आड़ में तेरा पूरा तत्त्व ढँक गया है। एक शुभ विकल्प के प्रेम में तेरा पूरा भगवान आत्मा का प्रेम छूट गया है तुझे। आहाहा! व्यवहार की अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य के विकल्प के प्रेम में भगवान अन्दर में आड़ा—ढँक गया है। खबर नहीं इसे। ऐसा प्रभु चैतन्य प्रगट साक्षात् मूर्ति... आहाहा! उसके अन्दर में परिणमन होना, उसके सन्मुख में अवलम्बन लेकर निर्मलदशा होना, **यह परिणतिविशेष सो प्रायश्चित्त है।** आहाहा! लो, यह प्रायश्चित्त अर्थात् कि जैनधर्म। आहाहा!

**प्रायश्चित्त अर्थात...** अब अर्थ करते हैं, **प्रायः चित्त।** इसमें वह हैं न आधा, उसका हो गया विसर्ग। 'प्रायः और चित्त' ऐसा। प्रायः और चित्त। प्रायश्चित्त है न। क्या कहलाता है वह? प्रायश्चित्त शब्द है। ... उस 'श' का हो गया विसर्ग। प्रायः चित्त। प्रायश्चित्त अर्थात् प्रायः चित्त। अर्थात्? प्रायः अर्थात् प्रचुररूप से निर्विकार चित्त, उसका नाम प्रायश्चित्त। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी में तेज अकेला होता है, चैतन्य का तेज। आहाहा! कहते हैं, **प्रचुररूप से...** प्रायः अर्थात् प्रचुररूप से—बहुत—बहुलता से—बहुत ही **निर्विकार चित्त...** बहुत निर्विकार चित्त (अर्थात्) वीतरागी परिणति को प्रायश्चित्त कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह तो भिन्न-भिन्न प्रकार से वीतरागता का ही झुकाव है। एक की एक बात

परन्तु भिन्न-भिन्न रीति से वर्णन की है। बात तो वीतरागता है पूरी। परन्तु उस वीतरागता को बहुत पहलुओं से समझाते हैं। परन्तु समझाना है वीतरागता अर्थात् कि समझाना है द्रव्य का आश्रय। वीतरागता कब प्रगट हो? कि द्रव्य का आश्रय करे तो। समझ में आया? द्रव्य अर्थात् वस्तु। पूर्ण ज्ञान और पूर्ण शान्ति, अकेला शान्त अकषायरस का कन्द प्रभु, उसे आत्मा कहते हैं। और उसके सन्मुख होकर जो परिणति होती है, उसे प्रायश्चित्त परिणतिविशेष कहते हैं। वह पर्याय है। वह पर्याय अशुद्धता को उत्पन्न होने नहीं देती, इसलिए उसे प्रायश्चित्त कहा है। समझ में आया? लोगों को ऐसा लगे कि व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार के कीड़े हों न अकेले। हाँ, वह पर्याय स्वयं भी व्यवहार है। निश्चय द्रव्य है। परिणतिविशेष, वह व्यवहार है। निश्चय से वह हेय है। आहाहा! परिणतिविशेष पर लक्ष्य करनेयोग्य नहीं। आहाहा! एक समय की पर्याय है केवलज्ञान, वह भी व्यवहार है, व्यवहार। आहाहा!

वह प्रायश्चित्त **अन्तर्मुखाकार...** अब स्पष्टीकरण किया। **अन्तर्मुखाकार परम—समाधि से युक्त,...** ऐसा स्वरूप है, ऐसा अपने को देखकर बात करते हैं कि अन्तर्मुख-आकार... बहिर्मुख के आकार से उत्पन्न हो, वह सब विकल्प। दया पालने का, पूजा का, भक्ति का भाव—सब बहिर्मुखीभाव। बहिर्मुखी भाव वह राग। **अन्तर्मुखाकार...** भगवान पूर्णानन्द प्रभु ऐसा अन्तर में विराजता है, उसके ऊपर दृष्टि करना, वह अन्तर्मुखाकार परिणाम कहे जाते हैं। आहाहा! ऐसी **अन्तर्मुखाकार परम—समाधि से युक्त,...** ऐसा। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा अन्तर्मुख है, उस अन्तर्मुख के आकार से परिणाम जो हुए, वे परमसमाधि से युक्त हैं। परमसमाधि, शान्ति। सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में और शान्ति में—तीनों में सुख है। वह अन्तर्मुख आकार हो, उसे यह सुख के परिणाम होते हैं, उसे यहाँ समाधि कहते हैं। दूसरे-दूसरे प्रकार से वर्णन है। अरे! यह करना, यह करना, यह नहीं करना—ऐसे विकल्प का विधि-निषेध स्वरूप में कहाँ है? वह तो भगवान ज्ञान का समुद्र प्रभु, उस ज्ञान को ज्ञानरूप से परिणमन करना... ज्ञान अन्तर्मुख वस्तु है, ज्ञान कहो या आत्मा कहो।

अन्तर्मुखाकार ऐसी समाधि युक्त... बहिर्मुख परिणाम, वह विषमतासहित।

आहाहा! पंच महाव्रत के विकल्प विषमता है, असमाधि है। भगवान की पूजा, भक्ति और यात्रा का भाव, वह असमाधि है, ऐसा कहते हैं। ऐई! 'णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं...' यह विकल्प असमाधि है, बहिर्मुख परिणाम है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! 'न हुए, न होयेंगे' काल था न कुन्दकुन्दाचार्य। एक तो यह... ओहोहो! उनके घर के दरवाजे खोल दिये हैं। राग की एकता में भगवान का दरवाजा बन्द था। वह राग नहीं, परन्तु मैं तो त्रिकाली समाधि और वीतरागस्वभावी हूँ, ऐसी दृष्टि होने पर निधान खुल गया। समझ में आया?

कहते हैं कि **अन्तर्मुखाकार परम—समाधि से युक्त,...** ऐसा। यह अन्तर्मुखाकार, वह परम समाधि, ऐसा। आहाहा!

**मुमुक्षु :** आकार अर्थात् तद्रूप परिणमन?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, तद्रूप परिणमन है। भगवान परमानन्द के स्वभाव से—सत्त्व से भरपूर सत्त्व प्रभु है। उसमें राग और पुण्य-पाप के भाव हैं नहीं। आहाहा! ऐसा जो अन्तर्मुख भगवान, उसका यह आकार अर्थात् अन्तर्मुख प्रभु के परिणाम, वह समाधि हुई। आहाहा! ऐसे **परम—समाधि से युक्त,...** ऐसा। **परम जिनयोगीश्वर,...** परम वीतरागी योग में जुड़े हुए ऐसे ईश्वर। परम परमात्मा अपना निजस्वरूप वीतराग, उसे दृष्टि में लेकर, उसमें स्थिरतारूप योग करके और उसके ईश्वर हुए हैं। आहाहा!

**पापरूपी अटवी को ( जलाने के लिए ) अग्नि समान,...** है। ऐसे धर्मात्मा अपने अन्तर्मुख के परिणाम द्वारा, पुण्य और पाप दोनों अग्नि कषाय-अग्नि है, उसे जलाने के लिये अग्नि समान है। आहाहा! उसे जला डालने के लिये—पुण्य-पाप को जला डालने के लिये, भगवान आत्मा अन्तर्मुख के परिणाम से उसे जला डालने के लिये अग्नि समान है। खड़े ही नहीं होते, कहते हैं। भगवान आत्मा के सन्मुख के परिणाम होने पर विमुख के परिणाम खड़े नहीं होते, उसका नाम जला डालने को समर्थ है। समझ में आया? दावानल... यह तो भगवान आत्मा जिस स्वरूप से है, उसरूप से परिणति में होना, उसका नाम भगवान और उस भगवान का मार्ग यह। आहाहा! निश्चय वस्तु लोगों को ऐसी लगे, परन्तु निश्चय, वह सत्य है। व्यवहार के विकल्प आदि तो असत्य है।

आहाहा! समझ में आया? अरे! पर्याय जहाँ अभूतार्थ कही गयी है, वहाँ विकार की बात क्या कहना? आहाहा! जिसे अतीन्द्रिय आनन्द की मस्ती प्रगट हुई, धर्मी जीव को—सम्यग्दृष्टि को अतीन्द्रिय आनन्द की अन्दर एकाग्रता की मस्ती प्रगट हुई, कहते हैं कि वह मस्ती पुण्य-पाप को जला डालने के लिये अग्नि समान है। पुण्य-पाप की झाँईं उत्पन्न हो, ऐसी सामर्थ्य ही अब नहीं। अकेली शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति। आहाहा!

**पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित...** स्वयं की बात करते हैं। मुनि हैं न, मुनि! मुनि ऐसे होते हैं, ऐसा अपना वर्णन करते हैं। **पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित...** पाँच इन्द्रिय के विशेष में जाना (इससे) रहित हो गया है। सामान्य अतीन्द्रिय स्वभाव में जाना, वह प्रगट हुआ है। आहाहा! ऐसे पाँच इन्द्रिय के खण्ड-खण्ड इन्द्रिय का विषय और सुनना या देखना आदि, उसके पाँच इन्द्रिय के फैलाव—विस्तार से तो रहित हो गया है। अतीन्द्रिय स्वरूप की दृष्टि होने पर अतीन्द्रिय पर्याय प्रगट हुई है। आहाहा!

देखो न! 'पाँच इन्द्रियों का फैलाव' शब्द किया है न! ऐसा जो ऐसे था न, खण्ड इन्द्रिय ऐसे देखती थी, ऐसे सुनती थी और यह करती—विस्तार (रहित) हो गया है, अतीन्द्रिय में आ गया है। आहाहा! कथन तो देखो एक! आहाहा! 'दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है।' आता है न? तीव्र वचन है। कायर का तो कलेजा काँप उठे। आहाहा! ऐसा धर्म! वीर्य के हींजड़े, उन्हें तो सुनते हुए उन्हें ऐसा हो जाये कि अरे! ऐसा धर्म? यह करना, धरना नहीं है? निर्मल परिणति करना और परिणति धार रखना, वह करना-धरना नहीं है? राग की क्रिया करना, यह धरना है? यह तो अनादि से पाखण्डी भी करता है, उसमें क्या आया? आहाहा! वह तो अनात्मा है। पंच महाव्रत के विकल्प आदि तो अनात्मा है। आत्मा कहाँ है? अरे! एक समय की पर्याय को भी आत्मा कहना, वह व्यवहार है। वह आत्मा था कब? ऐई! आहाहा! गजब बात है।

जिसका फल मुक्ति है, उसके कारण के उपाय कैसे होंगे? आहाहा! भीमजीभाई! देखो! सब पड़े हैं न सुनने निश्चिन्तता से यहाँ। आहाहा! तेरा प्रभु तेरे पास परिपूर्ण पड़ा है, प्रभु! तेरा प्रभु तू परिपूर्ण अन्दर है। आहाहा! अरेरे! परिपूर्ण में से उसकी पर्याय

प्रगट करना, वह तो अनन्तवें भाग की है। आहाहा! और मुनि को तो देहमात्र परिग्रह है, दूसरा कुछ होता नहीं। एक देह। उन्हें वस्त्र और पात्र कुछ नहीं होते। ऐसे भानवाले को, हों! उल्टे—भानरहित देह रखे, उसे कुछ गिना नहीं यहाँ। वह तो परिग्रहधारी है, देह मेरा, क्रिया मेरी, वह तो परिग्रहधारी है। राग की क्रिया मेरी, वह तो महामिथ्यात्व का परिग्रहधारी है।

परिग्रह है न मिथ्यात्व? मिथ्यात्व का परिग्रह। चौदह प्रकार के अभ्यन्तर परिग्रह (है उसमें) मिथ्यात्व परिग्रह है। राग की क्रिया वह मेरी और (उससे) मुझे लाभ होता है, (यह) महामिथ्यात्व का परिग्रह है। परिग्रहरहित कहाँ से आया? भारी कठिन... इसमें लोग इकट्ठे नहीं होते सुनने। और हा... हो, हो... हो... तो लोग... आहाहा! बापू! सिद्ध तो संसार के जीव से अनन्तवें भाग सदा रहेंगे। एक (निगोद) शरीर के अनन्तवें भाग। आहाहा! रहे थे, रहे और ऐसे के ऐसे रहेंगे। एक निगोद के शरीर के अनन्तवें भाग रहेंगे। आहाहा! इतने संसारी जीव ऐसे के ऐसे रहेंगे। समझ में आया?

कहते हैं, मुनि को तो **देहमात्र परिग्रह...** अकेला और **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि...** लो, इन्द्रिय को निग्रह कहा था न! अब उसकी व्याख्या है। सहज वैराग्यरूपी महल, उसका शिखर, उसका शिखामणि—ऊपर टोंच मणि की। तथा **और परमागमरूपी पुष्परस-झरते हुए मुखवाले...** आहाहा! कहते हैं, मेरे मुख में से तो परमागमरूपी पुष्परस—फूल का रस झरता है। फूल की पराग होती है न। आहाहा! **परमागमरूपी पुष्परस-झरते हुए मुखवाले पद्मप्रभ को यह प्रायश्चित्त निरन्तर कर्तव्य है।** आहाहा! यह सब समझकर, वाँचकर करना यह है। समझ में आया? उसमें आया था न, **'नियमेण य जं कज्जं'** तीसरी गाथा में आया था। नियम से कर्तव्य है। उसमें का यह सब नियम है। आहाहा! गजब बात की है। नियमसार... नियमसार में तो नियमसार रखा है। कोई कहे कि मुनि स्वयं को ऐसा कैसे कहते हैं? हम ऐसे हैं तो हमारे मुख में से परमागमरूपी फूल का जो रस—परागरस निकलता है, कहते हैं। ऐसे **पद्मप्रभ को यह प्रायश्चित्त निरन्तर कर्तव्य है।** आहाहा! कहो, जेठाभाई! यह मिला था इतने वर्ष में वहाँ? कितने वर्ष मुँडाया वहाँ?

**मुमुक्षु :** सब्जी बाजार में हीरा मिले?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शाकभाजी की दुकान में? आहाहा! गजब बात है। यह बात ही नहीं। आहाहा! दुकान... वाह रे वाह प्रभु! तेरी पेढ़ी छोड़कर राग की पेढ़ी चलायी तूने। तू वीतरागस्वरूप है और वीतरागी परिणति प्रगट होना..., 'परिणति विशेष' कहा न। ऐसी पेढ़ी छोड़कर राग की पेढ़ी चलायी, वह तूने दुश्मन की पेढ़ी चलायी। आहाहा! समझ में आया? दिवाला निकालने की पेढ़ी चलायी तूने। सेठ! आहाहा! देखो तो सही एक परमात्मा की बात! और वीतराग परिणति के समक्ष राग की परिणति का अभाव। उसे भावरूप से स्वीकार करके उससे लाभ हो, बापू! तू भगवान की पेढ़ी का दुश्मन है। आहाहा! वीतराग की पेढ़ी में मुनीम नाम धराकर उसकी पेढ़ी को नुकसान करना, विरोधी—दुश्मन है। आहाहा!

**अब, इस ११३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं:**—यह दूसरे दो जगह कहा है। यह परमागम है न! एक है पृष्ठ ३०९ और १९३। दो जगह आ गया है। पहले एक आया और फिर आयेगा। लिखा है तब। १९३, ३०९ वहाँ भी यही शब्द है।

**प्रायश्चित्तं भवति सततं स्वात्मचिन्ता मुनीनां,**
**मुक्तिं यान्ति स्वसुखरतयस्तेन निर्धूत-पापाः।**
**अन्या चिन्ता यदि च यमिनां ते विमूढाः स्मरार्ताः,**
**पापाः पापं विदधति मुहुः किं पुनश्चित्रमेतत् ॥१८०॥**

**श्लोकार्थः**—अरे! **मुनियों को स्वात्मा का चिन्तन वह निरन्तर प्रायश्चित्त है;...** भगवान पूर्णानन्द का नाथ का आश्रय करना, उसमें एकाग्र होना, वही मुनियों को निरन्तर प्रायश्चित्त है। यह संसार को छेदने की उपाय—पद्धति यह है। समझ में आया? (अकेला) आत्मा... आत्मा... एक व्यक्ति कहता था। परन्तु आत्मा के अतिरिक्त वस्तु...? दुकान में कहे न बहुत बार... रामजीभाई पूछते थे न, कितनी बार सेठ कहे? हमारे कुँवरजीभाई को पूछा था। हजार बार कहे या पाँच सौ बार? यहाँ तो एक घण्टे में कितनी बार आत्मा आवे? एक बार कुँवरजीभाई को पूछा था न। वह भोलेभट्ट व्यक्ति

कहलाये। हाँ, ऐसा कहा, ५००... ऐसे दो लाख की आमदनी दुकान में। सब थोथा जैसा। ऐई सेठ! बुद्धिवाले पैदा करते हैं, ऐसा कुछ नहीं है। बुद्धिवाले पैदा करे आत्मा, उसे बुद्धिवाला कहते हैं, ऐसा आता है न! उसे पण्डित कहते हैं, उसे शूरवीर कहते हैं, उसे पण्डित कहते हैं। आत्मा आत्मा के स्वभाव में आकर वीतरागता प्रगट करे, वह आत्मा का व्यापारी पण्डित और शूरवीर है और उसे मनुष्य कहते हैं, ऐसा कहा पीछे। आहाहा!

**मुनियों को,...** धर्मात्मा को.... मुनि की प्रधानता से व्याख्या है न। **स्वात्मा...** वापस भाषा 'स्व-आत्मा'। वीतराग पर-आत्मा नहीं, सिद्ध और अरिहन्त नहीं, वे तो पर हैं। उनका चिन्तवन तो राग है। आहाहा! **स्वात्मा का चिन्तन...** अर्थात् विकल्प नहीं। चिन्तन के शब्द के अर्थ में उसकी चिन्ता अर्थात् उसकी एकाग्रता। समझ में आया? आहाहा! अब तो बहुत बाहर आ गया है। कोई कहता था, नहीं? हीराभाई कहते थे। कोई कहता था, नहीं? हीराभाई! बहुत अधिक बाहर आ गया है। कल कोई कहता था। कौन कहता था? कोई कहता था। बहुत सब आया है। यह भाषा... देवीलालजी। देवीलालजी। कल आया था न अधिकार। व्याख्यान के बाद आये, (कहे), आहाहा! दिगम्बर धर्म का स्वरूप प्रगट किया हो तो आपने अकेले ने ही किया है। यह वह स्थानकवासी थे। उनकी बहू श्वेताम्बर है। स्वयं दिगम्बर हुए, भाई है स्थानकवासी। कल बोले थे। व्याख्यान के बाद आये थे। मार्ग यह है। दिगम्बर, श्वेताम्बर क्या, (जहाँ) वस्तु ही ऐसी है वहाँ?

**मुनियों को,...** धर्मात्मा को तो एक आत्मा का चिन्तवन—एकाग्रता, वही धर्म और वही प्रायश्चित्त है। आहाहा! **निरन्तर प्रायश्चित्त,** वापस ऐसा। अर्थात्? शुद्ध चैतन्य भगवान परमानन्द की कातली उसे चूसते... चूसते, अनुभव करते हुए वीतरागदशा जो होती है, वह निरन्तर परिणति बहती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और उसे प्रायश्चित्त कहा जाता है। ऐसे पाप लगे और गुरु के पास जाये, मुझे प्रायश्चित्त (दो), यह सब विकल्प है। समझ में आया? परन्तु यह उदय का पाप लगा है, उसे स्वभाव का आश्रय करके उस उदय को टालता है अर्थात् उदय होने नहीं देता, उसे यहाँ प्रायश्चित्त कहा जाता है। आहाहा!

**निज सुख में रतिवाले वे उस प्रायश्चित्त द्वारा...** क्या कहते हैं ? भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का स्वादिया... अपने अतीन्द्रिय आनन्द का स्वादिया जहाँ हुआ आत्मा— समकिती धर्मी, वह अतीन्द्रिय आनन्द का स्वादिया रसीला है। आहाहा! समझ में आया ? जिसे इन्द्र के—द्रेवेन्द्र के सुख भी जहर जैसे लगते हैं, अपने अमृत के स्वाद के समझ। कहते हैं कि मुनि धर्मात्मा, वे तो निज सुख में रतिवाले हैं। आहाहा! अपना भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और निज आनन्द में रतिवाला है। आहाहा! **वे उस प्रायश्चित्त द्वारा...** आनन्द में प्रेमवाले और लीनतावाले **वे उस प्रायश्चित्त द्वारा...** ऐसा। कैसा प्रायश्चित्त ? कि निरन्तर चिन्तवन और निज सुख में रतिवाला, वह दशा, निज आनन्द में वह लीनता, वह दशा। आहाहा! **वे उस प्रायश्चित्त द्वारा...** उस अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी अतीन्द्रिय आनन्द की दशा जिन्होंने प्रगट की है, ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द, उस... उस प्रायश्चित्त द्वारा (अर्थात्) उस अतीन्द्रिय आनन्द की परिणति द्वारा जो **पाप को खिराकर मुक्ति प्राप्त करते हैं।** इस पुण्य-पाप के विकल्प का नाश करके मुक्ति पाते हैं। आहाहा!

**यदि मुनियों को ( स्वात्मा के अतिरिक्त ) अन्य चिन्ता हो...** भूल जाना अब। आहाहा! जिसे आत्मा के आनन्दस्वभाव की एकाग्रता और सुख में लीनता, इसके अतिरिक्त जो दूसरी चिन्ता हो (कि) दुनिया का कर दूँ, दुनिया को अच्छा कर दूँ, देश का अच्छा करूँ, फलाना, यह हो **तो वह विमूढ...** यहाँ तो दो फिरके हैं। आहाहा! समझ में आया ? **अन्य चिन्ता हो तो वे विमूढ़ कामार्त पापी...** आहाहा! राग के विकल्प से पर का कुछ कर दूँ और राग करूँ—ऐसी जिसे चिन्ता है... आहाहा! **विमूढ कामार्त...** वह अणीन्द्रिय भोग का कामी नहीं, परन्तु कामार्त हो गया है वह। आहाहा! राग का कामार्त कामबाण से पीड़ित हो गया। **पापी पुनः पाप को उत्पन्न करते हैं।** आहाहा! फिर से मिथ्यात्व उत्पन्न करता है, ऐसा कहते हैं। **इसमें क्या आश्चर्य है ?** विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**भाद्र कृष्ण ४, बुधवार, दिनांक - ०८-०९-१९७१**
**गाथा-११४-११५, श्लोक-१८१, प्रवचन-११८**

नियमसार शास्त्र है, शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त (अधिकार)। उसका अर्थ क्या? कि जो आत्मा में, अनादि से अपना आनन्द और ज्ञानस्वभाव भूलकर राग-द्वेष और विकारभाव जो होता है, चाहे तो शुभभाव हो या अशुभ हो, दोनों दोषस्वरूप और दोनों धर्म से विरुद्ध भाव हैं। उनका नाश कैसे हो? उस विधि को यहाँ प्रायश्चित्त कहा जाता है। ११४ गाथा है न!

**कोहादिसगब्भावक्खयपहुदिभावणाए णिग्गहणं।**
**पायच्छित्तं भणिदं णियगुणचिंता य णिच्छयदो॥११४॥**

११४ गाथा। इसका नीचे हरिगीत।

**क्रोधादि आत्म-विभाव के क्षय आदि की जो भवाना।**
**है नियत प्रायश्चित्त वह जिसमें स्वगुण की चिन्तना॥११४॥**

इसकी **टीका—(इस गाथा में)...** भगवान कुन्दकुन्दाचार्य... **सकल...** भाव **कर्मों को मूल से उखाड़ देने में...** पाठ में है न! 'निज भाव' शब्द है न? '**स्वकीय भाव**' पुण्य और पाप के भाव... शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव वह शुभ (और) हिंसा, झूठ, चोरी, विषयवासना, वह अशुभ।—दोनों आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध भाव हैं। ऐसे सकल भावकर्म को—पुण्य और पापरूपी भावकर्म को—जो अपने में अपने कारण से पुरुषार्थ की कमजोरी से उत्पन्न होते पुण्य-पाप के भाव उन्हें—मूल से उखाड़ डालना। मूल से उखाड़कर... **उखाड़ देने में समर्थ ऐसा निश्चय-प्रायश्चित्त कहा गया है।** प्रायश्चित्त कहो, संवर-निर्जरा कहो, मोक्ष का मार्ग कहो—यह सब एक ही बात है। समझ में आया?

कहते हैं कि **क्रोधादिक समस्त मोहरागद्वेषरूप विभावस्वभावों के क्षय के कारणभूत...** विकारभाव, विभावभाव, उस विभावस्वभाव में... देखो! 'स्वभाव' शब्द

लिया है न। पाठ में लिया है न! '**सगब्भाव**' लिया है न। **विभावस्वभावों के क्षय के कारणभूत...** वह विकार के नाश के कारणभूत **निज कारणपरमात्मा के स्वभाव की भावना...** आहाहा! निज भगवान कारणपरमात्मा, त्रिकाली ध्रुवस्वरूप, राग बिना का और एक समय की पर्याय बिना का, एक समय की पर्याय बिना का कारणपरमात्मा ध्रुव चैतन्य नित्यानन्द सहजानन्द ऐसा जो अपना कायमी कारणपरमात्मस्वभाव... यहाँ वापस कारणद्रव्य लिया ऐसा। भाव बाद में लेंगे। उसके स्वभाव की भावना होने पर... आहाहा! चैतन्य आत्मदल आनन्दकन्द ऐसा जो स्वभाव, उसकी भावना (अर्थात्) उसमें अन्तर में एकाग्र होना, वह कारणपरमात्मा के स्वभाव की भावना कही जाती है। आहाहा! भारी कठिन बात!

कारणपरमात्मा का स्वभाव त्रिकाली आनन्द और त्रिकाल ज्ञानस्वरूप, उसकी भावना (अर्थात्) उसकी अन्तर एकाग्रता का नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। आहाहा! कारणपरमात्मा का आश्रय करके एकाग्र होना, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह निश्चय प्रायश्चित्त, वह निश्चयस्वधर्म। क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह कहते हैं न! राग का अभाव और स्वरूप की स्थिरता, वह चारित्र है। चारित्र, कोई नग्नपना और पंच महाव्रत का विकल्प, वह चारित्र नहीं है। चारित्र की व्याख्या दूसरी है भगवान के घर की। अन्तर में अन्तर आनन्दमूर्ति प्रभु त्रिकाल, उसमें एकाग्र होकर, राग का अभाव करना, उसका नाम चारित्र है। चारित्र अर्थात् चरना, चरना अर्थात् रमना, रमना अर्थात् जमना। अपना निज आनन्दस्वभाव त्रिकाल कारणभगवान, उसमें लीन होकर निर्विकल्प वीतरागीदशा प्रगट करना, वह राग का त्याग और स्वरूप की स्थिरता, वह चारित्र है। सूक्ष्म बात है, भाई! दुनिया ने मानी है दूसरी चीज़ और मार्ग दूसरा है।

चारित्र अर्थात् पहले कारणपरमात्मा अपना त्रिकाली ध्रुवस्वरूप, उसकी अन्तर्दृष्टि करके अनुभव करना, निर्विकल्प आनन्द का वेदन होना, उसका नाम तो प्रथम सम्यग्दर्शन है। पण्डितजी! थोड़ी-थोड़ी भाषा समझना गुजराती। हिन्दी... यहाँ सब गुजराती हैं न!

आहाहा! अभी चारित्र किसको कहना, उसकी खबर नहीं। यह बाहर का त्याग... वह त्याग तो सबको है ही। शरीर का नग्नपना, वह भी चारित्र नहीं। प्रेमचन्दजी! अन्दर आओ अन्दर यहाँ। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव नग्न दिगम्बर मुनि थे। वे कहते हैं कि चारित्र किसको कहना? किसे कहना? चारित्र कहो या प्रायश्चित्त निश्चय कहो या सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहो या वस्तु त्रिकाली द्रव्यस्वभाव की एकाग्रता कहो। आहाहा!

बाहर में नग्नपना, वह कहीं चारित्र नहीं है तथा अन्दर पंच महाव्रत का विकल्प उठे दया, असत्य छोड़ना, ब्रह्मचर्य पालना, वह तो सब विकल्प राग है, वह तो आस्रव है। वह चारित्र नहीं। उसे अज्ञानी चारित्र मानता है। शोभालालजी! अज्ञानी अनादि से मानते हैं। बाह्य की क्रिया को ही चारित्र मानते हैं, मूढ़ मिथ्यात्व का सेवन करते हैं। ऐसी यह बात है।

**मुमुक्षु :** भगवान का अनादि का मार्ग तो यह का यही है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, परन्तु चारित्र, यह चारित्र। यह लोग कहते हैं वह नहीं।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो क्रिया है, राग है, वह कोई चारित्र नहीं। आहार देने का भाव भी राग है, वह चारित्र नहीं। यह तो बाहर की बात है। वह अन्तर में आनन्द में रहता है, उसका नाम चारित्र है। उनको आहार दिया (तो) देनेवाले को शुभराग हुआ, धर्म नहीं, पुण्य हुआ। पर को देने में तो राग है। अपने स्वरूप में एकाग्रता—आनन्द की दशा प्राप्त करना, उसका नाम धर्म और चारित्र है। लोगों को कहाँ कुछ खबर है? आहार देना, यह धर्म हो गया। यह धूल भी धर्म नहीं। तीन लोक के नाथ को छद्मस्थ (अवस्था में) आहार दे तो भी पुण्यभाव है; धर्म नहीं। समझ में आया?

ऐसा तो अनन्त बार समवसरण में जाकर भगवान की पूजा की अनन्त बार कल्पवृक्ष के फूल, मणिरत्न के दीपक (से की है)। जय भगवान। वह कोई धर्म नहीं, वह तो शुभभाव है। 'भवे भवे जिन पूजियो...' परमात्मप्रकाश में कहते हैं। अनन्त बार जिन की पूजा की, परन्तु वह तो शुभभाव है, वह धर्म नहीं। हाँ, शुद्ध तो दूसरी चीज़ है। शुभ से भिन्न अपना आनन्दस्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द, उसमें एकाग्र होना, उसका नाम

शुद्धता कहा जाता है। बात दूसरी, पूरी जगत की शैली दूसरी है। वीतरागमार्ग दूसरा है। वीतराग दिगम्बर जैनधर्म, यह कोई दूसरी चीज़ है। समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं, देखो!

अपने में जो विकल्प उठते हैं, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा—यह सब आस्रव है, यह विभाव है। देखो! **क्रोधादिक समस्त मोहरागद्वेषरूप विभाव...** समस्त अर्थात् पुण्य-पाप सब। उनके क्षय का कारण स्वभाव... उन्हें करने का कारण नहीं, रचने का कारण नहीं; क्षय का कारण है। पुण्यभाव की रचना, वह तो मिथ्यात्वभाव है। मेरा भाव है, ऐसा मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। शुभभाव तो राग हे और राग मेरा है और मुझे लाभ होगा, (ऐसा माने तो) मिथ्यात्व है। महामिथ्यात्व है, यह जैनदर्शन नहीं। जैनदर्शन की चीज़ रागरहित, पुण्य-पापरहित अपने आत्मा के स्वभाव में... क्षय के कारणभूत... आहाहा! सूक्ष्म बात। अनन्त काल में नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' ऐसा द्रव्यलिंग और द्रव्यक्रिया तो अनन्त बार की, वह कोई धर्म नहीं।

वह कहते हैं भगवान कुन्दकुन्दाचार्य। क्रोधादिक मान, माया, लोभ, पुण्य-पाप, शुभ-अशुभभाव, यह **समस्त मोह-राग-द्वेषरूप...** समस्त मिथ्यात्व और राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव, ऐसा विभावस्वभाव... वह विभावस्वभाव है। उसके क्षय का कारण—उसके **क्षय के कारणभूत निज कारणपरमात्मा...** पर परमात्मा नहीं। पर परमात्मा की भक्ति, पूजा आदि सब शुभराग है, धर्म नहीं। समझ में आया? जेठालालजी! लोगों को ऐसी बातों में चढ़ा दिया है न मिथ्यादृष्टि में। यहाँ तो, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में सीमन्धर भगवान के पास गये थे। आठ दिन रहे थे। संवत् ४९। पण्डितजी! कुन्दकुन्दाचार्य का सुना है न कि भगवान के पास महाविदेह में गये थे। आठ दिन रहे थे और आकर यह बनाया है। कहते हैं कि जितना अपनी पर्याय-अवस्था में दया-दान-व्रत-भक्ति-पूजा-नामस्मरण-यात्रादि का भाव और हिंसा, झूठ, चोरी विषयादि का भाव, दोनों भाव विभावभाव हैं। ऐसी बात है, भगवान! मार्ग ऐसा है बहुत कठिन, भाई! जैनदर्शन ही एक दर्शन है। अन्यत्र यह चीज़ कहीं है नहीं। जैनदर्शन के अतिरिक्त कहीं यह चीज़ होती नहीं तीन काल में। समझ में आया?

तो कहते हैं, **निज कारणपरमात्मा...** ऐसे शब्द पड़े हैं न! निज... निज अर्थात् अपना। निज प्रभु त्रिकाली ज्ञायकभाव, त्रिकाली ध्रुवभाव, त्रिकाली नित्यानन्दभाव, वह कारणपरमात्मा, उसमें सन्मुख होकर दृष्टि और स्थिरता करना, उसकी भावना करना, यह प्रायश्चित्त है, यह धर्म है, इसका नाम चारित्र है। इस चारित्र का अन्तर्भेद प्रायश्चित्त, ऐसा आया है न? चारित्र के अन्तर्भेद का वर्णन हुआ न? प्रतिक्रमण... उस अन्तर्भेद की बात है। आहाहा! अरे! चारित्र किसे कहना, (जहाँ) अभी सम्यग्दर्शन की खबर नहीं होती। अभी सम्यग्दर्शन किसे कहना, हों! हो वह तो (दूर की) चीज़। अखण्ड आनन्द प्रभु नित्यानन्द नाथ आत्मा कारणप्रभु के सन्मुख होकर, उसकी प्रतीति में अनुभव करना, उसमें प्रतीति करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। अमरचन्दभाई! आहाहा! बहुत प्ररूपणा बदल डाली लोगों ने। उपदेश की पद्धति पूरी मिथ्यात्व की प्ररूपणा चलती है और मानते हैं कि यह भगवान का धर्म है।

यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य और उनकी टीका करनेवाले पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि थे। नौ सौ वर्ष पहले नग्न दिगम्बर मुनि वनवासी, वे टीकाकर्ता हैं। कहते हैं कि भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु... शरीर, वाणी, मन, यह जड़ की क्रिया। आत्मा में पुण्य और पाप के आस्रवभाव हों, वह विभावभाव, वह अधर्मभाव है। चिल्लाहट मचाये चिल्लाहट। एक बार कहा था न, (संवत्) १९८५ में कहा था। ४२ वर्ष (पहले) बोटाद में। हम तो उसमें थे न? उसमें—सम्प्रदाय में कहा था हजारों लोगों में। पौष महीना था, ८५ का पौष। ८५ साल समझते हैं? विक्रम संवत् १९८५। ४२ वर्ष हुए। हमारी तो प्रतिष्ठा बहुत थी न उसमें। हजारों लोग... १५०० लोग... सभा बोटाद, बोटाद का था न सम्प्रदाय।

एक बार सम्प्रदाय में ऐसा कहा कि जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव धर्म नहीं, वह भाव आस्रव है। आस्रव से बन्ध होता है या धर्म से बन्ध होता है? पण्डितजी! सम्प्रदाय में ४२ वर्ष पहले। उसमें थे न! खलबलाहट मच गयी। गृहस्थों की हमारे प्रति आस्था बहुत थी न गृहस्थों को.... हमारी प्रतिष्ठा बहुत थी। ५० वर्ष पहले। परन्तु एक साधु था। 'वोसरे... वोसरे...' (कहकर उठ गया)। यह नहीं, यह नहीं। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे... बन्ध का कारण हो, वह धर्म नहीं होता। बन्ध

का कारण वह आस्रव होता है और पंच महाव्रत के परिणाम, वे आस्रव हैं; धर्म नहीं। यह दो बोल कहे थे ४२ वर्ष पहले सम्प्रदाय में। ४० और २। मार्ग ऐसा है। आज मानो, कल मानो, बाद में मानो, इसे मानने से ही तेरा छुटकारा है। समझ में आया?

कहते हैं, कारणपरमात्मा का स्वभाव... पुण्य-पाप का भाव विभाव। शरीरादि-कर्मादि अजीव। वह तो भिन्न रहा। पुण्य-पाप का भाव आस्रव, वह विभाव और त्रिकाली भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वभाव, वह अपना स्वभाव। उसकी भावना (अर्थात्) उसमें एकाग्रता, आनन्दस्वभाव में एकाग्रता, उसका नाम भावना और उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र। समझ में आया? ऐसा होने पर... भावना होने पर... ऐसा है न? भगवान आत्मा अखण्ड आनन्दमूर्ति प्रभु की अन्दर में एकाग्रता **होने पर निसर्गवृत्ति के कारण...** क्या कहते हैं? क्या कहते हैं? **(अर्थात् स्वाभाविक-सहज परिणति होने के कारण)...** राग बिना की परिणति, वह तो निर्मल आनन्द, वीतरागी परिणति सहज स्वभाव के कारण **प्रायश्चित्त कहा गया है;...** उसे भगवान (द्वारा) प्रायश्चित्त—चारित्र का भेद कहा गया है। समझ में आया?

**क्षय के कारणभूत...** देखो! यह त्याग। पुण्य-पाप के विकल्पों के क्षय-नाश का कारण, उनके अभाव का कारण, ऐसी आत्मस्वभाव की अन्दर आनन्द की भावना, वह निसर्गवृत्ति है। स्वाभाविक परिणति, स्वाभाविक वीतरागी परिणति। आहाहा! उसे भगवान ने प्रायश्चित्त कहा है। आहाहा! अनन्त बार द्रव्यलिंगी मुनि होकर नौवें ग्रैवेयक गया, पंच महाव्रत पालन किये, २८ मूलगुण पालन किये। छहढाला में आता है न पण्डितजी! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान...' अन्तर में आनन्द का अनुभव और सम्यग्दर्शन बिना तेरे थोथा निकले। समझ में आया? चार गति में रुलने का भाव था तेरा। यहाँ तो भगवान आत्मा कारणप्रभु नित्यानन्द, अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान जिसमें पड़ा है अन्दर आत्मा में। केवलज्ञान की पर्याय तो एक समय की है। ऐसी अनन्त-अनन्त केवलज्ञान की पर्याय ज्ञानगुण में पड़ी है। ऐसा अनन्त गुण का पिण्ड, ऐसा भगवान, उसकी दृष्टि करके निर्विकल्प समकित होता है, उसमें स्थिर होकर वीतरागी चारित्र होता है, उसे भगवान (द्वारा) मोक्ष के मार्ग का चारित्र अथवा प्रायश्चित्त कहा गया है। ऐसा मार्ग है, भाई! इससे कुछ फेरफार करेगा, उसे मिथ्यात्व लगेगा। आहाहा!

**निसर्गवृत्ति...** भाषा कैसी स्पष्ट की वापस! पुण्य-पाप के भाव हैं, वे निसर्गवृत्ति नहीं, वे तो विभावभाव हैं। पराश्रय से, परलक्ष्य से उत्पन्न हुआ भाव है। आहाहा! यह तो निसर्गवृत्ति... शुद्ध भगवान आत्मा परम पवित्र का धाम, उसकी एकाग्रता, वह निसर्गवृत्ति है। आहाहा! एक बात। दूसरी बात—कारणपरमात्मा के स्वभाव की बात ली न! द्रव्य का स्वभाव अथवा परमात्मा के गुणात्मक, ऐसा। अकेले गुण की बात अब लेनी है। **अथवा, परमात्मा के गुणात्मक...** परमात्मा के गुणस्वरूप... परमात्मा, अपना परमात्मा, हों! परमस्वरूप भगवान आत्मा अनादि-अनन्त अविनाशी ध्रुव वस्तु, वह अपना—निज परमात्मा, उसका गुणस्वरूप (अर्थात्) उसके गुण, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, यह अनन्त त्रिकाली अविनाशी गुण। जैसी वस्तु स्वयं अविनाशी अनादि-अनन्त, वैसे उसके ज्ञान, दर्शन, आनन्द गुण भी अनादि-अनन्त, अविनाशी।

**ऐसे जो शुद्ध-अन्तःतत्त्वरूप...** देखो, भाषा! गुण को अन्तःतत्त्व कहा है। **ऐसे जो शुद्ध-अन्तःतत्त्वरूप ( निज ) स्वरूप के सहजज्ञानादिक सहजगुण उनका चिन्तन करना...** आहाहा! स्वाभाविक त्रिकाली ज्ञान, स्वाभाविक त्रिकाली आनन्द, स्वाभाविक त्रिकाली सम्यक् श्रद्धा, त्रिकाली, हों! वर्तमान प्रगट पर्याय नहीं। ऐसे सहज ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि स्वाभाविक गुणों का चिन्तन अर्थात् एकाग्रता करना... उसमें वह भावना कही थी, उसे यहाँ चिन्तन कहा। ज्ञानगुण, आनन्दगुण त्रिकाली, उसमें दृष्टि करके, एकाग्र होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और चारित्र है। बाकी चारित्र कुछ क्रिया और नग्नपना और पंच महाव्रत के विकल्प, वह चारित्र-फारित्र है नहीं। समझ में आया?

**वह प्रायश्चित्त है।** आहाहा! गजब टीका परन्तु! दो बातें ली हैं। पहले परमात्मा के स्वभाव (की बात) ली थी और पश्चात् गुणों का चिन्तवन, ऐसा। वहाँ स्वभाव, यहाँ गुण है ऐसा। अकेले गुण सीधे लिये, परमात्मा के गुण कहकर। उनकी एकाग्रता, गुण में एकाग्रता। अखण्ड प्रभु ध्रुव में सन्मुख होकर एकाग्र होना, उसमें राग बिना की निर्विकल्पदशा, निर्दोष वीतरागी आनन्द आदि का प्रगट होना, उसे प्रायश्चित्त—चारित्र कहा जाता है। उसे चारित्र कहते हैं। यह प्रायश्चित्त चारित्र का भेद है। प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना—यह सब चारित्र के (भेद), परन्तु यह (निश्चय) चारित्र।

दिगम्बर, ऐसा हो उसे बाह्यदशा दिगम्बर हो जाती है। बाह्य दिगम्बर हो जाती है, करनी पड़ती नहीं।

**मुमुक्षु :** सोनगढ़वाले .... नहीं मानते।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वस्तु ऐसी है। सेठ ठीक कहते हैं। जहाँ ऐसी दशा अन्दर में आनन्द की-चारित्र की हो, तब नग्नदशा सहज बन जाती है। अकेली नग्नदशा हो और चारित्र न हो तो वह थोथा है। वह तो अज्ञान है। परन्तु जब स्वरूप अखण्ड आनन्दस्वरूप की सम्यग्दर्शनपूर्वक, आनन्दपूर्वक जहाँ स्वरूप की लीनता का चारित्र होता है, उसे बाह्य नग्नदशा वस्त्ररहित दशा सहज हो जाती है। उसके ऊपर वस्त्र रहे और चारित्र हो, ऐसा होता नहीं तथा वस्त्र छूट गये, इसलिए अन्दर चारित्र है, ऐसा भी नहीं। समझ में आया? वापस कोई ऐसा कहे कि वस्त्र-पात्र रखे और अन्दर चारित्र हो।—यह तीन काल में बनता नहीं। परन्तु वस्त्र-पात्र नहीं रखते, इसलिए वहाँ चारित्र है—ऐसा भी नहीं है। अन्तर के आत्मद्रव्य का आश्रय लेकर जो निर्मल वीतरागदशा प्रगट करे, उसे बाह्य में नग्नदशा सहज हो जाती है। भीखाभाई! मार्ग ऐसा है। तीन काल, तीन लोक में सर्वज्ञ परमेश्वर ने यह पंथ कहा है। आहाहा!

**अब, इस ११४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—** पद्मप्रभमलधारिदेव ने टीका की, अब इसका श्लोक कहते हैं। १८१ है। १८१ कलश है।

**प्रायश्चित्तमुक्तमुच्चैर्मुनीनां कामक्रोधाद्यन्यभावक्षये च।**
**किञ्च स्वस्य ज्ञानसम्भावना वा सन्तो जानन्त्येतदात्मप्रवादे ॥१८१॥**

आहाहा! धर्मात्मा मुनियों को, सन्त-भावलिंगी मुनि को... **श्लोकार्थः—मुनियों को काम-क्रोधादि अन्य भावों के क्षय की...** पुण्य-पाप आदि अन्य भावों के क्षय की... यह त्याग की, लो! क्षय की कहो, त्याग की कहो या नाश की कहो। **जो सम्भावना अथवा तो अपने ज्ञान की जो सम्भावना...** गुण लिया। ऊपर कहा था न! **'कोहादिसगब्भावक्खयपहुदिभावणाए णिग्गहणं। पायच्छित्तं भणिदं... णियगुणचिंता'** वह आया न चौथे पद में। चौथे पद में ऐसा आया न? पहले में क्रोधादिभाव कहा था

न! '**णियगुणचिंता**' अर्थात् दो गुण... क्या कहते हैं? कि धर्मात्मा—सच्चे सन्त को पुण्य और पाप के भाव की नाश की—त्याग की—क्षय की जो भावना, ऐसी जो अन्तर में स्वरूप में आनन्द में एकाग्रता अथवा ज्ञानस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, इसके गुण की सम्यक् भावना, उस गुण में एकाग्रता, राग में नहीं। राग का तो नाश करने के लिये गुण में एकाग्रता... आहाहा!

**वह उग्र प्रायश्चित्त कहा है।** उसे सन्तों ने, केवलियों ने, तीर्थंकरों ने उग्र चारित्र कहा है। आहाहा! यह चारित्र है। आहाहा! **सन्तों ने आत्मप्रवाद में ऐसा जाना है।** सन्तों ने, धर्मात्माओं ने आत्मप्रवाद में (अर्थात्) आत्मा का जहाँ कथन चले, आत्मा की अध्यात्म की बात चले, उसमें ऐसा जाना है, मुनियों ने ऐसा जाना है। आहाहा! भगवान (आत्मा) शरीर-वाणी से तो भिन्न चीज़ है, उसकी क्रिया तो आत्मा की नहीं, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे आत्मा की क्रिया नहीं, वह विकारी क्रिया है। ऐसा सन्तों ने आत्मा के भान में और आत्मा के कथन में जाना है। समझ में आया? ऐसी बात है। आहाहा!

चारित्र तो परमेश्वरपद है, जिसे गणधर नमस्कार करते हैं। 'णमो लोए सव्व साहूणं।' शास्त्र रचे, तब 'णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं...' सर्वत्र सव्व आता है। अन्तिम पद यह सबमें आता है। 'णमो लोए सव्व आईरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।' जिसे गणधर (कि जो) चार ज्ञान (के धारक) और चौदह पूर्व की रचना एक क्षण में करे, उनका नमस्कार पहुँचे, वह दशा कैसी होगी, भाई! समझ में आया? वे तो अन्तर में आनन्द में झूलते होते हैं। ऐसे मुनि को निद्रा एक पौन सेकेण्ड के अन्दर होती है। सच्चे सन्त को निद्रा पौन सेकेण्ड के अन्दर (होती है)। एक सेकेण्ड की भी निद्रा आ जाये तो गुणस्थान और मुनिपना नहीं रहे। आहाहा! ऐसी मार्ग की, चारित्र की शैली है। समझ में आया?

आता है न, छहढाला में नहीं आता? 'भूमांहि पिछली रयनि में...' (ढाल ६, पद ५)। आता है। एक पिछली रात्रि में एक पौन सेकेण्ड... छठवें गुणस्थान की स्थिति पौन सेकेण्ड के अन्दर है। आहाहा! क्या हो? और सातवें गुणस्थान की स्थिति उससे

आधी है। उससे डबल छठवें की। उससे आधी सातवें की। सच्चे सन्त को तो छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान तो हजारों बार अन्तर्मुहूर्त में आता है। अन्तर्मुहूर्त में अप्रमत्त... विकल्प भूल जाये। आनन्द की दशा में रमने से जिन्हें निद्रा ही पौन सेकेण्ड के अन्दर होती है, उन्हें—मुनि और चारित्र कहते हैं। आहाहा! अरेरे! दुनिया ने भगवान का कहा हुआ चारित्र क्या है (यह) सुना नहीं, समझा नहीं, आचरण में तो कहाँ से आवे? मार्ग ऐसा है, भाई! अनादि का, हों! दिगम्बर धर्म, वह कोई नयी चीज़ नहीं, अनादि की चीज़ है अनादि की। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। श्वेताम्बर बाद में निकले। श्वेताम्बर—स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी में से निकला है। नया मार्ग है, मूल मार्ग नहीं। मूल मार्ग तो यह है। अनादि का सनातन मार्ग। उसका पहले सम्यग्दर्शन प्रगट करना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

**(अर्थात् जानकर कहा है)**। ऐसा लिखा न! सन्तों ने... कुन्दकुन्दाचार्य, पद्मप्रभमलधारिदेव, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, पूज्यपादस्वामी आदि महा सन्त धर्म के स्तम्भ, केवलज्ञान के पथानुगामी, केवलज्ञान के कुल के मार्गानुसारी, केवलज्ञानी के पगडण्डी—रास्ते चलनेवाले। उन सन्तों को आत्मा के आनन्द की एकाग्रता, उसे प्रायश्चित्त और चारित्र आत्मप्रवाद में जानने में आया है। आहाहा! भारी कठिन काम, भाई! अभी व्यवहार का भी ठिकाना नहीं हो, वहाँ निश्चय तो कहाँ? परन्तु (यह तो) ऐसा निश्चय हो, तब उसे व्यवहार, विकल्प को व्यवहार का आरोप होता है। वह व्यवहार, बन्ध का कारण है।

निश्चय है, वह मोक्ष का कारण है। एक ही है, मोक्ष के कारण दो नहीं। मोक्षमार्ग दो नहीं, मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार से है। मोक्षमार्ग एक है। टोडरमलजी में आया है। मोक्षमार्गप्रकाशक है न, सातवाँ अध्याय। मोक्षमार्ग दो प्रकार का नहीं, दो प्रकार मानना, यह भ्रम है। दोनों को उपादेय मानना भ्रम है। एक भगवान आत्मा अपना—निजस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र निर्विकल्प वीतराग, वह एक ही मोक्षमार्ग है। यह कहते हैं। आत्मप्रवाद में ऐसा जाना, ऐसा कहते हैं। जहाँ आत्मा में कथन आत्मा का आता है, उसमें ऐसा स्वरूप है, ऐसा मुनियों ने अन्तर से जाना है। आहाहा! ११४ गाथा पूरी हुई। ११५।

**कोहं खमया माणं समद्दवेणज्जवेण मायं च।**
**संतोसेण य लोहं जयदि खु ए चहुविहकसाए॥११५॥**

ऐसा श्लोक आता है श्वेताम्बर में, परन्तु वह अन्दर समझे बिना की बातें हैं।

**अभिमान मार्दव से तथा जीते क्षमा से क्रोध को।**
**कोटिल्य आर्जव से तथा संतोष द्वारा लोभ को॥११५॥**

**टीका:—यह, चार कषायों पर विजय प्राप्त करने के उपाय के स्वरूप का कथन है।** क्रोध, मान, वह द्वेष; माया, लोभ, वह राग। शुभराग, वह राग में जाता है और द्वेष, वह द्वेष में जाता है अर्थात् द्वेष में क्रोध और मान आते हैं तथा राग में माया और लोभ। **चार कषायों पर...** अर्थात् शुभ और अशुभभाव पर **विजय प्राप्त करने के उपाय के स्वरूप का कथन है।** शुभभाव—शुभ उपयोग और अशुभ उपयोग दोनों कषायभाव हैं। उनके ऊपर विजय प्राप्त करने का (अर्थात्) उनका त्याग करने का, उनका नाश करने के उपाय का कथन है। आहाहा! उसके तीन भेद वर्णन करते हैं।

**जघन्य, मध्यम और उत्तम ऐसे (तीन) भेदों के कारण क्षमा तीन (प्रकार की) हैं।** यह क्षमा सम्यग्दर्शन के अनुभवपूर्वक की है। आत्मा आनन्दस्वरूप और क्षमा की मूर्ति है। क्षमा अर्थात् अकषायस्वभाव। अकषायस्वभाव ऐसा परमात्मा अपना, ऐसा जिसे अन्तर में ज्ञान में भान हुआ और प्रतीति हुई है कि यह भगवान तो शुद्ध अकषायस्वभाव ही है। उसे जो यह क्षमा होती है, उसे यहाँ क्षमा गिनने में आयी है। अज्ञानी तो अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया। चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो भी क्रोध नहीं किया, वह क्षमा नहीं। मिथ्यादृष्टि जैन दिगम्बर साधु होकर नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, चमड़ी उतारकर नमक छिड़के... क्षार समझे? नमक... नमक। शुक्ललेश्या। ऐसी शुक्ललेश्या हो उसकी... भव्य को होती है, नौवें ग्रैवेयक में जाये उसे। शुक्ललेश्या तो भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि को होती है। शुक्लध्यान अलग और शुक्ललेश्या अलग। शुक्ललेश्या पुण्यभाव है। आहाहा! (बाह्य) क्षमा, वह क्षमा नहीं। वह तो पुण्यभाव की क्षमा है। यहाँ तो पुण्य और पाप के दोनों भाव के नाश की क्षमा। आहाहा! वीतरागीमार्ग कोई अलग प्रकार का है। आहाहा!

**( १ ) 'बिना-कारण अप्रिय बोलनेवाले मिथ्यादृष्टि को बिना-कारण मुझे त्रास देने का उद्योग वर्तता है,...** पहली क्षमा जघन्य श्रेणी की। **'बिना-कारण अप्रिय बोलनेवाले मिथ्यादृष्टि को बिना-कारण मुझे त्रास देने का उद्योग वर्तता है, वह मेरे पुण्य से दूर हुआ;'...** पूर्व का पुण्य था तो दूर हुआ, ऐसा कहकर क्षमा करना, वह जघन्य क्षमा है। निचली श्रेणी की समकितसहित की क्षमा है। आहाहा! **( २ ) '( मुझे ) बिना-कारण त्रास देनेवाले को...** बिना कारण त्रास... प्रहार करे, **ताडन**—मार मारना, **वध**—मार डालना... **परिणाम वर्तता है, वह मेरे सुकृत से दूर हुआ;...** वह भी मेरे पुण्य के कारण दूर हुआ है। **ऐसा विचार कर क्षमा करना वह द्वितीय क्षमा है।** दूसरे प्रकार की है।

तीसरी उत्कृष्ट क्षमा। **( ३ ) वध होने से अमूर्त परमब्रह्मरूप ऐसे मुझे...** मैं तो अमूर्त परमब्रह्मस्वरूप हूँ। मुझे नुकसान कर सके, ऐसी कोई चीज़ है नहीं। सम्यग्दृष्टि धर्मी को चौथे गुणस्थान से, परमब्रह्म कारण-आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसा समकिती को चौथे गुणस्थान में भान हो गया होता है। आहाहा! वे मुनि विचारते हैं कि **वध होने पर**—मारना—मार डालना **अमूर्त परमब्रह्मस्वरूप ऐसे मुझे...** मैं तो अमूर्त परमब्रह्मस्वरूप हूँ, परम आनन्द की मूर्ति हूँ। वह मरे कौन और मारे कौन ? नित्यानन्द प्रभु मैं अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द को कौन मारे ? **मुझे हानि नहीं होती—ऐसा समझकर परम समरसीभाव में स्थित रहना,...** लो। परम वीतराग समरसी निर्विकल्प शान्ति में स्थित रहना, उसे भगवान (द्वारा) **उत्तम क्षमा...** चारित्र का प्रकार कहा गया है। आहाहा!

**इन ( तीन ) क्षमाओं द्वारा क्रोधकषाय को जीतकर,...** यह तीन प्रकार की क्षमा आयी। क्रोध को उत्पन्न होने न दे, उसे जीतना कहा जाता है। **मार्दव द्वारा मानकषाय को,...** निर्मान, नरमाई, कोमलता, निर्मानता ऐसे मार्दव द्वारा मानकषाय को जीतकर... **आर्जव द्वारा मायाकषाय को...** ऋजुता, सरलता ऐसे सरलरूप से मायाकषाय को जीतकर **तथा परमतत्त्व की प्राप्तिरूप सन्तोष से लोभकषाय को ( योगी ) जीतते हैं।** आहाहा! भाषा देखो! परमतत्त्व ऐसा भगवान आत्मा, उसकी प्राप्तिरूप सन्तोष, उसकी प्राप्ति से हुआ आनन्द... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द द्वारा लोभ को जीता है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु है। वह अतीन्द्रिय चतुष्टय जो भगवान को प्रगट

होते हैं, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य—अनन्त चतुष्टय, वह सब शक्तिरूप से आत्मा में पड़े हैं। आत्मा के ध्रुवस्वभाव में वह सब अनन्त-अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द पड़ा है। ऐसे अनन्त आनन्द को, अनन्त आनन्दरूपी अपने परम तत्त्व की प्राप्तिरूप... अन्दर एकाग्र होकर तत्त्व को प्राप्त किया। उसके सन्तोष से, उसके आनन्द से लोभ उत्पन्न नहीं होता, उसने लोभ को जीता, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! चार की बात की।

**( आचार्यवर ) श्री गुणभद्रस्वामी ने ( आत्मानुशासन में...** दिगम्बर सन्त मुनि ने आत्मानुशासन बनाया है। भावलिंग आनन्दकन्द आत्मा, उन्हें सन्त कहा जाता है। ऐसे गुणभद्रस्वामी ने आत्मानुशासन में **२१६, २१७, २२१ तथा २२३ श्लोक द्वारा ) कहा है कि.....**

**चित्तस्थमप्यनवबुद्ध्य हरेण जाड्यात्,**
**क्रुद्ध्वा बहिः किमपि दग्धमनङ्गबुद्ध्या।**
**घोरा-मवाप स हि तेन कृता-मवस्थां,**
**क्रोधोदयाद्भवति कस्य न कार्यहानिः॥**

दृष्टान्त दिया है। गुणभद्रस्वामी दिगम्बर मुनि थे, वनवासी थे। मुनि तो वनवास में—जंगल में ही आत्मध्यान में रहते हैं। सर्दी में—शीत के दिनों में नदी किनारे, उनाळा में—गर्मी के दिनों में पर्वत के शिखर पर, वर्षा के दिनों में वृक्ष के नीचे। अहो! परमेश्वरपद के साधक... कहते हैं, उन्होंने जो विकार को अन्तर के आनन्दस्वभाव से जीता, ऐसा स्वरूप अन्य में नहीं होता।

**कामदेव ( अपने ) चित्त में रहने पर भी ( अपनी ) जड़ता के कारण उसे न पहिचानकर, शंकर ने...** शंकर... शंकर। किसी को जला दिया, मानो कामदेव को जला दिया। ...तेरा भाव तो यहाँ है अज्ञान। काम अर्थात् वासना, उसे जलाना चाहिए, उसके बदले किसी को जलाया। आहाहा! समझ में आया? चित्त में रहा हुआ काम, अपने चित्त में भोग की वासना है विषय की (वासना है)। सम्यग्दृष्टि को भोग में सुखबुद्धि टल गयी है। भोग में ९६ हजार स्त्रियाँ हो चक्रवर्ती को, परन्तु सम्यग्दर्शन में पर में सुखबुद्धि

का नाश हो गया है। पर में सुखबुद्धि माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? सुख आत्मा में है, उसके बदले विषयों में सुख, इज्जत में सुख, यह पैसा मिले उसमें सुख... गजराजजी! बहुत पैसे में सुख, नहीं? लड़का-पुत्र बराबर पाँच-सात तो बहुत सुख। मूढ़ है। पर में सुख मानना, वह तो मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। समझ में आया? सुख तो आत्मा में है, आनन्द अन्तर (में) है, उसके बदले पुण्य-पाप के भाव में भी सुख मानना, मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

पर में तो सुख नहीं, परन्तु पाप का भाव हो, उसमें सुख नहीं। उसमें तो नहीं, परन्तु पुण्य का भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, दान का भाव, उसमें भी सुख नहीं। वह तो राग है, राग तो दुःख है। आहाहा! करना नहीं, आता है, परन्तु करनेयोग्य नहीं। करनेयोग्य—कर्तृत्व माने तो मिथ्यादृष्टि है। राग करनेयोग्य है, ऐसा माने तो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आवे सही, परन्तु वह हेयबुद्धि से। आदरणीयबुद्धि नहीं। धर्मी समकिती को शुभभाव आवे, परन्तु आदरणीयबुद्धि से नहीं, हेयबुद्धि से आवे। करनेयोग्य है, ऐसा तो ज्ञानी को होता नहीं। आहाहा! भारी कठिन काम, भाई! राग करनेयोग्य है? वीतरागता करनेयोग्य है, यह बात वीतरागमार्ग में है। राग आवे, हो, परन्तु जहर है। समकिती उसे जहर मानता है। शोभालालजी! आहाहा! गजब!

शुभ और अशुभ दोनों को भगवान ने जहर कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसार में, मोक्ष अधिकार में 'विषकुम्भ—जहर का घड़ा है' ऐसा कहा है। चाहे तो शुभ हो या चाहे तो अशुभ, दोनों आत्मा के स्वभाव से विपरीत है, विभावभाव है, जहर का घड़ा है। आहाहा! जगत को तत्त्व की खबर नहीं होती और कुछ का कुछ अतत्त्व को तत्त्व माने। मिथ्यादृष्टि रहे और माने कि हम धर्म करते हैं। आहाहा! '(दंसण भट्टा भट्टा) दंसण भट्ठा न सिंजती, चरित्त भट्ठा सिंजती...' चारित्र नहीं हो तो, समकिती है, उसको ख्याल में है कि चारित्र नहीं। तो उसे चारित्र आयेगा। परनतु अभी चारित्र नहीं है और चारित्र माने, वह दर्शन से भ्रष्ट है। उसका कभी उद्धार है नहीं। समझ में आया? आहाहा! पुण्य और पाप के भाव, भाई! दोनों विकल्प है भगवान ने दोनों को कुशील कहा है। वह कुशील तो संसार में प्रवेश करावे। उसे भला कैसे मानना? आहाहा!

यहाँ तो कामदेव शंकर ने अपने चित्त में होने पर भी, कोई मानो काम बाहर में है, उसे फू... करके जलाया, परन्तु अन्दर में तो रह गया। आहाहा! इसी प्रकार यह बाह्य का त्याग किया तो हम हो गये साधु। वह तो शंकर जैसा है, कहते हैं। अन्दर में मिथ्यात्व और राग का त्याग स्वभाव के आश्रय से करना चाहिए, वह तो किया नहीं। समझ में आया? आहाहा! **कामदेव ( अपने ) चित्त में रहने पर भी ( अपनी ) जड़ता के कारण...** भान नहीं होता कि यह वासना जो पुण्य-पाप की है, वही काम है। उसे आत्मा के आनन्द का आश्रय लेकर टालना और जलाना चाहिए। उसे टालना चाहिए, वह तो टाला नहीं और बाहर का टाला। समझ में आया? स्त्री-पुत्र छोड़े, धन्धा-व्यापार छोड़े और हो गये त्यागी। परन्तु अन्दर में मिथ्यात्व का तो त्याग है नहीं अभी। कहाँ से त्याग आया तेरे पास? ऐई!

यह कहते हैं, हों! शंकर का तो दृष्टान्त दिया है यहाँ। चित्त में रहा हुआ होने पर भी... ऐसा दिया न भाई? अन्दर में रहा हुआ अज्ञानभाव, उसे पहिचाना नहीं और बाहर को जलाया। अज्ञान के कारण। आहाहा! अरे! तीर्थंकर परमात्मा ने कहा हुआ वीतरागमार्ग अलौकिक मार्ग है। समझ में आया? वह मार्ग इसे सुनने को मिलता नहीं। उल्टे मार्ग को सुलटा मार्ग मानकर बैठा। आहाहा! शंकर ने क्रोधी होकर बाहर के (काम) को जलाया, परन्तु अन्दर को जलाया नहीं (इसलिए) बढ़ गया अन्दर में मिथ्यात्व। **बाह्य में किसी को कामदेव समझकर उसे जला दिया। ( चित्त में रहनेवाला कामदेव तो जीवित होने के कारण ) उसने की हुई घोर अवस्था को ( -कामविह्वल दशा को )...** आहाहा! वासना जो है, उसे तो जलाया नहीं, अज्ञान है, उसे तो जलाया नहीं और बाहर का त्याग करके बैठे कि हम त्यागी हो गये, ऐसा कहते हैं। ऐई! कामविह्वल दशा (अर्थात्) राग के प्रेम की, पुण्य के प्रेम की तो दृष्टि रह गयी है, वही महामिथ्यात्व है। आहाहा! **क्रोध के उदय से ( -क्रोध उत्पन्न होने से ) किसे कार्यहानि नहीं होती?** ऐसा कहते हैं। वास्तव में तो अपने आनन्द और ज्ञान का निर्विकल्पस्वरूप की रुचि नहीं और जिसे पुण्य के राग की रुचि है, उसे आत्मा के प्रति क्रोध है, ऐसा भगवान कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है। क्या कहा?

आनन्दघनजी ऐसा कहते हैं और भगवान (कुन्दकुन्दाचार्य) ऐसा कहते हैं यहाँ

समयसार में कि जिसे आनन्द निर्विकल्प वीतरागस्वरूप आत्मा की जिसे रुचि नहीं और पुण्य के राग की रुचि है, वह आत्मा के प्रति महा क्रोधी जीव है। यह तो समझ में आये ऐसा है। सादी भाषा में है। ऐसा कहते हैं समयसार में, कर्ताकर्म अधिकार में। उसे क्रोध है। भगवान आत्मा पर उसे क्रोध है। निर्विकारी निर्विकल्प वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा का जिसे रस और प्रेम नहीं, उससे विरुद्ध पुण्य का दया-दान-व्रत के शुभभाव का प्रेम है, उसे आत्मा के प्रति क्रोध है, वह आत्मा का शत्रु है। पण्डितजी! मार्ग तो ऐसा है, भगवान! आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, नाथ! उसमें कोई आड़ा-टेढ़ा कम-अधिक-विपरीत करेगा तो घर में मुक्का (मार) खायेगा। समझ में आया? आहाहा! क्रोध के कारण कार्यहानि है। आहाहा! एक बात कही। दूसरी बात कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**भाद्र कृष्ण ५, गुरुवार, दिनांक - ०९-०९-१९७१**
**गाथा-११६, श्लोक-१८२, प्रवचन-११९**

११५ गाथा। उसमें आधार देकर गुणभद्राचार्य की गाथा चलती है। क्रोध को जीतना... ऐसा चलता है न ? प्रायश्चित्त अधिकार। अपना जो स्वभाव है त्रिकाल शुद्ध आनन्द ध्रुव, उसकी अरुचि का नाम क्रोध है। वह क्रोध, जो त्रिकाल स्वभाव है, उसमें वह क्रोध नहीं। उसके आश्रय से क्रोध टलता है। उस क्षमा का अर्थ यह है। उस क्षमा की पर्याय ने द्रव्य का आश्रय लिया है। आत्मा क्षमास्वरूप ही है। आत्मा का स्वरूप ही अकषायस्वरूप है। उसका आश्रय लेकर जो अन्दर अकषायभाव था, वह पाक परिणमित हुआ, उसे यहाँ क्षमा कहा जाता है। समझ में आया ? शंकर का दृष्टान्त दिया है। बाहर में किसी को वैरी गिनकर उसे मारा, घात किया, परन्तु अन्दर राग—स्वरूप के अभावस्वरूप राग का भाग जो कामभोग और वासना, उसे तो नाश नहीं किया। नाश करनेयोग्य तो वह था। और वह घातयोग्य कब हो ? जिसमें वह राग नहीं, काम नहीं, ऐसा अपना निज स्वभाव, उसका आश्रय ले; उसमें नहीं तो उसका आश्रय ले तो क्रोध का घात होता है। समझ में आया ? आगे कहेंगे।

आत्मा स्वयं ही प्रायश्चित्तस्वरूप है। बात तो ऐसी लेनी है कि जो कुछ निर्मलता निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, आनन्द आदि प्रगट हो, उस स्वरूप ही आत्मा है। उस स्वरूप है, उसमें से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय—परिणति उसके अवलम्बन से, उसमें है, उससे परिणमती है। समझ में आया ? मोक्षमार्ग... नियमसार है न ? वह मोक्षमार्ग है। निश्चय मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र। निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प—रागरहित ज्ञान और निर्विकल्प चारित्र—ये तीनों मोक्ष का मार्ग। परन्तु वह आवे कहाँ से ? राग की मन्दता और निमित्त के लक्ष्य से आवे नहीं। उन तीन पर्याय का पूरा पिण्ड भगवान आत्मा है। श्रद्धागुण से भरपूर तत्त्व, ज्ञानगुण से भरपूर, चारित्रगुण से रहा हुआ—ऐसा जो तत्त्व का अन्तर आश्रय करे तो उसमें से निर्मल परिणति बहे। मगनभाई ! आहाहा ! मार्ग अलग है, भाई !

फिर मान का दृष्टान्त है बाहुबली का। मान का नाश करना। क्योंकि मान, वह दोष है और मान दोष टालनेयोग्य है। क्योंकि दोष वस्तु के स्वभाव में नहीं। अर्थात् आत्मा त्रिकाल निर्मानस्वरूप ही है। निर्मानस्वरूप भगवान आत्मा का अवलम्बन और आश्रय लेने से निर्मान परिणति प्रगट हो, उससे मान का नाश होता है (अर्थात्) मान उत्पन्न नहीं होता, उसे यहाँ निर्मानता कहते हैं। पाठ तो ऐसा है। मार्दव... है न? **'माणं समद्दवेण'** मार्दव से मान को जीते। इसका अर्थ यह कि मार्दव अर्थात् निर्मानता, उससे मान को जीते। तब निर्मानता, वह परिणति कहाँ से आवे? वह तो पर्याय हुई।

**मुमुक्षु :** द्रव्य में से तो पर्याय आती नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** द्रव्य में से ही पर्याय आती है, अभी तो यह बात है। वह बात बाद में। पूरे सामान्य में से सामान्य आता नहीं। विशेष भेद आता है, परन्तु वह सामान्य का स्वरूप नहीं। उससे वह सामान्य में से आता नहीं, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है।

यहाँ तो कहते हैं कि जो पर्याय निर्मल प्रगट हुई और जो विकारी पर्याय को उत्पन्न न होने दे अथवा नाश करे, उसका अर्थ यह कि निर्मानदशा निर्दोषदशा है नहीं उसके पास। वर्तमान में सदोषदशा है। अब, सदोषदशा को नाश करना है। किस प्रकार हो? कि त्रिकाल निर्दोष आत्मा है, उसका आश्रय लेने से, आश्रय लिया, वह परिणति निर्दोष हुई। वह निर्दोष परिणति सदोष को उत्पन्न होने नहीं देती, उसे 'नाश किया' ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? अब मान।

**चक्रं विहाय निजदक्षिणबाहुसन्स्थं,**
**यत्प्राव्रजन्ननु तदैव स तेन मुच्येत्।**
**क्लेशं तमाप किल बाहुबली चिराय,**
**मानो मनागपि हतिं महतीं करोति॥**

**श्लोकार्थः—( युद्ध में भरत ने बाहुबली पर चक्र छोड़ा...** बाहुबली और भरत दोनों को युद्ध हुआ। युद्ध... युद्ध। वह विकल्प की जाल है। सम्यग्दृष्टि नहीं लड़ता, राग लड़ता है। ऐसी बातें हैं। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि क्रोध में है ही नहीं, वह कुछ नष्ट नहीं करता। आहाहा! दलील का भाव ऐसा है कि सम्यग्दृष्टि, अपने पूर्ण आनन्दस्वभाव

में उसकी दृष्टि है। धर्मी की दृष्टि धर्मी ऐसा आत्मा पूर्णानन्द उसमें उसकी दृष्टि है और उसके धर्म की पर्याय प्रगट हुई, उसमें वह है। वह राग और निमित्त में है नहीं। उसका अलग, इसका अलग। पण्डितजी! ... यह जड़ सारा शरीर है तो क्या है ? साथ में शरीर रहता है, वह जड़ है, मिट्टी, मुर्दा है मुर्दा। इसी तरह राग भी चैतन्य की जागृति से विरुद्ध मुर्दा है। आहाहा! वस्तु के अनुरूप ही परिणमन है शुद्धता का। अशुद्धता का परिणमन उसमें है ही नहीं। भिन्न है, भिन्न है। सूक्ष्म बात है। आहाहा!

चारित्र की अपेक्षा से निर्बलता परिणमन है। स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से वह निर्बल परिणमन उसकी पर्याय में है ही नहीं। आहाहा! यहाँ तो आत्मा, आत्मा वह वीतरागस्वरूप ही है। उसे आत्मा कहते हैं कि वीतरागस्वरूप को आत्मा कहते हैं। राग और निमित्त, वह आत्मा है ? राग तो आस्रव है, द्वेष आस्रव है, निमित्त वह परद्रव्य है, निमित्त वह परद्रव्य है। तो परद्रव्य और आस्रव में आत्मा है ? (नहीं)। आहाहा! भाई! वीतरागमार्ग....

**मुमुक्षु :** धर्मी, धर्मी लड़ते हैं....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धर्मी, धर्मी लड़ते नहीं। वह द्वेष निमित्तरूप होता है, उसे और उसे। सबकी परिणति सबमें स्वतन्त्र है। द्वेष में द्वेष और उसको द्वेष... आहाहा! वह कषायभाव है। आत्मा को क्या ? आहाहा! आत्मा तो वीतरागमूर्ति है। यदि वीतरागमूर्ति न हो तो वीतरागता की धारा आवे कहाँ से ? समझ में आया ? विकार, क्रोध, मान, माया, लोभ, वह कहीं अन्तर में नहीं, वह तो निमित्त के आधीन होकर उत्पन्न हुआ पर्याय का विकार है। यहाँ आधीन होकर आवे तो उसमें विकार उत्पन्न होता ही नहीं। समझ में आया ? दो चीज़। या परद्रव्य के आधीन होना स्वतन्त्ररूप से हो आधीन, वह आधीन करे—ऐसा नहीं और या स्ववस्तु भगवान (आत्मा) के आधीन होना। सब दो बात है।

**मुमुक्षु :** स्ववस्तु भगवान के आधीन पूरा-पूरा नहीं हुआ जाता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं हुआ जाता, नहीं हुआ, वह तो उसकी निर्बलता है। परन्तु हो सकता है, ऐसा ही उसका स्वभाव है। समझ में आया ? वह पूरा ही आत्मा है। और पूरे आधीन हुआ, वह पर्याय भी पूरी निर्मल है। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कमजोरी-कमजोरी सब आत्मा में है ही नहीं।

**मुमुक्षु :** चक्र ने लड़ाई करायी....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह राग और राग में घूँटण था अज्ञान में, वह अज्ञानभाव राग। दूसरा कुछ नहीं। देह की क्रिया देह से हुई। बहुत सूक्ष्म बात है, सेठ! वीतरागमार्ग समझना... अपूर्व मार्ग है अपूर्व। आहाहा! अन्तर से ही ऐसा अस्तित्व है। भगवान आत्मा का जैसा अस्तित्व है, उसकी सत्ता का अस्तित्व जिस प्रकार से है, उस प्रकार से न माने और न जाने, वहाँ तक तो मिथ्यादृष्टि है। फिर भले दया पालता हो, व्रत पालता हो, भक्ति और पूजा और कषाय मन्द हो, परन्तु वस्तु स्वयं आत्मा जो सत्ता—अस्तिपने—अस्तिपने जिस प्रकार से और जैसे है, वैसे उसकी श्रद्धा और ज्ञान करे नहीं और मात्र व्रतादि करे मिथ्यात्वसहित तो पुण्य बाँधे, वह भी अघाति का पुण्य बँधता है। वेश बदले उसमें कुछ वस्तु नहीं बदलती। समझ में आया?

कहते हैं, **( युद्ध में भरत ने बाहुबली पर चक्र छोड़ा...** कथन क्या आवे? भरत ने छोड़ा बाहुबली पर। निमित्त का कथन है, समझाना है तो किस प्रकार से समझावे? **परन्तु वह चक्र बाहुबली के दाहिने हाथ में आकर स्थिर हो गया। )** यह दाहिना हाथ। चक्र मारा। भरत हार गये तीनों युद्ध में। प्रजा इकट्ठी हुई करोड़ों। प्रभु! पेड़ से पेड़ टकराने से (दोनों) का नाश होगा। परन्तु यह बीच में हमारा खो हो जायेगा। तुम दोनों तो बड़े योद्धा और इस युद्ध में हमारे करोड़ों लोगों का संहार होगा। प्रभु! तुम दोनों जनें लड़ो। समाज ने विनती की। तुम दोनों योद्धा और चरमशरीरी—अन्तिम भव तुम्हारा है। हमको खबर है। दोनों (में से) कोई युद्ध में मरनेवाला नहीं है। हम मरेंगे यह बीच में मुफ्त के। ऐसा कुछ कहते हैं न बाहर में? भैंसे से भैंसा लड़े और बीच में वृक्ष का खो। विनती की कि प्रभु! आप दोनों व्यक्ति लड़ो।

निर्णय हुआ। नेत्र से, पानी से और हाथ के बल से। आँख ऐसे की, परन्तु बाहुबलीजी सवा पाँच सौ धनुष के थे। सवा पाँच सौ धनुष। यह (भरत) पाँच सौ धनुष। आँख ऐसे की वहाँ भरत की आँख ऐसे ऐसी हो गयी। आँख में (नेत्रयुद्ध में) हार गये। फिर पानी का लोढ। दोनों व्यक्ति पड़े पानी में, हाथ.. पानी का लोढ। यह

सवा पाँच सौ धनुष के ऊँचे थे, ऐसे पानी मारने गये वहाँ भरत के ऊपर पानी फिर गया। बाहुबली के ऊपर नहीं आया। उसमें भी (जलयुद्ध में भी) हार गये। युद्ध किया युद्ध-युद्ध (मल्लयुद्ध)। बाहुबली ने भरत को हाथ से ऐसे उठाया। ऐसे पूरा ऊँचा किया पूरा। हार गये, अपमान हुआ। बाहुबलीजी ने भरत को नीचे उतारा ऐसे। अपमान हुआ। चक्र आया। चक्रवर्ती तो वे थे। चक्र की एक हजार देव सेवा करते थे। वह चलाया। वे (बाहुबली) चरमशरीरी है। वह (चक्र) गोत्रमर्दन नहीं करता। बाहुबली के हाथ में चक्र आ गया—दाहिनी हाथ में। कहते हैं, आकर स्थिर हो गया।

**अपने दाहिने हाथ में स्थित ( उस ) चक्र को छोड़कर...** आहाहा! अरे संसार! हम दोनों भाई... अन्तिम हमारा शरीर। अरे! राग ने यह क्या किया? भरत ने यह क्या किया? मुझे मार डालने को चक्र चलाया!! ओहो! संसार को धिक्कार है। ऐसा कहकर **जब बाहुबली ने प्रव्रज्या ली...** चक्र हाथ में था। प्रव्रज्या... आठ हजार रानियाँ, स्वयं महायोद्धा, कामदेव थे। कामदेव पुरुष थे। उदास... अरे! यह क्या?

**मुमुक्षु :** संकल्पी हिंसा गिनना या विरोधी हिंसा गिनना?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह विरोधी। उसका कुछ नहीं। अन्दर राग में राग गया, परन्तु वह चक्र जहाँ हाथ में आया तो वैराग्य... अरे संसार! यह चक्र गर्दन काटने के लिये भाई ने छोड़ा। छोड़कर प्रव्रज्या ले ली। उस प्रव्रज्या के काल में इतना जोर था, कहते हैं, दीक्षित हो गये। अन्दर आत्मा आनन्द में उतर गये, वह दीक्षा। दीक्षा अर्थात् नग्न होकर बैठना, ऐसा नहीं। अन्तर आनन्द के अन्दर सरोवर में उतर गये। पर्याय के काल में होकर अन्दर में गये। आहाहा! समझ में आया? निर्मलपर्याय द्वारा अन्दर गये, आश्रय लिया द्रव्य का। आहाहा! अन्दर में गये, प्रव्रज्या—चारित्र प्रगट हुआ।

कहते हैं कि **तभी ( तुरन्त ही ) वे उस कारण मुक्ति प्राप्त कर लेते,...** इतना वैराग्य था कि उस काल में मुक्ति पाते। **परन्तु वे ( मान के कारण मुक्ति प्राप्त न करके )...** अरे! यह जमीन भरत की है। भरत के साथ तो युद्ध किया। यह तो उसने अपमान किया है। इतनी खटक रह गयी। ऐसे मान के अंश की खटक रह गयी। **वास्तव में दीर्घ काल तक प्रसिद्ध ( मानकृत ) क्लेश को प्राप्त हुए।** बाहर में प्रसिद्ध है कि बारह-बारह महीने तक वेलड़ियाँ लिपट गयीं, है न वहाँ? क्या कहलाता है वह? श्रवणबेलगोल। दो बार

गये हैं वहाँ। ५७ फीट (की मूर्ति है)। वेलड़ियाँ लिपट गयीं। भरत आये और जहाँ पूजा करते हैं वहाँ, आहा! इन्हें तो कुछ नहीं है। यह क्या? एकदम... मान का अंश था वह गया, स्वरूप में उतरे और केवलज्ञान हुआ। अन्तर भगवान आत्मा के अन्दर उतरे, अन्तर में अन्तर्मुखाकार परिणाम किये, केवलज्ञान। आहाहा! समझ में आया?

**क्लेश को प्राप्त हुए। थोड़ा भी मान महा हानि करता है!** उसमें ऐसा आया था न! क्रोध किसे कार्यहानि नहीं करता? ऐसा। मानपना थोड़ा भी... आहाहा! श्वेताम्बर में ऐसा आता है। खड़े हैं ऐसे और ब्राह्मी और सुन्दरी—दोनों बहिनों को भेजा। ऐसी बात आती है। वह बात बराबर नहीं है। ऋषभदेव भगवान ने दोनों बहिनों को भेजा। उन्हें तो मात्र इतना ही था कि यह भरत की जमीन। इतना जरा अंश रह गया अन्दर। बस, दूसरा कुछ नहीं। उन लोगों में ऐसा आता है, श्रीमद् में भी ऐसा ही आता है। पहले शुरुआत में श्वेताम्बर शास्त्र का वाँचन था न! 'वीरा मोरा गज थकी उतरो, अे गज थी केवळ न होय रे, वीरा मोरा गज थकी उतरो।' क्या कहा? ऐ शोभालालजी! यह भाषा सादी है। गज अर्थात् हाथी।

हे भाई! मानरूपी हाथी से अब नीचे उतरो। 'वीरा मोरा गज थकी उतरो, गज चढ्ये केवळ न होय।' इस मान में चढ़ने से केवलज्ञान नहीं होगा, भाई! उसमें यह आता है। आहाहा! भगवान आत्मा में आरूढ़ हो, ऐसा भगवान फरमाते हैं। यह छोड़ दे। तेरा केवलज्ञान रुकता है। भरतजी आते हैं। यह है न वहाँ अपने प्रवचनमण्डप में। भरत आते हैं, ऐसे पूजा करते हैं। ओहो! मात्र पर के ऊपर के लक्ष्य में मान में अटके थे, केवल (ज्ञान) नहीं हुआ। आहाहा! मुनि थे सच्चे, हों! भावलिंगी सन्त। समझ में आया? इतने मान के खटक की कील से पूरे केवलज्ञान की मशीन बन्द कर दी। मशीन होती है न बड़ी मशीन। एक कील कहीं डालो कील-कील, सब मशीन बन्द हो जाती है पूरी।

उज्जैन में है न तुम्हारे? बसन्तलालजी! उज्जैन में सेठ की मशीन है न ढाई करोड़ की। विनोद मिल। एक बार हमको ले गये थे। लालचन्द सेठ थे। पाँच सौ रुपये रखे थे ज्ञानखाते। वह मशीन ऐसी कि अपने आप चले। व्यक्ति तो कहीं एकाध खड़ा हो बस। ऑटोमैटिक, जहाँ रुई डाली, कपड़ा होकर तैयार। कहीं डोरा टूट जाये तो मनुष्य खड़ा

हो इतना। ऐसा कर डाले डोरा व्यवस्थित, बस इतना, दूसरा कुछ न करे। मशीन अपने आप चले। वह मशीन उज्जैन में है। अन्यत्र कहीं नहीं इतने में। ... वह मशीन, कील मान की रह गयी तो पूरी मशीन बन्द हो गयी केवलज्ञान प्राप्त करने की। यह मान जहाँ छोड़ा, अन्दर जहाँ गये, जलहलज्योति चैतन्य केवलज्ञानमूर्ति, जैसा उसका स्वभाव था, वैसा पर्याय में प्रगट हो गया। समझ में आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** (कषाय) बुद्धिपूर्वक थी या अबुद्धिपूर्वक?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बुद्धिपूर्वक थी। उन्हें ख्याल में है। बुद्धिपूर्वक हो न! अबुद्धिपूर्वक... अब, माया। माया का दृष्टान्त है।

**भेयं माया-महागर्तान्मिथ्या-घन-तमो-मयात्।**
**यस्मिन् लीना न लक्ष्यन्ते क्रोधादिविषमाहयः॥**

**श्लोकार्थः—जिसमें (जिस गड्ढे में) छिपे हुए क्रोधादिक भयंकर सर्प...** मायारूपी खड्डा... खड्डा... खड्डा... कपटरूपी खड्डे में छुपे हुए क्रोध-मान-लोभादि भयंकर सर्प **देखे नहीं जा सकते...** मायावी कपटी अपने में रहे हुए क्रोध-मान-मायादि को देख नहीं सकता। आहाहा! **ऐसा जो मिथ्यात्वरूपी घोर अन्धकारवाला...** देखा! उस माया में मिथ्यात्व... ऐसा एक शब्द आता है। 'साचामां सामायिक बसे, माया में मिथ्यात्व...' कोई बहुत समय पहले की बात है। 'समकित का मूल जानिये, सत्य बात साक्षात्...' माया का बाद में। 'समकित का मूल जानिये, सत्य वचन साक्षात्, सच्चे में सामायिक बसे अरु माया में मिथ्यात्व।' यह तो बहुत समय पहले का, बहुत वाँचा हुआ न, उसमें यह श्लोक है श्वेताम्बर में है कहीं। समझ में आया? क्या कहा? माया में मिथ्यात्व...

'समकित का मूल जानिये, सत्य वचन साक्षात्...' सत्य का—यथार्थ का स्वीकार, इसका नाम समकित है। यथार्थ भगवान पूर्णानन्द प्रभु, सच्चिदानन्द आत्मा सिद्ध समान, उसका स्वीकार वह समकित। 'सत्य समकित का मूल जानिये...' सत्य वचन अर्थात् सत्यभाव। 'सच्चे में समकित बसे...' सत्य स्वभाव का आदर करने में समकित होता है। समझ में आया? 'माया में मिथ्यात्व...' कपट में तो मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं।

यहाँ भी यह आया, देखो न! मिथ्यात्वरूपी घोर अन्धकारवाले **मायारूपी महान गड्ढा...** खड्डा... खड्डा... **उससे डरते रहना योग्य है।** आहाहा! माया को सरलता से जीते। ऋजुता, सरलता। सरलता अर्थात् निर्विकारी परिणति और वह निर्विकारी परिणति—सरलता भगवान आत्मा के आश्रय से होती है। क्योंकि भगवान आत्मा त्रिकाली सरलस्वरूप ही है। आहाहा! समझ में आया? सरल—सीधा सत्स्वरूप ही परमात्मा अपना-निज है। उसका आश्रय लेने से सरल परिणाम होते हैं, माया की उत्पत्ति नहीं होती, उसने माया को जीता, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! (अब) लोभ।

**वनचर-भयाद्धावन् दैवाल्लताकुल-वालधिः,**
**किल जडतया लोलो वालव्रजेऽविचलं स्थितः।**
**बत स चमरस्तेन प्राणै-रपि प्रवियोजितः,**
**परिणततृषां प्रायेणैवम्विधा हि विपत्तयः॥**

यह शब्द जरा वह हो गया है। **श्लोकार्थः—वनचर के भय से भागती हुई सुरा गाय की पूँछ...** चमरी गाय होती है। उसकी पूँछ सफेद होती है, बहुत सफेद बाल। उसे पूँछ के प्रति बहुत लोभ होता है। चमरी गाय। यह चमर रखते हैं न, श्वेताम्बर में बहुत रखते हैं।

**मुमुक्षु :** अन्य साधनयोग....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, वह। वनचर के भय से वह चमरी गाय... वनचर अर्थात् संहारी—शिकारी सिंह या बाघ। ऐसे वन में घूमते ऐसे जीवों से डर से भागती चमरी गाय। '**धावन्**' है न? '**धावन्**' भागे गाय। बाघ आवे या कोई शिकारी हो तो दौड़े। उसमें पूँछ **दैवयोग से बेल में उलझ जाने पर...** वेल हो वृक्ष की या काँटे हो काँटे, उसमें एक बालादि। एक बाल चिपक जाये, उलझ जाये। **उलझ जाने पर जड़ता के कारण...** भान बिना की गाय। भान नहीं हो कि एक बाल यहाँ उलझ गया, भले ही टूटकर निकल जाये, मर नहीं जाऊँगी। एक बाल उलझे, और उसके लोभ से वहाँ रुक गयी। समझ में आया? इसी प्रकार यह बनिया लोभिया तृष्णा में रुक गया है, ऐसा कहते हैं मूल तो। बनिया अर्थात् व्यापारी। यह आता है अन्दर लोभी। जिसे तृष्णा परिणमित हुई है, ऐसा

है। देखो! अन्दर है। जिसे तृष्णा परिणमित हुई है। सेठ! लोभ परिणमित हुआ है, इतना लाओ... इतना लाओ... इतना लाओ। चैन नहीं होता। यह है अन्तिम अक्षर। वनचर....

**दैवयोग से बेल में उलझ जाने पर जड़ता के कारण बालों के गुच्छे के प्रति लोलुपतावाली...** आहाहा! यहाँ से भागूँ तो बाल टूट जायेंगे। अब दो-पाँच-दस बाल टूटे तो तेरी पूँछ को कहाँ दिक्कत आवे, ऐसा है? समझ में आया? इसी प्रकार यह व्यापारियों को तृष्णा परिणमी हो। जादवजीभाई! उसमें से कोई पच्चीस-पचास, सौ रुपये, पाँच सौ, हजार-दो हजार जाते हों, उसके लिये वहीं का वहीं चिपकता है। ऐसे करोड़ों रुपये हों, परन्तु दो हजार रुपये न देता हो तो उसके ऊपर फरियाद, पुलिस, तृष्णा... वहाँ अटके। स्वप्न में भी ऐसा आवे कि यह केस जीतूँगा। उसे हार जाना है, उसका ऐसा करूँगा, फलाना करूँगा। ऐई मलूकचन्दभाई! थोड़ा-थोड़ा लागू पड़ता है या नहीं? मलूकचन्दभाई सीधी बात करते हैं। यह न्यालभाई को लागू पड़ता है या नहीं? आहाहा! इतने-इतने रुपये तो भी उसके लिये यहाँ कर दूँ, उसका इतना कर दूँ, उसका करने के बाद जाऊँ, फिर किया और देश छोड़े, फिर ऐसा करें... आहाहा!

देखो! पाठ ऐसा है '**परिणततृषां**' ऐसा पाठ है न? जिसे तृषा परिणत हो गयी है, लोभ में ही जिसका परिणमन हो गया है। भगवान आत्मा निर्लोभी, रागरहित चीज़, उसकी दृष्टि का तो जिसे अभाव है। सच्चिदानन्द प्रभु, अपना आनन्द का नाथ, अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति, निर्लोभ अर्थात् सन्तोष की मूर्ति। आहाहा! शान्त... शान्त... शान्त... सन्तोषस्वरूप भगवान आत्मा। उसका आश्रय लेता नहीं और तृष्णा परिणमित हुई है, वह सब दुःखिया है, कहते हैं। भले करोड़ोंपति हो या अरबोंपति हो, परन्तु सब भिखारी दुःखी हैं। ऐसा होगा जादवजीभाई! आहाहा! थोड़ासा इतना कर लूँ, हों! यह एक लड़का छोटा है जरा, बुद्धि थोड़ी है, जरा बड़ा हो, विवाह कर दूँ, फिर निवृत्ति करूँगा। यह लड़की है न, इसके प्रमाण में घर कुछ अच्छा खोज दें, फिर विवाह करें, फिर करूँगा। मर गया कर-करके उसमें। समझ में आया? ऐई मूलचन्दभाई! और आठ लड़के, आठ बँगले व्यवस्थित करूँ, मैं देखता जाऊँ। इतनी तृष्णा परिणमी है, कहते हैं कि जो आत्मा तृष्णारहित सन्तोष और आनन्द का नाथ है, उसके सामने नजर करने का भी उसे समय नहीं। आहाहा! बराबर होगा या नहीं? आहाहा!

**वह गाय ( अपने सुन्दर बालों को न टूटने देने के लोभ में ) वहाँ अविचलरूप से खड़ी रह गयी,...** शिकारी मार सके इस प्रकार से खड़ी रही। एकदम खड़ी रह गयी। शिकारी ने बाण मारा तो एकदम ऐसे उड़ गयी। एक-दो-चार बाल उलझे, उनके लोभ के कारण यह शरीर गँवाया। इसी प्रकार अनादि से तृष्णा लोभ ऐसा जिसे परिणमित हुआ है, अन्दर में लोभ की पूर्ति करने में पूरी जिन्दगी जाती है। आहाहा ! दस हजार की पूँजी हो तो उसमें से लाख हो। तो कहे लाख हुए, परन्तु उसके पास दस लाख हैं, दस लाख हुए वहाँ कहे अमुक के पास करोड़ है, करोड़ हुए, वहाँ कहे अमुक के पास दस करोड़ है। यह असन्तोषी ऊँचा ही आता नहीं। समझ में आया ? बराबर होगा यह चन्द्रकान्तभाई ? नहीं होती ?

गजब बात की है, हों! ऐसे भगवान आत्मा सन्तोष का सागर है। सन्तोष का सागर, उसमें से सन्तोष का झाग आवे बाहर, ऐसा वह प्रभु है। शान्ति... शान्ति... शान्ति... वीतरागता अन्दर की... वह सन्तोष की परिणति सन्तोषस्वरूप भगवान के आश्रय से आती है। उसके बदले वह पर के आश्रय से यह कर लूँ, यह कर दूँ, यह कर दूँ। उसमें अपना करना तो कहीं रह गया। तृष्णा में परिणमकर जिन्दगी गुमावे, फिर मरते हुए रोवे। अरेरे! मैंने कुछ किया नहीं, हों! किया सब। वह नहीं किया तूने पाप? आहाहा!

मैंने कुछ नहीं किया, एक व्यक्ति रोता था। यही हो रहा है। एक व्यक्ति था। कुछ बुद्धि यह लौकिक की। मरने पड़ा। देखने आवे अच्छे लोग। आँख में से आँसू बहते जायें। अधिकारी व्यक्ति हो तो देखने तो आवे न मरते समय की सेठ को ठीक नहीं, सेठ को ठीक नहीं, चलो। जाये और आँख में से आँसू बहते जायें। कैसे हैं भाई ? अरेरे! मैंने मेरा कुछ किया नहीं। अरे! यह जाता हूँ अब। समाप्त हो गया। आहाहा! अभी तक बाहर की सम्हाल रखने में मेरा काल—समय चला गया। देह छूट गयी। धर्मी को मरण का भय नहीं होता। मैं तो आनन्दस्वरूप आत्मा हूँ। मेरा मरण और जीवन दोनों कहाँ हैं ? मैं तो त्रिकाली जीवित टिकता ही तत्त्व हूँ। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि को अपने स्वभाव का आश्रय है, (इससे) उसे (ऐसा है कि) जगत के जीव को मरण का डर है, मुझे मन आनन्द की लहर है। मुक्ति नहीं, इसलिए वहाँ तो

शरीर का खोखा बदलकर दूसरा शरीर आयेगा, परन्तु उसमें साधन तो मुझे यही करना है। समझ में आया? भगवान आत्मा निर्लोभ का पिण्ड प्रभु... आहाहा! सन्तोष के सागर से भरपूर है, ऐसी जिसकी अन्तर्दृष्टि हुई, उसे लोभ होता ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! थोड़ी इच्छा हो, तथापि उस इच्छा की इच्छा नहीं है, इसलिए लोभ नहीं है, ऐसा कहते हैं। एक करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ और दस करोड़ करते हुए कितना ढ़ेर हो, तो भी चैन नहीं आता।

**अरेरे! वह गाय...** खड़ी रह गयी है, हों! शिकारी के हाथ में आवे, इस प्रकार खड़ी रही। भागती थी। मारने आया तो भागती थी—दौड़ती थी। उसमें बाल उलझ गया। सेठ! थोड़ा यह कर लूँ, थोड़ा यह कर लूँ, थोड़ा यह कर लूँ। फिर क्या करेगा धूल? मकान सुलगे, फिर कुँआ खोदेगा। मकान सुलगे—जल, कुँआ खोदो। कब पानी निकले? सब जल जायेगा। ऐसा हो गया। धर्मी को दृष्टि में लोभ है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। वह लोभ का राग आवे, परन्तु राग का राग नहीं है, राग की रुचि नहीं है। आहाहा! धर्मी को तो राग की रुचि नहीं है, लोभ का लोभ नहीं है। उसे तो आत्मा की स्वभाव की भावना होती है। कब मैं केवलज्ञान लूँ, कब मैं पूर्ण सिद्धपद को प्राप्त करूँ, मेरे स्वभाव की शरण में कब मैं उग्र शरण लूँ—ऐसी भावना होती है। समझ में आया? यहाँ सामने मिथ्यादृष्टि का ही दोष लिया है।

**गाय ने बालों के लोभ में प्राण भी गँवा दिये!** प्राण भी गँवाया, ऐसा कहना है न! वह बाल तो गये। दो-पाँच-दस बाल के कारण पूरी बाल की पूँछ तो गयी, यह तो प्राण गये। आहाहा! इसी प्रकार आत्मा अनादि का अपने निज स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान की भावना बिना मात्र बाह्यपदार्थ की रचना और व्यवस्थितता की तृष्णा में अटक गया। तेरी जिन्दगी का जीवन व्यर्थ गया। समझ में आया?

**और इस ११५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—**

**क्षमया क्रोध-कषायं मान-कषायं च मार्दवेनैव।**
**मायामार्जवलाभाल्लोभकषायं च शौचतो जयतु॥१८२॥**

प्राप्ति ली है न! **श्लोकार्थः—क्रोधकषाय को क्षमा से,...** जीते। क्षमा अर्थात् अविकारीपरिणाम। वह अविकारीपरिणाम त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से होते हैं। बात पर्याय से करे न! क्षमा प्रगट हो, परन्तु क्षमा प्रगट कब हो? त्रिकाली भगवान सच्चिदानन्द ध्रुवस्वरूप अपना, उसका आश्रय ले, तब क्षमा प्रगट हो। आहाहा! **मानकषाय को मार्दव से ही,...** ऐसी ही गाथा है श्वेताम्बर में आठवीं गाथा। मान को निर्मानपने, नरमाई—कोमलता से उसे जीते। कपट को **आर्जव की प्राप्ति से...** है न? **'लाभा'** कहा, **'लाभा'।** सरलता की प्राप्ति। सरल... सरल... बालक जैसे अपने दोष कहने में हिचकता नहीं और सरल है, उसी प्रकार धर्मात्मा अपनी सरलदशा की भूमिका में सरलता से कपट को जीते अर्थात् उत्पन्न होने देता नहीं। वह सरलता स्वभाव के आश्रय से प्रगट होती है।

भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु अपना आनन्दधाम भगवान उसके धाम में जाने से सरलता प्रगट होती है। वह सरलता है। बाकी व्यवहार सरलता तो पुण्यबन्ध का कारण है। **और लोभकषाय को शौच से ( -सन्तोष से ) जीतो।** सन्तोष... सन्तोष... शान्ति... शान्ति... अकषायभाव। आत्मा का आश्रय लेने से अकषायभाव हो, उससे लोभ को उत्पन्न होने न दे, उसने लोभ को जीता, ऐसा कहा जाता है। मार्ग की पद्धति भी अलौकिक है, भाई! भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमात्मा का पंथ अलौकिक, विचित्र-अलौकिक। आहाहा! उनकी पद्धति, उनकी रीति और उनका प्रकार दूसरी जाति का है। कहीं दुनिया के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं है।

(अब) ११६, ११६ गाथा।

**उक्किट्ठो जो बोहो णाणं तस्सेव अप्पणो चित्तं।**
**जो धरइ मुणी णिच्चं पायच्छित्तं हवे तस्स॥११६॥**

आहाहा! गजब है उसकी....!

**उत्कृष्ट निज अवबोध अथवा ज्ञान अथवा चित्त को।**
**धारे मुनि जो पालता वह नित्य प्रायश्चित्त को॥११६॥**

आहाहा! क्या कहते हैं? **टीकाः—यहाँ, 'शुद्ध ज्ञान के स्वीकारवाले को प्रायश्चित्त है'...** शुद्ध ज्ञान शब्द से आत्मा। अकेला शुद्ध ज्ञान का भण्डार प्रभु, उसके

स्वीकारमात्र से प्रायश्चित्त है। क्योंकि शुद्ध ज्ञान स्वयं प्रायश्चित्तस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? कौन? त्रिकाल, हों! त्रिकाल ज्ञान, शुद्ध ज्ञान का पिण्ड प्रभु राग से तो रहित है, परन्तु एक समय की पर्याय से रहित है। आहाहा! ऐसा शुद्ध ज्ञान त्रिकाली ध्रुव भगवान का स्वीकार... उसका स्वीकार किया कि पूर्ण स्वरूप ऐसा है, ऐसा स्वीकार किया, उसकी पर्याय में प्रायश्चित्त परिणति प्रगट होती है। प्रायश्चित्त—वीतराग परिणति प्रगट होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अब त्रिकाल की बात करते हैं।

**उत्कृष्ट ऐसा जो विशिष्ट धर्म...** आत्मा का ऊँचे में ऊँचा—खास धर्म... धर्म अर्थात् त्रिकाली भाव। भगवान आत्मा नित्य... नित्य... नित्य... नित्य... कायम रहनेवाला तत्त्व, उसमें कायम रहनेवाला जो ज्ञान और आनन्दादि भाव... ज्ञान की मुख्यता से बात की है। **उत्कृष्ट ऐसा जो विशिष्ट**—खास **धर्म वह वास्तव में परम बोध है...** वह वस्तु का त्रिकाल स्वभाव, वह परमबोध है। आहाहा! देखो न! कैसी बात डाली है! प्रायश्चित्त की पर्याय है, परन्तु कहते हैं कि प्रायश्चित्त की वीतरागी पर्याय कहाँ से होगी? वह भगवान आत्मा स्वयं प्रायश्चित्तस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्ज्ञान की पर्याय कहाँ से प्रगट होगी? ऐसा कि भगवान सम्यग्ज्ञान की मूर्ति है। आहाहा! अंशी में से अंश प्रगट होगा। कहीं व्यवहार के राग और निमित्त में से प्रगट होगा नहीं। आहाहा!

ऐसी ही कोई वीतराग के घर की कुन्दकुन्दाचार्य की शैली ही कोई अलग है। देखो! यह शरीर के थोथा। अभी तो इस शरीर की पूरी बात चलती थी न! अब शरीर तो कहीं जड़ रह गया। वह तो मिट्टी उसके कारण से खड़ी है यह सब। यहाँ तो कहते हैं कि यह दया, दान, व्रतादि का विकल्प भी राग और दोष है। उससे भगवान कहीं भिन्न रह गया। वह तो रहा, परन्तु वर्तमान पर्याय में राग का ज्ञान हो, उस ज्ञान की एक समय की पर्याय से भी उत्कृष्ट बोध त्रिकाल है। समझ में आया? आहाहा!

केवलज्ञान की पर्याय से भी उत्कृष्ट बोधस्वरूप भगवान आत्मा है। समझ में आया? जहाँ तेरा परमेश्वरस्वरूप विराजता है, वह उत्कृष्ट स्वरूप है, वह उत्कृष्ट ज्ञान और उत्कृष्ट प्रायश्चित्त है। आहाहा! **वास्तव में परम बोध है—ऐसा अर्थ है।** ऐसा कहते हैं। ऊँचा ऐसा जो खास धर्म अर्थात् स्वभाव वह वास्तव में परमज्ञान है—परमबोध है। आहाहा! परमबोध जो आत्मा का स्वभाव, वह वास्तव में भगवान आत्मा

का स्वभाव है। **बोध, ज्ञान और चित्त भिन्न पदार्थ नहीं हैं।** बोध कहो, ज्ञान कहो या चित्त कहो—चैतन्य चित्त—यह तीनों पदार्थ भिन्न नहीं है। बोध—बुध्यते—जानना... जानना, ज्ञान भी जानना, चित्त भी जानना। ये अलग तीन शब्द हैं न पाठ में? '**बोहोणाणंतस्सेवअप्पणोचित्तं**' '**अप्पणोचित्तं**' शब्द है। चित्त (अर्थात्) वह मन नहीं। मन चित्त नहीं, चैतन्य का चित्त। आहाहा! हाँ, वह वस्तु एक ही है।

**ऐसा होने से...** अर्थात्? अेटले—अर्थात्। उत्कृष्ट ऐसा खास धर्म, वह परमबोध है—ऐसा अर्थ है। **बोध, ज्ञान और चित्त भिन्न पदार्थ नहीं हैं।** आत्मा का अन्तरभाव बोध कहो, अन्तरभाव ज्ञान कहो या अन्तरभाव चैतन्य का चित्त कहो। **ऐसा होने से ही उसी परमधर्मी जीव को... ऐसा होने से ही...** ऐसा होने के कारण... वह परम धर्मी भगवान आत्मा परमधर्मी जीव को **प्रायश्चित्त है।** वह परमधर्मी जीव स्वयं ध्रुव, वही प्रायश्चित्त है। पहले आ गया था न! 'प्रकृष्टपने चित्त' आया था न पहले?

प्रायश्चित्त—प्रचुररूप से निर्विकारी चित्त। प्रायश्चित्त=प्रायः, चित्त—ज्ञान। प्रचुररूप से निर्विकारी वह ज्ञान वह प्रायश्चित है। भगवान आत्मा का प्रचुररूप से—पूर्णरूप से निर्विकारी बोध, ज्ञान और चित्त, वह अपना धर्म है। वह जीव का धर्म—त्रिकाली धर्म है, वह धर्मी का धर्म है। इसलिए धर्मी स्वयं बोध, ज्ञानस्वरूप और प्रायश्चित्तस्वरूप है। **ऐसा होने से ही उसी परमधर्मी जीव को प्रायः चित्त है...** वह परमधर्मी ऐसा आत्मा त्रिकाली, वह स्वयं प्रायश्चित्तस्वरूप है। क्योंकि उसे बोध, ज्ञान और चित्त वह एक वस्तु, उसका धर्म है। और धर्मी जीव—धर्म का धारक धर्मी... धर्म स्वयं प्रायश्चित्त स्वरूप है, तो धर्मी स्वयं प्रायश्चित्त स्वरूप है। समझ में आया?

**जो परमसंयमी ऐसे चित्त को... ऐसे चित्त को नित्य धारण करता है,...** भाषा देखो! ऐसा जो त्रिकाली भगवान आत्मा ज्ञान, बोध और चित्स्वरूप स्वयं प्रभु। उस संयमी चित्त को—ऐसे द्रव्य को नित्य धारण करता है, वर्तमान पर्याय में ऐसे द्रव्य को नित्य धारण करता है... आहाहा! धारता है, ऐसे पर्याय स्वभाव को धारती है। यह स्वभाव ही मैं। परमधर्मी जीव को उत्कृष्टरूप से ज्ञान जो है, ऐसे परमसंयमी ऐसे चित्त को; चित्त अर्थात् वह आत्मद्रव्य, **नित्य धारण करता है,...** जिसकी वर्तमान पर्याय की दशा में कायम जो द्रव्य दृष्टि में पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म सुना न हो,

उसे प्रगटे कहाँ से? मास्टर! समझ में आता है न? आत्मा... वह आत्मा त्रिकाली... त्रिकाली ध्रुव, वह बोध, चित्त और ज्ञान, वह आत्मा और आत्मा, वह प्रायश्चित्त। प्रचुररूप से निर्विकारी चित्त, वह प्रायश्चित्त। मुख्यरूप से निर्विकारी भगवान आत्मा, वह प्रायश्चित्त। आहाहा! जो वर्तमान संयमदशा में—निर्विकारीदशा में त्रिकाली द्रव्य को धारण करता है, उसे नित्य प्रायश्चित्तस्वरूप का आश्रय है (तो) उसकी पर्याय में नित्य प्रायश्चित्त ही है। पाप को छेदता है, ऐसी उसकी परिणति है।

लोगों ने सत्य को सुना नहीं। बाहर से गड़बड़ यह करो और यह करो और यह करो। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा वर्तमान निर्मल संयम और श्रद्धा-ज्ञान की पर्याय में वीतरागी पर्याय में ऐसा त्रिकाली आत्मा धारे, वह पर्याय प्रायश्चित्त है और वह वस्तु प्रायश्चित्त है। आहाहा! वह पर्याय चारित्र है, वस्तु चारित्रस्वरूप है। समझ में आया? आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धस्वरूप... 'सिद्ध समान सदा पद मेरो...' आता है या नहीं? (नाटक समयसार, मंगलाचरण, श्लोक ११)।

**चेतनरूप अनूप अमूरति, सिद्धसमान सदा पद मेरौ।**
**मोह महातम आतम अंग, कियौ परसंग महा तम घेरौ।**
**ग्यानकला उपजी अब मोहि, कहौं गुन नाटक आगमकेरौ।**
**जासु प्रसाद सधै सिवमारग, वेगि मिटै भववास बसेरौ।**

आहाहा! अपना निजघर आनन्द का बादशाह भगवान, ज्ञान का सागर... आहाहा! कहते हैं, ऐसा द्रव्यस्वभाव जिसने वर्तमान पर्याय में धारण किया, बस वह पर्याय निश्चय प्रायश्चित्त (और) वस्तु तो त्रिकाली निश्चय प्रायश्चित्त ही है। **नित्य धारण करता है, उसे वास्तव में निश्चय-प्रायश्चित्त है।** उसे पर्याय में सच्चा प्रायश्चित्त है। उसे विकार उत्पन्न होता नहीं, वह प्रायश्चित्त है। आहाहा! देवीलालजी! वाड़ा में तो इस बात की गन्ध आवे ऐसी नहीं है। उल्टी गन्ध आवे उल्टी। आहाहा! ऐसा वीतरागमार्ग... तीन लोक के नाथ परमात्मा तीर्थंकरदेव की वाणी में ऐसा आत्मा आया, उस आत्मा पर जिसने दृष्टि देकर दृष्टि में उसे धारण किया, उसकी पर्याय प्रायश्चित्तरूप निर्दोष दशा है, कहते हैं। समझ में आया? विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**भाद्र कृष्ण ६, शुक्रवार, दिनांक - १०-०९-१९७१**
**गाथा-११६-११७, श्लोक-१८३, प्रवचन-१२०**

नियमसार सिद्धान्त, शुद्धनिश्चय प्रायश्चित्त (अधिकार)। ११६ गाथा का भावार्थ है। क्या कहते हैं? कि आत्मा जो है आत्मा—जीव, वह धर्मी है। वस्तु जो आत्मा, वह धर्मी अर्थात् कि धर्म का धारक है। धर्म अर्थात् ज्ञानस्वभावभाव आदि धर्म, उसमें ज्ञान मुख्य—उत्कृष्ट स्वभाव है, उसका वह धारक है, इसलिए उसका वह धर्म कहा जाता है। धर्म कैसे प्रगट होता है, यह बात नहीं, यह बाद में। धर्म कैसे होता है? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह धर्म। वह धर्म पर्यायरूप धर्म—अवस्थारूप धर्म—व्यक्त धर्म—पर्याय की व्यक्ततारूप धर्म। परन्तु उस धर्म से पहले, यह वस्तु क्या है, ऐसा कहते हैं। स्वभाव भगवान आत्मा जीव कहते हैं, उसे आत्मा कहो, तो वह **धर्मी है...** वस्तु है, द्रव्य है, तत्त्व है, वह धर्मी है। और **ज्ञानादिक उसके धर्म है।** जानना-देखना त्रिकाली, हों! जैसे त्रिकाली जीववस्तु धर्मी है, तो उसमें उसका धर्म अर्थात् स्वभाव—शक्ति ज्ञानादि—ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त उसके त्रिकाली धर्म हैं।

उसे **परम चित्त अथवा परम ज्ञानस्वभाव...** उसमें परम चित्त अथवा परम ज्ञानस्वभाव **जीव का उत्कृष्ट विशेषधर्म है।** तीन बोल कहे। भगवान आत्मा, यह शरीर, वाणी, मन से तो भिन्न चीज़ है, कर्म से भिन्न चीज़ है, पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्ति से भिन्न चीज़ है और एक समय की जो प्रगट पर्याय है, उससे भी वह भिन्न चीज़ है। आहाहा! ऐसा जो आत्मा, वस्तु, उसे धर्मी कहते हैं और जानना, देखना, आनन्द, वीतरागता इत्यादि उसके त्रिकाली धर्म कहते हैं। त्रिकाली अविनाशी उस धर्मी के धर्म। समझ में आया? उसमें भी **परम ज्ञानस्वभाव जीव का उत्कृष्ट विशेषधर्म है।** यह तीसरा बोल लिया। समझ में आया? वस्तु जो भगवान आत्मा, जैसे यह शरीर रजकण—मिट्टी वस्तु है, वैसे आत्मा वस्तु—तत्त्व—द्रव्य—पदार्थ, उसे धर्मी कहते हैं, तब उसमें रहे हुए अनादि-अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द, प्रभुता, स्वच्छता इत्यादि उसके धर्म कहते हैं,

धर्मी के धर्म कहते हैं। वह अविनाशी है। धर्मी अविनाशी है, वैसे ही उसके धर्म भी अविनाशी है, नित्य है, समझ में आया?

उसमें भी परम चित्त अर्थात् **परम ज्ञानस्वभाव जीव का उत्कृष्ट विशेषधर्म है।** आहाहा! आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द शाश्वत् त्रिकाली स्वभाव धर्म है, उसमें भी परम ज्ञानस्वभाव विशेष धर्म है—असाधारण स्वभाव है। समझ में आया? अरे! ऐसा धर्म का स्वरूप गजब! इस वस्तु की खबर नहीं होती और वस्तु का धर्म कौन सा, यह खबर नहीं होती और इसे धर्म करना है। अनादि से ऐसा का ऐसा अन्ध-अन्ध चलता है। संसार में उसके परिभ्रमण के काल का अन्त नहीं आता। क्योंकि वास्तविक आत्मा और उसका धर्म सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकर परमेश्वर ने जो कहा, देखा और है, ऐसा इसने जानने का प्रयत्न नहीं किया। समझ में आया?

वस्तु स्वयं आत्मा उसे जब धर्म का धारक धर्मी कहते हैं। धर्म अर्थात् पर्याय करने का यह धर्म नहीं। त्रिकाल धर्म। जो धर्म करना है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह पर्यायरूपी धर्म है, उसकी अभी अब बात नहीं। यहाँ तो त्रिकाली गुणरूप धर्म... आहाहा! द्रव्य—वस्तु धर्मी और उसके ज्ञान—जानना, देखना, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता, विभुता, जीवत्व, चिति, दर्शन, ज्ञान, शान्ति, सुख, वीर्य—इत्यादि ये सब गुण हैं—इसके धर्म हैं, धर्मी का धर्म है, धर्मी ने धार रखे हुए भाव हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा ने सर्वज्ञ ज्ञान, धर्म—स्वभाव धार रखा हुआ है। वह त्रिकाल है। समझ में आया? ऐसे सर्वदर्शी... कहते हैं... उसमें यह अधिकार तो अलौकिक बात है। ११६। प्रायश्चित्तस्वरूप आत्मा सिद्ध करना है। वस्तु स्वयं त्रिकाली प्रायश्चित्तस्वरूप है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा!

प्राय:—प्रचुररूप से—विशेषरूप से जिसका परमज्ञान ऐसा, उसका त्रिकाली स्वभाव है, परन्तु यहाँ पहले सब स्वभाव लिये हैं। सब धर्म, सब गुण, सब शक्तियाँ, अविनाशी सब भाव, वह धर्म और धर्मी जीव। धर्मी एक, धर्म अनन्त। ऐसा जो धर्मी, उसका जो यह धर्म, उसमें भी उत्कृष्ट ज्ञानस्वभाव। आहाहा! सर्वज्ञ ज्ञानस्वभाव। यह दर्शन आदि धर्मों में सर्वज्ञ... जानना अर्थात् फिर किसे न जानना, यह प्रश्न नहीं। वह

सर्वज्ञस्वभाव उन सब धर्मों में, उसके आत्मा के सब गुणों में—धर्मों में सर्वज्ञधर्म—स्वभाव उत्कृष्ट है। आहाहा! अमरचन्दभाई! आहाहा! अरेरे! इसने कभी मेरा क्या स्वरूप है और परमेश्वर तीर्थंकरदेव क्या कहते हैं, उसकी खबर नहीं होती। और सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, अपवास करो। अरे! क्या.... ? वह तो सब विकल्प की क्रियायें हैं। वह कहीं आत्मा त्रिकाली धर्मी नहीं और वह त्रिकाली धर्म नहीं और त्रिकाली धर्म के आश्रय से धर्म प्रगट होता है, परन्तु वह विकल्प नहीं। समझ में आया?

परमेश्वर... 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं...' आता है या नहीं? मांगलिक में आता है। शाम-सवेरे बोले पहाड़े, परन्तु अर्थ-बर्थ की कुछ खबर नहीं होती। 'अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं, साहू शरणं, केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं..., केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं...' परन्तु क्या केवली, क्या कहा और क्या धर्म? आहाहा! अनन्त काल हुए, उसका—भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप का धारक—धर्म का धारक... उसका स्वरूप कहो या धर्म कहो और स्वरूपवान कहो, वह आत्मा। वह भगवान आत्मा, वह स्वरूपवन, उसका स्वरूप ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि उसका स्व-रूप है, स्व-धर्म है। उसमें भी उसका सर्वज्ञस्वभावरूपी धर्म, वह उत्कृष्ट है। त्रिकाली की बात है यह, हों! आहाहा! त्रिकाल है। आहाहा! उसका ज्ञान, अनन्त धर्म के भाव में वह ज्ञानभाव तो उत्कृष्ट—विशेष—खास धर्म है। उत्कृष्ट—विशेष—खास धर्म, ऐसा। है न? **परम ज्ञानस्वभाव जीव का उत्कृष्ट विशेषधर्म है।** खास कि जिस एक ही ज्ञान को आत्मा कहें तो भी ऐसा एक धर्म है उसे। समझ में आया?

अब कहते हैं, **इसलिए स्वभाव-अपेक्षा से जीवद्रव्य को...** उसका त्रिकाली स्वभाव, ऐसे त्रिकाली स्वभाव की अपेक्षा से जीववस्तु को—आत्मपदार्थ को **प्राय:चित्त है अर्थात् प्रकृष्टरूप से ज्ञान है।** ऐसा कहा जाता है। आहाहा! **'प्राय: चित्त'** है न? (प्राय:)—प्रकृष्टरूप से, चित्त अर्थात् ज्ञान। अर्थात् आत्मा वस्तु में—धर्मी में उसके अनन्त धर्म जो ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त शक्तियाँ हैं, उसमें यह ज्ञान प्राय: चित्त—प्रचुररूप से, उत्कृष्टरूप से ज्ञान उसका विशेष स्वभाव है। इसलिए उस आत्मा

को ही प्रायश्चित्त कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, जरा सा ध्यान रखे तो समझ में आये। समझ में आया? आहाहा! ऐसा जो स्वभाव अपेक्षा से भगवान आत्मा प्राय: चित्तरूप है। प्राय: अर्थात् बहुलपने, प्रचुरपने, विशेषपने ज्ञानभाववाला, इसलिए उसे—जीवद्रव्य को प्राय:चित्त कहा जाता है। आहाहा! गजब बात करते हैं। क्योंकि जो राग और द्वेष को नाश करनेवाली वीतराग परिणतिरूपी धर्म, वह कहाँ से आयेगा? प्रायश्चित्तरूप ही आत्मा है, उसका आश्रय करने से प्रायश्चित्तरूपी वीतराग परिणति प्रगट होगी। आहाहा! समझ में आया?

**प्रकृष्टरूप से ज्ञान है।** आहाहा! कठिन बात की परन्तु आचार्य ने, हों! गजब की है! भगवान आत्मा... शरीर, वाणी, मन छोड़ दे, सब भगवान तीर्थंकर आदि भी तुझमें नहीं, छोड़ दे। यहाँ तो तुझमें राग भी नहीं, वर्तमान पर्याय भी नहीं, ऐसे अनन्त धर्मोंवाला धर्मी है। उसे पहले लक्ष्य में ले। समझ में आया? आहाहा! गुजराती थोड़ा-थोड़ा समझ लेना। कहाँ गये जुगराजजी! यह तुम्हारे गाँव के लोगों को कहते हैं। गुजराती चले, थोड़ा-थोड़ा समझ लेना। मारवाड़ी है। यह भगवान आत्मा, यह वस्तु है, तब वस्तु है, वह वस्तु उसके धर्म से खाली नहीं होती। क्योंकि वस्तु जब धर्मी है, तब उसके धर्म न हों तो वह वस्तु भी किसकी? अर्थात् आत्मा वस्तु—पदार्थ है, उसका धर्म अर्थात् उसका स्वभाव अर्थात् उसकी शक्ति—उसका गुण, वह ज्ञानादि अनन्त गुणों का अविनाशी गुण का धारक आत्मा है। उसमें यह ज्ञान तो प्रकृष्ट—ऊँचे में ऊँचा ज्ञानस्वभाव उत्कृष्ट, चित्त अर्थात् ज्ञान। अर्थात् सब गुणों में ज्ञानगुण उत्कृष्ट और खास है, इसलिए उस ज्ञानगुण के धारक को प्रायश्चित्त कहा जाता है। यह प्रायश्चित्त धर्म की चारित्रपर्याय प्रगटे, वह बात नहीं। आहाहा! समझ में आया? गजब अर्थ किया है। है उसमें यह अन्दर।

उसे शरीर, वाणी और स्त्री, पुत्र और यह धूलधमाल... आहाहा! यह तो माँस का पिण्ड... मुर्दा। यह (शरीर) तो मुर्दा, मुर्दा है, यह मृतक कलेवर है। भगवान! यह तो मर गया हुआ मुर्दा है। आहाहा! जीवित ज्योति चेतन अनन्त धर्म का धारक... सेठ! आहाहा! यह भान कब करता है? यही भूल है। सुना कब है? यह सुने तो दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, प्रोषध करो और सामायिक करो अर्थात् विकल्प करो। यह तो

विकल्प है, राग है, जो वस्तु में नहीं और वस्तु के धर्म में भी वह नहीं। समझ में आया? उस वस्तु की ही खबर नहीं, धर्म करनेवाला कितना, कैसे है? यह लिखा था वहाँ। कहा था न एक बार सोनगढ़ व्यारा। सोनगढ़ व्यारा गये थे न। व्यारा... व्यारा है न। वहाँ जयन्तीभाई हैं न पमुभाई के दामाद। तुम थे? वहाँ लिखा था एक चौके में। जब व्याख्यान हुआ। सब थे मन्दिरमार्गी सब। सबको प्रेम कि महाराज... कभी जिन्दगी में गये नहीं। सब उनका मन्दिरमार्गी में....

उसमें लिखा था कि धर्म करनेवाला, धर्म करना है, वह करनेवाला कौन है, उसको जाने बिना उसे धर्म और कल्याण नहीं होता। ऐसा लिखा था। यह तो वर पड़ा रहा और बारात जोड़ दी। वर समझे? दूल्हा... दूल्हा। दूल्हा पड़ा रहा, बारात में ५०० लोग, एक हजार लोग और दूधपाक, मिठाई और जीमण। वर है या नहीं? दूल्हा है या नहीं? दूल्हा रह गया, अकेली बारात। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा जिसे धर्म करना है, जिसकी दशा में धर्म होता है, वह धर्म जिसकी दशा में होता है, उसका धर्मी और ऐसा धर्मस्वभाव, वह कौन है? समझ में आया? कहते हैं, ऐसे स्वभाव अपेक्षा से जीवद्रव्य को प्रायश्चित्त अर्थात् उत्कृष्ट विशेष धर्म ज्ञान है, इसलिए उसे—वस्तु को, वस्तु के स्वभाव में प्रकृष्ट-उत्कृष्ट ज्ञानधर्म है, इसलिए वस्तु को प्रायश्चित्त कहा जाता है। आहाहा!

अब, **जो परम संयमी ऐसे चित्त की श्रद्धा करता है...** लो। अब धर्म कैसे हो? वर्तमान में धर्म कैसे हो? वर्तमान में उसे मुक्ति का मार्ग कैसे हो? कि ऐसा जो भगवान पूर्णानन्द का नाथ अनन्त धर्म का धारक धर्मी, उसकी जो श्रद्धा करता है, परम ज्ञानस्वभाव को श्रद्धता है... प्रायश्चित्त लिया है न? उसकी श्रद्धा परमज्ञानस्वभाव सर्वज्ञज्ञानस्वभाव मेरा त्रिकाल ऐसा ही मेरा स्वभाव और वही मेरा स्वभाववान द्रव्य, ऐसे स्वभाव की जो श्रद्धा करता है... कब श्रद्धा कर सकता है वह? निमित्त की ओर का झुकाव छोड़कर, राग का झुकाव छोड़कर, एक समय की पर्याय की ओर के झुकाव को भी छोड़कर, त्रिकाली ज्ञायकभाव परमात्मा प्रायश्चित्तरूप उसका आश्रय करे, उसकी ओर झुके, तब उसकी श्रद्धा होती है। आहाहा! कठिन बातें, भाई! सब पर्याय एक ओर रही। सब

पर्याय का क्षेत्र भी भिन्न और भाव भी भिन्न है। वह पर्याय तो फिर उसका आश्रय करती है। आहाहा! गजब बात है न! यह अलौकिक बात है! आहाहा!

भगवान आत्मा धर्मी जब कहते हैं, तो उसके धर्म अविनाशी ज्ञानादि अनन्त हैं। उसमें भी ज्ञानधर्म तो प्रकृष्ट—उत्कृष्ट, उसका खास धर्म है। ऐसे धर्म का धारक, इसलिए उस आत्मा को प्रायश्चित्त कहते हैं, त्रिकाल प्रायश्चित्तरूप ही है। उसकी शरण ले, उसे दृष्टि में ले, उसे श्रद्धा में विषय बनावे, तब उसकी श्रद्धा होती है, उसे समकित कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ देव, गुरु, धर्म को श्रद्धे तो समकित है, नौ तत्त्व को श्रद्धे तो समकित है—ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा जो भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अपना निजभाव, उसका धारक, उसके सन्मुख होकर, निमित्त, राग और पर्याय से विमुख होकर... विमुख होकर तो नास्ति से कथन है, सन्मुख हो तो विमुख हो जाता है। आहाहा! गजब वीतरागमार्ग! यह तीर्थंकर केवलज्ञानी का कहा हुआ 'केवली पण्णत्तो धम्मो...'—भगवान ने कहा हुआ यह धर्म है भगवान! आहाहा!

यह सर्वज्ञस्वभावी प्रभु, उसे सर्वज्ञस्वभाव होने के कारण, उसका उत्कृष्ट चित्तस्वरूप समस्त धर्म में भी यह धर्म उसका मुख्य... मुख्य—खास होने के कारण उस वस्तु को ही प्रायश्चित्त और चारित्रमय कहा गया है। यह चारित्र का भेद है न! चारित्रमय ही वस्तु है अर्थात् वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। समझ में आया? यह शक्ति और स्वभाव से वीतराग न हो तो पर्याय में वीतरागता आयेगी कहाँ से? समझ में आया? वीतराग श्रद्धा, वीतरागी ज्ञान पर्याय का, वीतरागी चारित्र—यह तीन दशा कहाँ से आयेगी? क्या निमित्त में से आयेगी? राग में से आयेगी? पर्याय में से—एक समय की पर्याय में से ऐसी पर्याय आयेगी?

कहते हैं, ऐसे आत्मा की जो श्रद्धा करता है और उसमें लीन रहता है, उसे निश्चय प्रायश्चित्त पर्याय में है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह तो मार्ग भाई! बोलने का—कहीं वाणी का विलास नहीं। अन्दर विकल्प उठे, वह कहीं मार्ग नहीं। आहाहा! वृत्ति उठे कि ऐसा आत्मा है, ऐसे उसके धर्म हैं—ऐसी वृत्ति उठे, वह कहीं वस्तु नहीं। वस्तु तो उस वृत्ति के विकल्प की लगनीरहित चीज़, ऐसा जो भगवान आत्मा

है, उसे श्रद्धा में लेना अथवा श्रद्धा का विषय उसे बनाना अथवा श्रद्धारूपी ध्यान, उस ध्यान में उसे विषय करना, वर्तमान ध्यान की दशा उसे ध्येयरूप से इसे—ऐसे आत्मा को करे, तब उसे समकित और श्रद्धा होती है। आहाहा! कहो, भीखाभाई!

ओहोहो! अमृत का सागर भगवान, अतीन्द्रिय आनन्द के अमृत के सागर से भरपूर, उसमें भी अतीन्द्रिय ज्ञान, आनन्द से उसकी अतीन्द्रिय ज्ञान की विशेषता तो यहाँ ली है। जो भगवान आत्मा में त्रिकाली अतीन्द्रिय ज्ञान है, वह अतीन्द्रिय ज्ञान है, उसे यहाँ प्रायश्चित्त कहा गया है अर्थात् पूरा आत्मा ही प्रायश्चित्तरूप है, ऐसा कहा है। आहाहा! प्रायश्चित्तरूप अर्थात् चारित्ररूप, ऐसा। समझ में आया? आहाहा! ऐसा स्वभाववान, उसे वर्तमान पर्याय—अवस्था में उसकी श्रद्धा करना, आहाहा! वर्तमान दशा में उसकी श्रद्धा करना... आहाहा! मूलचन्दभाई! ऐसी बातें सब कहीं सुनी नहीं जिन्दगी में। महिलाओं ने सुनी थी वहाँ? नहीं सुनी? आहाहा! भगवान तीन लोक का नाथ, उसमें भी तीन काल, तीन लोक को एक समय में जाने, ऐसी उसकी शक्ति त्रिकाल पड़ी है। समझ में आया?

यह अभी विवाद सब सर्वज्ञ का, लो! कोई कहे कि सर्वज्ञ, वे भविष्य का जानते हैं या नहीं? अरे! परन्तु भविष्य का... भगवान! अपने को त्रिकाल जाने या नहीं? यह प्रश्न था। अपनी ज्ञानपर्याय अपने को—त्रिकाली को जानती है या नहीं? तो त्रिकाली की जो पर्यायें हैं, उसमें भविष्य की सर्वज्ञपर्याय भी आ गयी। समझ में आया? प्रगटरूप से सर्वज्ञपर्याय प्रगट होनेवाली है, वह सर्वज्ञ की पर्याय सादि-अनन्त रहनेवाली है। उस आत्मा को मानने से वह त्रिकाली सर्वज्ञपर्याय है, वह भी श्रद्धा में आ गयी। समझ में आया? आहाहा! कठिन काम, भाई!

ओहोहो! कहते हैं, जो सर्वज्ञपर्याय प्रगट होगी, वह कहीं बाहर से नहीं आती। पर्याय में से नहीं आती, राग में से नहीं आती। उसका प्रकृष्ट सर्वज्ञस्वभाव प्रायश्चित्तरूप है, उसमें से वह आयेगी। भेद की अपेक्षा से कहा। समझ में आया? आहाहा! तो कहते हैं कि उस सर्वज्ञस्वभाव में से सर्वज्ञपर्याय आयी और ऐसी सर्वज्ञपर्याय, भूतकाल की पर्याय की संख्या से सर्वज्ञ की पर्याय की संख्या अनन्तगुनी है, अनन्तगुनी है। आहाहा!

अरेरे! कहाँ इसे निज स्वभाव के सामर्थ्य का भरोसा? समझ में आया? ऐसी जो सर्वज्ञपर्याय, वर्तमान चारित्ररूप और प्रायश्चित्तरूप ऐसी दशा सादि-अनन्त प्रगट होती है। वह सब त्रिकाली सर्वज्ञ और चारित्र स्वभाव का स्वीकार, उसकी श्रद्धा करने से, उसे मानने से, तीन काल—तीन लोक को जानने की मान्यता—प्रतीति में आ जायेगा। यह भगवान तो तीन काल—तीन लोक को जाननेवाला ही है। किसी का करनेवाला और किसी से कराये, ऐसा यह आत्मा नहीं है। हीराभाई! आहाहा!

यह आत्मा, इसकी पर्याय में—वर्तमान हालत में 'निमित्त से हूँ, राग से हूँ, इस पर्याय जितना हूँ'—ऐसी जो मान्यता है, वह मिथ्यात्व मान्यता है। आहाहा! उस मिथ्यात्व मान्यता का व्यय और सम्यक् मान्यता का उत्पाद कब होता है?—कि त्रिकाली ज्ञायकभाव अकेला चैतन्यबिम्ब है, उसकी श्रद्धा करे तो होता है। समझ में आया? हिम्मतभाई नहीं आये। भावनगर से आनेवाले थे न। वे कहते थे न कल। कहते थे, कल यहाँ आऊँगा। भगवान आत्मा ऐसा, उसकी जो श्रद्धा करे... कब श्रद्धा करे? कि उसके सन्मुख हो और एकाग्र हो तब उसकी श्रद्धा की जा सकती है। और पश्चात् उसमें लीनता होती है... उसमें लीनता होती है, उसे चारित्र कहते हैं, उसे संयम कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे परमात्मा की श्रद्धा करता है और उसमें लीन रहता है, उसे निश्चय चारित्र, निश्चय संयम, निश्चय प्रायश्चित्त, निश्चय वीतरागदशा मोक्षमार्ग कहा जाता है। समझ में आया?

**११६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:**—१८३ कलश।

**यः शुद्धात्मज्ञानसम्भावनात्मा**
**प्रायश्चित्तमत्र चास्त्येव तस्य।**
**निर्धूतांहः संहतिं तं मुनीन्द्रं वन्दे**
**नित्यं तद्गुण-प्राप्तये ऽहम् ॥१८३॥**

**इस लोक में जो ( मुनीन्द्र )...** मुनिन्द्र (अर्थात्) मुनि में भी इन्द्र समान, आहा! ऊँचे, ईश्वर। **शुद्धात्मज्ञान की...** देखो! वहाँ प्रायश्चित्त शब्द था सही न, इसलिए

शुद्धात्मज्ञान वह प्रायश्चित्त त्रिकाली। आत्मा का शुद्ध आत्मज्ञान त्रिकाली, उसकी **सम्यक् भावनावन्त...** वह पर्याय। आहाहा! पर्याय क्या, द्रव्य क्या, गुण क्या? भगवान जाने, कहते हैं। जो वीतराग के मार्ग का पहला एकड़ा द्रव्य, गुण और पर्याय। द्रव्य तो धर्मी, गुण धर्म और उसकी सम्भावना—एकाग्रता होना, वह उसकी पर्याय। समझ में आया? आहाहा! इस लोक में जो शुद्धात्मज्ञान की सम्यक् भावनावन्त... सम्यक् भावनावन्त क्यों कहा? कि वह वस्तु जो है और वस्तु में धर्म है, उसे कदाचित् ज्ञान के क्षयोपशम द्वारा धारे सही, परन्तु अन्तर एकाग्रता न करे, इसलिए उसे (—एकाग्रता करनेवाले को) सम्यक् भावनावन्त कहा जाता है। ११ अंग और ९ पूर्व पढ़ा था, उसमें बात तो आयी थी, परन्तु उसे ऐसे अन्दर यह विश्वास आकर अन्दर एकाग्रता होनी (चाहिए), वह नहीं की थी।

यह भगवान आत्मा, आहाहा! पूर्ण धर्म का धारक, विशेष सर्वज्ञस्वभाव, उस स्वरूप ही आत्मा, सर्वज्ञस्वभाव-स्वरूप ही आत्मा है। इसलिए प्रायश्चित्त कहा न! ऐसे सर्वज्ञस्वभाव को अन्तर्मुख होकर उसमें एकाग्र होना, वह द्रव्य-गुण में अन्दर एकाग्र होना, वह पर्याय, उसमें झुकाना, उसे यहाँ सम्यक्-भावना कहा गया है। समझ में आया? यह दूसरा सब आवे, न आवे, कम आवे, अधिक आवे, उसे एक ओर रख। आहाहा! ज्ञान का क्षयोपशम विशेष हो या न हो, समझाना आवे या न आवे, उसके साथ तुझे कुछ काम नहीं, कहते हैं। आहाहा! तुझे काम द्रव्य और गुण के साथ है, उसकी श्रद्धा और उसमें एकाग्रता, बस, यह चारित्र और यह मोक्ष का मार्ग है।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है। चिद् और आनन्द, यह तो उसका स्वभाव और धर्म है। उसमें यह ज्ञान उसका धर्म—स्वभाव उत्कृष्ट है, कारण कि वह स्वयं अपने को जाने, स्वयं पर को जाने। वह ज्ञान सबको जाने और ज्ञान, ज्ञान को जाने। उस ज्ञान में, पूरा द्रव्य, अनन्त गुण, उसके ज्ञान में आ गये। समझ में आया? इसलिए उसे —ज्ञान को उत्कृष्ट धर्म कहकर आत्मा को प्रायश्चित्तस्वरूप उत्कृष्ट ज्ञानमूर्ति कहा है। समझ में आया? अरे! भगवान का विरह पड़ा पंचम काल में, परन्तु कहीं इस आत्मा का विरह है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! तीन लोक के नाथ परमात्मा

सर्वज्ञदेव उनका—प्रगट पर्याय की पूर्णता प्राप्त पुरुष का—भरतक्षेत्र में विरह पड़ा। परन्तु कहते हैं कि जिसमें से प्रगट पर्याय प्रगट होती है, आहाहा! उसका धारक तो तेरे पास प्रगट है न प्रसिद्ध। आहाहा! तुझे किसका विरह है? ऐई! आहाहा!

प्रत्यक्ष व्यक्त—प्रगट परमात्मा है तू। वह परमात्मा है तो उसमें से सिद्ध की पर्याय की परमात्मदशा सादि-अनन्त प्रगट होगी। ऐसी सादि-अनन्त सिद्धपर्याय का, ज्ञानपर्याय का पिण्डरूप यहाँ आत्मा है। उसकी जिसने सम्यक्-भावना की, ऐसे भाव को जिसने सम्यक्-भावना द्वारा भाया, उसे चारित्र है, उसे प्रायश्चित्त है, वह सम्यक्-भावना, वह प्रायश्चित्त है। आहाहा! **उसे प्रायश्चित्त है ही।** आहाहा! अर्थात्? कि त्रिकाली भगवान प्रायश्चित्तरूप जब है तो ज्ञान की पराकाष्ठावाला स्वभाववाला तत्त्व है, उसे जिसने एकाग्र होकर सम्यक्-भावना द्वारा पकड़ा, वह सम्यक्-भावना वास्तव में प्रायश्चित्त है, वह प्रायश्चित्त अर्थात् चारित्र ही है, वह वीतरागता ही है। आहाहा! समझ में आया?

बहुत सब वाँचे, बहुत विचारे, परन्तु करने का यह है। यह किये बिना, चाहे जितना जानपना हो, चाहे जितने व्याख्यान करना आता हो, लाखों लोगों को रिझाना आवे, वह सब बाहर की बातें हैं। आहाहा! भगवान को रिझाना आवे, वह सही। आहाहा! जैसा है, वैसा स्वीकार हो गया, आहाहा! उसने सब किया, हों! वह स्वयं वीतरागमूर्ति हो गया पर्याय में, हों! सम्यग्दर्शन पर्याय, वह वीतरागपर्याय है; सम्यग्ज्ञान, वह वीतरागपर्याय है, उस ज्ञान के सब प्रकार हैं, ऐसा। वे राग के प्रकार नहीं। है तो श्रद्धा की पर्याय... परन्तु वे सब ज्ञान ऐसा आत्मा, उसके वे प्रकार हैं। राग के प्रकार वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं है। समझ में आया?

**सम्यक् भावनावन्त है,...** सम्यक् भावनावाला है। आहाहा! अरे! जिसने भगवान आत्मा की ओर की एकाग्रता की है, वह स्वयं वीतरागपर्यायस्वरूप है। उस चारित्रवन्त को संयमी कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **जिसने पापसमूह को खिरा दिया है...** अब आया। अस्ति करके अब नास्ति की बात करते हैं। कहते हैं कि जो भगवान आत्मा उत्कृष्ट ज्ञानमूर्ति प्रभु, ऐसा जो ज्ञानस्वभाव, वह प्रायश्चित्तस्वरूप, चारित्रस्वरूप,

वीतरागस्वरूप है। उसकी सम्यक्-भावना करनेवाला, उस सम्यक्-भावना की उत्पत्ति होने पर पुण्य-पाप के भाव दोनों पाप हैं। **खिरा दिया है...** पुण्य-पाप के भाव को खिरा डाला है, झटक डाला है।

यह पंखीणी होती है न पंखीणी। धूल लगी न धूल, ऐसे खिरा डाले न। वह पंख के ऊपर से रजकण छूट जाते हैं। इसी प्रकार भगवान आत्मा को अन्दर भाने से पुण्य-पाप के परिणाम खिर अर्थात् छूट जाते हैं। आहाहा! उन्हें छोड़ना नहीं पड़ता। अरेरे! इसके घर की बातें इसने कभी माहात्म्य से सुनी नहीं, माहात्म्य से इसने उसे देखा नहीं, माहात्म्य से इसे अन्दर में भगवन्तस्वरूप आत्मा, भगवतीस्वरूप आत्मा, भागवत्स्वरूप भगवान... आहाहा! उसने पर के माहात्म्य के समक्ष स्व का माहात्म्य कभी नहीं किया और पर के माहात्म्य का पक्ष छोड़कर स्व के माहात्म्य के पक्ष में जाये, वीतराग हो जाये। आहाहा! समझ में आया?

**जिसने पापसमूह को खिरा दिया है, ऐसे उस मुनीन्द्र को...** ऐसी वीतराग परिणति से वीतरागमूर्ति ज्ञानस्वभाव भगवान को सम्यक् प्रकार से भाया है, **ऐसे उस मुनीन्द्र को मैं उसके गुणों की प्राप्ति हेतु नित्य वन्दन करता हूँ।** अर्थात् कि उसकी गुण की पर्याय ऐसी जो प्रगट हुई, उसका मुझे आदर है। समझ में आया? उसकी नग्नदशा और विकल्प का मुझे आदर नहीं। उसकी यह जो दशा प्रगट की, चैतन्यराम की क्रीड़ा में चढ़ा और आत्माराम को जिसने पर्याय में प्रगट किया, ऐसे सन्तों के गुण को मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा! समझ में आया? कायम मेरा वन्दन अर्थात् निर्मल पर्याय का ही मुझे आदर है, राग का आदर नहीं, ऐसा कहते हैं। बहुत अलौकिक बात थी!

(गाथा) ११७। विशिष्टता तो क्या थी उसमें? प्रायश्चित्त और सर्वज्ञपद डाला न ज्ञानभाव, उत्कृष्ट स्वभावभाव... सर्वज्ञशक्ति आती है न ४७ (शक्ति) में। सर्वज्ञशक्ति, वह द्रव्य का उत्कृष्ट विशेष धर्म है। ऐसे धर्म का धारक भगवान आत्मा जो गुण में तो सर्वज्ञ की अनन्त पर्यायें प्रगट होनेवाली, वे सब अन्दर पड़ी हैं, सामान्यरूप से, शक्तिरूप से, हों! ऐसा सर्वज्ञस्वभावी भगवान, इसका अर्थ कि वह तो जाननेवाला और देखनेवाला ही है। वह राग को करे और पर का करे और पर से ले—यह उसका स्वभाव ही नहीं

है। आहाहा! समझ में आया? वह राग को करे और पर को करे, यह उसके स्वभाव में नहीं। राग को और पर को, अपने को जानते हुए जाने—ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया? ११७ (गाथा)।

**किं बहुणा भणिएण दु वरतवचरणं महेसिणं सव्वं।**
**पायच्छित्तं जाणह अणेय-कम्माण खय-हेऊ॥११७॥**

**बहु कथन से क्या जो अनेकों कर्म-क्षय का हेतु है।**
**उत्तम तपश्चर्या ऋषि की सर्व प्रायश्चित्त है॥११७॥**

मुनि को लक्ष्यकर मुख्य बात है न यहाँ! चारित्र कहो, प्रायश्चित्त कहो, वीतरागता कहो, मोक्षमार्ग कहो, तीन की एकता—सब एकार्थ है।

**टीका : यहाँ ऐसा कहा है कि परम तपश्चरण में लीन परम जिनयोगीश्वरों को...** प्रायश्चित्त कहा न। चारित्र कहा न! चारित्र कहो या तपस्या कहो, उसका नाम चारित्र है। तपस्या अर्थात् अपवास करना, वह कहीं तपस्या-बपस्या नहीं। यहाँ तो भगवान आत्मा अकेला ज्ञानस्वभावी वस्तु, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की रमणता, वह उसका तपश्चरण, वह उसकी तपस्या, वह उसका चारित्र, वह उसका मुनिपना। समझ में आया? ऐसे मुनिपने की दशा को जाने नहीं, उसे गुरु के स्वभाव की भी खबर नहीं। और वे सर्वज्ञपद को साधनेवाले हैं (क्योंकि) सर्वज्ञपद शक्ति में पड़ा है, उसका भरोसा और अनुभव किया है इसलिए। उसे न जाने, वह तो सर्वज्ञदेव को भी जानते नहीं। आहाहा! ऐसी दशावन्त को धर्मी गुरु संयमी कहते हैं, उसे जानते नहीं, वह देव को नहीं जाने, गुरु को न जाने और उनकी संयम अर्थात् संवर-निर्जरा की दशा कैसी होती है, उसे भी नहीं जानता और उसे जानता नहीं, इसलिए द्रव्य का आश्रय कितना हो, तब कितनी संयमदशा प्रगटे, उसकी उसे खबर नहीं। आहाहा! नवजीवनभाई!

कहो, अब दूसरे में अपूर्ण है या नहीं कहीं? लो, और यह याद आया। क्या कहा? तुम समझे नहीं। दूसरे में अपूर्ण है और वीतराग की पर्याय पूर्ण धर्म है। ऐसी कुछ बात चली थी। बहुत वर्ष पहले की बात है, (संवत्) १९८३ की। ८२ का चातुर्मास था न वढवाण, वहाँ से काँप में गये थे। श्रीमद् में आता है न एक। एक शब्द आता है। बाकी

पूर्ण और अपूर्ण सब आत्मा में अन्दर है। आत्मा का जैसा स्वभाव भगवान ने देखा और है वैसा। वैसा अन्यत्र कहीं है ही नहीं वीतराग के अतिरिक्त अन्यमत में कहीं है नहीं। परन्तु अब परीक्षा करने तैयार न हो, पहिचानने को तैयार न हो, अब उसे किस प्रकार अन्तर पड़े? आहाहा!

कहते हैं, **परम तपश्चरण में लीन परम जिनयोगीश्वर...** भाषा देखो न! कैसी प्रयोग की है! **परम जिनयोगीश्वर...** जिसने आत्मा के स्वभाव के साथ उत्कृष्ट योग माँडा है। पर का सम्बन्ध तोड़ा और स्वभाव का सम्बन्ध उत्कृष्टरूप से जोड़ा है। आहाहा! धन्य! धन्य! **परम जिनयोगीश्वरों को निश्चयप्रायश्चित्त है;...** उसे तो निश्चय चारित्रदशारूप प्रायश्चित्त वर्तता ही है। प्रायश्चित्त अर्थात् पुण्य-पाप के नाश करनेवाला भाव सदा उसे वर्तता ही है। आहाहा! समझ में आया?

**इस प्रकार निश्चयप्रायश्चित्त समस्त आचरणों में परम आचरण है ( ऐसा कहा है )।** लो। इस प्रकार निश्चय चारित्र—सच्ची वीतरागता, वह **समस्त आचरणों में परम आचरण...** आत्मा के आश्रय से हुआ, उसे परम आचरण कहा जाता है। देह की क्रिया का आचरण-फाचरण आत्मा में है नहीं। यह दया-दान और व्रत के विकल्प का आचरण भी आत्मा में है नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! तेरी प्रभुता तुझे बैठी नहीं भाई! तू तो परमेश्वर का परमेश्वर है। आहाहा! अकेला ज्ञान सर्वज्ञस्वरूप प्रभु... अपने पहले आ गया है। तीन काल—तीन लोक को जाने, ऐसा ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है... त्रिकाल है। उपयोग में आ गया है। आहाहा! नियमसार तो नियमसार है, हों! आहाहा! नियम (अर्थात्) यथार्थ जगत के नियम, वस्तु के नियम, वस्तु के स्वभावरूप नियम, मोक्षमार्ग का नियम। आहाहा!

**समस्त आचरणों में परम आचरण है...** ऐसा भगवान ने कहा है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमेश्वर वीतराग दिव्यध्वनि द्वारा समवसरण में इन्द्रों और गणधरों के समक्ष में भगवान ऐसा कहते थे। समझ में आया? सब व्यवहार-फ्यवहार आचरण को भगवान ने आचरण कहा नहीं, ऐसा कहते हैं। **परम आचरण है, ऐसा कहा है।** सन्तों ने ऐसा कहा है, सन्त के बड़े महासन्त भगवान तीर्थंकर ने ऐसा कहा है। 'महामुनि श्रमण'

आता है न पंचास्तिकाय में। 'महाश्रमण के मुख...' महाश्रमण अर्थात् केवली। पंचास्तिकाय में है। आहाहा! अरे! यह बात, बापू! सर्वज्ञ के अतिरिक्त सम्प्रदाय में अभी कहीं दिखती नहीं। गन्ध भी नहीं। भाई! आहाहा!

दुनिया की कल्पना क्या हो? निर्धन हो, अकेला हो, अविवाहित हो, बाँझ हो, पत्नी न हो और पत्नी को पति न हो और दुःखी हो बाहर में। तो 'यह दुःखी है' ऐसा अज्ञानी कहते हैं। तब भगवान कहते हैं कि छह खण्ड का राज हो, ९६ हजार स्त्रियाँ हों, परन्तु 'वे मेरे हैं'—ऐसी मान्यता है, वह महादुःखी है, कहते हैं। वह महादुःखी है। आहाहा! और अकेला नरक का नारकी जीव हो, सातवें नरक का, चावल का दाना न हो, सोने के लिये मकान न हो, बिछाने के लिये गद्दा न हो, परन्तु यह आत्मा आनन्द की मूर्ति है, ऐसी जिसे श्रद्धा और भान हुआ, कहते हैं कि वह जीव सुखी है। समझ में आया? 'सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुखिया।' बेचारे बाहर में सुविधावाले दिखाई दें, अरबों रुपये, स्त्री-पुत्र, खम्मा... खम्मा... धूल भी नहीं। सुन न अब! सब तुझे दुःख है। सब ठगों की टोलियाँ इकट्ठी होकर तुझे लूटनेवाले हैं। आहाहा! जिसे ऐसा आत्मा अन्दर में अनुभव में आया, श्रद्धा में लिया और चारित्रादि प्रगट हुए, वह जगत में सुखी है। विशेष बात कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण ७, शनिवार, दिनांक - ११-०९-१९७१
गाथा-११७, श्लोक-१८४-१८६, प्रवचन-१२१

यह नियमसार (अर्थात्) मोक्ष का मार्ग क्या है, वह चलता है। ११७, दूसरा पेराग्राफ—दूसरा पेराग्राफ है। प्रायश्चित्त का अधिकार है। प्रायश्चित्त अर्थात् चारित्र। चारित्र के अन्तर्भेद को प्रायश्चित्त कहते हैं। यह चारित्र मुक्ति का मार्ग है। चारित्र, वीतराग परिणतिरूप पर्याय, वह चारित्र है। शरीर की क्रिया, अन्दर विकल्प उठे कि मैं आहारादि छोड़ूँ आदि, वह कोई चारित्र नहीं है, वह कोई तप नहीं है। समझ में आया? चारित्र में उग्र पुरुषार्थ, उसका नाम तप है और तप अर्थात्... चारित्र कहते हैं और चारित्र के अन्तर्भेद में यहाँ प्रायश्चित्त को कहते हैं।

**बहुत असत् प्रलापों से बस होओ,...** आचार्य कहते हैं। मूल पाठ में है न? अरे! क्या कहते हैं अधिक? बहुत कहने से क्या? **बस होओ। निश्चयव्यवहारस्वरूप परम-तपश्चरणात्मक ऐसा जो परम जिनयोगियों को अनादि संसार से बँधे हुए द्रव्यभावकर्मों के निरवशेष विनाश का कारण वह सब शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त है...** आहाहा! '**पायच्छित्तं जाणह**' शब्द है न? '**जाणह**' शब्द है। आचार्य महाराज कुन्दकुन्दाचार्यदेव (कहते हैं), '**जाणह**' (अर्थात्) उसको तुम चारित्र, तप और प्रायश्चित्त जानो। **निश्चय-व्यवहारस्वरूप परम...** भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द का पिण्ड प्रभु आत्मा है। उस ओर का झुकाव होने से शुद्ध परिणति—वीतरागीदशा उत्पन्न हो, वह चारित्र, वह तप, वह प्रायश्चित्त कहा जाता है। गजब बात, भाई! समझ में आया?

**निश्चयव्यवहारस्वरूप परम-तपश्चरण...** व्यवहार को डाला है इसमें। अपना स्वरूप चैतन्य परिपूर्ण भगवान आत्मा, परिपूर्ण भगवान आत्मा है। अन्तर में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, स्वच्छता—ऐसी अनन्त विभूति से भरा पड़ा आत्मा अभी वर्तमान में है। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा पर दृष्टि देने से और पश्चात् उसमें लीनता करने से, जो शान्ति और आनन्द की दशा उत्पन्न हो, उसका नाम तप है, उसका नाम

चारित्र है, उसका नाम प्रायश्चित्त है। वे अनशन-बनशन करे, उसे क्या हो? वह तो निमित्तरूप से ऐसा होता है। समझ में आया? बाह्य से अनशन करना आदि वह तो निमित्त है।

वास्तव में तो तप अन्तर में '**प्रतपन इति तपः**' भगवान शुद्ध चैतन्य अन्तर्मुख परमात्मा निजस्वरूप से पड़ा है, उसके परम अन्तर्मुख होकर लीनता करना और अपनी पर्याय में जैसे स्वर्ण में गेरु... गेरु कहते हैं गेरु? गेरु डालने से स्वर्ण ओपता है—शोभता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा, निर्विकल्प—रागरहित अपना वीतरागीस्वरूप आत्मा का है। वीतरागी परिणति प्रगट करना, परन्तु वह वस्तु तो वीतराग परिणाम स्वभाव-स्वरूप ही आत्मा है। समझ में आया? वह आत्मा परिपूर्ण कृतकृत्य द्रव्यस्वभाव—उसका गम्भीर अनन्त आनन्दादि स्वभाव, उस ओर का झुकाव—पुरुषार्थ की उग्रतारूप झुकाव, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। ऐ सेठ! यह बहिर्चारित्र तो चारित्र है ही नहीं। और वापस अन्दर द्वैत... अन्तरंग चारित्र, वही चारित्र है और बीच में विकल्पादि उठते हैं, उसमें व्यवहारचारित्र का आरोप देते हैं। वह तो बारदान है। समझ में आया? विकल्प जो उठते हैं, वह बारदान है, माल नहीं। खाली खोखा। बारदान समझते हैं? बोरी... बोरी—बोरी। बोरी वह तो बारदान है, अन्दर चावल, वह माल है। आहाहा!

यहाँ तो ऐसी बात है। यथार्थ में तो... यहाँ तो प्रायश्चित्त चलता है, वह दूसरी बात है। यथार्थ में परिणाम ही बारदान है और सारा माल है वह चावल है। जो परिणाम सारी चीज़ की कीमत करता है। समझ में आया? आहा! कठिन बात सूक्ष्म भाई! एक पलड़े में तोला... तोला... तोला समझते हैं? बाट डालते हैं न? मण, दो मण, पाँच मण लोहा और एक ओर माल। तो कहते हैं, जो विकल्पादि उठते हैं व्यवहार व्रत के, वह तो बारदान है—बोरी है, माल नहीं। माल तो, भगवान आत्मा अन्दर अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, उसमें एकाग्र होकर अतीन्द्रिय आनन्द की धारा प्रगट करना, वह माल है। इस दो की अपेक्षा से, हों! किस दो की अपेक्षा से, समझे? वह विकल्प और निर्विकल्प परिणति की अपेक्षा से। बाकी वास्तव में तो निर्विकल्प परिणति है, वह भी त्रिकाली माल की अपेक्षा से बारदान है। समझ में आया?

कहाँ प्रभु पूर्णानन्द का नाथ! अनन्त-अनन्त शान्ति, स्वच्छता, परमेश्वरता आदि शक्तियों से भरा पड़ा आत्मा, उसका आश्रय और अवलम्बन लेकर जो पर्याय प्रगट हुई, उस पर्याय की कीमत नहीं; कीमत तो वस्तु की है, ऐसा कहते हैं। परन्तु यहाँ विकल्प की अपेक्षा से वीतरागी परिणतिरूप चारित्र की कीमत गिनने में आयी है। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** दोनों कोथला समान?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** एक न्याय से तो दोनों (समान)।

**मुमुक्षु :** परिपूर्णरूप से कैसे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परिपूर्ण की अपेक्षा से एक समय की पर्याय बारदान है और शुद्ध परिणति की अपेक्षा से विकल्प बारदान है। यह व्यवहारनय के विषय की अपेक्षा से (और) निश्चय की वह अपेक्षा है। आहाहा!

वस्तु पूरी परिपूर्ण... जो वर्तमान परिणाम प्रगट हुआ, वह तो व्यक्त है, प्रगट है और त्रिकाली वस्तु है, वह अव्यक्त है परिणाम की अपेक्षा से। तो अव्यक्त है, वही माल है वास्तव में तो। क्योंकि उसकी कीमत परिणाम करता है। जिस चीज़ की कीमत करता है, वह चीज़ कीमती है। आहाहा! सूक्ष्म बात! लोगों ने... पूरा तत्त्व है वस्तु—द्रव्य—वस्तु आत्मा सच्चिदानन्दमूर्ति, वह तो सिद्धस्वरूप है। द्रव्यस्वभाव—वस्तुस्वभाव—तत्त्वस्वभाव, वह तो सिद्धस्वरूप ही वस्तु है। उस वस्तु की दृष्टि और ज्ञान करना और लीनता करना, वह मोक्ष का मार्ग। समझ में आया? और उस मोक्ष के मार्ग के साथ व्यवहार का पंच महाव्रतादि का जो विकल्प उठता है, उसे व्यवहार चारित्र कहते हैं। नहीं है, उसको कहना। है, उसको जानना। आहाहा! गजब बात है।

**निश्चयव्यवहारस्वरूप परम-तपश्चरणात्मक ऐसा जो परम जिनयोगियों को...** धर्मात्मा को, अपना धर्म जो त्रिकाली आनन्द और ज्ञानस्वभाव है, उस ओर की एकाग्रता के झुकाव से जो निर्मल वीतरागीदशा उत्पन्न हो, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! **परम जिनयोगियों को अनादि संसार से बँधे हुए द्रव्यभावकर्मों के...** देखो! कर्म जो आठ कर्म हैं ज्ञानावरणादि, वे तो जड़ हैं और अन्दर पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, वह

भावकर्म मैल है। यहाँ तो निश्चय-व्यवहार साथ में लेना है न। मोक्ष के मार्ग का कथन दो प्रकार से आया न, तो दो प्रकार से वर्णन करते हैं। निश्चयस्वभाव परम आनन्द की मूर्ति प्रभु... कैसे बैठे परन्तु यह बात! ऐसी चीज़ है कि एक वस्तु में तीन प्रकार। एक विकल्प विभाव, एक निर्विकल्प शुद्ध परिणति और एक निर्विकल्प शुद्ध दल पूरा पदार्थ। आहाहा!

अब यहाँ कहते हैं कि निर्विकल्प अन्दर रागरहित चीज़ प्रभु, उस ओर का झुकाव जिसका है और निमित्त, विकल्प और एक पर्याय की भी विमुखता हो गयी है, आहाहा! उसको निश्चय परिणति प्रगट हुई, वह निश्चय—सच्चा चारित्र और सच्चा तपश्चरण कहा जाता है। और साथ में विकल्प जो है, वह व्यवहारचारित्र कहा जाता है। दोनों मिलकर **द्रव्यभावकर्मों के...** वापस **द्रव्यभावकर्मों के निरवशेष विनाश का कारण...** है। जो शुद्ध है, वह पुण्य और पाप दोनों के नाश का कारण है और जो शुभ है, वह अशुभ के नाश का कारण है। समझ में आया? कठिन! इसमें समझना क्या इसमें कुछ? अपवास करना, यह करना, अट्ठाई करना... कितना आता है? यह अमुक ऐसा हुआ, ऐसा हुआ, सोलह .... हुए और दसलक्षणीपर्व में दस अपवास किये, हो-हा, हो-हा। अरे! यह तो बाहर की क्रिया है, यह कोई धर्म नहीं। आहाहा! यह व्यवहार भी नहीं। व्यवहार तो तब कहने में आता है कि विकल्प हो....

वह तो यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा सिद्धस्वरूपी पूर्णानन्द कृतकृत्य है, ऐसी चीज़ की अन्तर अनुभव में स्थिरता करना, आहा! वह सच्चा पुरुषार्थ, वह सच्चा मोक्ष का मार्ग, वह सच्चा चारित्र और प्रायश्चित्त और उसको तप कहा जाता है। भारी गजब बात! मूल पूरी चीज़ वह क्या है, इसकी खबर नहीं होती।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी नहीं होता। राग करते-करते होगा होगा? लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आती है? बराबर है? लहसुन... लहसुन। ढोकला नहीं बनाते हैं?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लोकोत्तर में यही है। मूलचन्दभाई! यह लहसुन नहीं खाते लहसुन? ढोकला चावल का बनावे न चावल का। तुम्हारे क्या कहते हैं? ढोकला-बोकला बनाते होंगे या नहीं? हमारे तो चावल के ढोकला कहते हैं। ऐसा कि क्या? लहसुन... ढोकला कहो... हमारे काठियावाड़ में तो चावल के ढोकला नहीं बनाते? ऊपर लहसुन बिछावे, लहसुन का मसाला (छिड़के)। घी में—तेल में डुबो-डुबोकर खाये फिर। बहुत हमारे छोटी उम्र में सब देखा है।

यह मसाला खाया हो लहसुन का और डकार आवे कस्तूरी की, ऐसा होता है? उसी प्रकार राग की मन्दता की क्रिया, वह तो लहसुन है।

**मुमुक्षु :** परम्परा कारण।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परम्परा कारण, वह तो अभाव करते हैं तो उसको परम्परा कारण है। यह मानते नहीं, उसे परम्परा कारण कहाँ से आया? समझ में आया? कठिन काम! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा पंथ, उसे पहिचानना वह बड़ा पुरुषार्थ है। अनन्त काल में जानने में आया नहीं। बाहर के क्रियाकाण्ड ऐसा करना, फैसा करना और मान लिया धर्म। जिन्दगी निष्फल। समझ में आया?

यहाँ आचार्य भगवान कहते हैं, अहो! **वह सब शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त है ऐसा, हे शिष्य! तू जान।** कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य। **'जाणह'** गाथा में आया है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा तू जान। पहले जानने-समझने में यह बात ले। परमात्मा निजस्वरूप भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप ही अन्दर है। सेठ! आता है या नहीं तारणस्वामी में? 'अप्पा सो परमअप्पा।' यह बहुत आता है। परन्तु तुमको कब वाँचकर भान था कुछ? ऐ सेठ! तारणस्वामी में बहुत आता है 'अप्पा सो परमअप्पा'। अन्दर आत्मा, वह परमात्मा है। शक्तिरूप से, स्वभावरूप से, गुणरूप से स्वयं परमात्मा अन्दर है। आहाहा! अरे! इसे खबर नहीं। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा वीतरागदेव आत्मा किसको कहते हैं, माने नहीं और खबर नहीं। चलो, करो सामायिक, करो प्रोषध, करो प्रतिक्रमण। वह तो विकल्प-राग है। उसमें तो पुण्यबन्ध मिथ्यात्वसहित (होगा)। भटकने में काम आवे, चार गति में रुलने में काम आता है। आहाहा!

**ऐसा, हे शिष्य! तू जान।** कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। पाठ किया है। पाठ में है न।

**'जाणह'**—ऐसा तू पहले जान कि भगवान आत्मा परिपूर्ण शान्त और आनन्द का धाम है। उसमें से वीतरागता और धर्म की पर्याय की दशा प्रगट होती है। राग में से, व्यवहार में से और निमित्त में से यह धर्म की दशा प्रगट नहीं होती। आहाहा!

**इस ११७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज पाँच श्लोक कहते हैं:**—१८४ है न कलश!

**अनशनादितपश्चरणात्मकं**
**सहजशुद्धचिदात्मविदामिदम्।**
**सहजबोधकला-परिगोचरं**
**सहजतत्त्व-मघक्षय-कारणम्॥१८४॥**

आहाहा! हिन्दी है या नहीं? हिन्दी नियमसार आया या नहीं? हिन्दी दिया हिन्दी? अच्छा। यहाँ नहीं, वहाँ तुम्हारे हिन्दी लोगों को। हिन्दी है हिन्दी? पहले से हिन्दी ले लेना चाहिए न। क्या कहते हैं? देखो! १८४ कलश।

**श्लोकार्थः—अनशनादितपश्चरणात्मक (अर्थात् स्वरूपप्रतपनरूप से परिणमित,...** भाषा देखो! क्या कहते हैं? **(स्वरूपप्रतपनरूप से परिणमित, प्रतापवन्त अर्थात् उग्र स्वरूपपरिणति से परिणमित...)** आहाहा! भाषा! भगवान आत्मा सत् शाश्वत अकेला अमृत का कन्द है, अतीन्द्रिय अमृत का दल है। ऐसा भगवान आत्मा, उसका स्वरूप, उसका प्रतपन... उसका प्रतपन—प्रकृष्ट(रूप) से तपना अर्थात् उग्ररूप से वीतरागीदशा उत्पन्न होना। आहाहा! ऐसे परिणमित (अर्थात्) ऐसी अवस्था का होना। शुद्ध चैतन्य आनन्दधाम प्रभु, उस ओर की अन्तर एकाग्रता से स्वरूप में से प्रतपन—विशेष वीतरागीदशा उत्पन्न होना और उस अवस्थारूप से परिणमन करना और प्रतापवन्त—जिसकी वीतरागपर्याय का प्रताप है कि जिसके कारण से राग और द्वेषादि नाश होता है। समझ में आया? भाषा भी सूक्ष्म पड़े। कहीं तत्त्व का अभ्यास नहीं होता। क्रियाकाण्ड में ऐसा जुड़ान हो गया तीनों सम्प्रदाय में। सत्य क्या चीज़ है, वह तो सारी ढँक गयी।

कहते हैं, **स्वरूपप्रतपनरूप से....** कोष्ठक में है न? भगवान आत्मा स्वरूप अपना निज आनन्द और ज्ञानादिस्वरूप, अपना निज त्रिकाली स्वरूप, उसका प्रतपन—

उसका परिणमन, वीतरागी पर्यायपने, निर्दोष आनन्दपने प्रतपन (अर्थात्) विशेष तपना—ओपना, अपनी पर्याय में आनन्द की दशा की शोभा होना। समझ में आया? अरे... अरे! गजब बातें! परिणमित ऐसा **प्रतापवन्त अर्थात् उग्र स्वरूपपरिणति से परिणमित...** आहाहा! ऐसा जाने, निर्णय तो करे पहले कि यह मार्ग है धर्म का और मोक्ष का मार्ग। **उग्र स्वरूपपरिणति से परिणमित...** उग्र अर्थात् कड़क—कठिन—महा पुरुषार्थ से अपने निजानन्द प्रभु के स्वरूप की परिणति अर्थात् अवस्था से परिणमित... परिणति से परिणमित। आहाहा!

**ऐसा यह सहज-शुद्ध-चैतन्यस्वरूप को जाननेवालों का...** ऐसा स्वाभाविक भगवान शुद्ध चैतन्यस्वरूप को—अपने शुद्ध त्रिकाली को जाननेवालों का **सहजज्ञानकला-परिगोचर...** नीचे अर्थ किया है। **सहज ज्ञान की कला द्वारा सर्व प्रकार से ज्ञात होने योग्य।** कैसा है भगवान आत्मा? कि अपनी ज्ञान की कला अर्थात् निर्मलदशा द्वारा गम्य है—ज्ञात है। किसी निमित्त द्वारा ज्ञात है, ऐसा नहीं और किसी कषाय की मन्दता, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा से भी वह ज्ञात नहीं। आत्मा ऐसे ज्ञात अर्थात् जानने में आता नहीं। आहाहा! समझ में आया? अनशनादि तपश्चरण ऐसा सहज शुद्ध... **सहजज्ञान-कलापरिगोचर...** आहाहा! स्वाभाविक ज्ञानकलापरिगोचर... सहज ज्ञान की कलश द्वारा परिगोचर—परिगम्य—सर्वप्रकार से ज्ञान होनेयोग्य। अपनी ज्ञानकला—वर्तमान सम्यग्ज्ञानकला, ऐसी सम्यग्ज्ञानकला द्वारा सर्वथा प्रकार से गम्य है। आहाहा! भाषा अभी समझना कठिन पड़े।

सहज ज्ञान की कला, यह पर्याय की बात है, हों! वर्तमान में विकल्प और शरीर की क्रिया से रहित अपना आनन्द और ज्ञान की कला द्वारा यह आत्मा गम्य है—जानने में आता है। समझ में आया? है न! अन्दर है या नहीं नीचे? **सर्वप्रकार...** भाषा देखी! **सर्वप्रकार...** (अर्थात्) सर्वथा। कथंचित् व्यवहार से गम्य है और कथंचित् ज्ञानकला से गम्य है, ऐसा नहीं लिया। समझ में आया? 'परिगोचर' कहा न? परिगोचर अर्थात् परिगम्य—समस्त प्रकार से अपनी निर्मल ज्ञानधारा, स्वरूप सन्मुख की ज्ञानधारा, उस द्वारा आत्मा गम्य अर्थात् ज्ञात होता है। उसका ज्ञान, ज्ञान की कला से जानने में आता है। समझ में आया?

**सहजज्ञानकलापरिगोचर...** ओहोहो! **सहज-शुद्ध-चैतन्यस्वरूप को जाननेवालों का...** स्वाभाविक शुद्ध भगवान आत्मा नित्य और ध्रुव ऐसे चैतन्यस्वरूप को जाननेवालों का **सहजज्ञानकलापरिगोचर सहजतत्त्व...** आहाहा! भगवान सहज प्रभु आत्मा आदि-अन्तरहित चीज़ है। पर्याय एक समय में पलटती है, वह दूसरी चीज़ है, दूसरी चीज़ है। पहली चीज़ यह। लो! इसमें भी पहली और दूसरी! समझ में आया? सहजतत्त्व भगवान आत्मा स्वाभाविक तत्त्व अर्थात् ध्रुववस्तु, उसको **जाननेवालों को सहजज्ञान-कलापरिगोचर सहजतत्त्व अघक्षय का कारण है॥** वस्तु जो है सहजतत्त्व, वह ज्ञान के गम्य है, वह अघक्षय का कारण है। आहाहा! त्रिकाली तत्त्व क्षय का कारण कहा, भाई! पर्याय नहीं। टीका में अन्दर... समझ में आया?

**मुमुक्षु :** टीका में पर्याय ली है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय ली है। और नीचे यह श्लोक पर्याय से... यहाँ तो तत्त्व लिया पूरा। अर्थात् सहजतत्त्व में पुण्य-पाप का भाव है ही नहीं। ऐसा तत्त्व का आश्रय करने से वह तत्त्व ही पुण्य और पाप का नाश करनेवाली चीज़ है। 'तत्त्व ही।' तत्त्व का अर्थ इस सहजतत्त्व का ज्ञान हुआ न! यह तत्त्व है, ऐसा ज्ञान किसमें हुआ? पर्याय में हुआ।

**मुमुक्षु :** सर्व पृथक्रूप से परिणमित है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परिणमित है न यह तत्त्व। यह स्वतत्त्व है, ऐसा किस प्रकार ख्याल आया? परिणमा, ज्ञान में आया तब 'यह सहजतत्त्व है' ऐसा हुआ। ऐसा परिणमनवाला सहजतत्त्व अघक्षय का कारण है। पुण्य और पाप का नाश करनेवाली यह चीज़ है। समझ में आया?

**स्वरूपपरिणति से परिणमित...** लिया था न पहले। वह परिणमित हुआ अर्थात् 'यह सहज तत्त्व' ऐसे ज्ञानगम्य हुआ, ऐसा स्वतत्त्व वीतराग पर्याय से परिणमित हुआ, वह राग-द्वेष के नाश का कारण है। समझ में आया? आहाहा! क्या कहते हैं, खबर पड़ती नहीं। इसकी अपेक्षा अपवास करना, रोटी नहीं खाना, आठ दिन अपवास कर देना। धूल भी नहीं, वह तो सब लंघन है। समझ में आया? आत्मा के भान बिना, वह

सब क्रिया लंघन है। उसमें कोई धर्म-बर्म है नहीं। आहाहा! सहजतत्त्व, ऐसा ज्ञानपरिगोचर जो सहजतत्त्व है। यहाँ तो ऐसा सहजतत्त्व ज्ञानपरिगोचर, उसको जाननेवालों का... जाना न ऐसा, परिणति हुई। ऐसा **सहजतत्त्व अघक्षय का कारण है।** आहाहा!

अघ अर्थात् नीचे लिखा है, देखो! **अघ—अशुद्धि; दोष; पाप। ( पाप तथा पुण्य दोनों वास्तव में अघ हैं।)** शुभ और अशुभ दोनों पाप हैं। कठिन काम भारी। पाप का परिणाम तो पाप है ही, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति आदि शुभभाव, वह पुण्य भी पाप है। अपने स्वरूप से पतित होकर पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! झेलना, पचाना कठिन। ख्याल नहीं होता, खबर नहीं होती, क्या चीज़ है और कैसे वह प्राप्त हो, वह चीज़ कैसे प्राप्त हो। वह तो सहजस्वभावी ज्ञानगम्य चीज़ है, वह राग और निमित्त से गम्य है नहीं। लो, उसमें ऐसा कहा। भीखाभाई! शास्त्र से गम्य नहीं। यहाँ तो बात ऐसी हो गयी है। यह तो पंचास्तिकाय में नहीं आया पहले? सुनो! सुनो! ऐसा आया या नहीं? वह तो परद्रव्य और सुने, वह तो परलक्ष्यी ज्ञान है।

**मुमुक्षु :** फिर स्वयं ने किसलिए सुनने को कहा?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह व्यवहार बीच में आया, बोलने की पद्धति आवे। दूसरा क्या हो? ऐसा नहीं, इतना अधिक जोर नहीं। '**सुणह**' आया था दूसरी गाथा में पंचास्तिकाय (में)। सवेरे का स्वाध्याय। नहीं आया? स्वाध्याय किया तो ध्यान रखना है या नहीं? या पहाड़े बोलना है? देखो!

'**समणमुहुग्गदमट्ठं**' भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा श्रमण—मुनि तीर्थंकर के मुख में से निकला हुआ '**चदुग्गदिणिवारणं**' भगवान की वाणी ऐसी है कि चार गति का तो नाश करनेवाली है। वाणी में ऐसा कोई भाव नहीं कि स्वर्ग मिले तो ठीक।— ऐसा नहीं। निमित्त कथन कैसे आवे? ऐई! यहाँ दूसरी बात कहना है कि वाणी में ऐसा आता है और वाणी का भाव जो समझे, उसमें ऐसा आता है कि स्वर्ग का भी नाश करे, ऐसा वाणी का भाव है। कोई गति मिले, ऐसा भाव वीतराग की वाणी में है ही नहीं। समझ में आया? यह सेठाई मिले, स्वर्ग मिले और सर्वार्थसिद्धि का देव (पद) मिले— ऐसी चीज़ वीतराग की वाणी में है नहीं, ऐसा कहते हैं। देवीलालजी! यह तो चउगति निवारण और '**सणिव्वाणं**' चार गति का नाश करनेवाली और मुक्ति को देनेवाली '**सुणह**'

ऐसा कहते हैं। '**एसो पणमिय**' स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि ऐसे परमागम को मैं प्रणाम करता हूँ। व्यवहार आता है या नहीं? विकल्प है न!

**मुमुक्षु :** चलता नहीं...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं चलता है (ऐसा) नहीं, यह तो आये बिना रहता नहीं— ऐसा है। देखो! एक गाथा में कितनी बात रखी है। समझ में आया?

'**समणमुहुग्गदमट्ठं**' तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव से निकली हुई वाणी... अज्ञानी कोई कहे, वह (दिव्य) वाणी नहीं। तीर्थंकर परमात्मा के मुख में से ओम ध्वनि, उसके द्वारा निकला छह द्रव्य, पंचास्तिकाय का वर्णन। '**चदुग्गदिणिवारणं**' चार गति परतन्त्रता का तो नाश करानेवाली वाणी है। वाणी का अर्थ उसमें निमित्त का कथन ऐसे आवे। क्या करे? ऐई मूलचन्दभाई! वाणी निवारण करनेवाली, लो। वाणी में जो वीतरागता कही है, वह वीतरागता प्रगट करे (तो) चार गति का नाश और निर्वाण होता है। समझ में आया?

'**एसो पणमियसिरसा**' लो। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, ऐसी जिनवरवाणी को वन्दन करता हूँ।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** न करे... यहाँ, आप्त द्वारा उपदेश होने से सफल है, ऐसा कहा। समय प्रणाम करने के , कथन करने के योग्य है। ऐसा टीका में आया है। आया है। वह समय प्रणाम करने के, कथन करने के योग्य है। स्वयं किया न, इसलिए योग्य है, ऐसा कहा। (सिद्ध नम:.....) इसलिए ऐसा आया। आगम को प्रणाम करके, स्वयं कहते हैं, करके उसका कथन करेंगे। आहाहा! यह टीका में आता है न सब। यहाँ आगम भाव भी सही और निमित्त भी सही। सर्वज्ञ अनुसारी वाणी है न। उसे व्यवहार से वन्दनीय—प्रणमी, ऐसा यथार्थ... समझ में आया? यह व्यवहार बीच में है, ऐसा आता है, ऐसा समझाते हैं। व्यवहार नहीं है, ऐसा कहे तो एकान्त निश्चयाभास हो जाता है। व्यवहार है, वह हेय है, परन्तु है। समझ में आया?

यहाँ तो वजन यहाँ देना था। '**समयमिणं सुणह**' कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, सुनो!

एक ओर कहे कि सुनने से ज्ञान होता नहीं। सब आवे। न आवे ? ... वह तो ऐसा ही आवे न! भाषा क्या आवे ? भाई! इसका अर्थ है कि भाई! यह वस्तुस्थिति ऐसी है। ऐसी स्थिति का वर्णन वीतराग की वाणी में आता है। सन्तों की वाणी भी वीतरागवाणी से आती है सब। समझ में आया ? उसको नमन करते हैं। प्रणाम करके... क्योंकि प्रणाम करनेयोग्य ऐसा करके सिद्ध किया। वह वाणी प्रणाम करनेयोग्य है। परमात्मा के अतिरिक्त अज्ञानी की वाणी कोई प्रणाम करनेयोग्य है नहीं, ऐसा सिद्ध किया है। देवीलालजी! ...गजब बात!

यहाँ कहते हैं, ऐसा आत्मा ही परम परिणमित दशावन्त भगवान अघक्षय का— नाश का कारण है। पुण्य-पाप के नाश का वह तत्त्व ही कारण है। अभेद परिणति हुई... समझ में आया ? यह नये लोगों को तो ऐसा लगे कि क्या कहते हैं यह ? कभी सुना ही नहीं। बापू! तेरे घर की बात है, प्रभु! तेरी चीज़ कितनी कीमती है, उसका मूल्यांकन नहीं होता, ऐसी चीज़ है। आहाहा! वह वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु जो परमात्मा पूर्णस्वरूप है, ऐसी जो अपनी वर्तमान चीज़ प्रत्यक्ष, प्रगट-व्यक्त है। पर्याय अपेक्षा से अव्यक्त है, वस्तुरूप से व्यक्त-प्रगट है। आहाहा! समझ में आया ?

व्यक्त पर्याय से भी अव्यक्त द्रव्य भगवान की महिमा अपरम्पार है। वाणी में यह भाव कहा कि तेरी चीज़ शुद्धज्ञानभाव से भरी है, उसके सन्मुख होकर परिणमन अर्थात् वीतरागी ज्ञानमयदशा हो कि जो ज्ञान से ही वह गम्य है, ऐसा तत्त्व अघक्षय का कारण है। आहाहा! निर्जरा का कारण यह है। अपवास-बपवास करे, निर्जरा होती है। अभव्य ने भी ऐसा अनन्त बार किया है, उसमें क्या है ? आहाहा! अपने भगवान का अवलम्बन लिये बिना कभी कर्म का नाश और संवर-निर्जरा होती नहीं। १८५। १८५ कलश।

**प्रायश्चित्तं ह्युत्तमानामिदं स्यात्**
**स्वद्रव्येऽस्मिन् चिन्तनं धर्मशुक्लम्।**
**कर्म-व्रात-ध्वान्त-सद्बोध-तेजो-**
**लीनं स्वस्मिन्निर्विकारे महिम्नि॥१८५॥**

लो, चिन्तन शब्द आयेगा। **श्लोकार्थः—जो (प्रायश्चित्त)...** चारित्र कहो, प्रायश्चित्त कहो, वीतरागदशा कहो या सच्चा—निश्चय मोक्ष का मार्ग कहो। वह **स्वद्रव्य**

**का धर्म और शुक्लरूप चिन्तन है,...** स्वद्रव्य का चिन्तन, वह धर्म और शुक्लध्यान है। आहाहा! धर्मध्यान, कहते हैं न! धर्मध्यान करते हो? लो, उस समय... (संवत्) १९९० के वर्ष में बोटाद। ....कैसा वह बरवाळा के पास? पाणी। पाणी न? उसका मामा रहता था रोजका। उजमशी का मामा। वह आया था पाणीसे। मूलचन्द को पूछा, धर्मध्यान करते हो? हाँ। सूर्यास्त पूर्व भोजन करते हो? हाँ। अपवास करते हो? फिर चर्चा चली आत्मा की। यह तो और उसे ८० में कहा। यह तो ९० में। गणधर जैसी अपने को श्रद्धा मिली सबको। यह ८० में चातुर्मास पूरा हो गया...

यह ९० की बात है। अलग पड़ने के बाद अन्त में इकट्ठे हुए तब। उसमें लोग बहुत इकट्ठे हुए। ४०० व्यक्ति बाहर से आये थे। दस वर्ष से इकट्ठे नहीं हुए थे न! अलग थे न, इकट्ठे नहीं होते। बहुत विरोध करे, कषाय। उसको पूछा, धर्मध्यान करते हो? कि हाँ। फिर बात चली कि बहुत रजकणों की बनी हुई स्वर्ण को टुकड़ा है। यह सोना... सोना। बहुत रजकणों का पिण्ड सोना है। तब उसने प्रश्न किया कि महाराज! तब आत्मा कितने परमाणुओं का बना होगा? धर्मध्यान करते हो? कि हाँ। परन्तु आवे इतना। पाणी के थे वीशाश्रीमाली। नहीं, भाई तो पहिचानते थे न? पानाचन्द है या नहीं? नहीं, वे पाणी के? पाणी के थे उजमशीभाई। उजमशीभाई थे, वृद्ध थे। यह आत्मा कितने रजकणों का—परमाणुओं का बना होगा?

यह तो और यहाँ कहा तुम्हारे वींछियावाले वकील ने। वह तो वकील। क्या नाम वकील का? ऐई प्रेमचन्दभाई! नहीं वींछियावाला? नहीं? क्यों नहीं आये? वहाँ गाँव के वींछिया के थ न वकील। उन्होंने यहाँ पूछा था ९८ में। तब कितने परमाणुओं का आत्मा बना होगा? कहा, ठीक। अब ऐसे....। नाम भूल गये उनका। प्रेमचन्दभाई यहाँ है या नहीं? गये होंगे। घर में होंगे। वे पहिचानते हैं। वकील थे। कितने परमाणु का बना होगा? पुराने वृद्ध व्यक्ति और मूर्ति का पक्का विरोध करे। इतनी धर्म की खबर। क्या बात को कुछ...? आहाहा! कितने परमाणुओं का आत्मा बना हुआ है? अरे! परन्तु परमाणु जड़। जड़ से आत्मा बने? वह असंख्यप्रदेशी कहते हैं न! कि असंख्यप्रदेशी आत्मा है। तब कहे, कितने परमाणुओं का आत्मा बना है? आहाहा!

**मुमुक्षु :** प्रदेश को परमाणु समझ लिया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कुछ ज्ञान नहीं होता, सत्य समझण न हो और ऐसे-ऐसे जिन्दगी बर्बाद। धर्म के नाम से खोखा करे, जिन्दगी समाप्त हो जाये।

**इस स्वद्रव्य का धर्म और शुक्लरूप चिन्तन है,...** बहुत संक्षिप्त भाषा की है। क्या कहा? स्वद्रव्य, हों! अपना स्वद्रव्य वस्तु। त्रिकाल नित्य प्रभु भगवान द्रव्यस्वभाव का चिन्तन, यह धर्म और शुक्लध्यान है। उसकी एकाग्रता, उसका नाम धर्मध्यान और शुक्लध्यान है। समझ में आया? क्या कहा? **इस स्वद्रव्य का धर्म और शुक्लरूप चिन्तन है,...** एकाग्रता। चिन्तन अर्थात् विकल्प नहीं, अन्तर चिन्तन। शुद्धस्वरूप परमात्मा अपना निज द्रव्य-वस्तु, उस ओर की अन्तर में एकाग्रता का नाम धर्मध्यान और शुक्लध्यान है। यह दया, पूजा और व्रत करना, यह धर्मध्यान नहीं, ऐसा कहते हैं। यह तो पुण्यभाव है, धर्म नहीं। आहाहा! स्पष्टीकरण किया है। यह प्रायश्चित्त है, ऐसा। धर्मध्यान और शुक्लध्यानरूप स्वद्रव्यचिन्तन, यह प्रायश्चित्त, प्रायश्चित्त अर्थात् चारित्र, चारित्र अर्थात् वीतरागता। वह प्रायश्चित्त, वही राग-द्वेष के नाश करने की ताकत रखता है।

**कर्मसमूह के अन्धकार को नष्ट करने के लिए सम्यग्ज्ञानरूपी तेज है...** आहाहा! पर्याय की बात है। ज्ञान... ज्ञान का तेज, अकेले ज्ञान के तेज से भरा हुआ भगवान, उसकी एकाग्रता होती है तो सम्यग्ज्ञान की पर्याय प्रगट होती है। यह सम्यग्ज्ञान... सम्यग्ज्ञानरूपी तेज। आहाहा! क्यों कहा ऐसा? कि सम्यग्ज्ञान में त्रिकाली द्रव्य की श्रद्धा—सम्यग्दर्शन, वह भी उसमें आ जाता है, सम्यग्ज्ञान में और त्रिकाली द्रव्य का ज्ञान सम्यग्ज्ञान में आया और त्रिकाली द्रव्य की एकाग्रता—सम्यग्ज्ञान की पर्याय में तीनों के तीन आ गये। सम्यग्ज्ञान कहने में राग नहीं, इतना लेना है। समझ में आया? कर्म का अन्धकार नष्ट करने के लिये सम्यग्ज्ञानरूपी तेज है। अन्तर की ज्ञानकला अन्तर में से जागृत होने से ज्ञान की कला ही अपनी निर्विकार महिमा में लीन है। ओहोहो!

यह सम्यग्ज्ञानरूपी तेज **अपनी निर्विकार महिमा में लीन है—ऐसा यह प्रायश्चित्त वास्तव में उत्तम पुरुषों को होता है।** धर्मात्मा को ऐसा प्रायश्चित्त होता है। आहाहा! निश्चय... निश्चय... निश्चय। व्यवहार से होता है, व्यवहार से होता है—ऐसा तो आता नहीं। यह तो एकान्त कहते हैं, ऐसा (लोग) कहते हैं। जाओ, कहो मुनि को कि आप एकान्त कहते हो। कहो। यह तो कहे, आत्मा का अन्दर आनन्दस्वरूप ज्ञान की किरण

प्रगट होती है अन्दर से, ज्ञान का पुंज प्रभु, उसकी एकाग्रता में से जो ज्ञान की किरण प्रगट होती है, उस किरण को सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र और प्रायश्चित्त कहा जाता है। समझ में आया? ऐसा प्रायश्चित्त अर्थात् ऐसी धर्मदशा, **वास्तव में उत्तम पुरुषों को होता है।** धर्मात्मा उत्तम पुरुषों की ऐसी दशा अन्दर होती है। यह १८५ हुआ। १८६ (कलश)।

**आत्मज्ञानाद्भवति यमिनामात्मलब्धिः क्रमेण,**
**ज्ञान-ज्योतिर्निहत-करण-ग्राम-घोरान्धकारा।**
**कर्मारण्योद्भवदव-शिखाजालकाना-मजस्त्रं,**
**प्रध्वन्सेऽस्मिन् शमजलमयीमाशु धारां वमन्ती॥१८६॥**

आहाहा! **श्लोकार्थः—यमियों को (संयमियों को)**—धर्मी जीव को **आत्मज्ञान से क्रमशः आत्मलब्धि (आत्मा की प्राप्ति) होती है...** आहाहा! देखो! कहते हैं, धर्मी इसको कहते हैं कि जिसको आत्मज्ञान हुआ है। आत्मा पवित्रस्वरूप पूर्णानन्द का ज्ञान हुआ है। उस आत्मज्ञान से धर्मी को क्रमशः आत्मलब्धि प्राप्त होती है। क्रम-क्रम से पूर्ण निश्चय साधकभाव की वृद्धि की पूर्णता इस आत्मज्ञान के कारण से आत्मलब्धि होती है। व्यवहार से आत्मलब्धि होती है, ऐसा नहीं, ऐसा निषेध करने को है। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** व्यवहार का तो निशान दिखता नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** निशान नहीं, ऐसा कहा?

**मुमुक्षु :** नामनिशान निकाल दिया है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसमें नाम आता नहीं, देखो! **आत्मज्ञान से...** धर्मी जीव उसे कहते हैं—उसको कहते हैं कि जिसको आत्मा अखण्डानन्द है, उसका ज्ञान हुआ है। समझ में आया? दूसरा शास्त्र का ज्ञान हो—न हो, विशेष दूसरा संसार का जानपना हो—न हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! भारी सूक्ष्म बात, भाई! अब इस बात में सबके साथ समन्वय करना। यह (मूल) रकम की बात तो यह है। समझे बिना सबके (साथ) समन्वय करो। सब एक है... एक है... एक है।

**मुमुक्षु :** सब अस्ति है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अस्ति धरावे, बाकी तत्त्व में तो सबमें बहुत अन्तर है। आहाहा! सत्य प्रभु, ज्ञानस्वभाव परिपूर्ण प्रभु, ऐसे आत्मा का जिसको स्वसन्मुख होकर सम्यग्ज्ञान हुआ, यह आत्मज्ञान ही आगे शुद्धि की वृद्धि ऐसी आत्मलब्धि, लब्धि अर्थात् पूर्ण प्राप्ति आदि, इस आत्मज्ञान से पूर्ण प्राप्ति आदि होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सब उसमें आ गया। यह आत्मज्ञान से दर्शन, ज्ञान, चारित्र और मुक्ति सब, परन्तु इस आत्मज्ञान से। आहाहा!

अन्तर्मुख प्रभु पूर्णस्वरूप का ज्ञान, अन्तर्मुख होकर जो ज्ञान हुआ, उसका नाम आत्मा का ज्ञान। वह सम्यक्-दृष्टि और सम्यग्ज्ञान, स्वरूप-आचरण हुआ तो वह आतमज्ञान से क्रमशः ऐसा कि आगे शुद्धि बढ़ेगी, आत्मा की (पूर्ण) प्राप्ति। किस कारण से? कि आत्मज्ञान से। व्यवहार अन्दर रागादि मन्दता की वृद्धि करे और आत्मा की शुद्धि की वृद्धि हो—ऐसा नहीं। आहाहा! **आत्मज्ञान से...** भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यकन्द, उसका ज्ञान करने से धर्मी जीव को ही आत्मज्ञान से, आत्मश्रद्धा से और आत्मस्थिरता द्वारा आगे साधक की शुद्धि, वृद्धि, टिकना—सब आत्मज्ञान से होता है। समझ में आया?

**कि जिस आत्मलब्धि ने ज्ञानज्योति द्वारा इन्द्रियसमूह के घोर अन्धकार का नाश किया है...** आहाहा! प्रायश्चित्त है न! **जिस आत्मलब्धि ने...** अर्थात् आत्मलब्धि ने... ऐसा। जिसे आत्मलब्धि... पुण्यलब्धि, पापलब्धि, व्यवहारलब्धि—ऐसा नहीं, आहाहा! वस्तु परमात्मा स्वयं निजस्वरूप आनन्द का ज्ञान, उसकी श्रद्धा और स्थिरता—ऐसा जो आत्मज्ञान, उससे क्रम से विशेष आत्मलब्धि प्राप्त होती है और उस आत्मलब्धि ने अर्थात् आत्मलब्धि से ज्ञानज्योति द्वारा—अपनी निर्मल ज्ञान की ज्योति द्वारा इन्द्रियसमूह के घोर अन्धकार का नाश किया है। आहाहा! इन्द्रियसमूह का विकल्प शुभ-अशुभभाव अन्धकार का नाश किया है और आत्मा की प्राप्ति होती है। विशेष होगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**भाद्र कृष्ण ८, रविवार, दिनांक - १२-०९-१९७१**
**श्लोक-१८६-१८८, प्रवचन-१२२**

यह नियमसार सिद्धान्त शास्त्र है, इसका १८६ कलश चलता है। १८६ है न? इसका अर्थ। जरा सूक्ष्म बात है, सूक्ष्म बात है। अभी गुजराती चलेगी।

**यमियों को ( संयमियों को )...** संयमी किसे कहते हैं? जिसे आत्मज्ञान पहले हुआ हो। यह आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति आनन्द का जिसे प्रथम आत्मज्ञान अर्थात् आत्मा का भान, आत्मा का अनुभव, आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव का स्वाद अन्तर अतीन्द्रिय का आया हो, उसे आत्मज्ञान कहते हैं। समझ में आया? उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द की मूर्ति आत्मा है। उसके सन्मुख होकर उसको वेदन अन्दर में प्रगट होना। जो अनादि का राग और द्वेष, पुण्य और पाप विकल्प—राग, उसका जो वेदन है, वह एकान्त मिथ्यात्व का वेदन है। समझ में आया? वह मिथ्यात्वभाव है। सेठ! राग-द्वेष का अनुभव मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन—धर्म की प्रथम भूमिका। अतीन्द्रिय आत्मा पुण्य-पाप के रागरहित, कर्म और शरीररहित और अनन्त ज्ञान तथा आनन्दसहित है। ऐसा आत्मज्ञान, उसे—संयमी को पहले आत्मज्ञान होता है। चारित्रवन्त जो हो, जिसे आत्मज्ञान हो, उसे चारित्र होता है। समझ में आया?

संयमियों को **आत्मज्ञान से...** सूक्ष्म बात है, भाई! परमात्मा स्वयं निज आत्मा अनन्त-अनन्त ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से सम्पूर्ण भरपूर प्रभु, ऐसा आत्मा, उसका ज्ञान... उसका ज्ञान, उसकी श्रद्धा, ऐसा जिसे आत्मज्ञान प्रगट हो, ऐसे संयमियों को, उस आत्मज्ञान उपरान्त उसे स्वरूप की लीनता—चारित्र होता है। अन्तर में आनन्द की लहरियाँ अन्दर अनुभव में आती है। आहाहा! उसे चारित्र कहते हैं। चारित्र (अर्थात्) कहीं वस्त्र छोड़कर नग्न हो जाये और पंच महाव्रत के कदाचित् विकल्प हो, वह चारित्र नहीं। कहते हैं, ऐसे धर्मी जीव को **क्रमशः आत्मलब्धि प्राप्त होती है।** आहाहा!

परमात्मा निजस्वरूप शुद्ध आनन्द और ज्ञान का धाम, उसका भान, उसका अन्तर में विकास शक्तिरूप जो भगवान आत्मा है, उसकी आंशिक व्यक्त अर्थात् प्रगटदशा—अनन्त गुण के अंश वेदन में आवे, उसे आत्मज्ञान और ऐसे आत्मज्ञानी को संयम जो हो, उससे आत्मलब्धि—प्राप्ति होती है। उसके द्वारा उसे आत्मा की पूर्ण प्राप्ति होती है। आहाहा!

आत्मलब्धि, आत्मज्ञान से आत्मलब्धि ही होती है, ऐसा कहना है न! आहाहा! बात ही आत्मा, दूसरी बात नहीं अन्दर। अनाकुल शान्तरस का कन्द प्रभु जिसमें अनन्त शान्ति, अकषाय स्वभाव अनन्त-अनन्त जिसमें भरपूर भरा हुआ है। ऐसा भगवान, उसका अन्तर में ज्ञान, उसकी श्रद्धा और उसमें रमणता (हो), ऐसे धर्मी को आत्मलब्धि प्राप्त होती है, अर्थात् आत्मा की शान्ति और आनन्द की पूर्ण प्राप्ति उसे होती है। आहाहा! **कि जिस आत्मलब्धि ने ज्ञानज्योति द्वारा...** अपना सूर्य—चैतन्यसूर्य भगवान के अन्तर के भान—ज्ञानज्योति भान द्वारा **इन्द्रियसमूह के घोर अन्धकार का नाश किया है...** पाँच इन्द्रियों की ओर के झुकाव का विकल्प, उसका जिसने अपने आनन्दस्वरूप के अनुभव द्वारा नाश किया है। आहाहा! भारी कठिन काम जगत को। क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह सब विकल्प क्रियाकाण्ड, राग है, वह तो विकार है।

**मुमुक्षु :** उसे अन्धकार में रखा जाये?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अन्धकार में है वह। आहाहा! बात ऐसी है, भाई! इसे मिली नहीं। ऐसा भगवान अन्दर विराजता है। अपना भगवान पूर्ण ज्ञान और आनन्द उसका स्वरूप है। ऐसे भगवान का जिसे सम्यग्ज्ञान और दर्शन में साक्षात्कार हुआ, उसे स्वरूप की रमणतारूपी संयम और चारित्र होता है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी अन्तर की ज्ञानज्योति द्वारा अर्थात् कि अन्दर ज्ञानस्वरूप तो त्रिकाल था, उसमें से भान करके जो ज्ञानज्योति पर्याय में—अवस्था में जानपने की किरणें शुद्ध प्रगट की, ऐसी ज्ञानज्योति द्वारा व्यवहार के दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम—अन्धकार को नाश करने की सामर्थ्य आत्मा के ज्ञान में है। कहो, समझ में आया? **ज्ञानज्योति द्वारा...** ऐसा कहकर कि ज्ञानस्वरूप भगवान का सम्यग्ज्ञान अन्तर अनुभव में से आया, आहाहा! उस द्वारा **इन्द्रियसमूह के घोर अन्धकार...** यह पाँच इन्द्रियाँ और

खण्ड-खण्ड इन्द्रिय की ओर के झुकाव का विकल्प शुभभाव, वह अन्धकार है। ऐसे अन्धकार को नाश करने की ज्ञानज्योति द्वारा शक्ति (मिलती) है। आहाहा! अरे! इसे अपनी जाति में अपना क्या स्वरूप है... तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग अरिहन्त ने जो आत्मा कहा, वह आत्मा तो अन्तर आनन्द की गाँठ है।

अरे! आनन्द की गाँठ, जैसे सूरणकन्द होता है न। क्या कहते हैं उसे? सूरणकन्द की गाँठ इतनी नहीं आती? सूरण... सूरण। सूरण कहते हैं? ....जहाँ डालो तो अकेला रसकन्द है, ऐसा भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द की वह सूरणगाँठ है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के विकल्प, वह तो राग है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! भगवान का मार्ग... भगवान अर्थात् तू, हों! आहाहा! उसका मार्ग (अर्थात्) अन्तर्मुख के पंथ में ढले हुए, बहिर्मुख से हट गये हुए, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

ऐसे आत्मज्ञान से (प्राप्त) आत्मलब्धि द्वारा... आत्मलब्धि से अर्थात् ज्ञानज्योति से... विकल्प पुण्य-पाप के भाव जो अज्ञान है, अन्धकार है, राग में कहीं आत्मा नहीं। आहाहा! ऐसे अज्ञान अन्धकार का ज्ञानज्योति द्वारा नाश होता है। यह तो अनजाने व्यक्ति को (लगे कि) ऐसा धर्म होगा? अपने वीतराग जैन में तो दया पालना, व्रत पालना, अपवास करना, पूजा करना, भक्ति करना, लो। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। वीतराग का मार्ग; विकल्प वह वीतराग का मार्ग नहीं है, वह तो राग है। आहाहा! उस रागरहित भगवान आत्मा... उसे वीतरागपना प्रगट करना है, तो वीतरागपना आयेगा कहाँ से? अन्दर भरा है, उसमें से आयेगा। समझ में आया? यह परमात्मा निजस्वरूप वीतरागस्वभाव से भरपूर तत्त्व है। आहाहा! 'पूर्णं इदं' वह पूर्ण प्रभु है। उसकी अन्तर्दृष्टि और एकाग्रता से जो संयम आदि प्रगट हुए, उनके द्वारा... संयम अर्थात् यहाँ ज्ञानज्योति, ऐसा वापस, वह राग नहीं, ऐसा लेना। उस ज्ञानज्योति द्वारा, रागादि के विकल्प जो अन्धकार और बन्ध का कारण है, वे ज्ञानज्योति द्वारा नाश होते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तक तो आया था कल, नहीं? वहाँ आया, इसलिए फिर से लिया। रविवार है, इसलिए फिर से लिया न। ऐसा मार्ग, प्रभु! तेरा है, हों! वीतराग का मार्ग और तेरा मार्ग एक ही है। आत्मा और वीतराग में कुछ अन्तर नहीं। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो...'

सिद्धस्वरूप ही भगवान आत्मा अनादि-अनन्त है। पर्याय में अन्तर है, वह तो दृष्टि राग के ऊपर है, इसलिए है। समझ में आया? अन्तर स्वभाव पर दृष्टि पड़ने से, पूरा परमात्मा आत्मा ऐसा है, ऐसा ज्ञान और भान होने पर, उस ओर की स्थिरता की दशा अर्थात् संयम और चारित्रभाव प्रगट होने पर, वह सब ज्ञान की जाति है, वह सब राग की जाति नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा... आत्मज्ञान और भान होने पर तो राग से ज्ञान उदास है। आहाहा! समझ में आया? पूरी दुनिया, विकल्प से—राग से लेकर पूरी दुनिया, उससे (भिन्न) भगवान आत्मा का भान होने पर, सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने पर समस्त चीज़ों से यह आत्मा उदासीन है अर्थात् कि उनसे भिन्नरूप से रहा हुआ है। समझ में आया?

ऐसी आत्मलब्धि... आहाहा! यह वह चमत्कार कहते हैं न कि इसे यह चमत्कार होगा। धूल भी नहीं, सुन न अब! यह आत्मलब्धि, वह चमत्कार है। आहाहा! लोगों को कहाँ आत्मा और उसकी दृष्टि क्या, (उसकी) खबर नहीं और धर्म करते हैं, (ऐसा) मानते हैं। वह भटकने के रास्ते का अन्त नहीं आयेगा। आहाहा! जिसमें भव और भव का भाव नहीं, ऐसी आत्मचीज़ है, ऐसी आत्मचीज़ का ज्ञान और आत्मलब्धि, निर्मलदशा स्वभाव के आश्रय से प्रगट होने पर, **जो कर्मवन से उत्पन्न ( भवरूपी ) दावानल...** आहाहा! पुण्य-पापरूपी वन, उससे उत्पन्न भव, ऐसा जो दावानल, उसकी **शिखाजाल...** वह दावानल सुलगता है शिखाजाल, हों! आहाहा! क्या कहते हैं? शुभ-अशुभराग जो है न, वह तो कर्मरूपी वन का दावानल है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** शुभ और अशुभ दोनों?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दोनों। सेठ! दावानल में सुलगता हुआ, सुलगता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! 'राग आग दाह...' आया था न?

**मुमुक्षु :** राग आग दहे सदा, तातै समामृत सेईये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तो उसमें यह शुभराग आता होगा? एक ने प्रश्न किया था कि राग में यह आवे? शुभाशुभराग दोनों राग दाह है, अग्नि है। आहाहा! अरेरे! कैसे इसे (जँचे)? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का विकल्प, वह अग्नि है, ऐसा कहते हैं। राग है, तुझे भान नहीं। और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना तो तीव्र अग्नि है।

यह कषाय का दावानल सुलगा है, ऐसा कहते हैं। भाई! तुझे खबर नहीं, प्रभु! तेरी चीज़ में क्या है और तेरी चीज़ में से क्या निकल जाता है, (उसकी) इसे खबर नहीं। भगवान आत्मा, वह तो अनाकुल आनन्द और अकषायस्वभाव की पुतली प्रभु है। ऐसा अकषायस्वभाव का आश्रय लेकर जिसने अकषायस्वभाव ज्ञानज्योति प्रगट की, उसे आत्मा की प्राप्ति (अर्थात्) यह पूरा आत्मा ऐसा है, ऐसा पर्याय में प्राप्त हुआ, उसने पुण्य-पापरूपी वन से उत्पन्न हुए भव का दावानल, उसकी शिखाजाल... दावानल सुलगता, उसमें वापस शिखा निकले ज्वाला, हलहल हलहल अग्नि... आहाहा! वीतरागी सन्त कहते हैं कि भगवान! एकबार सुन न, प्रभु! तेरी दशा में पुण्य और पाप के विकल्प और राग होता है, वह दावानल की शिखाजाल है। ऐ मूलचन्दभाई!

**मुमुक्षु :** पहले अशुभ छूटे, उसमें शुभ छूटता नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह सब... यह शुभ भी अशुभ है। क्योंकि दोनों अशुद्ध हैं इसलिए अशुभ है। शास्त्र में तो ऐसा कहा कि दोनों अशुभ हैं। शुभ तो, रागरहित आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति प्रगट होती है, उसे शुभ कहते हैं। आहाहा! वीतराग का मार्ग दुनिया से अत्यन्त निराला है। समझ में आया?

कहते हैं, अरे! कर्मवन से उत्पन्न भवरूपी दावानल, ऐसा। उसकी **शिखाजाल का नाश करने के लिए...** आहाहा! यह ज्ञानज्योति... जैसे सूर्य में से प्रकाश की किरणें निकलें, उसी प्रकार भगवान चैतन्यज्योति, आत्मज्ञान की पुंज मूर्ति में एकाग्र होने से जो ज्ञान, शान्ति, श्रद्धा आदि की किरणें—दशा फूटें (प्रगट हों)। उनके द्वारा भव के दावानल की शिखा का नाश करने के लिये **उस पर सतत शमजलमयी धारा को तेजी से छोड़ती है...** आहाहा! उपमा तो देखो! इस ओर पुण्य-पाप की दावानल की भव अग्नि, इस ओर भगवान आत्मा अविकारी चैतन्य वीतरागमूर्ति। उसका आश्रय लेकर वीतरागता की शमजलदशा प्रगट हो। वह शमजलरूपी धारा, कहते हैं, शमजल की धारा अन्दर से छूटती है। आहाहा! वह भी शीघ्रता से छोड़ता है। आहाहा! भाषा तो देखो! आहाहा! पूर्ण आनन्दस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, उसका आश्रय लेकर शमजल—शान्तिरूपी धारा—निर्मल वीतरागी परिणतिरूपी धारा, वह भी शीघ्रता से, एकदम

स्वभाव सन्मुख जाता है तो शीघ्रता से निर्मलता प्रगट होती जाती है। उस निर्मलता की झड़प से वह पुण्य-पाप के विकल्पों को छोड़ देता है। आहाहा!

**सतत....** भाषा कैसी प्रयोग की है! उस पर सतत-निरन्तर शमजलरूपी **धारा को तेजी से छोड़ती है—बरसाती है।** अग्निज्वाला हो और बम्बा नहीं आता? बम्बा तुम्हारा। उसी प्रकार भगवान आत्मा में शान्ति और आनन्द भरा है। शान्तिजल से भरपूर भगवान आत्मा है, उसका आश्रय करके, शरण लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति अन्तर के आश्रय से प्रगट हुई, उसमें से धारा छूटती है, कहते हैं। वह विकार की पर्याय को उत्पन्न न होने देने में अर्थात् कि नाश करने में वह बरसात है। आहाहा! उसकी बात इसने सुनी नहीं। कैसा, कौन है, क्या है? आत्मा वह कौन है? पामर माने उसे, लो! हम कर्मवाले हैं, हम पुण्यवाले हैं। .... पुण्य अर्थात् राग। रागवाला है आत्मा? समझ में आया? हम पापवाले हैं। पापवाला है आत्मा? वह तो अनन्त ज्ञान और आनन्दवाला आत्मा है। ऐसे आत्मा का अन्तर ज्ञान और भान—सम्यग्दर्शन होने पर स्वरूप की लीनता की धारा—चारित्र बहे, वह कर्म के भववन को नाश करने में समर्थ है। दूसरे में सामर्थ्य है नहीं। ऐ मूलचन्दभाई! ऐसा सब सुना नहीं होगा इतने वर्ष में। तुमने सुनने की दरकार नहीं की। भाई! कहते हैं कि सुन... आहाहा!

कहते हैं, प्रभु! तू इतना... यह शक्कर नहीं होती? इतनी बड़ी शक्कर होती है, परन्तु स्वाद थोड़ा होता है। और सिक्रेन... क्या कहा? सेक्रीन इतनी हो तो भी स्वाद बहुत होता है। एक देखो तो सही! वह शक्कर अधिक मोटी, इसलिए स्वाद अधिक, ऐसा नहीं है। ....मोटा और अधिक रजकण, इसलिए (स्वाद अधिक), ऐसा नहीं। उसकी पर्याय में मिठास उग्र आती है सेक्रीन। इसी प्रकार (कर्म) वह तो अनन्त रजकण का पिण्ड है। यह तो प्रभु एक अखण्ड द्रव्य है। इसके अन्तर में अतीनिद्रय आनन्द, शान्तरस, स्वच्छता और प्रभुता से भरपूर वह प्रभु है। उसके अन्तर सन्मुख होकर दशा को पलटाना, स्वभाव सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट करे, उसे अन्तर में स्वरूप की रमणता का चारित्र होता है। अज्ञानी को चारित्र-फारित्र होता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा, कहते हैं कि अन्दर की एकाग्रता द्वारा, शुद्ध प्रभु चैतन्य के

दल की सन्मुखता द्वारा जो शान्तरस और समभाव (अर्थात्) पुण्य-पाप के विकल्परहित दशा प्रगट होती है, वह दशा शुभाशुभभावरूपी कर्मवन को शान्त करने के लिये (अर्थात्) नाश करने के लिये वह समर्थ है। समझ में आया? कठिन बातें, भाई! यहाँ तो मान बैठे कि पामर है, हों! हम स्त्री है, हम लड़के हैं, हम आदमी हैं, हम सेठिया हैं, भिखारी हैं। सब मूर्खता है। समझ में आया? अरे! विकल्प के पुण्य के रागवाला मैं हूँ, यह तेरी मूर्खता है। आहाहा! राग तो विकार है। तेरा स्वरूप तो निर्विकारी सच्चिदानन्द सिद्ध समान शुद्ध है। उसे रागवाला मानना, वह मूर्खता, अज्ञान है। और उस अज्ञान में रहकर चाहे जो करे, वह सब अज्ञान ही खड़ा होगा उसमें से तो। उसमें कहीं धर्म-बर्म होगा नहीं। ऐसा भारी काम, भाई! समझ में आया? आहाहा!

भाषा देखो न! '**शमजलमययीमाशु**' '**आशु**'—शीघ्र '**धारां वमन्ती**'—बरसाता है। भगवान आत्मा पूर्ण शान्त और आनन्द की गाँठ है। उस गाँठ को राग की एकता द्वारा इसने खोला नहीं। यह गाँठ है आनन्द की और ज्ञान की। परन्तु राग, दया, दान, विकल्प और आत्मा एक है, ऐसी मान्यता-ग्रन्थि मिथ्यात्व है। आहाहा! उस मिथ्यात्व की गाँठ द्वारा आत्मा को इसने ताला बन्द कर दिया है। यह राग और आत्मा तो स्वभाव से भिन्न है, ऐसे स्वभाव सन्मुख होकर जिसने एकता तोड़ी है, ऐसे सम्यग्ज्ञानी को आत्मा के निधान खुल्ले हो गये हैं, कपाट खुल गये हैं। आहाहा! भले वह गृहस्थाश्रम में बालक, ८ वर्ष की कन्या हो, परन्तु सम्यग्दर्शन हुआ, उसके कपाट खुल गये हैं। और साधु होकर बाहर पंच महाव्रत की क्रिया करता हो, नग्न होकर वन में बसे, परन्तु जिसे यह दया, दान के विकल्प के साथ अन्दर एकता है, उस मूढ अज्ञानी को उसके निधान बन्द हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा!

सिंहनी का दूध लोहे के पात्र में नहीं रहता, उसे स्वर्ण का पात्र चाहिए। समझ में आया? इसी प्रकार वीतराग की वाणी और वीतरागीभाव समझने के लिये उसे पात्रता चाहिए, भाई! समझ में आया? आहाहा! ऐसा भगवान अन्तर से अनन्त आनन्द और ज्ञान से ओपता—शोभता प्रभु, उसकी जिसे अन्तर की धारा बही, वह बाह्य की धारा को नाश करता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? १८६ (कलश) हो गया। १८७ कलश। मुनि ने तो इतना भरा है! एक-एक कलश में गजब किया है! दिगम्बर सन्त—मुनि

वनवासी थे। पद्मप्रभमलधारिदेव। अनन्त तीर्थंकरों के मार्गानुसारी—उनके मार्ग में चलनेवाले। आहाहा! १८७।

**अध्यात्म-शास्त्रमृत-वारिराशे-**
**र्मयोद्धृता संयम-रत्नमाला।**
**बभूव या तत्त्वविदां सुकण्ठे**
**सालङ्कृतिर्मुक्तिवधूधवानाम्॥१८७॥**

**अध्यात्मशास्त्ररूपी अमृत समुद्र में से...** यह अध्यात्मशास्त्र है। भगवान आत्मा को बतलानेवाला, अनुभव करने में बतलानेवाला यह अध्यात्मशास्त्र है। अध्यात्मशास्त्ररूपी अमृतसमुद्र... ओहोहो! अमृत के समुद्र में से **मैंने जो संयमरूपी रत्नमाला बाहर निकाली है,...** ऐसा संयम होता है, ऐसा मैंने कहा, कहते हैं। अध्यात्मशास्त्र में, संयम किसे कहना, यह मैंने यहाँ कहा। समझ में आया? अध्यात्मशास्त्र अर्थात् भगवान ने जिसमें आत्मा की मुख्यता का वर्णन (किया) हो, उसे अध्यात्मशास्त्र कहते हैं। त्रिलोकनाथ तीर्थंकर भगवान के मुख से, परमात्मा सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्तदेव (ने) इन्द्र और गणधरों के समक्ष में, पूरे लोक के स्वामी इन्द्र और सन्त के स्वामी गणधर, उनके मध्य में भगवान की वाणी यह थी। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, ऐसे अध्यात्मशास्त्ररूपी अमृत का समुद्र। आहाहा! शास्त्र, स्वयं अध्यात्मशास्त्र अन्दर समुद्र है और आत्मा तो अकेला अमृत का समुद्र है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर छलाछल भरपूर है। परन्तु कहाँ खोजना? आहाहा!

जहाँ है वहाँ नजर नहीं और नहीं, वहाँ नजर। आहाहा! शरीर, वाणी, मन, पुण्य और पाप का राग है, वहाँ आत्मा नहीं, वहाँ नजर है। और पुण्य और पाप, शरीररहित चीज़ के ऊपर नजर नहीं होती। ऐसा अमृत का सागर प्रभु और शास्त्र अमृत बतलानेवाले, ऐसे अमृत के समुद्र को बतलानेवाले सिद्धान्त। आहाहा! उसमें से मैंने... यह मुनि कहते हैं। दिगम्बर मुनि थे, सन्त वन में रहनेवाले, सन्त तो वन में रहते थे पहले। समझ में आया? जिनकी दशा दिगम्बर—माता से जन्मे, ऐसी दशा शरीर की (हो)। अन्तर में जिनकी वीतरागी दशा।

कहते हैं, ऐसे के लिये **मैंने जो संयमरूपी रत्नमाला बाहर निकाली है,...**

अध्यात्मशास्त्र में से संयम कैसा होता है, यह मैंने बताया है। आहाहा! **वह ( रत्नमाला ) मुक्तिवधू के वल्लभ...** वे मुक्ति अर्थात् सिद्धदशा—परमात्मा—मुक्त सिद्धदशा। उसके जो प्रिय—उस मुक्तदशा के प्रिय... आहाहा! जिसे मुक्ति अर्थात् मुक्तदशा प्रिय है **ऐसे तत्त्वज्ञानियों...** ऐसे तत्त्वज्ञानी, जिसे संसार और राग प्रिय नहीं है। आहाहा! **ऐसे तत्त्वज्ञानियों के...** ऐसे तत्त्वज्ञानियों के **सुकण्ठ का आभूषण बनी है।** आहाहा! आभूषण पहनते हैं न यहाँ? गर्दन में पहने। और वापस वस्त्र नीचे रखे, फिर ऐसे बतावे। ऐसा ऐसे ढँक जाये तो देखे कौन? ऐई! महिलायें तो ऐसे रखे कपड़ा... आदमी हो तो कोट का बटन खुल्ला रखे। बटन इतने में न लगावे। आहाहा! यह बाहर की चीज़ बताने को खुल्ली करते हैं। अरे! अन्तर की चीज़ बताने को खुल्ली तो कर एक बार! आहाहा!

भाई! तेरे भगवान में तो अनन्त भगवान विराजते हैं। आहाहा! तू पामर नहीं, प्रभु! तू रागवाला नहीं, तू दीन नहीं, तू संसारी नहीं। तू भव और भव के भाववाला, प्रभु! तू नहीं। आहाहा! देखो न! एक बार तो अमृत के सागर में नजर तो कर। अरे! तूने नजरें बहुत की पुण्य, पाप, शरीर, वाणी और जड़ के ऊपर। आहाहा! उसका फल आया धूल में, यह पाँच-पचास लाख-करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़, दस करोड़ धूल मिले। ऐ सेठ! अरे! यह धूल के ढ़ेर सब विष्टा के ढ़ेर, आहाहा! उसके ऊपर तेरी नजर जाये प्रभु! और तेरी नजर आनन्द का सागर—पर्वत अन्तर प्रभु में तेरी नजर न जाये! आहाहा!

देखो न! **मुक्तिवधू के वल्लभ... 'धवानाम्'** धवानाम अर्थात्? पति। तत्त्वज्ञानी धर्मात्मा जिसने आत्मज्ञान—तत्त्वज्ञान... और रागादि आस्रव उसमें नहीं, ऐसा ज्ञान। वह आस्रव का ज्ञान हो गया, परन्तु वह इसमें नहीं, ऐसा। ऐसे चैतन्य के तत्त्व का ज्ञान जिसे है, ऐसे ज्ञानियों का यह संयमरत्नमाला सुकण्ठ का आभूषण बनी है। अरे बापू! संयम किसे कहते हैं! अभी समकित किसे कहना, यह खबर नहीं होती। समकित कैसे हुआ और होता है, उसकी खबर नहीं होती और यह संयम और चारित्र और व्रत लेकर बैठे। लिये अध्धर से। नाम रख दिया, वस्तु होती नहीं। कुछ खबर नहीं होती। आहाहा! १८८। कलश १८८। यह सब अमृत से भरपूर कलश हैं। अध्यात्मशास्त्र है न!

**नमामि नित्यं परमात्मतत्त्वं**
**मुनीन्द्रचित्ताम्बुजगर्भवासम्।**

**विमुक्तिकान्ता-रतसौख्यमूलं**
**विनष्टसन्सारद्रुमूलमेतत् ॥१८८॥**

आहाहा! **श्लोकार्थः—मुनीन्द्रों के चित्तकमल के भीतर जिसका वास है,...** ऐसा भगवान आत्मा परमात्मा... अपना निजस्वरूप त्रिकाली परमात्मस्वरूप ही है। आहाहा! यह अरिहन्त और वीतराग परमात्मा तो भिन्न—दूसरे हैं। उनमें तू नहीं और वे तेरे नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह परमात्मा के विशेषण हैं। **मुनीन्द्रों के चित्तकमल के भीतर जिसका वास...** परमात्मा का **है...** आहाहा! जिसके हृदय में—ज्ञान की पर्याय में परमात्मा बसते हैं। जिनकी ज्ञान की दशा में राग और संसार नहीं बसता। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि के ज्ञान में यह परमात्मा बसता है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि के ज्ञान में राग और विकार—जहर बसता है। आहाहा! समझ में आया? जो पुण्यभाव—शुभ को धर्म माने, पाप के भाव में मजा लगे—ऐसे जो मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी, अजैन उसे वीतरागी तत्त्व क्या है, उसकी खबर नहीं। ऐसे अजैनों के हृदय में जहर बसता है। आहाहा! समझ में आया?

और जैन अर्थात् वस्तु का स्वरूप परमात्मा अपना, ऐसा जिसे अन्तर में भान होकर दशा निर्मल की है, उस निर्मलदशा में तो उसे परमात्मा बसता है। उस निर्मलदशा के समीप तो परमात्मा है। यह 'समीप में' आ गया है। धर्मी उसे कहते हैं कि जिसकी वर्तमान ज्ञानदशा निर्मल—रागरहित हुई, उसकी दशा में तो परमात्मा बसते हैं। आहाहा! अपना निज आत्मा परमात्मा बसता है। आहाहा! अरे! इसने धीरज से इसकी तत्त्व की चीज़ क्या है, इसने सुना नहीं। आहाहा! अभिमान किया कि हम धर्म करते हैं, हम ऐसे हैं, हम ऐसे हैं। अरे! भगवान! धर्म का मुख बड़ा है, भाई! आहाहा!

कहते हैं, मुनिन्द्रों के चित्तकमल की ज्ञान की दशा में—खिलती ज्ञान की दशा... ज्ञान की दशा कमल की (भाँति) खिली हुई है, उसमें अन्दर परमात्मा बसता है। कमल में जैसे भ्रमर बसे, उसमें—ज्ञान के कमल में परमात्मा बसता है। एक म्यान में दो नहीं समाते। म्यान एक और तलवार दो, नहीं रह सके प्रभु! ऐसे राग के प्रेमी को पर्याय में परमात्मा का प्रेम रहे, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया? अरे! ऐसी बड़ी बातें हैं। अरे! बड़ी नहीं, प्रभु! यह तो अभी छोटे में छोटी सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की दशा कैसी

होती है और उसे किसके प्रति प्रेम होता है और सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान की पर्याय में पूरा परमात्मा कैसे बसता है, उसकी व्याख्या है यह तो। आहाहा!

**जो विमुक्तिरूपी कान्ता के रतिसौख्य का मूल है...** आहाहा! कैसा है यह भगवान आत्मा? कि मुक्तदशा—मुक्ति, यह सिद्ध परमात्मा... यह स्वयं सिद्ध होनेवाले हैं, ऐसी जो मुक्तिरूपी कान्ता अर्थात् स्त्री, उसका रतिसुख—उसके साथ रमणता का सुख, उसका मूल परमात्मा स्वयं है। पूर्णानन्दरूपी मुक्ति की रति का सुख, उसका मूल भगवान आत्मा है। उस मुक्ति का आनन्द का सुख भगवान आत्मा में से आता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा आत्मा! आत्मा छोड़कर बात। वर छोड़कर बारात—दूल्हा छोड़कर बारात। इसी प्रकार आत्मा कौन, कैसे, कहाँ है, इसकी खबर नहीं (और) करो धर्म, करो अपवास और करो पूजा और करो यात्रा, निकालो एक दस लाख का समवसरण बनाओ, पाठशाला बनाओ, मन्दिर बनाओ, यह धर्म। यह धर्म नहीं है, भाई! समझ में आया? आहाहा! गजब परन्तु! वास्तविक चैतन्य तत्त्व भगवान, कहते हैं, स्वयं परमात्मा है। उस परमात्मा का एन्लार्ज होकर पर्याय में सिद्ध होता है, वह स्वयं परमात्मा है। शक्तिरूप, तत्त्वरूप, स्वभावरूप परमात्मा है, उसका अनुभव करने से जो पूर्णदशा प्राप्त हो, ऐसे आनन्द के सुख का मूल यह आत्मा है। कहो, समझ में आया?

**मुक्ति के अतीन्द्रिय आनन्द का मूल है...** भगवान (आत्मा) है, ऐसा कहते हैं। लो, ठीक! मोक्षमार्ग भी नहीं यहाँ तो। आहाहा! **और जिसने संसारवृक्ष के मूल का विनाश किया है...** त्रिकाल (वस्तु)। विनाश का अर्थ, उसमें संसार है ही नहीं। आहाहा! **ऐसे इस परमात्मतत्त्व को...** ऐसा मेरा परमस्वरूप भगवान आत्मा को **मैं नित्य नमन करता हूँ।** मेरी दशा उस ओर ढली हुई—झुकी हुई है। राग और निमित्त से मेरी दशा हट गयी है, ऐसा कहते हैं। चन्दुभाई! कठिन मार्ग, भाई! अरे! जिसे सुनने से नशा चढ़े, उसके अनुभव में क्या हो! और उसकी पूर्ण प्राप्ति का क्या! और पूर्ण प्राप्ति का कारण ऐसा जो द्रव्य, उसमें क्या? उसमें कैसा है? आहाहा! समझ में आया?

अब हमारे करना क्या? परन्तु यह सब इतनी बड़ी बात करके। भाई! क्या कहा जाता है? वह पूर्ण आनन्दस्वरूप आत्मा है, उसकी तू दृष्टि कर, उसका आश्रय कर, तब तेरा कल्याण शुरु होगा। वरना कल्याण शुरु होता नहीं। समझ में आया? करना-धरना

यह है। ... पण्डितजी कहते थे वहाँ आगरा में। कौन रामचन्द्रजी? बाबूलाल। बड़े आनन्द की बात है महाराज! करना-धरना कुछ नहीं, आनन्द की बात। बात यह कि कुछ करूँ, ऐसा करूँ, राग करूँ और पुण्य करूँ और क्रिया करूँ, यह करूँ। परन्तु यह करना तो मिथ्यात्वभाव है। करना, करना होगा। राग और क्रिया का जड़ का कर्ता हो, उसे भगवान तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! आनन्दमूर्ति भगवान आत्मा की श्रद्धा और स्थिरता करना, वह करना, वह जीना है। उसमें जीव का जीवन बढ़ता है। आहाहा! समझ में आया?

**संसारवृक्ष के मूल का विनाश किया है—ऐसे इस परमात्मतत्त्व...** जो त्रिकाली भगवान आत्मा उसे मैं—स्वयं आत्मा, आहाहा! नित्य नमता हूँ। मेरी वर्तमान दशा द्रव्य की ओर—ध्रुव की ओर ही झुकी हुई है। मेरी वर्तमानदशा, धर्मी कहते हैं, मेरी वर्तमानदशा ध्रुव की ओर ढली हुई है। व्यवहार के विकल्प और निमित्त की ओर से हट गयी है। ....नहीं। हाँ, नहीं। टोडरमलजी को मिला है। है पाठ में कहीं। नियमसार टीकासहित वाँचा है। श्रीमद् को मिला नहीं। यह और पंचाध्यायी—दो शास्त्र नहीं मिले। पंचाध्यायी अभी सब तो बाहर बहुत आया है। भगवान की पूँजी सब बहुत बाहर आयी है। आहाहा! अब उसे भोगना, यह तो उसका काम है। आहाहा! यह खजाना लूटना है। आहाहा! आहाहा!

एक बार ऐसा विचार आया था कि अरे! इस पुण्य का योग न हो, स्त्री हो बारह वर्ष की, विधवा हो... विधवा है न १२ वर्ष में। तुम्हारे... देखी थी न। वह क्या कहलाता है? डेला में। बारह वर्ष की लड़की विधवा है। यह पहले तो ऐसा था। बारह वर्ष की हो, विधवा हो। मुझे दूसरा कहना था। यह बारह वर्ष की कन्या हो शरीर की स्थिति, विधवा-विधवा हो, माँ-बाप मर गये हों, कोई न हो, शरीर भी ठीक सा काला हो, खाने के साधन न हों, परन्तु यदि उसे आत्मा क्या चीज़ है, उसका भान हुआ हो तो वह बड़ा बादशाह भगवान है। समझ में आया? वह सुखी है, उसे दुःखी न कहो। समझ में आया?

और यह सब पैसेवाले, करोड़ों रुपये, बड़े बँगले—हजीरा छह-छह लाख और दस लाख और चालीस लाख के, उसमें पड़े, उसे सुखी न कहो। वह सुखी नहीं है। आहाहा! वह राग के विकल्प की एकता माननेवाले दुःखी है, भाई! इतनी सुविधा के

संस्कार में दिखाई दे तो भी वे दुःखी हैं। बराबर होगा? यह तुम्हारा न्याल दुःखी? वहाँ क्या करने गये थे तुम? दुःख देखने गये थे? आहाहा! कहते हैं, जिसे आत्मभान—सम्यग्दर्शन है, जिसे परमात्मा पहिचान में अन्तर में आ गया है, वह भले शरीर काला, विधवा महिला हो, पति मर गया, पुत्र एक भी नहीं, माँ-बाप मर गये, दुकान है नहीं, कोई पैसा छोड़ गया नहीं... आहाहा! मजदूरी थोड़ी करके चार आना—आठ आना कमाकर... अब महँगा हो गया, पहले दो आना थे। इतना कमाकर रोटियाँ बनाकर खाये, वह सुखी है। आत्मा का सम्यक् हुआ, आत्मा का स्वीकार हुआ, वह सुखी है। और अज्ञानी अरबोंपति और बाहर के साधन के ढ़ेर, वह पुण्य के विकल्प को अपना माने, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि महा दुःखी है। मलूकचन्दभाई! आहाहा!

पश्चात् सफेद पिण्ड जैसा शरीर हो मक्खन जैसा रूपवान, लड़के बड़े पाँच-छह योद्धा जैसे और बँगला हो चालीस-चालीस लाख का, (तथापि) मूढ़ दुःखी है। उसे सुखी कहनेवाले मूढ़ हैं। ऐई, चन्द्रकान्तभाई! आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन में आत्मा की भेंट हुई, जिसे परमेश्वर मिला घर में, अब उसे क्या कमी है? ऐ सेठ! केवलज्ञान पाकर मुक्ति होगी... होगी और होगी। भले वर्तमान दुःखी हो, विधवा हो। आहाहा! बारह वर्ष की कन्या को देखा था चेला में। छोटी उम्र में विवाह किया और छोटी उम्र में विधवा। ... बाहर से तो दूसरा विवाह न करे। पहले तो ऐसा था न। अब तो ऐसा कुछ नहीं। अब तो तुरन्त पुनर्विवाह करे। सब बात, पूरी लाईन बदल गयी। पहले तो ऐसी बारह वर्ष की हो। ... फेरफार हो गया। उस समय तो चेला में कोई बाई। दरवाजे में। ....की पुत्री थी। उसे बताया था, हम आहार लेने गये थे न। वह विधवा बाई है बेचारी।

ऐसा न देख। उसका आत्मा का उसे भान है या नहीं, इस पर उसकी बात है। समझ में आया? इसे भगवान का स्वीकार है या नहीं, जिसे राग और पर्याय का पामरता का स्वीकार है नहीं—उस पर पूरा (माप) ... है। अहो! **ऐसे इस परमात्मतत्त्व को मैं...** स्वयं आत्मा **नित्य नमन करता हूँ।** कोई समय मेरे स्वभाव सन्मुख की दृष्टि बिना का है नहीं। आहाहा! उसे धर्मी और संयमी और उसे ज्ञानी कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**भाद्र कृष्ण ९, सोमवार, दिनांक - १३-०९-१९७१**
**गाथा-११८, श्लोक-१८९, प्रवचन-१२३**

यह नियमसार सिद्धान्त है, उसमें यह शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त (अधिकार चलता है)। प्रायश्चित्त का अर्थ—चारित्र का एक भाग है। आत्मा का अनुभव—सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् अन्तर चैतन्यस्वरूप में रमणता, लीनता, पुरुषार्थ की विशेष उग्रता स्थिर होने की, उसका नाम यहाँ प्रायश्चित्त अथवा चारित्र अथवा वीतरागमार्ग का मोक्षमार्ग कहते हैं। नियमसार है न! (गाथा) ११८। **अनन्तानन्त भवो द्वारा...** ऐसा है पाठ में। अनन्तानन्त भव के उपार्जित कर्म, ऐसा है न पाठ? वास्तव में तो अनन्तानन्त भव के कर्म आत्मा के पास होते नहीं। क्या? इतने नहीं होते, सत्तर करोड़ाकरोड़ी का (हो) बहुत तो सात चौबीसी (जितना)। कर्म की स्थिति सत्तर करोड़ाकरोड़ी (अर्थात्) सात चौबीसी हुई। दस-दस करोड़ाकरोड़ी में एक चौबीसी हों। इससे अधिक कर्म नहीं होता, परन्तु उसकी परम्परा अनादि से चली आती है, वह बात लेते हैं। समझ में आया? अनादि से अनन्तानन्त भव द्वारा उपार्जित शुभाशुभ कर्मराशि... **कर्मसंदोहः** है न? **कर्मसंदोहः** (अर्थात्) कर्म की पेटी। सन्दोह (अर्थात्) पेटी होता है वहाँ। सन्दोह (अर्थात्) पेटी होता है वहाँ। सन्दोह आता है कहीं। तपश्चरण... तपश्चरण से विनाश पाता है। वह तपश्चरण अर्थात्? इसका स्पष्टीकरण करेंगे। यह अपवास करना और ऊनोदरी, वह कहीं तप नहीं है। यह कहते हैं, देखो!

**टीकाः—यहाँ (इस गाथा में), प्रसिद्ध शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व में...** लो, ऐसा तो पहली यह बात ली है कि जो यह भगवान आत्मा ध्रुव शुद्ध कारणप्रभु द्रव्य—वस्तु त्रिकाल, वह तो प्रसिद्ध है, कहते हैं। जैसे सिद्ध प्रसिद्ध है, वैसे भगवान आत्मा द्रव्य—वस्तु ध्रुव अविनाशी, उसका भाग, वह अविनाशी वस्तु प्रसिद्ध है... प्रसिद्ध है। ऐसे शुद्ध कारणपरमात्मतत्त्व में... गजब! यह शरीर, वाणी, मन तो नहीं; पुण्य-पाप के विकल्प जो दया, दान, व्रत, राग आदि, वह तो नहीं, परन्तु एक समय की राग को जानने की पर्याय का क्षयोपशमभाव, वह भी नहीं। त्रिकाली कारणपरमात्मा शुद्ध कारणपरमात्मा...

त्रिकाली ध्रुव नित्य शुद्ध कारणपरमात्मा ऐसा जो तत्त्व, उसमें **सदा अन्तर्मुख रहकर...** सदा—निरन्तर उस वस्तु के ओर की अन्तर्दृष्टि करके... अरे! ऐसा धर्म। उसमें क्या समझे? वस्तु है आत्मा, तो वस्तु में बसे हुए अनन्त गुण हैं। उन अनन्त गुणों का पिण्ड-पुंज प्रभु आत्मा, उसे यहाँ शुद्ध कारणपरमात्मा उस आत्मा को कहा है। समझ में आया?

उस **शुद्धकारणपरमात्मतत्त्व में सदा अन्तर्मुख रहकर...** (अर्थात्) निरन्तर द्रव्यस्वभाव-सन्मुख होकर... **जो प्रतपन वह तप प्रायश्चित्त है...** ऐसा जो अन्तर में त्रिकाली कारणपरमात्मा अपना निजस्वभाव, उसमें एकाग्रता—सन्मुखता... निमित्त, राग और एक (समय की) पर्याय की विमुखता और त्रिकाली वस्तु की सन्मुखता, उस दशा को प्रतपन (अर्थात्) उग्र अन्दर विशेष तपा, उज्ज्वल दशा हुई, उसे तप कहते हैं, उसे तप प्रायश्चित्त कहते हैं। आहाहा! तप की व्याख्या तो देखो! यह कहे, अपवास किया आठम का। वह कहे, जाओ, हो गया तप। तप किये और 'तपसा निर्जरा'।

**मुमुक्षु :** वह छोटा तप और यह बड़ा तप।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी नहीं। तप था कब वह? बाह्यतप तो, यह अन्तर करे तब उसे बाह्यतप कहा जाता है। ऐसी बात है। ऐसी बात।

वीतरागस्वरूप ऐसा है। उसका अन्तर स्वभाव अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान बेहद स्वभाव, एक-एक शक्ति बेहद स्वभावी, ऐसी अनन्त अपरिमित शक्ति का माप नहीं हो, ऐसी अनन्तानन्त शक्तियाँ, आहाहा! ऐसा जो शक्तिरूप तत्त्व—सत्त्व, उसे यहाँ शुद्ध कारणपरमात्मा कहा जाता है। आहाहा! यह तो जिसे आत्मा का कल्याण करना हो, पेढ़ी—दुकान संसार की उठाना हो, उसकी यहाँ बात है। जिसमें संसार का राग ही नहीं न, जिसमें एक समय की वर्तमान प्रगट दशा भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा तत्त्व आत्मा वस्तु, अनन्त शक्तियाँ—गुण से बसी हुई वस्तु, वह कारणपरमात्मा शुद्ध प्रसिद्ध है, कहते हैं। वह तो अनादि का प्रसिद्ध ही स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? उसमें तपन—प्रतपन (अर्थात्) अन्तर्मुख रहकर विशेष निर्मलता की दशा उत्पन्न हो, वीतरागी निर्दोष आनन्दादि दशा (हो), उसे यहाँ प्रतपन—तप प्रायश्चित्त कहा जाता है। आहाहा!

अनशन, ऊनोदर, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, कायक्लेश, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त,

विनय, वैयावृत्य (आदि) आते हैं न बारह (तप)? वह बाहर का प्रायश्चित्त तप किसे कहना, उसकी यह व्याख्या है। अनशन, ऊनोदर, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, कायक्लेश, प्रतिक्रमण यह छह बाह्य; प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग, यह छह अभ्यन्तर। परन्तु अब यह प्रायश्चित्त जो अभ्यन्तर तप है, उस प्रायश्चित्त की स्थिति क्या? प्रायश्चित्त तप कहना किसे? आहाहा

कहते हैं कि वह भगवान आत्मा... पहले कह गये हैं कि प्रायश्चित्तस्वरूप ही आत्मा है। प्रचुररूप से ज्ञान की उत्कृष्ट दशावाला वह तत्त्व है। उसमें एकाग्रता, गहरे-गहरे एकाग्रता हुई और जो निर्मल वीतरागी निर्दोष आनन्द दशा ऐसी शोभे—तपे—प्रतपे, ज्वाजल्यमान शुद्धता जहाँ प्रगट हो त्रिकाली आत्मद्रव्य के अन्तर्मुख के आश्रय से, आहाहा! उसे तप प्रायश्चित्त कहते हैं। लो, अभ्यन्तर का पहला इसे तप प्रायश्चित्त कहते हैं। कुछ दोष लगा हो और प्रायश्चित्त लेना, वह सब बाह्य विकल्प पुण्यबन्ध का कारण है। वह तप नहीं है। आहाहा! वह प्रायश्चित्त तप नहीं। प्रायश्चित्त तप तो उसे कहते हैं कि जो भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ कारणप्रभु प्रसिद्ध, 'है' ऐसा प्रसिद्ध है, कहते हैं—ऐसा कहते हैं। प्रसिद्ध है न, सत्ता है न? ऐसा प्रसिद्ध शुद्ध कारणपरमात्मतत्त्व में अन्तर्मुख की दृष्टि निरन्तर रहना और उससे उत्पन्न होनेवाली निर्मल वीतरागीदशा को प्रायश्चित्त तप, सत्यतप उसे कहा जाता है। शब्द भी सुने न हों। मूलचन्दभाई!

अपवास करो, अठ्ठम करो, क्या कहलाता है यह तुम्हारे? रत्नत्रय। तीन रत्नत्रय करो। रत्नत्रय के तीन उपवास आवे न! सोलह करो, आठ... भाई! यह सब व्यवहार की बातें हैं। विकल्प आवे तब, यह स्थिति राग की मन्दता की खड़ी होती है, इतना। वह वस्तु नहीं, वह तप नहीं, वह प्रायश्चित्त नहीं। समझ में आया? वह ध्यान नहीं। प्रायश्चित्त, तप और ध्यान तो उसे कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसमें माल पड़ा है पूरा। समझ में आया? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण प्रभु अनन्त-अनन्त सिद्धपर्याय का स्वामी, अन्दर में—उसके गर्भ में—आत्मा के गर्भ में—पेट में—स्वभाव में अनन्त सिद्ध स्थित है, कहते हैं। समझ में आया? सिद्ध की दशा एक हो, दूसरे समय में दूसरी, तीसरे समय में तीसरी—ऐसी अनन्त सिद्ध की दशा होती है न, वह सब अन्दर आत्मा के गर्भ में—पेट में है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, ऐसा भगवान आत्मा निरन्तर दृष्टि का उसे विषय बनाकर और उसमें प्रतपन होना, उग्रतारूप से अन्दर लीनता होना, उसे तप प्रायश्चित्त कहा जाता है। आहाहा! कहो, सेठ! ऐसा तो सुना नहीं होगा कभी ऐसा तप प्रायश्चित्त। इसका नाम चारित्र है, इसका नाम प्रायश्चित्त तप है, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है, इसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं। नियमसार है न, उसके अन्तर्भेद यह सब वर्णन किये हैं। आहाहा! **अर्थात् शुद्धात्मस्वरूप में लीन रहकर...** ऐसा प्रतपन है न! **प्रतपन...** अर्थात् **प्रतापवन्त वर्तना।** अपना ही प्रताप प्रसिद्ध हो अन्दर में, रागादि की हानि हो और निर्मल शान्ति की प्रतापदशा प्रगट हो, अविकारी उपशमरस, आनन्दरस उत्पन्न हो, उसे यहाँ तप कहते हैं। **और वह तप प्रायश्चित्त है, ऐसा कहा है।** ऐसा तीर्थंकर सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग देव ने उसे तप कहा है। कहो, समझ में आया इसमें?

यह (संवत्) २००९ के वर्ष में आये थे न? बड़े (भाई), क्या? तोलारामजी, यहाँ २००९ के वर्ष में आये थे। क्या कहलाता है? पूरी—स्पेशल ट्रेन। स्पेशल आयी थी न यहाँ पाँच सौ लोगों की। सेठ आये थे उसमें, तोलाराम थे, गजराजजी थे। तीनों थे? तीनों थे। गजराजजी थे, तोलाराम थे, वच्छराजजी थे। पाँच सौ लोग आये थे। तोलाराम यहाँ बैठे थे। एक व्यक्ति था कोई, वहाँ का लाडनूँ का कोई था। कहे, सेठ! पूछो महाराज को। 'तपसा निर्जरा' आता है न शास्त्र में? तत्त्वार्थसूत्र में आता है न! 'तपसा निर्जरा।' वह तपसा निर्जरा। वह जवान व्यक्ति था। वह बाद में आया... ५०० के साथ में था। कोई जाती थी न स्पेशल (ट्रेन)। बाहुबली जाती थी, बाहुबली। तीनों भाई इकट्ठे हुए थे तब। तोलाराम, बच्छराजजी और गजराजजी। उसने पूछा था—तोलाराम को कि सेठ! पूछो। उसमें—तीन भाईयों में गजराजजी की बुद्धि विशेष थी। परन्तु परिचय रहा नहीं। ऐसा का ऐसा कमाना... कमाना... कमाना और मान छोड़ना नहीं। चले गये।

उसने पूछा कि 'तपसा निर्जरा' शास्त्र में कही है न? पूछो। यह तपस्या करना, अपवास करना—यह नहीं? नहीं, यह नहीं। यह तो निमित्त का कथन है। अन्तर में आत्मा में अन्तर गहरे उतरकर स्थिर होना, रमणता करना, वीतरागता प्रगट करना, उसका नाम तप है। भगवान त्रिलोकनाथ ने उसे तप कहा है। भारी जगत को बैठना कठिन!

रास्ते चढ़ा दिया है न बाहर। एक अपवास करे, पाँच करे, आठ करे और दस करे और बीस करे। फिर मनावे दो-पाँच, दस-बीस हजार खर्च करके उसके प्रमाण में—उसकी स्थिति प्रमाण में। आहाहा! तप किया और मनाया भी सही वापस। कहाँ गये जुगराजजी? वहाँ बैठे हैं। ठीक।

यह गृहस्थ लोग तप करे और फिर (उत्सव) मनावे पैसा खर्च करके। वह तप नहीं है, मनावे तो यह अन्दर, कहते हैं। अन्दर महोत्सव... महोत्सव... तप हुआ अन्दर। यह आनन्दमूर्ति भगवान आत्मा में एकाग्र होकर जो उज्ज्वलता प्रगट की, उसने तप किया और उसने तप को मनाया। किसकी प्रभावना? आत्मा में होती होगी या बाहर में? कौन करता था बाहर में? वह तो शुभविकल्प हो और बाहर का बनने का हो तो बने। उसके साथ क्या सम्बन्ध है? वह विकल्प भी बन्ध का कारण है। वह प्र-भावना—प्र-विशेष... आयेगा देखो अन्दर। समझ में आया? उसमें आयेगा बाद में। भाव में आयेगा। उसमें आयेगा ११९ में आयेगा। **भावों का अभाव...** भाव... भाव का अभाव... उसमें आता है। **पारिणामिकभाव की भावना से...** यह दूसरी लाईन है यहाँ। ११९ में। ११९ में दूसरी लाईन है। दूसरा पेराग्राफ। **पारिणामिकभाव की भावना...** उसमें सब समाहित कर दिया है। आहाहा! आयेगा। वह तो बहुत सरस गाथा है। ११९, ११९।

**अनादि संसार से ही उपार्जित...** इसका अर्थ किया वह 'अनन्तानन्त भव का।' पाठ में है न '**णंताणंतभवेण**' इसका (अर्थ) **अनादि संसार से ही उपार्जित...** अनादि से निरन्तर उपार्जित करता है न राग-द्वेष... राग-द्वेष... राग-द्वेष और कर्म, ऐसा। भले उसके पास अमुक अवधि के हों, परन्तु परम्परा के रसवाले ऐसे के ऐसे हैं न, ऐसा कहते हैं। कभी रस टूटा नहीं। रस तोड़ा नहीं कभी। ऐसा का ऐसा प्रवाह चला आता है। मिथ्यात्व का रस और मिथ्यात्व का भाव अनादि से नित्य निगोद में से ऐसा है। यहाँ तो द्रव्यस्वभाव भगवान भी अनादि से समीप पड़ा ही है। उसे भूलकर अनादि से राग-द्वेष के भाव और दु:ख उत्पन्न करता है, ऐसा कहते हैं।

**अनादि संसार से ही...** ऐसा। अर्थात् कि संसार अन्दर में नया हुआ है, ऐसा नहीं है। अनादि... अनादि... वस्तु जैसे भगवान अनादि ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, वैसे पर्याय का विकार मिथ्यात्व का, वह अनादि का है, ऐसा कहते हैं। **द्रव्यभावात्मक शुभाशुभ कर्मों...**

द्रव्यकर्म अर्थात् जड़, भावकर्म—शुभ-अशुभ परिणाम। उसका जो समूह... **'संदोह'** कहा न? **समूह—कि जो पाँच प्रकार के संसार का संवर्धन करने में समर्थ है...** आहाहा! कहते हैं कि पुण्य और पाप के विकल्प और पर्याय जितना मैं, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव—वह अनादि से भावमिथ्यात्व और द्रव्यमिथ्यात्व—दर्शनमोह जड़कर्म—दो। **जो पाँच प्रकार के संसार का संवर्धन करने में समर्थ है...** वह मिथ्यात्वभाव और जड़कर्म—दोनों द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव और भाव (जो) पाँच प्रकार का संसार, उसे रचने में समर्थ है। समझ में आया?

**जो पाँच प्रकार के संसार का...** द्रव्यसंसार यह परमाणु का सम्बन्ध; क्षेत्र—प्रत्येक क्षेत्र में जन्मना-मरना; ऐसे काल जो समय-समय में; भव और भाव—शुभ-अशुभभाव ऐसे अनन्त बार किये हैं कि जो भाव संसार का सम्वर्धन करने में समर्थ है। आहाहा! **वह—भावशुद्धि लक्षण परमतपश्चरण से विलय को प्राप्त होता है;...** बहुत संक्षिप्त वाक्य। आहाहा! पुण्य और पाप के रागभाव और उतना मैं और वह मुझे लाभदायक—ऐसा जो द्रव्य और भाव मिथ्यात्वभाव, मिथ्यात्वभाव और द्रव्य-दर्शन-मोह, दोनों पाँच प्रकार के संसार को बढ़ाने की सामर्थ्य रखते हैं। ऐसे पाँच प्रकार के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव और भाव, ऐसे संसार के कारणरूप भाव, उसे **भावशुद्धिलक्षण...** भगवान आत्मा परम-आनन्द प्रभु के अवलम्बन से आनन्द की, भाव की शुद्धि हो, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आवे। आहाहा!

भावशुद्धि... अतीन्द्रिय आनन्द भाव में पड़ी है वस्तु, उसकी एकाग्रता से पर्याय में—दशा में—हालत में भावशुद्धि जिसकी लक्षण है, ऐसा परम तपस्या का उत्पाद होता है। आहाहा! उसे परम तपस्या और उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **भावशुद्धि लक्षण परमतपश्चरण...** क्या कहा? परम तपस्या का लक्षण क्या? कि भावशुद्धि। पुण्य-पाप के विकल्प, वह नहीं। वीतरागी शुद्धि अन्तर से अतीन्द्रिय आनन्द की दशा प्रगट हो, वह भावशुद्धिलक्षण, तप का लक्षण है। आहाहा! कठिन भाई! समझ में आया? भावशुद्धिलक्षण... उसे तपश्चरण कहते हैं कि जिसमें भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु ध्रुव कारणपरमात्मा के सन्मुख होकर जो एकाग्रता प्रगट हुई और उस एकाग्रता में वीतरागी शुद्धोपयोग प्रगट हुआ, उसे परमतपश्चरण कहा जाता है। उससे, वह अनादि

का मिथ्यात्व का भाव और दर्शनमोह इस भाव से नाश पाते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया?

कैसी टीका है देखो न! यह कठिन लगे व्यवहारवालों को, व्यवहार के आग्रही को, व्यवहार से बन्ध होगा। इससे निर्जरा होती है, कहते हैं। व्यवहारतप है, वह विकल्प है, यह किया, यह तो बन्ध का कारण है, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। उसमें लाभ माने तो मिथ्यात्व का बन्ध साथ में होता है।

**मुमुक्षु :** बन्ध तो ठीक, परन्तु साथ में... मिथ्यात्व है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मिथ्यात्व है न परन्तु उसमें। उसकी दृष्टि तो वहाँ है। यहाँ द्रव्यस्वभाव में आया नहीं। त्रिकाली भगवान आनन्दमूर्ति में तो आया नहीं। उसकी दृष्टि पर्याय, राग और निमित्त के ऊपर है—तीन के हारडा में है। हारडा समझते हैं हारडा? हारडा नहीं समझते? हारडा। पतासा का हारडा करते न! पहले पतासा के हारडा करते थे। पतासा हो न पतासा। पतासे के बीच में डोरी डाले, गर्दन में डालते हारडा (हार)। पुरानी रूढ़ि में था। अभी नहीं है, पहले था, बहुत वर्ष पहले। आहाहा!

कहते हैं, बहुत ही संक्षिप्त में बहुत सत्य का रहस्य (खोला है)। परमात्मा स्वयं त्रिकाली भगवान आत्मा... अब त्रिकाली भगवान स्वयं, उसकी खबर पड़ती नहीं। मैं भगवान? आहाहा! यह भगवान स्वयं त्रिकाल... (भगवान)—भग अर्थात् ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मी, जिसका वान अर्थात् रूप है। ज्ञान और आनन्द ऐसी जिसकी लक्ष्मी है, ऐसा जो भगवान आत्मा नित्यानन्द निधान, जिसकी खान में अनन्त-अनन्त आनन्द और अनन्त-अनन्त ज्ञान पड़े हैं, ऐसे द्रव्य में अन्तर्दृष्टि करके शुद्धता प्रगट करे, पुण्य-पाप, वह अशुद्ध है, ऐसी शुद्धता प्रगट करे, उसे भावशुद्धिलक्षण तप कहा (जाता है)। तप लक्ष्य है, भावशुद्धि उसका लक्षण है, ऐसा कहते हैं।

यह तपस्या का लक्षण क्या? तपस्या—तप का लक्षण क्या? लक्षण होते हैं न सबके लक्षण? लक्षण से पहिचाना जाता है। तब कहे, परमतपश्चरण का लक्षण क्या? कि भावशुद्धि। आहाहा! भावशुद्धि अर्थात् क्या? आहाहा! कि त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से वीतरागदशा प्रगट हो, वह भावशुद्धि। जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद उग्ररूप से

आवे, अतीन्द्रिय आनन्द का उग्ररूप से स्वाद आवे, ऐसी तपस्या का लक्षण भावशुद्धि। आहाहा! निश्चय सत्य तो मानो कोई चीज़ ही नहीं और यह व्यवहार यह किया और यह करना। आहाहा! अरे प्रभु! परमात्मा का अन्दर बड़ा अनादर होता है। अब उसका अनादर करके जो करना हो वह कर। वह सब भटकने के लिये है। **( -भावशुद्धि जिसका लक्षण है ऐसे ) परमतपश्चरण...** जिससे अनादि से भ्रमणा और अज्ञान उपार्जित है, उसका नाश हो जाता है। आहाहा! ऐसी तपस्या से निर्जरा होती है, ऐसा कहते हैं, लो। समझ में आया?

**इसलिए स्वात्मानुष्ठाननिष्ठ...** आहाहा! अरे! निधान बाहर आये नियमसार जैसे शास्त्र। कहो! कितने ही वर्ष से कहीं पड़ा था। शीतलप्रसाद के हाथ में आया जयपुर में न? जयपुर में... वह क्या कहलाता है? भण्डार। जयपुर के भण्डार में से हाथ आया। ऐसी निधान चीज़ पुस्तक बाहर नहीं थी। टोडरमलजी के हाथ में थी। परन्तु वे तो जयपुर थे न! मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। नियमसार, मोक्षमार्गप्रकाशक के पहले भाग में (अधिकार में)। पश्चात् हाथ में... शीतलप्रसाद ने अर्थ किये उनकी दृष्टि प्रमाण। परन्तु यह बाहर आया, इतनी बात है। प्रकाश में आया। उसमें यहाँ हुआ अपने हिम्मतभाई से अर्थ गुजराती में। कहो, समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **इसलिए स्वात्मानुष्ठाननिष्ठ...** भाषा तो देखो! स्व-आत्मा, वापस पर-आत्मा भगवान—परमात्मा नहीं। स्व-आत्मा अपना त्रिकाली भगवान आत्मा, उसके अनुष्ठान में निष्ठ—उसके आचरण में लीन। आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु के **आचरण में लीन...** उसके आचरण में लीन... आहाहा! वह परमतपश्चरण... ऐसा **परमतपश्चरण ही शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त है...** उसे ही भगवान ने सच्चा—निश्चय प्रायश्चित्त कहा है। आहाहा! अभी समझण में भी न आवे, जिसे अभी समझण की धारा में यह बात न आवे, उसे अन्तर्मुख होना और लीनता प्रगट करना, अलौकिक बात है। दुनिया को तो ऐसा लगे, यह निश्चय... निश्चय... निश्चय। निश्चय, सम्यक् एकान्त, वही निश्चय है। व्यवहार-फ्यवहार अन्दर हो, निषेध है, आदरणीय नहीं है। है सही, हाँ, व्यवहार होता अवश्य है। होता है तो पूरी दुनिया है, उसमें क्या? वह त्रिकाली वस्तु नहीं है।

कितनी बात की है, देखो न! ओहोहो! स्व-आत्म अनुष्ठाननिष्ठ... निज आत्मा का अनुष्ठान, देखो! आचरण। भगवान परमात्मस्वरूप आत्मा त्रिकाली का आचरण, उसमें रमणता, ज्ञान आचरण, दर्शन आचरण, चारित्र आचरण, आनन्द आचरण, तप आचरण। आते हैं न पाँच? ऐसे पाँचों ही आचरण। आहाहा! पाँच आचरण आते हैं न, ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार। तपाचार, यह तपाचार। आहाहा! **विलय को प्राप्त होता है; इसलिए...** ऐसे निज आत्मा के आचरण में लीन ऐसा **परमतपश्चरण ही शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्त है...** उसे सच्चा प्रायश्चित्त परमेश्वर ने कहा है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकर भगवान इन्द्रों के समक्ष में, गणधरों के समक्ष में ऐसा कहते थे। आहाहा! समझ में आया?

गड़बड़ तप में यह गड़बड़। अभी एक है न अपने वेजळका का, नहीं? क्या नाम? बड़ोदरा, चन्दुभाई! जवान व्यक्ति रसवाला है। अभी ऐसे कितने ही पके हैं। घाटकोपर (में) पाँच-छह लड़के हैं, बड़ोदरा में वहाँ दर्जी के दो लड़के हैं। दर्जी समझे? सई (टेलर)। उसके लड़के हैं...। वह रसवाले, हों! वैष्णव अन्यमति। ऐसे रसवाले। अपने भाई लो न शशीभाई। कल आये थे। शशीभाई वैष्णव मोढ। उन्हें कितना रस है! कल प्रशंसा करते थे जयन्तीभाई। जयन्तीभाई आये थे न! आहाहा! हम जैन पहले से और यह वैष्णव। हमको स्थिर कर देते हैं सुनने... आत्मा विष्णु कहाँ है? आत्मा चाण्डाल कहाँ है? आत्मा स्त्री-पुरुष कहाँ है? आत्मा नपुंसक कहाँ है? आत्मा तो भगवान त्रिलोकनाथ चिदानन्द है।

**अब इस ११८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—** बहुत सरस! बात यह है। यह मोक्ष की बात है। भगवान आत्मा अन्दर वस्तु है, वह मुक्तस्वरूप ही है। जिसे निमित्त के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। द्रव्य को सम्बन्ध क्या हो? निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध द्रव्य को नहीं। वह तो एक समय की पर्याय और कर्म के उदय को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। परन्तु यहाँ तो पर्याय ही जहाँ नहीं, वहाँ फिर निमित्त सम्बन्ध रहा कहाँ? ऐसा जो भगवान पूर्णस्वरूप, मुक्तस्वरूप, बस मुक्तस्वरूप का आश्रय लेकर जो मुक्ति का मार्ग प्रगट हो, उसे तपस्या, उसे प्रायश्चित्त और उसे चारित्र कहते हैं। उसे सम्यग्दर्शन, उसे ज्ञान और उसे चारित्र कहते हैं। समझ में आया?

दूसरे माने—न माने, कठिन लगे, एकान्त माने, (परन्तु) मार्ग तो ऐसा है, भाई! समझ में आया? टीका। १८९ कलश।

**प्रायश्चित्तं न पुन-रपरं कर्म कर्म-क्षयार्थं,**

पहली लाईन में कहा। यह प्रायश्चित्त कहा, इसके अतिरिक्त किसी कार्य से कर्म का क्षय हो, ऐसा तीन काल में नहीं है। आहाहा!

**प्रायश्चित्तं न पुन-रपरं कर्म कर्म-क्षयार्थं,**
**प्राहुः सन्तस्तप इति चिदानन्द-पीयूष-पूर्णम्।**
**आसन्सारा-दुपचित-महत्कर्मकान्तारवह्नि-**
**ज्वालाजालं शमसुखमयं प्राभृतं मोक्षलक्ष्म्याः॥१८९॥**

प्राभृत का अर्थ 'भेंट' होता है न? दहेज कहा। दे, उसे दहेज। यह कन्या को फिर दहेज नहीं देते? क्या कहलाता है? (गुजराती में) करियावर (कहते हैं)। ऐ सेठ! क्या कहते हैं? विवाह में देते हैं न? दहेज... दहेज... दहेज। दहेज का अर्थ 'भेंट' है। कन्या को कुछ भेंट दें न? यह पाँच सौ तोला सोना, यह पचास साड़ियाँ, पचास कपड़े, पचास फलाना-ढींकणा। उसे दहेज कहते हैं न, दहेज। वह यह दहेज है। मोक्षलक्ष्मी का दहेज है—भेंट है। आहाहा! उसमें दहेज लिखा है, उसमें—नियमसार में। टीका में प्राभृत का अर्थ दहेज किया है, यहाँ प्राभृत का अर्थ भेंट किया है। यह अभी देखा, हों! आहाहा! कैसा है तप? आनन्दमूर्ति प्रभु में से आनन्द का विकास करके आनन्द के स्वादिष्ट में पड़ा हुआ जीव, ऐसा जो तप। कैसा है वह तप? आहाहा!

**अनादि संसार से समृद्ध हुई कर्मों की महा अटवी को...** अनादि काल से संसार से समृद्ध हुई कर्म की महावन अटवी... आहाहा! जला डालने के लिये ऐसी अग्नि... संसार की मिथ्यात्वरूपी (अटवी), कषायरूपी (अटवी)... अनादि से... अनादि संसार से समृद्ध हुई वापस, ऐसा। यह पूरी... पूरी समृद्धि, अज्ञान की पूरी ऋद्धि। ऐसी कर्मों की महा अटवी **जला देने के लिए...** समर्थ **अग्नि की ज्वाला के समूह समान है,...** जला डालने के लिये अग्नि की ज्वाला के समूह समान है। कौन? यह प्रायश्चित्त।

**शमसुखमय है...** समसुखमय है। लो! कैसी दशा है यह तप की? वीतरागी

सुखमय है। देखो! आहाहा! समभावी सुखमय आनन्दमय है। आहाहा! उसे तपस्या कहते हैं, भाई! समभावी आनन्द, समभावी सुखमय, ऐसा वापस। सुखमय है, वह तप। वह तपस्या उसे कहते हैं कि जिसमें समभावी आनन्दमय दशा है। उसे तप कहते हैं। आहाहा! शमसुखमय और **मोक्षलक्ष्मी के लिए भेंट है,...** वह मोक्षलक्ष्मी का भेंट, वह तप, वह तप दहेज है। भगवान मोक्षलक्ष्मी को पाते हैं, उसका दहेज है, भेंट है। जाओ... आहाहा! समझ में आया? कौन? वह तप। आनन्दस्वरूप भगवान में आनन्द की दशा प्रगट करके, वीतरागी आनन्दमयदशा को तप कहते हैं। वह तप मोक्षलक्ष्मी के लिये भेंट है, वह मोक्षलक्ष्मी का भेंट है। आहाहा! उसे मोक्षरूपी लक्ष्मी प्राप्त होती है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ की पुस्तकें भेजी हैं कितनी। कहे, अरे! हम तो व्यवहार में पड़े हैं कहीं। जुगराजजी ने पुस्तकें भेजी थीं। जुगराजजी! वह नानालालजी को। खबर है न? नानालाल को पहले भेजी थीं। ऐसा सुना था। वह पढ़ कर कहे कि हम तो व्यवहार में पड़े हैं, भाई! परन्तु व्यवहार भी कहाँ था? सेठ ने पुस्तकें भेजी थीं। नानालालजी है न, जवाहरलालजी के शिष्य, गणेशलाल के शिष्य। ऐसे शिवलालजी थे। शिवलालजी को तुमने देखा होगा। मोरबी में चातुर्मास था ६८... (संवत्) १९६८। शिवलालजी के शिष्य जवाहरलालजी, उनके शिष्य गणेशलालजी, उनके शिष्य नानालालजी। खबर है न! सबको जानते हैं न। शिवलालजी का यहाँ चातुर्मास था मोरबी, ६८ (के) वर्ष। वहाँ गये थे।

(संवत्) १९६९ में उनका चातुर्मास जोधपुर था। मारवाड़ जोधपुर। संवत् १९६९। वहाँ भी हम गये थे, आठ दिन रहे थे। जोधपुर। शिवलालजी का चातुर्मास था। सब बातें बाहर की। तत्त्व की एक भी नहीं होती। .... उन्हें यह पुस्तकें भेजी थीं सेठ ने। फिर यह बात आयी थी। कोई कहता था। वह भाई नहीं वह तुम्हारा? रायपुर का एक आता है। स्थानकवासी रायपुर का।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह नहीं, वह तो थोड़ा जवान व्यक्ति है। हाँ, सुगनचन्द। उसे

यहाँ का प्रेम है। वह रायपुर का है। किसके साथ किसका सम्बन्ध? सेठ का सम्बन्ध लो। सेठ! तुम्हारे सुगनचन्दजी। बहुत आता है, प्रेम है। वह कहता था लो। वह कहता था। नानालाल है न यहाँ। स्थानकवासी का साधु था। उसे सेठ ने पुस्तकें भेजी थीं। तब सुगनचन्दजी को यहाँ का रस है। वह भी स्थानकवासी है। नानालाल का... वह कहे, ऐसे कहते हैं कि हम तो व्यवहार में पड़े हैं। यह सब बात तो निश्चय की है। अभी आये नहीं दो वर्ष से।

यह हम करते हैं, वह अभी ठीक है, ऐसा। हमारे लिए यह बराबर है। तब निश्चय क्या? निश्चय समकित किसे कहना, इसकी खबर नहीं। आहाहा! निश्चय—सच्चा समकित किसे कहना, कैसे हो, इसकी खबर नहीं। और पूरी बात में बड़ा पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। लोगों को तत्त्व की सत्यता की खबर नहीं होती, ऐसे का ऐसा वाडा हाँका। दिगम्बर में ऐसा है, उसे कहाँ है? वाडा बाँधकर नग्न हो, क्रियायें करे, लो हो गये साधु। धूल भी साधु नहीं। आत्मा अन्तर पूर्णानन्द का नाथ अन्दर में अनुभव में आये बिना उसे सम्यग्दर्शन होता नहीं और वहाँ तक मोक्ष की शुरुआत का अवयव भी आता नहीं। आहाहा! वस्तु ऐसी है, भाई!

कहते हैं, वह **शमसुखमय है...** आहाहा! तपस्या तो उसे कहते हैं, प्रायश्चित्त उसे कहते हैं, विनय और वैयावृत्य, ध्यान और स्वाध्याय उसे कहते हैं। आहाहा! कि जिसमें शमसुखमय वीतरागी आनन्द की दशा आवे, उसे तप और प्रायश्चित्त उसे कहते हैं। जो **मोक्षलक्ष्मी के लिए भेंट है,...** आहाहा! **उस चिदानन्दरूपी अमृत से भरे हुए तप को...** आहाहा! देखो तो सही! यह तप उसे कहते हैं कि जिसमें चिदानन्द-ज्ञानानन्दरूपी अमृत से भरपूर तप, उसमें तो ज्ञान के आनन्द का रस है, उसे तप कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो अपवास करे तो हो जाये, आहाहा! शुभभाव का ठिकाना न हो। दुःख लगे, अन्दर दबाव लगे, तब तो अशुभभाव है। वह साधारण हो उसे शुभभाव हो, मिथ्यात्वभाव तो साथ में पड़ा है। उसकी दृष्टि तो वहाँ है। आत्मा अखण्ड आनन्द है, उसका तो अनादर है। आहाहा!

पाठ है न! '**चिदानन्दपीयूषपूर्णम्**' पीयूष अर्थात् अमृत। ज्ञानानन्दरूपी अमृत से भरपूर तप है, उसे तप कहते हैं। ज्ञान का जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द आवे। आहाहा!

ऐसा ज्ञान... दु:ख तो वहाँ है नहीं, शुभभाव तो है नहीं। आहाहा! '**चिदानन्दपीयूषपूर्णम्**' यह ज्ञानानन्द के अमृत का पेय पीता है वह तो। आहाहा! वह अमृत की घूँट पीता है उसे तप कहते हैं, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! अमृतस्वरूप भगवान आत्मा, उसे अन्दर से एकाग्र होकर चूसे। कुल्फी नहीं चूसते? कुल्फी। कुल्फी कहते हो न तुम? इसी प्रकार भगवान आनन्द की—अतीन्द्रिय आनन्द की कुल्फी है। उसे चूसना (अर्थात्) अतीन्द्रिय आनन्द की दशा का वेदन होना, उसे भगवान तप कहते हैं। आहाहा! व्याख्या सुनते हुए कायर का तो कलेजा काँप जाये, ऐसा है। समझ में आया? अथवा उसे मोक्षमार्ग कहते हैं। नियमसार है न! यह नियमसार अर्थात् मोक्षमार्ग। जिसमें चिदानन्दरूपी अमृत से भरपूर दशा, उसे मोक्ष का मार्ग और तप कहा जाता है। अरे! ऐसी मौजूद चीज़ पड़ी है। शास्त्र मौजूद चीज़ है और तू मौजूद चीज़ है। अरे! उसे समझने की दरकार नहीं, सुनने को मिले नहीं और जिन्दगी (चली) जाती है। आहाहा! समझ में आया?

'**चिदानन्दपीयूषपूर्णम्**' तप तो उसे कहते हैं (कि जिसमें) ज्ञानानन्द की अमृत की धारा का वेदन हो। आहाहा! ऐसी शैली रखी है न! उसमें तो राग का वेदन होता है, कषाय का वेदन है। राग और कषाय का वेदन, वह तो जहर का वेदन होता है। उसे तप (नहीं) कहते। आहाहा! सेठ! यह सब तुमको सुखी कहते हैं। खोटी बात है, ऐसा कहते हैं। दोनों भाई सुखी हैं। बड़े बुन्देलखण्ड के बादशाह। यहाँ तो कहते हैं, दु:खी है। राग का वेदन करनेवाले हैं, इसलिए दु:खी हैं, ऐसा कहते हैं। सेठ! यह आत्मा के भाव को—शुद्ध आनन्द को वेदन करे, वह सुखी है। उसका मार्ग सुखमय है, ऐसा कहते हैं। उकताहट आवे, ऐसा नहीं। मोक्ष का मार्ग आनन्दमय है, अतीन्द्रिय आनन्दमय है। अभी तत्त्व ऐसा है, उसे न माने और विपरीत माने, वह तो श्रद्धा में मिथ्यात्व भरा हुआ है। आहाहा!

पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि ९०० वर्ष पहले, आहाहा! काम तो किया है न! वन में, वन में टीका हो गयी है यह सब। मुनि तो वन में रहते थे न! उन्हें पगरव—मनुष्य का पगरव उन्हें हो कहाँ? यह बड़े शहर में रहना। यह (मुनि) कहाँ थे?

**मुमुक्षु :** वन में भय रहता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वन में भय रहता है, ऐसा सेठ बचाव के लिये कहते हैं। यहाँ

गाँव में निर्भय रहते हैं, ऐसा कहते हैं। बहुतों ने मुंडाया है न। बहुतों को इन्होंने आहार दिया हो कर-करके, बनाकर। मार्ग तो है वह है, भाई! तू मार्ग (दूसरा) करे, वह कहीं मार्ग कहलाये? आहाहा! क्या परन्तु कहते हैं न! कितनी उपमा दी!

**परन्तु अन्य किसी कार्य को नहीं।** देखो, अस्ति-नास्ति की है, भाई! उससे कहा था न, '**नपुनरपरं कर्मं कर्मक्षयार्थं**' दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प और तप अनशन किया, ऐसा विकल्प आदि, वह कर्मक्षय का कारण बिल्कुल नहीं है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय स्वयं बन्ध का कारण है। वह कहीं कर्मक्षय का कारण नहीं है। भगवान की श्रद्धा, पंच महाव्रत के परिणाम, अन्तर्मुख चीज़ का विकल्प का भाव, वह सब ही बन्ध का कारण है, क्षय का कारण बिल्कुल नहीं, निर्जरा का कारण बिल्कुल नहीं। आहाहा! समझ में आया? **अन्य किसी कार्य को नहीं। 'नपुनरपरं'** ऐसा शब्द है। कठिन लगे लोगों को। ऐसी तपस्या और यही मोक्ष का कारण, निर्जरा का कारण? इसके अतिरिक्त भगवान का विनय करना (आदि) वह नहीं? भगवान का विनय करना, लो। तीर्थंकर की प्रतिमा का विनय करना, असातना टालना—वह सब? वह सब शुभराग है। कहो, समझ में आया? मूलचन्दभाई! ऐसा है, भाई!

ऐसे तप को **सन्त कर्मक्षय करनेवाला प्रायश्चित्त कहते हैं,...** ऐसा कहा न? '**सन्त**' (शब्द) है न अन्दर में। '**सन्तः तप प्राहुः**' है न। दूसरी लाईन। '**प्राहुःसन्त**' सन्त, धर्मात्मा, जैनदर्शन के मुनि-सन्त उसे तप कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्यादि महामुनि, मोक्ष के मार्ग में चलनेवाले, मोक्षमार्ग को प्राप्त हुए... आता है न प्रवचनसार में? पाये हैं, कृतकृत्य हैं। आहाहा! यह सन्त ऐसी तपस्या को—ज्ञानानन्दरूपी अमृत से भरपूर तप को—सन्त कर्मक्षय करनेवाला प्रायश्चित्त कहते हैं। यह गुजराती है, परन्तु यह तो सादा है। तुम्हारे तो यहाँ बराबर पक्का हो जाना चाहिए गुजराती में। सेठ को धीरे-धीरे होगा। अभी इन्हें—सेठ को वहाँ बड़ा सिर... कहो, समझ में आया इसमें? बड़ा सिर तो यह करनेयोग्य है। भगवानदास शोभालाल सेठ। यह भगवानदास। यह भगवान के दास होना है। उसकी शोभा है। लो, दोनों आये। आहाहा! देखो ने! मुनिराज कहते हैं, **परन्तु अन्य किसी कार्य को नहीं।** बस। (गाथा) ११९ आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण १०, मंगलवार, दिनांक - १४-०९-१९७१
गाथा-११९, प्रवचन-१२४

११९ गाथा। नियमसार, शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त का अधिकार है।

**अप्पसरूवालंबणभावेण दु सव्वभावपरिहारं।**
**सक्कदि कादुं जीवो तम्हा झाणं हवे सव्वं॥११९॥**

अलौकिक बात है।

**शुद्धात्म आश्रित भाव से सब भाव का परिहार रे।**
**यह जीव कर सकता अतः सर्वस्व है वह ध्यान रे॥११९॥**

इसका पहले शब्दार्थ—अन्वयार्थ लेते हैं। अन्वयार्थ है न। '**आत्मस्वरूपालम्बन-भावेन तु' आत्मस्वरूप...** त्रिकाली जो ध्रुवस्वरूप... जो आत्मस्वरूप... आत्मस्वरूप—जो त्रिकाली आत्मा का निजस्वरूप... ज्ञान-आनन्द आदि ध्रुवस्वभाव, वह आत्मा का निजस्वरूप... लो, पर्याय को निजस्वरूप नहीं लिया यहाँ। पर्याय एक समय की पलटती है—बदलती (दशा) है, इसलिए उसे कायम का मूल स्वरूप नहीं लिया। मूल स्वरूप भगवान आत्मा... **आत्मस्वरूप...** ऐसा शब्द है न? आत्मस्वरूप... ५६वीं गाथा (पंचास्तिकाय) में यह आया न!

'**द्रव्यात्मलाभहेतुकः परिणामः**' (अर्थात्) पारिणामिकभाव। उसमें क्या समझ में आया? द्रव्य अर्थात् वस्तु आत्मा, उसका आत्म अर्थात् स्वरूप, उसका लाभ अर्थात् 'है'। आत्मस्वरूप है... आत्मस्वरूप है, आत्मस्वरूप की अस्ति है। समझ में आया? द्रव्य अर्थात् वस्तु एक समय की पर्यायरहित। ऐसा जो आत्मा... द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसका आत्म अर्थात् स्वरूप। यहाँ '**अप्पसरु**' ऐसा कहा है (अर्थात्) आत्मस्वरूप। वहाँ द्रव्यस्वरूप (लिया)। द्रव्य-आत्म, ऐसा कहा। ५६ (गाथा में) पंचास्तिकाय (में)। द्रव्यस्वरूप अर्थात् द्रव्य—आत्मा। उसका लाभ अर्थात् 'है'। द्रव्य के स्वरूप की अस्ति है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** द्रव्य को है, पर्याय को नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय की बात नहीं। समझ में आया? जैनदर्शन का आत्मा अर्थात् जो आत्मा है वैसा। ऐसा जैनदर्शन के अतिरिक्त कहीं नहीं होता। समझ में आया?

ऐसा जो द्रव्य-आत्मा—द्रव्यस्वरूप को धारना, रखना, अस्ति—है, ऐसा जो त्रिकाली भाव, उसे पारिणामिकभाव, परमस्वभावभाव, ध्रुवभाव कहा जाता है। वह **आत्मस्वरूप जिसका आलम्बन है...** अर्थात्? कि जो पर्याय को—जिस भाव को... भाव शब्द से पर्याय होता है। वह त्रिकाली आत्मस्वरूप लिया। सूक्ष्म है, सेठ! आहाहा! मूलचन्दभाई! यह सब सेठियों को भी अभी बराबर आगे... सेठिया ने प्रश्न किया, भाई! कि इस जीव का पर्यायस्वभाव, वह क्या? मूल यह बात ही चलती नहीं। मूल यह सेठिया कहलाये ...के प्रमुख। ऐसा प्रश्न किया अभी। कल नहीं आया था? जीव की पर्याय, वह जीव का स्वभाव है। इसलिए वह बात ही अभी (चलती नहीं)। यह दया पालो, व्रत करो और अपवास करो। यह सेठिया सामने बैठे वहाँ।

**मुमुक्षु :** सेठिया कहो तो उलहाना मिले।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सेठिया रूप से हो, उसे उलहाना अधिक मिले।

**मुमुक्षु :** परन्तु सुधार करने का लाभ अधिक मिले न!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा! यहाँ जीव कहो या आत्मा कहो। वह आत्मा का स्वरूप... आत्मा का स्वरूप अपना रूप जो शाश्वत् परमस्वभावभाव, उसकी अस्ति (अर्थात्) ऐसे त्रिकाली भाव को जिसने धार रखा है, ऐसा भाव, उसे आत्मा कहते हैं, उसे परमपारिणामिक स्वभाव कहते हैं। आहाहा! ऐसे परमस्वभावभाव त्रिकाली दल ध्रुव, उसे ही यहाँ तो आत्मा का स्वरूप कहा। आहाहा! राग, पुण्य-पाप तो नहीं, कर्म-शरीर तो नहीं, एक समय की उसकी पर्याय (जो) अपने में—प्रमाण के विषय में आवे, वह नहीं। आहाहा! सेठ! इसमें तो बहुत ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है, हों! यह गाथा तो बहुत ऊँची है, अकेला मक्खन है।

कहते हैं, भाई! प्रभु! तू कहाँ है? तू कितना है? वह इतना है कि त्रिकालीस्वरूप स्वभावभाव, इतना वह आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? तू कहाँ है? कि मैं कहाँ

हूँ? कि शाश्वत् मेरा ध्रुवस्वभाव, वहाँ मैं हूँ। आहाहा! **आत्मस्वरूप...** अपने अन्वयार्थ थोड़ा करते हैं, फिर टीका (लेंगे)। गजब बात की है! **जिसका आलम्बन है ऐसे भाव...** ऐसा पाठ है न? '**आत्मस्वरूपालम्बनभावेन**' अर्थात् कि भगवान आत्मा नित्य ध्रुवस्वभाव, परमभाव, स्वाभाविकभाव, ऐसा भाव, उसका जिस भाव को अवलम्बन है (कि) जो वर्तमान पर्याय है... यह भाव अर्थात् पर्याय। धर्म पर्याय में होता है, मोक्ष पर्याय है, मोक्षमार्ग भी पर्याय है।

**मुमुक्षु :** कार्य तो सब पर्याय में होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कार्य तो पर्याय में ही होता है न! परन्तु वह कार्य किसके अवलम्बन से होता है, यह बात चलती है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा वस्तु एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में—एक समय में... 'आत्मस्वरूप' ऐसा शब्द है न पहला? 'द्रव्य-आत्म-लाभ' ऐसा शब्द है वहाँ। वस्तु के स्वरूप की प्राप्ति, है—अस्ति, जिसे वस्तु ने अपने शाश्वत् स्वरूप को धार रखा है। वे तो कहें, व्रत करो, अपवास करो। कुछ है उसमें समझने का? महँगी वह यह चीज़ है या महँगी वह चीज है? अपवास करना, वह महँगा हो तो वह तो अनन्त बार किये हैं। यह समझना महँगा है। तथापि है उसकी, इसलिए सस्ती है। ऐई! समझ में आया? आहाहा! वे गये चूड़ीवाले? पालीताणा गये हैं।

कहते हैं, ऐसा जो त्रिकाली आत्मस्वभाव, उसका जिस भाव से अवलम्बन लिया है... उपशमभाव, क्षयोपशमभाव या क्षायिकभाव—वह निर्मल वीतरागी पर्याय ने, यह पर्याय, वह भाव, उसने त्रिकाली स्वरूप का अवलम्बन लिया है, त्रिकाली स्वरूप का उसने आश्रय किया है। समझ में आया? सामने है पुस्तक। इसीलिए तो यह नीचे रखा है। आहाहा! ओहो! क्या परन्तु सन्तों ने मार्ग सरल करके बतलाया है! भगवान आत्मा एक समय की पर्याय बिना का है। पुण्य-पाप की बात तो कहीं रही, वह विभाव तो कहीं रह गया। कर्म और शरीर बिना का वह तो बहुत स्थूल हो गया। उसे ऐसा होता है कि कर्मरहित आत्मा? ले! भगवान ने तो कर्मसहित आत्मा कहा है, ज्ञानावरणीय कर्मसहित। अरे सुन न! वह तो व्यवहार का रूप बताया है उसका। समझ में आया?

अभी कर्मरहित ? अरे ! कर्मरहित तो ठीक, परन्तु संसार की पर्यायरहित है। संसार की पर्यायरहित तो ठीक, परन्तु निर्मल पर्यायरहित है। समझ में आया ? अस्तित्व, वस्तुत्व आदि है न ? भाई ! उसकी पर्याय निर्मल है। वह निर्मल है, विकारी नहीं। अस्तित्वगुण की वर्तमान पर्याय निर्मल है, वस्तुत्व की वर्तमान पर्याय निर्मल है, द्रव्यत्व की वर्तमान पर्याय निर्मल है। आहाहा ! अगुरुलघु की षट्‌गुणहानि-वृद्धि, वह भी निर्मल है। तो कहते हैं, वर्तमान में अभी वह कर्म और शरीररहित तो है ही, परन्तु पुण्य और पाप के रागरहित अभी है और वर्तमान निर्मल पर्यायरहित अभी है। आहाहा ! इसके बिना तो वस्तु सिद्ध कैसे होगी ? अर्थात् कि यह सबको उल्लंघकर द्रव्यस्वरूप में दृष्टि देनी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? दूसरे होने पर भी—कर्म, शरीर, राग और पर्याय यह सब होने पर भी—दृष्टि को उसे उल्लंघकर द्रव्य पर देनेयोग्य है। आहाहा ! समझ में आया ?

**आत्मस्वरूप...** अपने शब्दार्थ में जरा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के सीधे शब्दों में कितना भरा है (वह देखते हैं)। जिसका अवलम्बन है, ऐसे त्रिकाली भगवान परमानन्द की मूर्ति ध्रुवस्वरूप जिसकी अस्ति ही इतनी गिनने में आयी है। पर्याय की अस्ति, वह उसकी अस्ति गिनने में आयी नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? नियमसार में तो बहुत गजब किया है ! आहाहा ! मोक्षमार्ग है न पर्याय का। पर्याय का धर्म है न... आहाहा ! कहते हैं, भगवान ! जितना जैसा तेरी अस्ति में तू है, उसकी तुझे खबर नहीं और धर्म तुझे धर्म हो ? यह तो सादी भाषा में समझ में आये ऐसा है। मूलचन्दभाई ! कहते हैं कि, भाई ! शब्द भले थोड़े हों, काल भले थोड़ा हो, वस्तु तो महाप्रभु है। और वह एक सेकेण्ड में ही पकड़ में आये ऐसी चीज़ है, ऐसा कहते हैं। कहेंगे, परिहार करने को वह द्रव्य समर्थ है। समझ में आया ? बहुत न्याय प्रयोग किये हैं इसमें। एक तो यह कहा कि आत्मस्वरूप त्रिकाल का अवलम्बन लेनेवाला भाव, वह निर्मल पर्याय है। द्रव्य—वस्तु की ओर झुकती, वस्तु की ओर का आलम्बन लेती, वस्तु का आश्रय करती हुई जो निर्मल पर्याय, उस निर्मल (पर्याय) ने द्रव्य का आलम्बन लिया है। उस पर्याय ने राग का और अपना भी आलम्बन लिया नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

कहो, अमुलखभाई ! जयन्तीभाई ! लो, ऐसा मार्ग है। ऐसा तू है—ऐसा कहते हैं। आहाहा ! तुझमें पर्याय समाती नहीं, कहते हैं। गजब बात है ! सोनगढ़ का है ? क्या ?

**मुमुक्षु :** सोनगढ़ के ग्रन्थ में ऐसा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह ग्रन्थ किसका है? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का तो ग्रन्थ है। अन्दर है या नहीं? वह शब्द लगाकर तो कहते हैं। यह हमारे पण्डितजी बैठे, देखो! यहाँ चन्दुभाई पण्डित है, सब पण्डित है, छोटाभाई पण्डित है हमारे। ऐई! समझ में आया? यह हमारे हीराभाई रहे। इसमें शब्द का (अर्थ) होता है या सोनगढ़ का होता है? अन्दर शब्द पड़े हैं, उनका तो अर्थ चलता है। अर्थ तो उनके किये हुए थे। उन्होंने—शीतलप्रसाद ने पहले किये। उसमें बहुत स्पष्ट भाई ने किया। दलील तो करे न सेठ सामने की ओर से। आहाहा!

**आत्मस्वरूप जिसका आलम्बन है...** जिसका अर्थात् भाव का। भाव, वह पर्याय है। पर्याय निर्मल। उपशम, क्षयोपशम या क्षायिक ऐसी वीतरागी निर्मल पर्याय, उस भाव का अवलम्बन द्रव्य है, उस भाव का आधार द्रव्य है, उस भाव का आश्रय वस्तु है, जो आत्मस्वरूप त्रिकाली है वह। आहाहा! समझ में आया? यह तो गुजराती सादी भाषा है। बहुत ऐसी नहीं है। आहाहा! ऐसा जीव... भाषा देखो! **'सक्कदिकादुंजीवो'** है न वापस? ऐसे आत्मस्वरूप का जिस भाव को अवलम्बन है, ऐसा जीव... आहाहा! ऐसा **जीव सर्व भावों का परिहार...** ऐसा जीव अर्थात् अकेला द्रव्य नहीं, परन्तु ऐसा अवलम्बन लेकर हुआ भाव, ऐसा जीव, ऐसा।

**सर्व भावों का परिहार...** त्याग.... लो, यह त्याग आया। आहाहा! लोग कहे, त्याग। परन्तु त्याग किसका? समझ तो सही पहले। समझ में आया? शरीर, वाणी, मन का तो आत्मा में तीनों काल त्याग ही है। अब उसमें उदयभाव जो पुण्य-पाप आदि वर्तता है... यहाँ तो चारों भाव का त्याग कहेंगे। वह किस अपेक्षा से है, यह दूसरी बात है। परन्तु अभी पहला ऐसा कि जो पुण्य और पाप का उदयभाव है, उसका त्याग कैसे हो? उसका त्याग। समझ में आया? पर का त्याग तो है ही। यहाँ उसकी पर्याय के अस्तित्व में है, उसका त्याग कैसे हो, उसकी बात है। उसकी पर्याय में शरीर, वाणी, कर्म, स्त्री, परिवार, वह कुछ है ही नहीं। आहाहा! अब उसकी दशा में... दशा में चार भाव की अस्ति है। भगवान त्रिकालीस्वरूप की दशा में—पर्याय में अनादि में तो एक ही भाव है उदय (और) क्षयोपशम परलक्ष्यवाला। उपशम, क्षायिक तो है नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो समुच्चय बात करते हुए... पहले कि जो चीज़ में नहीं, उसका त्याग क्या? अब उसकी चीज़ में जो है पुण्य और दया, दान, व्रत, भक्ति शुभरागादि, उसका त्याग उसे कैसे हो? उसका त्याग (कि जो) है—अस्ति है उसकी पर्याय में। शरीर, कर्म, परिवार तो उसकी पर्याय में भी नहीं। बराबर है? दो भाईयों में... दूसरा भाई नहीं? राम-लक्ष्मण जैसे कहलाते हो न तुम दोनों। आहाहा! एक-एक भिन्न है वहाँ। किसी की पर्याय में कोई दूसरा आता है? दूसरा द्रव्य, दूसरा गुण और दूसरे गुण की पर्याय—ये तीनों आते हैं? अब उसमें आया क्या है अनादि से? उदयभाव। पुण्य और पाप, मिथ्यात्व आदि भाव, वह उसकी पर्याय में है। अब उसका त्याग करने की बात है। है उसका त्याग। समझ में आया?

तो कहते हैं, त्याग कैसे हो? कि उस त्रिकाली भगवान आत्मा का ध्रुवस्वरूप, उसका जिस भाव से आलम्बन लिया, उस भाव से जीव... उस भाव से जीव, ऐसा, उस भाववाला जीव... आहाहा! सर्व भावों का त्याग करने में समर्थ है। आहाहा! उसकी सामर्थ्य है—ऐसे भाववाले जीव की सामर्थ्य है कि उदयभाव राग-द्वेष का त्याग हो जाये और आनन्द की उत्पत्ति हो, ऐसी उसमें सामर्थ्य है। समझ में आया? प्रेमचन्दजी! समझ में आता है थोड़ा-थोड़ा? भाषा गुजराती है परन्तु... अब गुजराती सीखना यहाँ। अब तुम्हारा मकान बनाया है (तो) यहाँ रहना पड़ेगा थोड़ा। आहाहा!

भगवान! तेरा स्वरूप कितना? कि त्रिकाल स्वरूप रहे उतना। उसका जिस भाव से अवलम्बन लिया, ऐसे भाववाला जो जीव, ऐसा। ऐसे भाववाला अर्थात् ऐसी पर्यायवाला जीव। निर्मल पर्याय ने जिसका—द्रव्य का आश्रय लिया, ऐसी निर्मल पर्याय (वाला) जीव विकार के भाव का अभाव करने को वह जीव समर्थ है। आहाहा! यहाँ तो चारों भाव कहेंगे। समझ में आया? दूसरी अपेक्षा से चार भाव कहेंगे। उनका आश्रय करनेयोग्य नहीं, इस अपेक्षा से। समझ में आया?

**सर्व भावों का परिहार...** परिहार अर्थात् त्याग। यहाँ तो 'त्याग' शब्द है न जरा, उस पर वजन है। यहाँ जब आलम्बन जो भाव लेता है... समझ में आया? यह परिहार का अर्थ त्याग। एक निर्मल पर्याय त्रिकाल का अवलम्बन लेती है, ऐसी निर्मल पर्यायवाला

जीव चार भाव को त्याग करने के लिये समर्थ है। परन्तु उसमें अपने मूल लेना है राग—उदय। मिथ्यात्वभाव, राग-द्वेषभाव, विषय-वासना की कल्पना का वेद का भाव—उसे ऐसा जीव त्याग करने को—अभाव करने को समर्थ है। आहाहा! समझ में आया? यह तो धीरे-धीरे चलता है। ऐ शान्तिभाई! सब वह पढ़ाया था कल्पसूत्र, ऐसा कहीं यह नहीं है। आहाहा! आठ वर्ष का बालक हो (तो) समझ में जाये, ऐसी बात है यह तो।

'**कर्तुं**' ऐसा है न? '**शक्नोति कर्तुं**' आहाहा! भगवान आत्मा अपना पूर्ण स्वरूप, उसका जिस भाव से आलम्बन... अर्थात् पर्याय आ गयी वापस। ध्रुव, उसका कायमी स्वरूप। आलम्बन लेनेवाली पर्याय आ गयी। समझ में आया? उस पर्याय ने—निर्मल पर्याय ने जिसका आश्रय लिया है, ऐसा जीव, जिस पर्याय ने द्रव्य का आलम्बन लिया, वह जीव, ऐसा जीव अज्ञान और राग-द्वेष का त्याग करने को समर्थ है। आहाहा! गजब बात! सन्तों ने-दिगम्बर मुनियों ने तो एक-एक लाईन में कितना भरा है गम्भीर! गजब किया है। यह तो अन्दर निगलने की बात है। समझ में आया? ढोर खाता है न ढोर, पहले खाता है, फिर बैठकर जुगाली करता है। एक गाय को आदत पड़ी, रेत के ऊपर आकर जुगाली करे। बहुत दिन से आदत पड़ गयी है गाय को। खाकर आवे कहीं से और रेत है न (ऊपर) बैठे, जुगाली करे। अन्दर से निकाले। वागोळे समझते हो? थोड़ा-थोड़ा धीरे-धीरे वापस निकाले। आहाहा! इसी प्रकार यह पहले धीरे-धीरे समझ लेना, पश्चात् धीरे-धीरे इसे अन्दर में जुगाली करना। आहाहा! धन्य रे धन्य!

कहते हैं, अपने त्रिकालीस्वभावभाव के आलम्बनवाला जीव अपने भाव के अतिरिक्त दूसरे सब भाव का त्याग करने अर्थात् उनका आश्रय छोड़ने को समर्थ है। लो। समझ में आया? जिसने इस भगवान का आश्रय लिया, ऐसा जीव चार भाव के आश्रय छोड़ने को शक्तिवान है। आहाहा! ऐसा है। समझ में आया? आहाहा! देवीलालजी! **सर्वभाव का...** सर्वभाव अर्थात् पर्याय आ गयी। सर्वभाव शब्द में यह पर्याय है। पर्याय के चार प्रकार हैं—उदयभावरूप पर्याय, उपशमभावरूप पर्याय, क्षयोपशमभावरूप (पर्याय) और क्षायिकभावरूप (पर्याय)। अर्थात् सब पूरा तत्त्व आ गया। अकेला परम-स्वभावभाव, उसका जिस भाव ने आलम्बन लिया ऐसा जीव... वापस '**आत्मस्वरूपालम्बन-भावेन**' पहले डाला न, वापस जीव डाला। यह आत्मा कहो या

जीव कहे—दोनों एक ही है, ऐसा। ऐसा जीव, वह चार भाव के आश्रय को छोड़ने के योग्य है। जब इस ओर आश्रय लिया तो चार का आश्रय छोड़ने के योग्य है। समझ में आया?

अरे! ऐसा स्वरूप सुनने को मिला नहीं कभी। मूलचन्दभाई! क्या तुम्हारे स्त्रियाँ प्रमुख थीं उपाश्रय में? ऐसा सुना था न? यह तो पुरानी बात याद हो। बहिन सामने आगे बैठी हैं न, सुनती हैं न वे। सुना था। लोग कहते हैं। हम कहाँ देखने गये हैं? कोई कहे, इनके घर से महिलाओं में सामने हैं। एकदम बदलना मुश्किल पड़ेगा। ऐसा और कोई कहता था। यहाँ तो ... लोग बहुत (इसलिए) बहुत प्रकार की बातें आवें। यह तो घर के व्यक्ति कहलाये न। यहाँ के मुख्य सेठिया। इसलिए इनका ऐसा है, उसका ऐसा है, घर में ऐसा है—ऐसी सब बातें तो आवे न यहाँ! सच्ची बात है। यह तो जानने के लिये बात है। आहाहा! ऐसा मार्ग, ऐसा परम निर्मल मार्ग सर्वज्ञ वीतराग का अनादि-अनन्त राजमार्ग चला आता है। वह कोई नया नहीं है। समझ में आया? ऐसा स्वरूप भगवान आत्मा... आहाहा! शान्ति से धीरे से अन्तर्मुख मुड़े, ऐसी जो पर्याय, अन्तर्मुख झुकी हुई पर्यायवाला जीव... आहाहा! यहाँ आश्रय लिया, इसलिए उस भाव को—चार के आश्रय का अभाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

**इसलिए ध्यान वह सर्वस्व है।** क्या कहा? वह जो भाव कहा था न, जिस भाव ने आलम्बन लिया, वह भाव, वह ध्यान। उस ध्यान ने ध्येय बनाया था द्रव्य। वह ध्यान अर्थात् भाव, आलम्बनवाला भाव, वह आलम्बनवाला भाव, वह ध्यान। वह अन्तर के आलम्बनवाला भाव, वह ध्यान। ऐसा ध्यान करनेवाला जीव चार भाव का... चार भाव का आश्रय छोड़ने को शक्तिवान है। आहाहा! अपने यहाँ मुख्य तो विकार का त्याग करने को यह जीव समर्थ है, ऐसा सिद्ध करना है। पश्चात् तो आश्रय से बताना है कि यहाँ एक (जीव) लिया, इसलिए चार का आश्रय नहीं। समझ में आया?

यह मिथ्यात्व और राग और द्वेष का त्याग कैसे हो? पहले उसमें आता था कि शास्त्र में ऐसा है कि त्याग... परन्तु त्याग कैसे करना, उसका स्पष्टीकरण नहीं। ऐई पाटनीजी! क्या? वहाँ आया था? तुम्हारी ओर से आया था। खबर नहीं तब उसे। उनकी ओर से आया था—तुम्हारी ओर से। नाम नहीं लिया जाता। नाम लेने योग्य नहीं।

परन्तु एक गृहस्थ आया था, उसने बात की थी। अहमदाबाद या कहीं से आया था। राजकोट से आया था। महाराज! यह विकार का त्याग करना, ऐसा शास्त्र में आता है, परन्तु विकार का त्याग कैसे करना, यह उसमें नहीं। हम आते हैं वहाँ से—ईसरी से। ऐसा वहाँ कहा जाता है, कहता है। ऐसा कहता था। श्रावक था राजकोट का। यह बात कही जाती है, देखो! गुजराती था, व्यक्ति गुजराती था। बहुत लोग आवें न यहाँ तो। चारों ओर से आते हों। आहाहा! दोष का त्याग करना, यह शास्त्र में आता है, परन्तु दोष का त्याग कैसे करना, इसका नहीं आता। तो यह क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** ११वीं गाथा....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो प्रत्येक गाथा में आता है। अपना आश्रय लेने से जो उदयभाव है, वह खिर जाता है—व्यय होता है, ऐसा कहते हैं, उसका त्याग होता है। समझ में आया? आहाहा! क्या हो? पूरी बात का रूप ही बदल गया है।

**इसलिए ध्यान वह सर्वस्व है। 'सर्वम् भवेत्'** ऐसा है न? आहाहा! जो कुछ कहते हैं, वह धर्म हो, तो वह पर्याय द्रव्य की ओर झुकी, वह पर्याय धर्म है। आहाहा! **'सर्वम्'** यह वस्तु है। धर्मी ऐसा भगवान आत्मा पूर्णस्वरूप की अस्तिवाला तत्त्व, उसमें जिसने—जिस भाव से—जिस पर्याय ने आलम्बन लिया, ऐसी पर्याय के आलम्बनवाला जीव, वह मिथ्यात्व और राग का व्यय करने को (समर्थ है)। वह तो इसका अर्थ कि उत्पन्न नहीं होता, ऐसी ही दशावाला यह जीव उसे उत्पन्न न हो। आहाहा! त्याग तो, उपदेश की शैली क्या आवे? एक का ग्रहण हो, दूसरा का त्याग कहा जाता है। ऐसी शैली क्या भाषा की बात... भाषा से कहना और वस्तु दूसरी कुछ, इसलिए... आहाहा!

त्याग तो नाममात्र है, यह तो अपने पहले आ गया। 'राग का त्याग कर्ता आत्मा' वह परमार्थ से है ही नहीं। परन्तु उपदेश की शैली ऐसी है कि ऐसी शैली में ऐसे ही प्रकार आते हैं। समझ में आया? यह शब्दार्थ किया। शब्दार्थ में इतना हो गया चालीस मिनिट। यह तो त्याग, आलम्बनभाव, किसका आलम्बन (ले), उस आलम्बनवाले को त्याग हो जाता है, उसे सब भाव का त्याग हो जाता है, इसलिए वह ध्यान, वह सर्वस्व है। उस ध्यान को महाव्रत कहो, समिति कहो, वह ऐसे नहीं, उसे प्रतिक्रमण कहो, उसे

आलोचना कहो, उसे भक्ति कहो। भक्ति, उस भाव को भक्ति कहते हैं। आगे आयेगा भक्ति। समझ में आया? आहाहा!

भगवान की बाहर की भक्ति तो राग है, वह कहीं वास्तविक भक्ति नहीं। समझ में आया? ...ऐसा भाव! और मूर्ति, और विशाल पंचकल्याणक... वह तो उसके कारण से होते हैं, वहाँ जो जीव हो, उसका शुभभाव निमित्त कहा जाता है, शुभभाव। परन्तु वह भाव पूर्ण वीतराग न हो, उसे आवे। नामस्मरण आवे या नहीं? प्रभु... भगवान... वह विशेष राग है। आवे, परन्तु वह भाव किसी चीज़ का त्याग कर सकता है, ऐसा नहीं है। देखो! यह तो शुभभाव अशुभ को छोड़ता है, यह इसमें नहीं, यहाँ तो यह कहते हैं। आहाहा! ऐई! नहीं, नहीं, यह बाँधा... यह दूसरी बात है उसमें। ऐसा कि शुभभाव में अशुभ का त्याग होता है, ऐसा है न! व्यवहार की व्याख्या है। अशुभभाव निवृत्ति... प्रवृत्ति, उसे व्यवहार से संवर कहते हैं। परन्तु वह वास्तविक भाव यह है।

ऐसा जो आत्मा अपने निर्मलभाव से जिसने त्रिकाली भगवान की भेंट की, त्रिकाली भगवान से भेंट की। पर्याय है, वह तो एक समय की दशा। त्रिकाली जो एक समय से अनन्त... अनन्त... अनन्तगुणा काल, ऐसा रहनेवाला भाव। वह एक समय रहनेवाला, यह त्रिकाली। ऐसे त्रिकालीभाव का जिसने आलम्बन लिया, ऐसा जो भाव, उसे यहाँ धर्मध्यान कहते हैं और उस धर्मध्यान को महाव्रत कहो। ऐसे धर्मध्यान को महाव्रत कहो, समिति कहो, गुप्ति कहो। यह तेरह प्रकार का चारित्र उसे (कहते हैं)। और प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, प्रायश्चित्त, समाधि, भक्ति, आवश्यक—यह सब उसको कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अब टीका। इतना तो यह पाठ में से सीधे लिया।

**टीका:—यहाँ इस गाथा में, निज आत्मा जिसका आश्रय है, ऐसा निश्चय-धर्मध्यान ही...** देखो! स्पष्टीकरण किया है। भाव का अर्थ ही यहाँ धर्मध्यान कर दिया। समझ में आया? उसे धर्मध्यान कहते हैं, ऐसा स्पष्टीकरण किया, भाई! वे कहते हैं न कि धर्मध्यान शुभभाव में ही होता है, शुद्ध में शुक्लध्यान ही होता है। अरे, भगवान! यह तू क्या कहता है? प्रभु! तेरी महिमा की तुझे खबर नहीं, हों! आहाहा! समझ में आया? **इस गाथा में, निज आत्मा...** देखो! '**अप्पसरू**' ऐसा है न? अर्थात् अपना स्वरूप। जिसका आश्रय है... जिसका अर्थात् जिस भाव का, भाव का अर्थात् धर्मध्यान का।

ऐसा निश्चयधर्मध्यान, देखो! विकल्प हो शुभ, उसे व्यवहारधर्मध्यान आरोप से कहा जाता है, परन्तु वह वास्तव में (ध्यान) है नहीं।

निश्चयधर्मध्यान... त्रिकाली ज्ञायक भगवान निजस्वरूप का आश्रय जिस भाव ने लिया, उस भाव को सच्चा धर्मध्यान कहा जाता है। आहाहा! कहो! यह देह की क्रिया, वह (ध्यान) नहीं है, विकल्प—राग दया, दान, व्रत का, वह (ध्यान) नहीं है। आहाहा! व्यवहार के पाँच महाव्रत का विकल्प, वह (ध्यान) नहीं है। नियमसार में तो रत्न, अकेला परमपारिणामिकस्वभाव के रत्न भरे हैं। ओहोहो! मोक्षमार्ग का वर्णन है न! आहाहा! प्रभु! तेरी महिमा तूने सुनी नहीं, भाई! कितना बड़ा, वह तुझे बैठना कठिन पड़ता है। आहाहा! यहाँ वर्तमान धर्मध्यान है न अकेला? शुरुआत करते हैं, उसकी बात है। आगे लेंगे, दोनों लेंगे। शुरुआत, वह धर्मध्यान ही है; शुक्लध्यान, वह धर्मध्यान है। पर्याय में त्रिकाली का ध्यान, उसे धर्मध्यान कहते हैं। पश्चात् शुक्लध्यान को धर्मध्यान कहा जाये। ठीक! धर्मी का ध्यान, वह धर्मध्यान कहलाता है। आहाहा! भले वह हो, परन्तु है वह धर्मध्यान। वस्तु के स्वभाव का ध्यान।

**मुमुक्षु :** वत्थुसहावो धम्मो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बस। यह तो फिर भिन्न-भिन्न अर्थ से समझावे न! विशेष शुद्धि है, उसे शुक्ल कहा। है वह भी धर्मध्यान। धर्म अर्थात् वर्तमान शुद्धता की एकाग्रता, वह है। बस! पश्चात् उसे नीचे धर्मध्यान कहो या ऊपर शुक्लध्यान, वह सब धर्म। धर्मी ऐसा आत्मा अथवा उसके धर्म जो हैं अनन्त आनन्दादि, उनका ध्यान, उसे धर्मध्यान कहा जाता है। आहाहा! **ऐसा निश्चय-धर्मध्यान ही...** वापस ऐसा कहा, देखो! **सर्व भावों का अभाव करने में...** इस ओर का आश्रय लेने से दूसरे सब भावों का आश्रय छोड़ने को **समर्थ है।** समझ में आया? **ऐसा कहा है।** ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने... भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** अभेद की व्याख्या लेने से भेद नहीं, वह धर्मध्यान कहते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भेद-बेद की बात यहाँ नहीं। भेद, अभेद के लक्ष्य से जो पर्याय हुई, वह भेद, परन्तु भेद ऐसे भिन्न करके नहीं। पर्याय लक्ष्य भेद का करे, ऐसा

नहीं। लक्ष्य तो यहाँ है, ऐसे अभेद के आश्रय से जो पर्याय हुई, ऐसा परिणमन जिसका है, उसे आश्रय इसका है, इसलिए उसे चार भाव का आश्रय नहीं। बस रहे किसका? यहाँ आश्रय... एक ओर जहाँ त्रिकाली का आश्रय हो, फिर वहाँ पर्याय का आश्रय नहीं रहता। बस, उसे इस अपेक्षा से समझाया है। समझ में आया? आहाहा!

**समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप लक्षण से लक्षित...** समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप लक्षण से लक्षित... इसका अर्थ यह कि शरीर-वाणी-कर्म परद्रव्य, राग परद्रव्य, एक समय की पर्याय भी परद्रव्य। समझ में आया? समस्त परद्रव्यों का त्याग... परित्याग—परि (अर्थात्) समस्त प्रकार से अभावस्वरूप लक्षण से लक्षित ऐसा अखण्डानन्द प्रभु द्रव्य। आहाहा! टीका भी कैसी की है! अब यह टीका पण्डित को पसन्द नहीं पड़ती। रतनचन्दजी को। अरे, भगवान! क्या करे? बापू! यह पण्डिताई की चीज़ नहीं। यह तो आत्मा के आलम्बन से प्रगट हुआ भाव, वह सब है। भले उसे जानपना भी कम हो बाहर का, कहना भी न आता हो, परन्तु वस्तु ऐसी, उसमें केवलज्ञान लेनेवाला है वह। समझ में आया? सबको जाननेवाला केवलज्ञान लेनेवाला है। यह सब खोटे पहाड़े हाँक रखे, वे सब निगोद में जानेवाले हैं। दृष्टि मिथ्यात्व और भ्रम है, समझ में आया? वह सब अन्धकार हो जानेवाला है। उसको उघड़ जानेवाला है। आहाहा! बापू! यह तो वस्तु की स्थिति है, भाई!

**समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप लक्षण से लक्षित...** त्याग से लक्षित कौन है? कि **अखण्ड-नित्यनिरावरण—सहज-परमपारिणामिकभाव...** समझ में आया? अखण्ड वस्तुस्वरूप प्रभु नित्य शाश्वत वज्रबिम्ब... अखण्ड और नित्य—कायम रहनेवाला। खण्ड नहीं और नित्य, ऐसा। और निरावरण... त्रिकाल नित्य निरावरण... भगवान वस्तुस्वरूप तो त्रिकाल निरावरण है। आवरण का सम्बन्ध तो पर्याय के साथ है। कर्म के निमित्त का सम्बन्ध, पर्याय के साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। यहाँ तो आवरणरहित है। वह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धरहित—बिना का तत्त्व है। आहाहा! समझ में आया?

**अखण्ड-नित्यनिरावरण...** नित्य निरावरण **सहज-परमपारिणामिकभाव की...** देखो! स्वाभाविक जो त्रिकालीभाव सहज, स्वरूपलाभ—स्वरूप की अस्ति, पर्याय बिना का त्रिकाली ज्ञानानन्दभाव, ज्ञायकभाव, उसे यहाँ परमपारिणामिकभाव कहा है।

ऐसे परमपारिणामिकभाव की भावना, वह पर्याय आयी। जो पाठ में था '**आलंबणभावेण**' जिस भाव से त्रिकाल का आलम्बन लिया था, ऐसा भाव, वह यह भावना। वर्तमान पर्याय ने त्रिकाल का अवलम्बन लिया, वह त्रिकालीभाव की भावना। भावना अर्थात् वर्तमान पर्याय। उसे यहाँ आलम्बनवाला भाव कहा, उसे ध्यान—धर्मध्यान कहा, उसे यहाँ भावना कही। समझ में आया? रात्रि में पूछे तो इसमें से कितना याद रहे? भीखाभाई! यह नहीं आता। ऐसे रुक गये। आहाहा!

परमपारिणामिकभाव की भावना अर्थात् जिस भाव से परमपारिणामिक का आलम्बन लिया, उस भाव को यहाँ भावना कहा है, पर्याय। आहाहा! उससे—**भावना से औदयिक, औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक इन चार भावान्तरों का...** जो त्रिकालीभाव से अन्य चार भाव हैं। भावान्तरो है न? भगवान जो दृष्टि का विषय—सम्यग्दर्शन का विषय है। सम्यग्दर्शन की पर्याय ने त्रिकाली ज्ञायकभाव का आलम्बन लिया, ऐसी जो पर्याय—ऐसी जो भावना... ऐसा जब आश्रय एक में लिया तो उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक ऐसे चार त्रिकाली पारिणामिकस्वभाव से भावान्तर... यह चार अन्य भाव हैं। आहाहा! देखो तो सही!

क्षायिकभाव, वह पारिणामिक से अन्य भाव है। अरे, गजब बात करते हैं! समझ में आया? त्रिकालीस्वरूप का जिसने—जिस भाव ने आलम्बन लिया, उसे यहाँ भावना कहा। उसे पाठ में भाव कहा, उसे अर्थ में ध्यान कहा था, परन्तु (टीका में) उसे निश्चयधर्मध्यान कहा। ऐसे धर्मध्यानवाली पर्यायवाला आत्मा, उसे यह चार भाव का आश्रय नहीं है। यहाँ एक का आश्रय है, उसे चार का आश्रय नहीं है, ऐसी बात है। यह तो ठीक, परन्तु दूसरी बात यह कि 'अन्यभाव' यह शब्द पड़ा है। भावान्तर... भगवान आत्मा जो ध्रुवस्वभावभाव है, उससे चार भाव अन्य भाव हैं। आहाहा! वह पर्याय का क्षायिकभाव भी अन्य भाव है। गजब है न! ऐसी बात दिगम्बर सन्तों के मुख में से आयी है, वीतराग के मुख से आयी है। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** क्षायिकभाव नित्य की अपेक्षा से लेना या अनित्य की अपेक्षा से लेना?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह इस भाव की अपेक्षा से अन्य। त्रिकालीभाव की अपेक्षा से

अन्य भाव है वह। इस भाव में वे नहीं, उनके भाव में वे हैं। समझ में आया? बापू! वीतरागमार्ग, उसमें दिगम्बर धर्म, वह दिगम्बर धर्म, यही जैनदर्शन है। बाकी यह बात कहीं है ही नहीं। सेठ! एक लाईन में कितना डाला है देखो न! कभी वाँचा नहीं हो वहाँ। आहाहा! तुम तो वाँचते हो कितनी ही बार। कानपुर में जाकर वाँचते नहीं हो नियमसार और सब? पैसा उगाहने जाते हैं न? वाँचते होंगे। यह नियमसार घर में रखा है न? वह भाई कहते हैं, रखा तो हमारे घर में भी है। आहाहा! वाँचना। वाँचे तो इसे खबर पड़े कि यहाँ मुझे समझ में नहीं आया था, उसका भाव ऐसा है, तब इसे कीमत आवे।

हमारे मास्टर ऐसा था। भाई! एक नरोत्तमदास मास्टर था। स्त्री नहीं थी, अविवाहित था। सुतार गली में रहता था। हमको कहे, देखो! वाँचकर आना मेरे घर में। ऐसा कहे। तुम्हारे ऐसा कि वाँचे बिना... वह ऐसा था। मुझे खबर है। नरोत्तम मास्टर। अच्छे-अच्छे हो न मुख्य लड़के, उन्हें घर में बुलावे राँधते समय। क्योंकि राँधे भी सही, दाल-भात-रोटी बनाता हो हाथ से। उसे समय हो न! बोलते-बोलते इशारे से बतावे लड़कों को। लो यह वाँचो यह पाठ। वाँचकर आये हैं न? वाँचो। देखो! इसका यह अर्थ। यइ अर्थ सूझा था तुमको? नहीं। तो इसका अर्थ यह है। उसका इतना माहात्म्य आवे उसको। .... अपने वाँचें तो उसमें कुछ यह भाव सूझता नहीं था, खबर नहीं पड़ती थी।

सुतार की गली थी, अकेला था, अविवाहित मनुष्य था। रांधते-रांधते होशियार लड़के हों, उन्हें बुलावे एक-दो को। मुझे खबर है। मुझे बुलाते थे वहाँ। रांधते जाये। रोटी बेलता हो और ऐसे बोलने में कुछ दिक्कत है? रोटी बेलता हो, चावल रांधे, दाल... समय बहुत मिले उसे। ऐसे फिर समय मिले नहीं। उस समय रांधने के समय बुलावे। फिर खाने का समय न हुआ हो, हमारे खाने का समय न हुआ हो, वह अभी रांधता हो। यहाँ पूरा हो... तुम वाँचो जाओ। तुमने ऐसा वाँच था? खबर है? इस गाथा का ऐसा अर्थ आता था? भाई! हम तो ऐसे करते थे। देखो! इसका अर्थ ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? इसमें तो बहुत बात ली है। कहते हैं, आहाहा! गजब बात! टीका भी टीका, वह अमृत का प्रवाह चला जाये! आहाहा!

**परमपारिणामिकभाव की भावना...** भावना... यहाँ वापस भावना अर्थात् कल्पना नहीं। वे रतनचन्दजी कहते हैं कि सामायिक में... ऐसा आता है शास्त्र में। श्रावक को सामायिक में शब्द उपयोग की भावना किसी समय होती है। तो वह भावना अर्थात् ऐसा कि विचार, कल्पना। ऐसा नहीं। सामायिक में, शुद्ध उपयोग होता है, किसी समय सामायिक में। पंचम गुणस्थानवाले श्रावक अन्दर ध्यान में किसी समय आ जाये और किसी समय न आवे। किसी समय सामायिक में शुद्ध उपयोग आ जाता है। वह शुद्ध-उपयोग भावना अर्थात् एकाग्रता है। कल्पना नहीं। भावना अर्थात् ऐसे भाते हैं कि क्या होगा, कैसे होगा? ऐसा नहीं। ऐसा अर्थ करते हैं। सब अर्थ बदल डाले। वे कहें कि तुमने बदले। बात सच्ची।

ऐसी भावना से चार भावान्तर। अर्थात् पारिणामिकभाव से अन्य भाव... गजब बात है न! ऐ! शरीर, वाणी अन्य, राग अन्य, परन्तु क्षायिकभाव पारिणामिकभाव से अन्य? उसका **परिहार करने में अति-आसन्नभव्य जीव समर्थ है,...** इन चार भाव का आश्रय छोड़ने को अति-आसन्न (अर्थात्) नजदीक में जिसकी मुक्ति है, ऐसा जीव, वह समर्थ है। उसकी व्याख्या आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**भाद्र कृष्ण ११, बुधवार, दिनांक - १५-०९-१९७१**
**गाथा-११९, प्रवचन-१२५**

शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त अर्थात् कि वीतरागी परिणति जो मोक्ष का मार्ग। पुण्य-पाप के भावरहित वीतरागदशा, उसका नाम निश्चयमोक्षमार्ग। वह निश्चयमोक्षमार्ग की परिणति किसके आधार से प्रगट होती है? और वह वीतराग परिणति, वह सब महाव्रत, समिति, गुप्ति, प्रतिक्रमणादि का स्वरूप है। समझ में आया? यह बात है यहाँ।

**समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप लक्षण से लक्षित...** कहते हैं, यह मोक्षमार्ग की दशा जो शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त, वह महाव्रत, वह समिति, गुप्ति, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, समाधि, भक्ति इत्यादि के भाव किसके आश्रय से—अवलम्बन से प्रगट होते हैं? वह बात करते हैं। कि जो द्रव्य **समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप लक्षण से लक्षित...** है। भगवान आत्मा अन्तर्मुख चीज़ ध्रुव, वह समस्त परद्रव्यों के अभावस्वरूप है। समस्त रागादि या एक समय की पर्याय, उन सबके अभावस्वरूप से—ऐसे लक्षण से वह लक्षित है। समझ में आया? वह परद्रव्य के अभाव—त्यागस्वभावरूप लक्षण से लक्षित है। भाषा देखो! समझ में आया? **समस्त परद्रव्यों के परित्यागरूप लक्षण से लक्षित...** ऐसा **अखण्ड-नित्यनिरावरण...** भगवान नित्य ध्रुव अखण्ड नित्यनिरावरण **सहज-परमपारिणामिकभाव...** वह वस्तु, उसका आलम्बन, वह उसकी भावना, आहाहा! कहो, समझ में आया?

यह स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी में बाहर के आलम्बन का बहुत विवाद। वे मन्दिर और मूर्ति का आलम्बन है, यह कहे कि उनका आलम्बन नहीं। दोनों में यह सब विवाद है। स्थानकवासी कहे, मूर्ति-बूर्ति परद्रव्य का आलम्बन आत्मा को नहीं होता। मन्दिरमार्गी कहे, उनका आलम्बन भक्ति में होता है। ... आलम्बन लो। चिमनभाई कहते हैं। यह सच्ची बात है। उसमें यह आता है। परन्तु वह तो शुभभाव के समय की बात है। शुभभाव होता है, तब वह आलम्बनरूप निमित्त कहा जाता है, परन्तु वस्तु के

वीतरागी मोक्षमार्ग के परिणाम में वह आलम्बन नहीं है। आहाहा! समझ में आया? निश्चयमोक्षमार्ग, वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र ऐसे जो निर्दोष, निर्विकल्प वीतरागी परिणामधारा, उसका आलम्बन तो वस्तु है। समझ में आया? सब व्यवहार के झगड़े। यहाँ तो कहते हैं, ऐसी जो परमपारिणामिकभाव की भावना... भावना कहो या उसका आलम्बन लिया हुआ भाव। त्रिकाली परमस्वभाव नित्य दल, उसका आश्रय, उसकी भावना, उसमें एकाग्रता, वह मोक्ष का मार्ग, वह नियमसार। समझ में आया?

ऐसे परमस्वभावभाव नित्यानन्द प्रभु के आलम्बन का जो भाव, उसकी एकाग्रता का जो भाव, उसकी भावना... उस भाव को भावना कहा है। उस भावना से उदय... नीचे स्पष्टीकरण किया है। शुभाशुभभाव उपशम... उपशम समकित आदि का, क्षयोपशम—अपूर्ण ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि पर्याय का, क्षायिकभाव का—सर्वथा शुद्ध पर्याय का भी। **चार भावान्तरों का परिहार करने में...** ऐसी पर्याय में चार प्रकार के भाव हैं, परन्तु वह भाव परमस्वभाव ध्रुव से अन्य भाव है—अन्य भाव है। सवेरे 'द्रव्य से पर्याय अन्य है' ऐसा आ गया या नहीं? अन्य में कौनसी बाकी रह गयी? केवलज्ञान? द्रव्य जो वस्तु है ध्रुव नित्य, उससे अन्य पर्याय, वह सब अन्य भाव। भगवान परमभाव से वह पर्याय क्षायिक हो तो भी उस भाव से अन्य भाव है। वह यह भाव नहीं। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे **चार भावान्तरों को...** ऐसी जो चार पर्यायें अर्थात् उन्हें चार भाव कहा यहाँ। ऐसे भावरूपी पर्याय जो भावान्तर (अर्थात्) परमस्वभाव ध्रुव, उस भाव से अन्य भाव का **परिहार करने को...** उन चार भाव को छोड़ने को—त्याग करने को **अति-आसन्नभव्य जीव समर्थ है,...** समझ में आया? अर्थात्? कि भगवान आत्मा परमस्वभावभाव, उसके अवलम्बनवाली जो दशा—उसकी एकाग्रतारूपी जो भावना... उस वस्तु में एकाग्रता, वह पर्याय है और वस्तु त्रिकाली है, उसमें एकाग्रतारूपी जो भाव और भावना और परिणाम, वे मोक्षमार्ग के परिणाम। उन चार भाव का आश्रय उसमें होता नहीं। एक का आश्रय हो तो चार का आश्रय होता नहीं और चार भाव के आश्रय का अभाव... एक त्रिकाली के आश्रय से भाव होने पर चार का आश्रय उसे रहता नहीं।

दूसरे प्रकार से लें तो, कहते हैं कि जो आत्मा वस्तु त्रिकालीद्रव्य निश्चय आत्मा

जो पर्यायरहित है, ऐसे आत्मा की भावना से चार भाव का त्याग होता है। वह भावना फिर उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक है। भावना है, वह उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक है, परन्तु वह भावना द्रव्य के आश्रय से हुई है। इसलिए स्वद्रव्य के आश्रय से हुई भावना से चार भावों का आश्रय वहाँ होता नहीं अथवा चार भाव का वहाँ त्याग—अभाव हो जाता है। अरे, गजब भाई! मूलचन्दभाई! ऐसा स्वरूप है... गजब जगत को।

**मुमुक्षु :** ....में तो इसका आलम्बन लिया जाता है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किसी का आलम्बन-फालम्बन नहीं। धर्म की पर्याय में आत्मा द्रव्य के अतिरिक्त कोई आलम्बन नहीं है। बात तो ऐसी है। किस द्रव्य का? पैसे का और बाहर के द्रव्य का? यह कहते हैं। भगवान का, देव-गुरु का, वह बाहर का आलम्बन। वह आलम्बन, धर्म की पर्याय में उसका आलम्बन नहीं। वह तो पुण्यभाव में उनका आलम्बन है। पुण्यभाव तो बन्ध का कारण है। यहाँ तो मोक्षमार्ग की व्याख्या चलती है, नियमसार चलता है। समझ में आया?

फिर नियम लेंगे १२० में। नियम से यह वस्तु है। आहाहा! ओहोहो! भगवान परमानन्द का धाम, जो अतीन्द्रिय आनन्द का चोसला है। जैसे मोहनथाल की चक्की (बर्फी) करते हैं या नहीं? सेठ! क्या था तुम्हारे वहाँ? बर्फी, चूरमा था। पूछा था किसी को। चोसला... चोसला... टुकड़े, वह चोसला (बर्फी) कहलाता है। मिठाई में बर्फी होती है न? चारों ओर। यह मैसूर की बर्फी हो। इसी प्रकार भगवान आत्मा अकेला अतीन्द्रिय आनन्द की बर्फी-पिण्ड है। आहाहा! ऐसे आत्मा के प्रति आश्रय से प्रगट हुई एकाग्रतारूपी भावना, वह भावना चार भाव का त्याग करने को समर्थ है। ऐसी भावनावाला जीव, ऐसा। समझ में आया? भगवान आत्मा परमस्वभावभाव की एकाग्रतावाला—भावनावाला जीव... भावनावाला जीव... यह टीका में आ गया है। चार भाव का अभाव, परिहार अर्थात् त्याग अर्थात् उसका आश्रय छोड़ने को वह योग्य (—समर्थ) है। जिसने स्वद्रव्य का आश्रय लिया, वह भाव चार का आश्रय छोड़ने को समर्थ है। आहाहा!

**परिहार करने में अति-आसन्नभव्य जीव...** ओहो! जिसे अल्पकाल में केवलज्ञान होनेवाला है। अति-आसन्न—बहुत निकट है मोक्ष। मोक्ष जिसे बहुत निकट है। आहाहा!

ऐसे अति—निकट भव्य जीव ऐसी भावनावाला वह जीव... जीव आ गया वहाँ वापस। उसमें था न टीका में। वहाँ था, **आत्मस्वरूप जिसका आलम्बन है, ऐसे भाव से जीव—**ऐसा था न उसमें? वह यहाँ टीका में आया है। ऐसा **जीव समर्थ है।** आहाहा! जिसकी भावना—एकाग्रता द्रव्य की ओर ढली है, व्यवहार के पर्याय की जिसे भावना नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? त्रिकाल चिदानन्द भगवान नित्यानन्द प्रभु की जिसे सन्मुखता की एकाग्रतारूप भावना है, ऐसी भावना अर्थात् निश्चयमोक्षमार्ग की पर्यायवाला जीव... आहाहा! चार भाव का त्याग करने को वह समर्थ है। कहो, समझ में आया? नीचे (फुट) नोट में स्पष्टीकरण।

**यहाँ चार भावों के परिहार में क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय का भी परिहार करना कहा है,...** एक शुद्धपर्याय का इसमें त्याग है। त्याग करने को कहा है, **उसका कारण इस प्रकार है : शुद्धात्मद्रव्य का ही...** शुद्धात्मद्रव्य का ही (अर्थात्) अंशी का... अंशी उसे अपेक्षा से कहा है। वरना तो है तो वह द्रव्य एक अंश। निश्चयनय का विषय है न? वह कहीं प्रमाण का विषय नहीं। नय का विषय अंश ही है। परन्तु यहाँ अंशी कहने का कारण वह पर्याय है, वह एक समय की है और यह पूरा द्रव्य है। वरना परमपारिणामिकभाव, वह भी निश्चयनय का विषय है, नय का विषय। नय का विषय तो एक अंश ही होता है। भाई! समझ में आया? क्या कहा? तथापि यहाँ 'अंशी' शब्द प्रयोग किया है। त्रिकाल द्रव्य सही, परन्तु पर्याय नहीं न उसमें? इस अपेक्षा से अंश हुआ। समझ में आया?

वह है तो त्रिकाली द्रव्य। पर्याय बिना का, हों! इसलिए इस अपेक्षा से एक अंश हुआ। अंशी भी एक अंश हुआ, परन्तु पूरा द्रव्य है, इसलिए अंशी कहा जाता है। पूरा अर्थात् वह पर्याय बिना का। समझ में आया? नय के दो पक्ष लो, तब पर्याय भी एक अंश है और त्रिकाली भी एक अंश है। दो अंश मिलकर प्रमाण का विषय होता है। यहाँ बड़ा अंश है, त्रिकाली अंश है, इसलिए अंशी कहा जाता है। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! **शुद्धात्मद्रव्य का ही...** शुद्धात्मद्रव्य जो त्रिकाली है, वह तो नय का विषय है। समझ में आया? और पर्याय और द्रव्य दो मिलकर पूरे प्रमाणज्ञान का विषय है और प्रमाण का अवयव ऐसा इस नय का यह विषय है। समझ में आया?

यह सब कब सीखना ? संसार में चक्रवृद्धि ब्याज नहीं निकालते बनिये ? चक्रवृद्धि ब्याज समझे ? सेठ! दस लाख दिये हों आठ आना रूप से... अभी तो (ब्याज) डेढ़ रुपया हो गया है। पहले आठ आना था न, सौ रुपये के आठ आना। अभी डेढ़ रुपया हो गया, डेढ़ प्रतिशत। यह हो गया है। सुना है ऐसा। तुमको तो सब खबर ही होगी, यहाँ तो सुना हो। आठ आना हो गया, सौ रुपये के आठ आना। हजार हो तो पाँच रुपये एक महीने में। अब तो डेढ़ रुपया हो गया। यहाँ तो कहते हैं, डेढ़ रुपया—प्रतिशत ब्याज में हों दस लाख, उस दस लाख का एक दिन का ब्याज गिनकर फिर दूसरे दिन उस ब्याजसहित पैसे का वापस डेढ़ प्रतिशत ब्याज गिने। ऐसे तीसरे दिन उसके ब्याजसहित, उसका डेढ़ प्रतिशत गिने। ऐसा बारह महीने में गिने, उसका नाम चक्रवृद्धि ब्याज कहलाता है।

ब्याजसहित पूँजी का ब्याज वापस। पूँजीसहित ब्याज का वापस ब्याज। आहाहा! यह निकाले वहाँ फुरसत में हों वे। कानपुर जाये वहाँ सर्वत्र ध्यान रखे। सेठ! पैसे का बहुत ध्यान वे रखते हैं न वहाँ। कानपुर जायें... वापस किसी को देना पड़े, ऐसा कहते हैं, इसलिए लेने जाते हैं। आहाहा! इसी प्रकार यहाँ तो कहना है कि बनिया उसमें—चक्रवृद्धि ब्याज में लवलीन हो। यह सूक्ष्म बात जहाँ चले तो (कहे), क्या कहते हैं ? कहते हैं, भगवान आत्मा ध्रुव अविनाशी जो अंश है त्रिकाली। पर्याय नाशवान अंश है। पर्याय है, वह तो नाशवान अंश है न ? चारों भाव नाशवान अंश है। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय भी नाशवान अंश है। क्योंकि केवलज्ञान दूसरे समय में रहता नहीं। आहाहा! दूसरे समय में केवलज्ञान दूसरा होता है। वह की वह पर्याय दूसरे समय में केवलज्ञानी को नहीं रहती, सिद्ध को नहीं रहती। आहाहा!

वस्तुस्थिति ऐसी है। उसे द्रव्य-गुण-पर्याय क्या कहना, कुछ खबर नहीं होती। दरकार कहाँ है ? उन पैसे के लिये अकेला क्या करता था चारों ओर भटकाव ? साईकिल पर बैठकर ऐसे जाये और ऐसे जाये, आवे और जाये। लड़के-बड़के नहीं थे तब तो अकेले करते थे। ... आहाहा! जिसका रस है, उसमें प्रयत्न किये बिना रहे नहीं। क्यों, बराबर है ? सेठ! जिसकी आवश्यकता जाने, उस ओर पुरुषार्थ झुके बिना रहता नहीं। आहाहा! कहते हैं कि भगवान आत्मा शुद्धात्मद्रव्य अंशी का ही **आलम्बन लेने से**

**क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय प्रगट होती है।** उस त्रिकाली द्रव्य का आलम्बन लेने से क्षायिक समकित आदि प्रगट होते हैं। भगवान के समक्ष में क्षायिक समकित होता है, ऐसा आता है न शास्त्र में? श्रुतकेवली या केवली या तीर्थंकर के समीप में क्षायिक समकित होता है। यहाँ कहते हैं कि क्षायिक समकित द्रव्य के अवलम्बन से होता है। यह तो व्यवहार की बात की। समझ में आया? आहाहा!

लो, अंशी का **आलम्बन लेने से क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय प्रगट होती है।** भगवान आत्मा नित्यानन्द में एकाग्र होने से क्षायिक समकित आदि प्रगट होते हैं। क्षायिक समकित हुआ हो, उसके आश्रय से नयी क्षायिक पर्याय प्रगट नहीं होती, ऐसा कहते हैं। क्योंकि पर्याय पलटती है न। क्या कहा यह? क्षायिक समकित प्रगट हुआ श्रेणिक राजा को। वह द्रव्य के अवलम्बन से प्रगट हुआ। एक बात। अब वापस नयी दूसरे समय में क्षायिक समकित की पर्याय प्रगट होती है। पर्याय है न वह तो? वह पर्याय, क्षायिक समकित हुआ उसके अवलम्बन से वह पर्याय नहीं होती। देखो न! इसकी क्रीड़ा। समझ में आया?

अरे! द्रव्य के अवलम्बन से क्षयोपशमभाववाली चारित्रपर्याय प्रगट हुई और साथ में क्षायिक समकित हो, परन्तु वह क्षायिक समकित और क्षयोपशम चारित्र की पर्याय उसके अवलम्बन से, दूसरी पर्याय जो होती है, वह इसके अवलम्बन से नहीं होती। समझ में आया? आहाहा! द्रव्य का समुद्र... द्रव्यस्वभाव का समुद्र, उसमें से तरंग उठे, कहते हैं। तरंग में से तरंग नहीं उठती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **आलम्बन लेने से क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय प्रगट होती है। क्षायिकभाव का-शुद्धपर्याय का-आलम्बन करने से...** लो, क्षायिक समकित प्रगट हुआ पहले समय में और दूसरे समय में वापस पर्याय पलटती है न क्षायिक समकित की, तो दूसरे समय में जो क्षायिक समकित की पर्याय होती है, वह पूर्व के क्षायिक समकित के अवलम्बन से नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? आहा! ऐसा बादशाह परमात्मा स्वयं रंक होकर घूमे। मुझे यहाँ दो... मुझे यहाँ दो, मुझे मान दो, मुझे बड़ा कहो, मुझे कुछ अच्छा कहो। आहाहा! तेरी महत्ता कितनी? कि तुझे प्रगट हुई क्षायिक समकित की दूसरी पर्याय भी तेरे आधार

के अतिरिक्त वह प्रगट नहीं होती। आहाहा! पाटनीजी! आहाहा! परम सत्य है, परम सत्य। ओहो! सत्य स्वभाव का पिण्ड प्रभु।

**क्षायिकभाव का-शुद्धपर्याय का...** अर्थात् अंश का... उस त्रिकाली को अंशी कहा इसलिए। **आलम्बन करने से क्षायिकभावरूप शुद्धपर्याय कभी प्रगट नहीं होती।** आहाहा! समझ में आया? **इसलिए क्षायिकभाव का भी आलम्बन त्याज्य है।** क्षायिक समकित प्रगट हुआ उसे भी, क्षायिक समकित की दूसरी (समय की) पर्याय के लिये क्षायिक समकित की (पूर्व) पर्याय त्याज्य है। समझ में आया? आहाहा! अब व्यवहार का त्याग, वह तो कहीं रह गया। व्यवहार से यह होता है और व्यवहार से यह होता है। निश्चयपर्याय व्यवहार से होती है। अरे भगवान! क्षायिक की पर्याय हुई, उसके आश्रय से क्षायिक की नयी पर्याय नहीं होती, तो राग के आश्रय से निश्चय समकित हो, यह तीन काल में नहीं हो सकता। समझ में आया? आहाहा!

**आलम्बन त्याज्य है। यह जो क्षायिकभाव के...** प्रगट हुई वर्तमानदशा क्षायिक समकित... श्रेणिक राजा जो दूसरे भव में तीर्थंकर होनेवाले हैं। अभी नरक में हैं। उन्हें भी क्षायिक समकित की पर्याय क्षण-क्षण में पलटती है। परन्तु उस क्षायिक समकित की पर्याय का पलटना अर्थात् नया उपजना, वह द्रव्य के आश्रय से उपजती है। क्षायिक समकित की पर्याय है, उसके आश्रय से नयी उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं है। यह नरक में। आहाहा! परन्तु आत्मा कहाँ नरक में था? आत्मा पर्याय में आता नहीं, यह तो फिर नरक में कहाँ से आया? आहाहा! समझ में आया? ऐसा स्वरूप है, (ऐसा) अभी सुना नहीं इसने। समझ में आया?

इसे ऐसे अन्तर में विश्वास (आवे) कि यह पूर्णस्वभाव का सागर परमात्मा, उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन से लेकर केवलज्ञान की पर्याय प्रगट होती है। वह क्षायिक समकित हुआ, उसके अवलम्बन से भी केवलज्ञान नहीं होता। लो, ठीक! यह निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट हुआ है और फिर मोक्ष—केवल(ज्ञान) हो, वह निश्चयमोक्षमार्ग के आश्रय से नहीं होता। अरे... अरे! त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से केवलज्ञान होता है। समझ में आया? आहाहा!

**यहाँ ऐसा उपदेश दिया है कि...** दूसरा पेराग्राफ नोट में। **परद्रव्यों का और परभावों का आलम्बन तो दूर रहा,...** लो, यह देव-गुरु-शास्त्र, मनुष्य और संहनन— हड्डियों की मजबूती और परभाव विकल्प राग का आलम्बन तो दूर रहो। अरे! ऐसा सत्य इसे कान में न पड़े, ऐसा परम सत्य इसे श्रवण में न आवे, तब स्वीकार तो कहाँ से करे? आहाहा! समझ में आया? **परद्रव्यों का और परभावों का आलम्बन तो दूर रहा, मोक्षार्थी को अपने औदयिकभावों का...** अर्थात् कि शुभाशुभ विकार की पर्याय, उस शुभाशुभभाव का... जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, ऐसे शुभभाव का भी आलम्बन छोड़ना। आहाहा! मोक्षार्थी को, उन्हें तीर्थंकर (गोत्र) बाँधने का भाव आया, परन्तु उसका आलम्बन उन्हें छोड़ना। आहाहा! **मोक्षार्थी को अपने औदयिकभावों का...** देखा? और अपने... औदयिकभाव उसका नहीं, परन्तु पर्याय में है न, इस अपेक्षा से।

**समस्त शुभाशुभ...** चाहे तो जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, जिस भाव से आहारक शरीर बँधे, जिस भाव से सर्वार्थसिद्धि का भव बँधे। आहाहा! सहदेव और नकुल— पाण्डव सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य बँधा वहाँ शत्रुंजय (पर)। पाँच मुनि योद्धा। नग्न दिगम्बर आत्मध्यान में मस्त ऐसे। द्रव्य के आलम्बन में अन्दर लीन थे। चढ़ाये... धर्मराजा, भीम और अर्जुन—तीन तो आलम्बन में उग्र होकर केवल, मोक्ष प्राप्त हुए। ओहोहो! दो को जरा विकल्प आया, जरा स्व के आलम्बन से हटकर। अरे! धर्मराजा अर्थात् महापुरुष, समर्थ भीम और अर्जुन बाणावली। उनकी बाण-आवली अर्थात् बाण अटके नहीं। वह पुरुष ध्यान में मस्त। लोहे के आभूषण पहनाये। अन्तर के आलम्बन में घुस गये हैं। केवलज्ञान, मुक्ति शत्रुंजय के क्षेत्र में।

उस क्षेत्र के ऊपर विराजते हैं। उस सिद्धक्षेत्र के ऊपर विराजते हैं, यह यात्रा का हेतु है। दूसरा कोई (हेतु नहीं)। वहाँ नीचे स्मृति के लिये है (कि) ओहोहो! भगवान यहाँ से मोक्ष पधारे हैं। वहाँ मोक्ष पधारे हैं। सादि-अनन्त उस क्षेत्र में ऊपर रहेंगे। एक क्षेत्र में तीन को (मोक्ष और दो) सर्वार्थसिद्धि में गये। आहाहा! इतना आलम्बन आत्मा का छूट गया, विकल्प हो गया जरा। सेठ! बाह्य का विकल्प हुआ। मुनि को दो भव हो गये। सर्वार्थसिद्धि और एक दूसरा मनुष्य का भव। ३३ सागर (के लिये स्वर्ग) गये। उसके पश्चात् अभी मनुष्य का भव होगा, तब मोक्ष जायेंगे। यह राग है न, वह भी

धर्मात्म का राग। ठीक! प्रशस्त। आहाहा! तेरे स्वभाव की जाति नहीं, वह कुजातिभाव भव का कारण है। आहाहा! शुभराग—साधर्मी धर्मात्मा का राग, उसमें और बांधव—एक गर्भ से—कुन्ती के गर्भ से—एक माता के गर्भ से जन्मे हुए पाँचों और उसमें धर्म मुनि, सन्त। आहाहा! देखो तो वीतरागमार्ग। आहाहा!

**मुमुक्षु :** वात्सल्यभाव हुआ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह वात्सल्य विकल्प है, दो भव हो गये। वात्सल्य, अपना वात्सल्य क्यों छूट गया? सेठ! इतना स्व-आलम्बन से च्युत हुआ। तीन लोक का नाथ परमात्मा समीप में से हट गया इतना। आहाहा! समझ में आया? यह शत्रुंजय। देखो न! पाँचों... यह लोग कहते हैं श्वेताम्बर में कि पाँचों मोक्ष गये। दो व्यक्ति सर्वार्थसिद्धि में गये हैं, तीन व्यक्ति मोक्ष गये हैं। उपशम....

**मुमुक्षु :** उनके स्पर्श से पत्थर....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कुछ हुआ नहीं। पत्थर तो पत्थर है।

**अपने औदयिकभावों का...** शुभाशुभभावों का... आहाहा! मोक्षार्थी को उसका भी आलम्बन छोड़ना चाहिए। आहाहा! गजब है न! क्या छुड़ाते हैं यहाँ? यह प्रवचनसार में आता है न? भक्ति के काल में उसे राग आता है। भक्ति करना मुनियों की। 'करना' यह तो व्यवहारनय का कथन है। उस काल में ऐसा संयोग है, वहाँ (और) यहाँ भी उस प्रकार का राग का काल है। करना और करनेयोग्य है, ऐसा है ही कहाँ? आहाहा! ऐसा मार्ग, वह भी मार्ग! यह मुनि ऐसे हैं, इसलिए मुझे राग करना चाहिए और इनकी वैयावृत्य कर सकता हूँ—यह बात ही कहाँ है? परन्तु उस काल के समय में ऐसा राग होता है। इसलिए उनकी वैयावृत्य करते हैं, ऐसा कहा जाता है। वैयावृत्य कौन करे? परद्रव्य की इतनी वैयावृत्य, राग आया वह हो गयी। आहाहा! राग, वह परद्रव्य है अकेला। आहाहा!

भगवान आत्मा जहाँ निधान पड़ा है, उसकी नजर छोड़कर जो दूसरे का आश्रय लेने जाये तो नुकसान होगा। आहाहा! यहाँ तो सुनने का आश्रय, वह भी, कहते हैं, नुकसान है।—ऐसा यहाँ कहते हैं। सेठ! क्या करना? अरे! गजब बात है। परद्रव्य का

(तो क्या), परन्तु शुभभाव का आलम्बन छोड़न। आहाहा! ऐई पोपटभाई! आहाहा! उसके प्रति श्रद्धा में तो ले कि यह आलम्बन, यह करनेयोग्य द्रव्य का है। परद्रव्य का आलम्बन... आहाहा! करनेयोग्य नहीं, दूसरे द्रव्य का आलम्बन (करनेयोग्य नहीं)। इसका ही करनेयोग्य है। वह ठिकाना नहीं वहाँ, ऐसा श्रद्धा में तो ले। समझ में आया? आवे, परन्तु उसे हेय जाने। आहाहा!

शुभाशुभभाव का, अरे! उपशमभाव का, उपशम समकित आदि का आलम्बन छोड़ने का कहा। आहाहा! उपशम समकित हुआ है, उसे छोड़ (अर्थात्) आलम्बन छोड़। वह तो पर्याय है। समझाते हैं न! उपशम समकित। उपशम समकित आदि अर्थात् चारित्र (आदि)। क्षयोपशम समकित—**( अपूर्ण ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि पर्यायों का )...** अल्प शुद्ध ज्ञान-दर्शन की पर्याय का भी आलम्बन छोड़नेयोग्य है। पर्याय का आश्रय नहीं, ऐसा कहते हैं। **तथा क्षायिकभावों का... ( सर्वथा शुद्ध पर्यायों का )...** उसमें अपूर्ण का... क्षायिक समकित आदि... ऐई! इसमें निवृत्त कहाँ हो? यदि आत्मा के ऊपर इसकी दृष्टि पड़े, आलम्बन में बाहर आने को निवृत्त कहाँ है यह? पुरुषार्थ की कमी के कारण आवे तो उसे हेय समझना। आहाहा! तीन लोक के नाथ का आलम्बन छोड़ना, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। उसके भाव का आलम्बन छोड़ना शुभ का, प्रभु ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जहाँ ऐसा आलम्बन छोड़ना (कहा), और वहाँ मूर्ति कहाँ से आयी वापस? और ऐसा दूसरे कहते हैं। अरे, सुन न! जब इतनी सब बात करो, वहाँ यह कहाँ से आया? भाई! तुझे खबर नहीं। उसमें आलम्बन पूर्ण न हो, तब शुभराग का प्रसंग, काल हो, इसलिए आवे। तब उस काल में शुभभाव में सामने वही चीज़ निमित्त होती है, परन्तु हेयबुद्धि से होती है। गजब बात है। समझ में आया? करता कहाँ है? होता है। होता है वहाँ जाता है—लक्ष्य ऐसे जाता है। जानता है (कि) है साथ में भाव, बस। (परन्तु) हेय है। तब कहते हैं कि हेय है, उसे करना किसलिए? परन्तु करने का प्रश्न ही कहाँ है यहाँ? आता है बीच में, पूर्ण स्वरूप न हो, वहाँ बाधकपना बीच में खड़ा होता है।

**मुमुक्षु :** निर्बलता के कारण से ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** निर्बलता-सबलता कुछ नहीं, वह वहाँ है। अपूर्ण है न, इसलिए ऐसा भाव आवे और उस भाव के ऊपर भी लक्ष्य जाये, परन्तु वह हेयबुद्धि से जाये वहाँ। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का। जैन में जन्मे को भी सुनने को मिलता नहीं। ऐ मूलचन्दभाई! आहाहा! जिन्दगी जाये ६०-६० वर्ष, ५०, ७०-७० चले गये। हम जैन है, दिगम्बर हैं। दिगम्बर परन्तु, जैन क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

क्षायिकभाव (सर्वथा शुद्ध पर्याय...) क्षायिक समकित तो चौथे-पाँचवें में, छठवें-सातवें में होता है। क्षायिक समकित चौथे से शुरु हो जाता है, तथापि उसका आलम्बन छोड़नेयोग्य है। आहाहा! अरे! मार्ग, वह भी मार्ग है न! वीतरागभाव है न! वीतरागभाव को आलम्बन तो आत्मा का होवे। वीतरागभाव को आलम्बन पर का होगा? तब कहे कि हमको (पूर्ण) वीतराग(भाव) प्रगट नहीं तब तक? वहाँ तक राग होता है। है, इतना जानना। व्यवहारनय का विषय नहीं है, ऐसा नहीं है; है, (परन्तु) आश्रय करनेयोग्य और लाभदायी है, ऐसा नहीं है। आहाहा! इसमें झगड़ा करे तो पार न आवे। व्यवहार कारण और निश्चय कार्य, व्यवहार हेतु... छहढाला में आता है न? 'नियत का हेतु...' यह सब... परन्तु वीतराग की वाणी पूर्वापर विरोधरहित होती है। विरोधसहित होगी? यहाँ ऐसा कहते हैं, चार भाव का त्याज्य होने के आश्रय करनेयोग्य है। वहाँ और ऐसा कहते हैं कि उसके कारण से लाभ होता है? समझ में आया?

**'जो जाणदि अरहंतं'** वह आया नहीं? परद्रव्य आया है, लो। परद्रव्य के द्रव्य-गुण-पर्याय जाने, उसे समकित होता है, आत्मा का भान होता है, ऐसा आता है, लो। एक ओर कहे कि राग के आलम्बन से लाभ नहीं, परद्रव्य के आलम्बन से लाभ नहीं। परद्रव्य का, शुभभाव का आलम्बन भी छोड़ना। वहाँ ऐसा कहा कि जिसने अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाना, वह आत्मा को जानता है और मोह का क्षय होता है। यह तो निमित्तपने का ज्ञान कराया है। उस समय अरिहन्त के पर्याय का उसे ज्ञान है, वह लक्ष्य छूटकर जहाँ स्व के आश्रय में जाता है, तब उसे समकित होता है। उसमें निमित्त उस समय लक्ष्य में वह था, इतना बतलाया है। अरे, गजब! पाठ तो ऐसा है, **'जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणपज्जयत्तेहि, सो जाणदि अप्पाणं...'** लो, है? करो विवाद,

वाद करो वाद, लो। चर्चा करे, ऐसा कहे। चर्चा करो अपने विचार से। चर्चा नहीं, तुझे वाद करना है।

**मुमुक्षु :** खानिया में तो हो गयी चर्चा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बहुत चर्चा हो गयी। बहुत पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं।

**मुमुक्षु :** परन्तु निमित्त से होता है.... जिसे करना हो, उसे भटकना....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जिसने निर्णय कर रखा है कि हमारा सच्चा हो... भाई! सिद्धान्त तो एक सरीखा होना चाहिए न! वहाँ ऐसा कहे कि अरिहन्त परद्रव्य है, उनका ज्ञान करे उसे स्व का ज्ञान होता है। उसका पर के आलम्बन से स्व का आलम्बन प्रगटे? ज्ञान—सम्यग्ज्ञान तो स्व-आलम्बन से होता है। वह तो उस समय पहले यह था, सर्वोत्कृष्ट अरिहन्तदेव परमात्मा जगत में होते हैं, ऐसी पर्याय की पूर्णता का लक्ष्य जिसे पहले हुआ, उस लक्ष्यवाला स्थिर हो जाता है अपने में... जाये। समझ में आया? उसके लक्ष्य से यह लक्ष्य होता है, ऐसा नहीं। अरे... अरे! गजब बात भाई! वरना तो पूर्वापर विरोध हो जायेगा। पूर्वापर विरोध वीतराग के मार्ग में नहीं हो सकता। समझ में आया?

**आलम्बन छोड़ना चाहिए; मात्र परमपारिणामिकभाव का...** भगवान! अपनी पर्याय का आलम्बन नहीं, तो वहाँ फिर परद्रव्य का आलम्बन तो कहाँ रहा? कहते हैं। यह तो पहले आ गया। परद्रव्य का और परभाव का आलम्बन दूर रहो। यह तो पहले आया। समझ में आया? **मात्र परमपारिणामिकभाव का...** त्रिकाली ध्रुवस्वभाव नित्यानन्द प्रभु उस **शुद्धात्मद्रव्यसामान्य का...** परमपारिणामिकभाव अर्थात् कि शुद्धात्मद्रव्यसामान्य, ऐसा। शुद्धात्मद्रव्यसामान्य ध्रुव त्रिकाली सदृश स्वभाव। **आलम्बन लेना।** लो, **उसका आलम्बन लेनेवाला भाव ही...** भगवान त्रिकाली ध्रुवस्वरूप का आश्रय लेनेवाला भाव ही, उसका आलम्बन लेनेवाला भाव ही **महाव्रत...** है। उसे सच्चे महाव्रत कहते हैं। यह सब परद्रव्य के लक्ष्य से महाव्रत-फहाव्रत, यह सब सच्चे महाव्रत हैं ही नहीं। समझ में आया? २८ मूलगुण तो पालते हैं न? महाव्रत तो पालते हैं न? यहाँ कहते हैं कि तू कहता है, वह महाव्रत का भाग, वह राग है, विकल्प है। वह महाव्रत ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जिसमें आत्मा परमस्वभावी त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु जिस भाव को उसका आधार मिला, जिस भाव ने उसका आलम्बन लिया, जिस भाव ने द्रव्य का आश्रय लिया, उस भाव में महाव्रतपना है। समझ में आया? अमरचन्दभाई! ऐसी व्याख्या है। आहाहा! अर्थात्? कि शुद्ध भगवान आत्मा त्रिकाली परमस्वरूप के आश्रय से प्रगट हुई पर्याय, वह अहिंसा है, वह सत्य है, वह अन-दी हुई चीज़ है, अन... से आई हुई है, वह सम्यक् वह ब्रह्मचर्य है। वह ब्रह्मानन्द के आश्रय से पर्याय प्रगटे, वह ब्रह्मचर्य है। आहाहा! पर के आश्रय से विकल्प उठे, वह ब्रह्मचर्य नहीं। आहाहा! चाहे तो शरीर से ब्रह्मचर्य पालता हो, परन्तु आलम्बन तो पर का (है कि) यह मुझे नहीं करना, यह मुझे नहीं करना, ऐसा है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अन्तर्मुख प्रभु साक्षात् विराजता है, उसके आलम्बन से प्रगट हुई दशा, उसे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह कहते हैं। समझ में आया? नग्नदशा, वह अपरिग्रहभाव है, ऐसा नहीं। ऐसे महाव्रत, पर को न मारे, ऐसे पंचमहाव्रत के विकल्प, वह भी अपरिग्रहव्रत वह नहीं। त्रिकाली जिसमें राग और पर्याय का अभाव है, ऐसे द्रव्य के आश्रय से जो प्रगट हो, उस पर्याय को अपरिग्रहव्रत कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

**आलम्बन लेनेवाला भाव ही...** एकान्त नहीं हो जाता? **भाव ही महाव्रत है,...** फिर यह कथंचित् व्यवहार महाव्रत हैं वे? वे नहीं, वे व्रत ही नहीं। महाव्रत के विकल्प, वह व्रत ही नहीं, उसे व्रत कहना, वह तो दोष है। समझ में आया? वह तो शुभभाव है। यह तो पहले कहा। शुभभाव का आलम्बन छोड़ना। आहाहा! कठिन मार्ग परन्तु भाई! अनन्त काल के संसार का अन्त लाने के लिये और अनन्त-अनन्त काल आनन्द की समाधि रहे, ऐसा कारण, वह तो अपूर्व ही होगा न! आहाहा! स्पष्ट ही है त्रिकाल, उसमें कहीं (शंका) नहीं। आहाहा! अरे! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के मार्ग में दूसरा क्या हो? अरे! लोग गड़बड़ करते हैं। अजैन में गड़बड़, जैन के वाडा में गड़बड़... भाई! उसमें तुझे नुकसान है। उस नुकसान का फल कठोर है, भाई! इसका फल बड़ा महान केवलज्ञान। मेरे चैतन्य के अवलम्बन से, मेरे प्रभु के आश्रय से जो पर्याय हो, उसे यहाँ मोक्षमार्ग कहते हैं। निश्चय मोक्षमार्ग के पर्याय के ही यह सब प्रकार हैं। प्रतिक्रमण,

प्रत्याख्यान, आलोचना और प्रायश्चित्त समस्त। नियमसार... नियमसार... ओहोहो!

श्रावण कृष्ण दूज को भाई बाहर प्रसिद्ध किया है। तुम्हारा वहाँ उसमें लेखन है उसमें सामने। उसमें सामने है न रामजीभाई का प्रकाशकीय (निवेदन)। तब श्रावण कृष्ण दूज थी। भाई ने पहला उपोद्घात किया है, वह श्रावण कृष्ण एक। यहाँ किया है श्रावण कृष्ण दूज। वीर संवत् २४७७। कितने वर्ष हुए? बस। सात और सत्ताईस (बीच में) बीस वर्ष हुए... बहिन के जन्मदिन में यह बाहर प्रसिद्ध हुआ है, लो। कृष्ण दूज है उसमें, हों! रामजीभाई के अक्षर का है। यह नियमसार!

**उसका आलम्बन लेनेवाला भाव ही...** भाई! वीतरागमार्ग में 'ही' नहीं होता। आता है न श्रीमद् में कि मेरा महावीर 'ही' न कहे? वह तो पूरे (-प्रमाण) द्रव्य की अपेक्षा की बात है कि आत्मा नित्य ही है, अनित्य ही है, ऐसा (नहीं आता)। परन्तु द्रव्य से नित्य ही है, ऐसा महावीर परमात्मा कहते हैं। ऐसा **आलम्बन लेनेवाला भाव ही महाव्रत है...** दूसरे महाव्रत के विकल्प, उसे महाव्रत नहीं कहते हैं। आहाहा! महाव्रत... पाँच हो गये। **समिति...** ईर्या, भाषा, ऐषणा... वह सब यह भगवान आत्मा त्रिलोक का नाथ स्वयं, जिसके ज्ञान में, ऐसे लोकालोक अनन्त हों तो भी जिसकी ज्ञान की एक पर्याय में ज्ञात हो, ऐसी अनन्त पर्याय का सागर भगवान, आहाहा! कहते हैं, उसके आलम्बन से जो दशा हो, उसे समिति कहते हैं। ऐसे देखकर चलना (आदि) वह तो सब विकल्प है, वह समिति नहीं, ऐसा कहते हैं। वह तो शुभभाव है।

**मुमुक्षु :** व्यवहारभाव वे सब खोटे हैं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खोटे कहाँ? है, ऐसा बतलाया है, व्यवहार से है, ऐसा बतलाया है परन्तु है, वह स्वरूपदशा है, ऐसा कहा वहाँ?

**मुमुक्षु :** अमृत तो कहा है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अमृत अर्थात् फिर व्यवहार। निश्चय अमृत का आरोप देकर व्यवहार (कहा है)। निश्चय महाव्रत यह हुए उसे—राग को व्यवहार महाव्रत (कहा)। निश्चयचारित्र आया तो राग को व्यवहारचारित्र (कहा)। वह तो सब आरोपित कथन है, निरूपण का वह कथन है। समझ में आया? मार्ग तो ऐसा है भाई! उसमें कहीं

फेरफार होता ही नहीं। सोलह-सोलह आनी करे तो कुछ हो, ऐसा नहीं, ऐसा मार्ग है।

**समिति...** यह देखकर चलना, निर्दोष आहार लेना, वह (समिति) नहीं। वह तो सब विकल्प है, कहते हैं।

**मुमुक्षु :** चाहे जैसा आहार ले आवे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चाहे जैसे की बात कहाँ है यह? निर्दोष आहार—उसके लिये न बनाया हुआ, ले तो वह विकल्प है, परलक्ष्यीभाव है। स्व-आलम्बन का भाव वह है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

समिति, यह **गुप्ति...** तेरह प्रकार का चारित्र। पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति। (यह) तेरह प्रकार का चारित्र जो लोग कहते हैं, परन्तु वह आत्मा के अवलम्बन से हो वह। तू उसके अवलम्बन से माने, वह नहीं। आहाहा! तेरह प्रकार का चारित्र कहते हैं न भाई! पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति—यह सब आत्मा को अवलम्बन करनेवाला भाव ही उसे कहा जाता है। समझ में आया? और उसे ही मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। पर के अवलम्बन का जो भाव व्यवहाररत्नत्रय जिसे कहते हैं, वह मोक्षमार्ग ही नहीं है। आहाहा! बन्धमार्ग को मोक्ष के मार्ग का आरोप दिया जाता है। इसलिए स्व के आश्रय से जो होती है पर्याय, उसे मोक्षमार्ग कहते हैं। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**भाद्र कृष्ण १२, गुरुवार, दिनांक - १६-०९-१९७१**
**गाथा-११९, प्रवचन-१२६**

(नियमसार) सिद्धान्त है, शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त (अधिकार) अर्थात् कि संसार का नाश होने का उपाय। उसमें शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त कहते हैं। मोक्षमार्ग कहो, संसार के उदयभाव का नाश करने का उपाय कहो—एक ही प्रकार है। यहाँ आया था अन्दर, नोट। यह आत्मा का परमस्वभाव जो त्रिकाली ध्रुव नित्यस्वभाव, उसका आलम्बन लेनेवाला भाव, वह शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त और वह सब ही है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में अनादि-अनन्त पूर्ण वीतरागमूर्ति आत्मा है। ऐसे ध्रुव का आलम्बन लेना, जिस भाव से आलम्बन हो, वह भाव ही मोक्ष का मार्ग है, निश्चयप्रायश्चित्त, महाव्रतादि उसे कहा जाता है और इसके अतिरिक्त चार भाव का आलम्बन छोड़ना। यहाँ आया वहाँ तक नोट में। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय है, उस पर्याय का आश्रय छोड़ना—आलम्बन छोड़ना, उसका नाम चार भाव का त्याग कहा जाता है। आहाहा!

चार भाव का त्याग आता है न पाठ में? परिहार करना। उदय—मिथ्यात्व, रागादि; उपशम—समकित आदि; क्षयोपशम—ज्ञानादि; क्षायिक—समकित आदि। यह सब पर्यायें हैं। पर्याय का त्याग करना, ऐसा कहा है अन्दर। पर्याय का त्याग करना अर्थात् कि उसका आलम्बन त्याग करना। उसका आश्रय त्याग करके अकेला परमस्वभाव का आश्रय करना। वह भाव जैनशासन और वीतरागभाव है। समझ में आया? यह कहा, **आलम्बन छोड़ना चाहिए; मात्र परमपारिणामिकभाव का**—अकेला सार तत्त्व है। **शुद्धात्मद्रव्यसामान्य का—आलम्बन लेना चाहिए।** यह तो बारह अंग का निचोड़ है। वस्तु अन्तर प्रभु पूर्ण परमस्वभावभाव, द्रव्यस्वभावभाव का आलम्बन लेना, उसका आश्रय लेना, उसमें लीन होना, वह जैनशासन है। लो, यह जैनशासन। बाकी चार पर्याय का त्याग किया अर्थात् कि उसके आलम्बन का त्याग, उसे त्याग कहा जाता है। अरे गजब!

**मुमुक्षु :** द्रव्य का आलम्बन....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आलम्बन का अर्थ? प्रगट क्षायिक समकित है न समकिती को। सबकी बात है न! एक की कहाँ बात है? क्षायिक समकित कहो, क्षयोपशम सम्यग्ज्ञान बारह अंग के विकासवाला हो, वह भी आलम्बन करनेयोग्य नहीं। समझ में आया? त्रिकाल वस्तु सच्चिदानन्द शुद्धस्वरूप नित्यानन्द ऐसा परमभाव है, इसके अतिरिक्त चार पर्यायें अपरमभाव है। वे चार भाव, वह आत्मा के त्रिकालीभाव की अपेक्षा से अन्य भाव है—अन्य भाव है। गजब बात है न! आहाहा! एक ओर राजा भगवान आत्मा तथा एक ओर चार पर्याय की प्रजा। प्रजा का आश्रय नहीं लेना, राजा का लेना, ऐसा कहते हैं। प्रेमचन्दजी! भाषा समझते हैं या नहीं? यह तो सादी भाषा है। थोड़ा-थोड़ा... यहाँ मकान रखा है तो समझना पड़ेगा बराबर। समझ में आया? आहाहा! यह तो सादी भाषा है। उसमें कहीं गुजराती और हिन्दी में सैद्धान्तिक शब्द आवे और उसमें कुछ अन्तर न आवे। समझ में आया?

आत्मा, एक समय—सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में उसके दो अंश हैं। एक पर्याय अंश और एक त्रिकाली अंश। यह तो सीधी बात है। यह त्रिकाली जो वस्तु है, उसके अन्तर्मुख होना, उसका आश्रय लेना कि जिसमें से नयी चारित्र, समकित आदि की पर्याय जिसके आश्रय से प्रगट होती है। क्षायिक समकिती को भी क्षायिक समकित की दूसरे समय की पर्याय उस त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से प्रगट होती है। समझ में आया? कठिन मार्ग भाई ऐसा! **उसका आलम्बन लेनेवाला भाव ही...** वस्तु जो वीतरागमूर्ति त्रिकाल ज्ञायकभाव, उसे आलम्बन करनेवाला भाव, उसका आश्रय करनेवाला भाव, वह पर्याय है। वह **भाव ही महाव्रत** है... उस भाव को महाव्रत कहा जाता है। कहो, समझ में आया? उसे **समिति...** कहा जाता है, उसे **गुप्ति...** कहा जाता है। यह तेरह प्रकार का चारित्र है। तेरह प्रकार का चारित्र, त्रिकाल ज्ञायकभाव के अवलम्बन से जो भाव हो, उसे तेरह प्रकार का चारित्र कहते हैं। समझ में आया?

लो, यह चारित्र। पण्डितजी! यह महाव्रत पालना चारित्र है। महाव्रत के दो प्रकार—एक निश्चय महाव्रत, एक व्यवहार महाव्रत। निश्चय महाव्रत—सच्चे महाव्रत, वे त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से होते हैं। खोटे महाव्रत पर के लक्ष्य से होते हैं। सच्चे महाव्रत त्रिकाली

परमसत्य के आश्रय से होते हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा! महाव्रत के दो प्रकार—सच्चे महाव्रत, एक आरोपित कहो या झूठा कहो, असत्य कहो—सब एक ही है। समझ में आया? अमरचन्दभाई! जिसमें आनन्द और ज्ञानादि भरपूर भरे हैं पूरे—परिपूर्ण, ऐसा जो वस्तु स्वभाव—द्रव्यभाव—सामान्यभाव, उसके आलम्बन से महाव्रतादि जो भाव प्रगट हुए, वे सच्चे महाव्रत कहलाते हैं। और वे महाव्रत प्रगट हुए हों, उसे अभी पूर्ण स्थिरता न हो तो परलक्ष्यी महाव्रत आवे, उसे व्यवहार महाव्रत कहा जाता है। व्यवहार अर्थात् झूठे। आहाहा! समझ में आया?

उसे **प्रतिक्रमण...** कहते हैं। जिसने अपना भगवान का आलम्बन—आश्रय—आधार लिया है, ऐसे भाव को प्रतिक्रमण कहते हैं। अरे, गजब व्याख्या यह! उसे **आलोचना...** कहते हैं। इतने शब्द रखे हैं इन्होंने। नहीं तो प्रतिक्रमण के पश्चात् प्रत्याख्यान है। उसमें आलोचना यहाँ आया। प्रत्याख्यान उसे कहते हैं। दूसरे नम्बर में आया था न प्रत्याख्यान? प्रत्याख्यान। प्रत्याख्यान अर्थात् राग के अभाव-स्वभावरूप जो भाव, ऐसा जो प्रत्याख्यान, जिसने ज्ञानभाव का परिणमन किया है। समयसार (में आता है), ज्ञान, वह प्रत्याख्यान है। अर्थात्? जो त्रिकाली ज्ञानस्वभाव भगवान का आलम्बन लेकर जो पर्याय प्रगट हुई, वह ज्ञानस्वभावरूप प्रत्याख्यान है। समझ में आया? ओहो! ऐसा स्वरूप तो अभी कान में पड़े नहीं जिसे, पण्डितजी! सुनने में न आवे, वह समझे—समझण में ले कब? परिणमन करे कब?

आलोचना, उसे संवर कहते हैं। भगवान पूर्ण चैतन्यवस्तु का आश्रय करने से जो भाव आया, उस भाव को संवर कहते हैं। संवर और निर्जरा, वह मोक्ष का कारण है न! उसे संवर कहते हैं। यह संवर-प्रोषध नहीं कहते? जामनगर में बहुत होते हैं जामनगर में। आठम, पाखी। ... पूरे काठियावाड़ में वहाँ जामनगर में, अन्यत्र कहीं नहीं। वहाँ हमेशा प्रौषध यह बाहर की क्रिया... संवर-प्रौषध किये, अमुक किये। किसे कहना संवर-प्रौषध, उसकी खबर नहीं होती। समझ में आया? कितने ही तो और कामकाज करे सवेरे घण्टे—दो घण्टे, फिर आवे, प्रौषध करने आवे। दुकान पर जाकर बैठे, फिर आठ बजे आवे। नाम लिखावे और संवर-प्रौषध हमने किये, ऐसा। परन्तु यह भाई है न ताराचन्दभाई—वीरजीभाई के पिताश्री, वह तो जल्दी आवे। शाम को आवे। प्रौषध

करना हो न जल्दी शाम को आवे। सवेरे चार बजे उठकर करे।७१ में... लाठी हम थे। मेरे पाट के पास सोते थे। चार बजे प्रत्याख्यान प्रौषध का करने उठे। वे लोग जल्दी करे व्यापार करके... परन्तु वह सब विकल्प का—राग का प्रौषध। आहाहा! वीतरागी प्रौषध और सामायिक, वह तो त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से होता है। समझ में आया?

सामायिक है न? सच्ची सामायिक किसके आश्रय से होती है? जादवजीभाई! सामायिक कितनी की होगी? बहुत की है। सच्ची सामायिक उसके आश्रय से होती है कि त्रिकाली भगवान की नजर करने से, उसका आलम्बन करने से जो भाव होता है, उसे सच्ची सामायिक कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! यह तीर्थंकर की स्तुति... चौबीस तीर्थंकर की स्तुति है न चोविसंथो? तीर्थंकर की स्तुति सच्ची उसे होती है कि जो तीन लोक का नाथ आत्मा द्रव्य, उसके आश्रय से भाव हो, उसे स्तुति कहते हैं, उसे केवली की स्तुति कहते हैं। एक ही है। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने तो बात रखी है चारों ओर से। भारी गजब बातें! ओहोहो! पाताल कुँआ फोड़ा है अन्दर से। अन्दर से धारा आयी है।

ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्द की ओर के झुकाववाला भाव, उसके झुकाववाला भाव, उसमें एकाग्रता का भाव, उसके आश्रय का भाव, उसे वन्दन कहते हैं। छह आवश्यक है न? उसे सामायिक कहते हैं, उसे तीर्थंकर की स्तुति कहते हैं। और उसे वन्दन कहते हैं कि जो वन्दनयोग्य त्रिकाली भगवान आत्मा का आश्रय लेकर जो वीतरागी भाव प्रगट हो, उसे वन्दन कहते हैं। सामायिक, चोविसंथो, वन्दन... प्रतिक्रमण, यह तो आ गया, प्रत्याख्यान आ गया। कायोत्सर्ग, यह आयेगा इसमें। पाठ में आयेगा कायोत्सर्ग। समझ में आया? कायोत्सर्ग आयेगा। अन्तिम श्लोक में है। अन्त में है। ...कायोत्सर्ग।'ताव काय ठाणेणं, माणेणं, जाणेणं...' जादवजीभाई!'अप्पाणं वोसिरामि' करते थे न? ऐई, जयन्तीभाई! कायोम्सर्ग उसे कहते हैं कि जिसे वर्तमान पर्याय और राग का अवलम्बन छोड़कर त्रिकाली भगवान का आलम्बन लेने से जो भाव हो, उसे कायोत्सर्ग (कहते हैं)। काया शब्द से विकल्प और पर्याय का भाव, उसे उत्सर्ग किया—छोड़ दिया आलम्बन। समझ में आया? लो, यह सामायिक, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान हुआ। सब आ गया इसमें।

**मुमुक्षु :** ताप में घण्टों तक सामायिक करे धूप में।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूप में? धूप में खड़े रहे.... धूप नहीं। राग में खड़े-खड़े करता है, ऐसा। अन्दर भगवान आत्मा चिदानन्द का नाथ शीतल बर्फ जैसा शान्तरस, अकेला शान्तरस का बर्फ भगवान, उसका आश्रय और अवलम्बन का भाव, उसे कायोत्सर्ग और उपवास भी उसे कहते हैं। ऐसा जो त्रिकाली वस्तुस्वभाव के उप अर्थात् समीप, वास (अर्थात्) एकाग्र होना, उसे उपवास कहते हैं। समझ में आया? अरे.. अरे..!

**प्रायश्चित्त आदि सब कुछ है।** उसे तप कहते हैं। अरे, गजब भाषा! आत्मा त्रिकाली ज्ञायकभाव का भण्डार, उसका अन्तर आश्रय लेनेवाला भाव, उसका आलम्बन लेनेवाला भाव, उसके आश्रय से प्रगट हुआ भाव—वीतरागी पर्याय, वह सब ही है। वीतरागमार्ग में जितने मोक्ष के मार्ग कहे जाते हैं, वे इसमें समाहित हो जाते हैं। इसमें तो निश्चय मोक्षमार्ग एक ही मोक्षमार्ग रहा। स्व के आश्रय से प्रगट हुई श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र, वह मोक्षमार्ग हुआ। पर के आश्रय से प्रगट हुआ मोक्षमार्ग हो सकता ही नहीं। ऐसी बात, भाई! वह **प्रायश्चित्त आदि सब कुछ है।**

**आत्मस्वरूप का आलम्बन,...** अब व्याख्या करते हैं। शुद्धपरिणमन वह **आत्मस्वरूप का आलम्बन, आत्मस्वरूप का आश्रय,...** भगवान त्रिकाली आनन्द प्रभु ध्रुव, उसे ध्येय बनाकर जो परिणाम प्रगट हो, वह **आत्मस्वरूप का आश्रय, आत्मस्वरूप के प्रति सम्मुखता,...** भगवान पूर्णानन्द स्वरूप की अन्तर्मुखता, उसकी अन्तर्मुखता अर्थात् सन्मुखता। वह सब एक ही स्वरूप है, ऐसा कहते हैं। **आत्मस्वरूप के प्रति झुकाव,...** वलण... वलण... यह सट्टा में वलण नहीं करते? वलण समझते हैं? सट्टा होता है न? फिर वलण का दिन हो एक उसका शुक्रवार। पैसा चुकाने का, उसे वलण कहते हैं। चुकादा को यहाँ वलण कहते हैं। चुकादा होता है न? आज सट्टे का चुकादा है, सट्टे का वलण है। इसी प्रकार भगवान आत्मा का वलण... आहाहा! उसका नाम मोक्ष का मार्ग और उसका नाम धर्म की वास्तविक स्वाभाविक क्रिया। समझ में आया? नजदीक आओ... कुछ समझ में आया? आहाहा!

शीतल छाया में आ जाओ अन्दर में, कहते हैं। बाहर में कुछ नहीं। आहाहा!

बाहर में निकले, धूप है अकेली। हमारे आत्माराम आज पूछते थे कि मुनि को तो स्वाध्याय और ध्यान दो होते हैं न? यह स्वाध्याय करने में तो फिर पुण्यबन्ध होता है। बात सच्ची। मुनि को ध्यान और स्वाध्याय दो ही आचरण होते हैं। परन्तु स्वरूप में स्थिर नहीं रह सके, तब शास्त्र के स्वाध्याय का शुभ विकल्प होता है, अशुभ में न जाये इसलिए (होता है)। रोग है, परन्तु क्या करे? ध्यान ही एक ही वस्तु है वास्तव में तो। यह गाथा किसकी चलती है? '**झाणं हवे सव्वं**' भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु की अन्तर एकाग्रतारूपी ध्यान ही सब है। वह स्वाध्याय नहीं। परन्तु उस ध्यान में स्थिर नहीं रह सके, तब उसे ऐसा शुभविकल्प होता है।

**मुमुक्षु :** किसलिए स्थिर नहीं रहते?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** रह सकते नहीं। इतनी दशा ही नहीं। निचली दशा इतनी होती ही नहीं।

**मुमुक्षु :** नहीं तो रहते तो प्रयत्न करे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** प्रयत्न करे। प्रयत्न करूँ... करूँ वह भी विकल्प है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** स्वाध्याय का क्या काम है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्वाध्याय, वह विशेष स्वरूप स्पष्ट होने के लिये स्वाध्याय होती है उन्हें। अन्दर में घोलन करे, वह स्वाध्याय है। यह आत्मा ऐसा है, परिपूर्ण ... है, यह विशेष। सामान्यरूप से उसमें एकाग्रता थोड़ी रहे, पश्चात् जब विचार भले उसी के आवे, परन्तु वह सब विकल्प है। वह स्वाध्याय है, दूसरा क्या है? कि पृष्ठ वाँचकर ही स्वाध्याय करना, ऐसा कुछ है? विकल्प उस प्रकार का आवे। आये बिना रहे नहीं, पूर्ण नहीं (इसलिए)। (परन्तु) है, वह बन्ध का कारण। पराश्रय से जितना विकल्प उठे, वह सब राग-विकार है। यह मार्ग जिसे अन्तर से बैठे, मुक्ति उसे नजदीक है। आहाहा! समझ में आया?

**ध्यान...** इसकी तो व्याख्या चलती है यह। ध्यान ही सर्वस्व है।

**मुमुक्षु :** सम्यग्दृष्टि को चौबीसों घण्टे ध्यान है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ध्यान नहीं, अन्दर एकाग्रता है, उतना ध्यान है। जितनी शुद्ध परिणति प्रगट हुई, उतना ध्यान है, परन्तु अभी यह विकल्प है न दूसरे।

**मुमुक्षु :** विकल्पात्मक ध्यान कह सकते हैं....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** विकल्प हो, परन्तु जाननेयोग्य—ऐसा कहा जाता है। आश्रय करनेयोग्य वह नहीं। आहाहा! आवे, वह आवे। स्वाध्याय तो सर्वार्थसिद्धि के देव ३३ सागर तक करते हैं। शास्त्रस्वाध्याय ३३ सागरोपम।

**मुमुक्षु :** वहाँ शास्त्र है कहाँ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्वाध्याय कण्ठस्थ में है न? पुस्तकें भी हैं शाश्वत। पुस्तकें हैं, हीरा, मणि, रत्न के (जड़ित) पुस्तकें हैं न वहाँ देवलोक में। शास्त्र मणिरत्न के (जड़े हुए) पुस्तकें हैं। ऐ सेठ! यह तो सब होता है वहाँ, तो भी अन्दर चकचकाहटवाला—तेजवाला भगवान, वहाँ उसकी नजर होती है। तेज के तेज को भी तेज का तेज कौन जाने? यह आत्मा जाने। ऐसे तेज पर ज्ञानी की दृष्टि निरन्तर होती है। जितनी अन्तर में एकाग्रता, उतना धर्म। यह वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ का कथन है। वस्तु जो त्रिकाल आनन्दकन्द प्रभु, उसमें जितनी एकाग्रता / ध्यान, वह धर्म। आहाहा! जितनी विकल्पवाली दशा, चाहे तो शुभ हो, वह धर्म नहीं है। आहाहा! गजब बात है। समझ में आया?

**आत्मस्वरूप के प्रति सम्मुखता, आत्मस्वरूप के प्रति झुकाव,...** झुकाव... **आत्मस्वरूप का ध्यान,...** लो, अब आया मूल गाथा में से। **परमपारिणामिकभाव की भावना,...** यह सब उसे कहते हैं। परम त्रिकालीस्वभाव की एकाग्रता, उसे ध्यान कहो, सन्मुखता कहो, आश्रय कहो, आलम्बन कहो, झुकाव कहो। **'मैं ध्रुव शुद्ध आत्मद्रव्यसामान्य हूँ'—ऐसी परिणति...** अलौकिक मार्ग है, भाई! यह तो परमात्मा तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ अरिहन्त के मुख से निकली हुई वाणी है। आहाहा! अरिहन्त के कथनों में यह आया है कि तेरा द्रव्य है, उसका जितना आश्रय ले, उतना धर्म है। आहाहा! तीन काल, तीन लोक के तीर्थंकर केवली यह कहना चाहते हैं। समझ में आया? जयन्तीभाई!

यहाँ तो यह करो... यह करो... और यह करो। यह कहे, सामायिक करो, प्रौषध

करो, प्रतिक्रमण करो, अपवास करो, वे कहे शान्तिविधान करो और क्या कहलाता है? सिद्धचक्र का विधान करो, ढींकणा करो। दिगम्बर में फिर ऐसे खाओ, ऐसा लो और ऐसा लो और ऐसा करो, वस्त्र छोड़ो सब। अरे! मूल चीज़ रह गयी। भगवान को जो कहना था मुख्य, वह तो रही गयी। जिसके सामने देखना है, वह बात तो रह गयी। जिसके सामने देखना नहीं, उसके सामने देखने की बात रही। उसमें तो है, उसमें किया क्या तूने नया? आहाहा! प्रौषध और प्रतिक्रमण और सामायिक—सब परलक्ष्यी बात है। वह सब विकल्प है—राग है। आहाहा! परलक्ष्यी शास्त्र का पठन भी बन्ध का कारण है। स्वाश्रय चिदानन्द प्रभु, आहाहा! उसका अवलम्बन अन्तर में लेकर जो भाव... उसके अवलम्बन से तो वीतरागीभाव ही प्रगट होता है। निर्दोष, निरवद्य, राग रहित भाव उसके अवलम्बन से प्रगट होता है। उस भाव को पूरे जैनशासन की धार्मिक क्रिया कहा जाता है। आहाहा! लोगों को ऐसा लगे कि निश्चय... निश्चय... निश्चय। परन्तु निश्चय अर्थात् यह सत्य।

**मुमुक्षु :** आत्मा के अवलम्बन को ज्ञानपर्याय कहते हैं....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ज्ञानपर्याय, श्रद्धापर्याय, सब अवलम्बन उसका लेती है। वे अनन्त पर्यायें झुक गयी हैं। सब झुक गयी हैं। एक पर्याय झुकी, दूसरी बाहर रह गयी (ऐसा) चले? उसमें ही झुकी है। एक साथ पर्याय ऐसे झुकी हुई है। मुख्यरूप से ज्ञान और श्रद्धा की बात यहाँ करनी है (और) चारित्र—तीन। आहाहा!

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में—एक समय में परिपूर्ण परमस्वभावभाव का कन्द, बस उसके ऊपर दृष्टि करना और उसका आश्रय करना। ऐसा जो आश्रय हुआ भाव, ऐसा कहा है न? 'आलम्बनवाला भाव' ऐसा पाठ है न इसमें? पाठ ऐसा है। '**अप्पसरूवालंबणभावेण**' आलम्बनवाले भाव से... आहाहा! सर्वभाव परिहार होता है। समझ में आया? अब ऐसी धर्मकथा! लोग कहे, ऐसा सोळभत्तुं करना, सिंह... ऐसा आता है उपवास की विधि। सिंह कूदे न ऐसे अपवास करे। पहले दो अपवास, फिर एकदम दस अपवास, फिर सोलह अपवास। 'सिंहनिष्क्रीडित' ऐसा आता है शास्त्र में। आता है। सिंहनिष्क्रीडित।... एक अपवास,... पन्द्रह अपवास, फिर

पारणा और तेरह अपवास, फिर पारणा और सत्रह अपवास। ओहोहो! लोग मानो कि आहाहा... यह लोग तो मचाये शोर। लोक में कहाँ भान था?

यहाँ तो भगवान आत्मा त्रिकाली प्रभु पुरुषार्थ द्वारा जोर करके अन्दर जाता है। आहाहा! वह जैनशासन है। जैनशासन की धार्मिक क्रिया सब उसे कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! कहो, भीखाभाई! यह सब चला जाता है, उड़ जाता है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के कहे हुए तत्त्व द्रव्यस्वभाव के आश्रय में चारित्र प्रगट करके और यह कथन करते हैं। नग्न दिगम्बर वनवास में रहते। वन में सिंह जैसे दहाड़ मारे, वैसे यह दहाड़ मारी है। पूरा प्रभु त्रिलोक का नाथ अन्दर है, उसमें जाये, उसमें एकाग्र हो, उतना धर्म है। बाकी सब तेरी बातें। आहाहा! समझ में आया? बाकी सब विद्वत्ता और आचरण व्यवहार के, वह सब खोखा-खोखा, थोथा। आहाहा! क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** ज्ञान की पर्याय का आलम्बन भेद....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आलम्बन क्या? क्या कहते हैं कुछ समझ में नहीं आता।

**मुमुक्षु :** आलम्बन तो किया ही करे वह तो....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किया करे किसका? आत्मा की ओर का आलम्बन है, उसमें आलम्बन विशेष नहीं हो सकता, इसलिए ऐसे झुकाव जाता है, परन्तु है वह हेय। है, वह हेय। हेयरूप से आलम्बन आता है।

**मुमुक्षु :** ....उसका उपदेश किसलिए किया?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अरे! पूर्ण नहीं, इसलिए उसे उपदेश नहीं होता? उसे यहाँ उपदेश सबको शुद्धोपयोगवालों को ही दिया है। यहाँ तो शुद्ध-उपयोगवाले को कहा न। आगे आ गया। शुद्ध-उपयोग सन्मुख है, अमुक है, ढींकणा है उसे। उपदेश तो दे सबको। गणधर हो तो उपदेश न दे उसे? और तो भी उपदेश सुनने से उसे लाभ होता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! गजब बात है।!

**मुमुक्षु :** बोलने से लाभ न हुआ तो सुनने जाना किसलिए?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तथापि सुनने का विकल्प आये बिना रहता नहीं। ऐसी बात

है। यह सूक्ष्म बात है। पण्डितजी! सेठ! कल आया, नहीं? चार अन्य भाव हैं चार। अब अन्य भाव का आश्रय ले, उससे लाभ है? सुनने का भाव, वह विकल्प है, उदयभाव है। यह तो वीतरागमार्ग है, बापू! यह कहीं वह कहे कि थोड़ा तुम ऐसे (ढीला) रखो, थोड़ा हम ऐसे (ढीला) रखते हैं।

बनिया होता है न मोलभाव करे। पाँच हजार लेना हो किसान से। किसान—कृषिकार (से लेना) हो पाँच हजार। ऐसे सेठ जानता हो कि इसके पास दो हजार से अधिक कुछ नहीं है। वह भी जानता है कि दो हजार से अधिक मेरे पास नहीं तो दे नहीं सकता। परन्तु वह बोले कि सेठ! हराम मेरे पास पाँच सौ से अधिक कुछ (होवे तो)। पाँच सौ रुपये दूँगा। वह कहता है कि हराम है, पाँच हजार में एक पाई कम लेना नहीं। फिर करते... करते... करते वह सेठ कहे कि चार हजार में आवे। तब वह छह सौ में आवे। वह तीन हजार में आवे, तब वह हजार में आवे। करते... करते... दो हजार में आवे दोनों इकट्ठे होकर—ऐसा होगा यह?

यहाँ मोलभाव थोड़ी... आहाहा! यह भाई कहते हैं तुम्हारे पूनमचन्द घासीलाल। पहले कहा था। स्वामीजी बहुत ऐसा कहते हैं। उसकी अपेक्षा थोड़ा कुछ (ढीला) रखे तो हम थोड़ा ढीला रखें, तो सब इकट्ठे हो जायेंगे। पूनमचन्द घासीलाल। अरे! परन्तु क्या ढीला रखे? वस्तु ही अलग-अलग है। आहाहा! तीन काल, तीन लोक में मोक्ष का एक ही पंथ है। कि धार्मिक क्रिया, वह धर्मस्वरूप ऐसा भगवान आत्मा, उसमें लीनता, एकाग्रता और आश्रय, अवलम्बन एक ही धर्म है। बाकी सब बात है। मरे तब बात रखते हैं या नहीं? 'वात ऐसी है' ऐसा नहीं कहते? वात एक ऐसी है, फिर सब इकट्ठे हो स्नान करने। इसी प्रकार यह स्नान करने जैसा है सबका। आहाहा!

आठ वर्ष की बालिका जिसने आत्मा का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन प्रगट किया है... और जिसे छह खण्ड के राज होते हैं और जिसे राग की एकताबुद्धि है, वह महा अज्ञानी पापी है। धर्मी, वह पवित्र है। आहाहा! कहो, समझ में आया? पराश्रयवाले भाव शुभ महाव्रत का करनेवाला द्रव्यलिंगी २८ मूलगुण पाले, हजारों रानियों का त्याग, परन्तु जिसे राग के ओर की बुद्धि और राग की एकता है, वह अधर्मी है। सेठ! आठ वर्ष

की बालिका... माँ-बाप मर गये हों, रोटियाँ मिलती न हों, कहीं माँगकर खाती हो। समझ में आया? आहाहा! उसे, ऐसे आत्मा भगवान त्रिलोक का नाथ अन्दर स्थित है, उसका जिसने आश्रय लिया है, चक्रवर्ती बादशाह हो गया, उसका चक्र चलते-चलते केवलज्ञान लेगा। समझ में आया? 'आरोही' आया था न? कल नहीं कहा था? आरोही। समकिती आगे के गुणस्थान को आरोहण करने के योग्य है। ऐसा कल आया था। आरोही। आहाहा! समयसार नाटक। समझ में आया?

कहते हैं, **'मैं ध्रुव शुद्ध आत्मद्रव्यसामान्य हूँ'—ऐसी परिणति-इन सबका एक अर्थ है।** भिन्न-भिन्न प्रकार से समझाते हैं। बाकी तो स्व-चैतन्य भगवान के सन्मुख होकर जो दशा प्रगट होती है, उसे समकित कहो, ज्ञान कहो, चारित्र कहो, प्रायश्चित्त कहो, प्रतिक्रमण कहो, समिति कहो, गुप्ति कहो, चारित्र कहो—सब एक है। आहाहा! यह है। परमसत्य यह है, भाई! कहो, पुरुषोत्तमभाई! ऐसा गजब है!

अब अपने ऊपर आया। **अति-आसन्नभव्य जीव समर्थ है,...** तीसरी लाईन, ऊपर। कैसा जीव? कि जिसे परमपारिणामिक त्रिकाली भाव की भावना—एकाग्रता है, ऐसा जीव चार पर्यायरूपी भाव का त्याग करने को अर्थात् आलम्बन छोड़ने को वह शक्तिवान है। आहाहा! समझ में आया? वर्तमान के ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती मिथ्यादृष्टि, वह सातवें नरक का नारकी हुआ। निश्चय से कहो तो वर्तमान में वह भविष्यत् नारकी ही था। आहाहा! भविष्य में होनेवाला नारकी, उसे भविष्यत् नारकी कहे वर्तमान में। चक्रवर्ती को... कहाँ था उसे? पूर्व में समकित था, उसमें यह निदान किया। मिथ्यादृष्टि लेकर आया और मिथ्यादृष्टि लेकर गया। आहाहा! सात सौ वर्ष (आयु), ९६ हजार स्त्रियाँ, खम्मा... खम्मा... सोलह हजार देव। उसे भविष्यत् नारकी कहे। सातवें नारक में जाने का, इसलिए वर्तमान में ही उसे नारकी कहे। नारकी है भविष्य का। इसी प्रकार जिसे आत्मा का आश्रय प्रगट हुआ, वह भविष्य में अल्प काल में केवलज्ञान लेनेवाला है, इसलिए वर्तमान में ही उसे मुक्ति—भविष्यत् मुक्ति कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! 'आसन्नभव्य' आया था न? अति-आसन्न भव्य जीव... **अति-आसन्न भव्य जीव समर्थ है।** आहाहा!

**इसीलिए उस जीव को...** इसीलिए... इसीलिए अर्थात्? कि चार भाव को छोड़ने में समर्थ, अपने त्रिकाली भाव की भावना द्वारा छोड़ने को समर्थ है, इसीलिए उस जीव को **पापाटवीपावक कहा है;...** पापरूपी अटवी—संसार... पुण्य और पाप का फल ऐसा पूरा संसार और पुण्य और पाप दोनों पाप है। आहाहा! पापाटवी... यह संसाररूपी अटवी, पापरूपी वन, उसे जलानेवाला अग्नि कहा है। समझ में आया? एक तो यह कहा कि जिसने भगवान आत्मा का आश्रय लिया, ऐसा जीव चार पर्याय को छोड़ने के योग्य है। ऐसा कहा और फिर कहा कि वह पापरूपी वन—अटवी—जंगल को जलाने में अग्नि समान वह जीव है। आहाहा! समझ में आया?

'इस कारण से उस जीव को' ऐसा कहा न? 'इसलिए' शब्द है न? आहाहा! परमस्वभाव का ध्यान जिसे प्रगट हुआ है। ध्यान कहा न यह? जो जीव चार प्रकार के भाव—पर्याय—अन्य भाव को छोड़ने को (योग्य) है। आलम्बन लेने के अयोग्य है अर्थात् आलम्बन छोड़ने के योग्य है। और वह पुण्य और पाप की संसाररूपी अटवी को जलाने को ज्वाजल्यमान अग्नि समान धर्मात्मा है। आहाहा! समझ में आया? छह खण्ड के राज में चक्रवर्ती मिथ्यादृष्टि हो, उसे भी समकिती बड़ा नहीं मानता और पंचम गुणस्थान जिसे प्रगट हुआ हो, उसे अपने से बड़ा मानता है। भले पशु हो, ढोर हो, मगरमच्छ हो, पाँचवें गुणस्थान में असंख्य पड़े हैं बाहर। समकिती उन्हें बड़ा मानता है। आहाहा! समझ में आया?

सर्वार्थसिद्धि के देव समकिती हों, वे भी, पंचम गुणस्थानवाला पशु हो, उसे अधिक मानते हैं। ले! तालाब का पानी पीवे, वहाँ के कुँए का, समुद्र का, रोटी-रोटला नहीं मिले, सोने को नहीं मिले... ३३ सागर अवधिज्ञानवाला आहाहा! भले उसको—तिर्यंच को अवधिज्ञान भी न हो और सर्वार्थसिद्धि के देव अवधिज्ञानी और उसे साहेबी, उसे नीचे उतरना नहीं है भगवान के पास। समझ में आया? वहीं का वहीं दर्शन करे। स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, घरबार नहीं, कुछ नहीं। धन्धा-व्यापार कुछ नहीं। वह मोटर-मोटर है? सेठ के है मोटर, कहे, कितनी? धूल में मोटर... वह तो जगत की चीज़ है। उसमें इसे कहाँ से लाया? इसके पास नहीं और किसी के पास नहीं। आहाहा!

परन्तु वह पंचम गुणस्थानवाला कुत्ता हो कुत्ता... आहाहा! उसे सर्वार्थसिद्धि का देव जानता है कि बड़ा है। मुझसे बड़ा है। समझ में आया? पति हो मिथ्यादृष्टि और पत्नी हो समकिती, परन्तु जो मिथ्यादृष्टि है, उसे भाव से हीन मानता है समकिती। मिथ्यादृष्टि होने पर भी, वह जो ख्यालवाला हो, स्त्री समकिती हो (तो जानता है कि) मुझसे अधिक है, बड़ी है, धर्म में वह बड़ी है। आहाहा! पति को चौथा गुणस्थान हो, पत्नी को पाँचवाँ हो, धन्य रे अवतार! जिसने द्रव्य का विशेष आश्रय लिया, वह जगत में बड़ा है। समझ में आया? बाहर की ऋद्धि आदि की कुछ कीमत नहीं। बाहर का पढ़ा हुआ हो और पाँचवें गुणस्थानवाले को बाहर का ज्ञान न हो, थोड़ा अल्प हो, तो भी बाहर के पढ़े हुए सर्वार्थसिद्धि देव उसे अधिक जानते हैं। आहाहा! समझ में आया?

उस जीव को अग्नि (कहा) है, कहते हैं। आहाहा! **ऐसा होने से...** ऐसा होने से **पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त, आलोचना आदि सब ध्यान ही है...** लो। अन्तर भगवान आत्मा की एकाग्रता, वह सब यह है। आहाहा! दया, दान, व्रत के विकल्प में एकाग्रता, वह धर्म नहीं। आहाहा! अभी तो खबर न हो, सुना न हो कभी। सेठ! सेठ को बराबर व्यवस्थित करना आता है। सेठ! तब तुमने छोड़कर रखा न मकान यहाँ। भाई! यह पहली समझण करना है, समझने का है। स्वीकार करे, उसमें सत्य में यह समझने का है कि द्रव्य का आश्रय करना, उतना धर्म; बाकी सब समझने जैसा है। चाहे तो सत्समागम करे, परन्तु अन्तर के सत्समागम बिना की पर्याय, वह वीतरागीपर्याय नहीं होती। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा वीतरागमार्ग तीर्थंकर—अनन्त तीर्थंकरों ने कहा हुआ, अनन्त अरिहन्तों ने कहा हुआ, पंच परमेष्ठिओं ने आदर किया हुआ है। समझ में आया? अनन्त आचार्यों ने आचरण कर स्व का आश्रय किया, अनन्त आचार्यों ने यह कहा। आचार्य हैं न स्वयं यह। आहाहा! अब ऐसा आचार्य और साधु नाम धरावे और राग से लाभ मनावे, वह जैनशासन के साधु और श्रावक भी नहीं, मिथ्यादृष्टि है। भारी बहुत कठिन काम है। पराश्रयभाव में धर्म मनावे और भगवान का कथन तो स्वाश्रय में धर्म है। बड़ा विरोध है।

वह **सब ध्यान ही है...** आहाहा! गाथा भी गाथा है न! यह गाथा आत्मा की गाथा, हों! '**अप्पसरूवालंबणभावेण**' एक शब्द तो, आहाहा! आत्मा का स्वरूप

भगवान तीर्थंकर केवलज्ञानी परमात्मा ने यह कहा। भाई! तुझे खबर नहीं। भगवान सच्चे... भगवान सच्चे... ऐसा करे। परन्तु भगवान सच्चे किस प्रकार? उन्होंने यह कहा, वह तो तू मानता नहीं, इसलिए सच्चे कहाँ से हुए? वे कहते हैं कि यह, तू कहता है कि यह नहीं। समझ में आया? भगवान तीर्थंकर ऐसा कहते हैं (कि) स्वद्रव्य का आश्रय, वह धर्म है। यह कहता है कि स्वद्रव्य का आश्रय नहीं, परन्तु पर के आश्रय से भी धर्म होता है। मानता कहाँ है वीतराग को? समझ में आया?

**मुमुक्षु :** पर के आश्रय से, ऐसा अनेकान्त माने तो?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अनेकान्त यह आवे। स्व के आश्रय से होता है और पर के आश्रय से नहीं होता, यह अनेकान्त है। आहाहा! धन्य रे धन्य अवतार! समझ में आया?

कहते हैं... गजब गाथा! गजब बात है! गाथा में से बाहर निकलना, उसमें तीन दिन हुए। आहाहा! गजब काम। उसमें शशीभाई आये तो फिर से आज आया। एक में आये थे, नहीं? रविवार को, कब? देखो! यह मोढ है। वैष्णव थे। शशीभाई मोढ़ बनिया। वहाँ शास्त्र वाँचते हैं। मुम्बई भेजा था। इन बनियों का जैन में जन्म हुआ, उन्हें भान नहीं होता। यह पहले इसकी रुचि होना चाहिए। समझ में आया? मार्ग तो यह है, दूसरा कोई मार्ग है नहीं। चाहे तो इन्द्र उतरकर कहे, उस मार्ग के पढ़नेवाले उतरकर कहे, दूसरा तो कहे किसका, परन्तु ऐसे बड़े दूसरा कुछ कहे, (परन्तु) दूसरा मार्ग है नहीं। 'एक होय तीन काल परमारथ का पंथ'। समझ में आया? यह गाथा पूरी हुई।

**प्रायश्चित्तादि सब कुछ है। परमपारिणामिकभाव की भावनारूप....** परमपारिणामिकभाव, वह वस्तु और उसकी भावना, वह पर्याय। द्रव्य और पर्याय दो आये। परमपारिणामिकभाव, वह त्रिकाली वस्तु, उसकी भावना वर्तमान एकाग्रता। **जो ध्यान, वही महाव्रत, प्रायश्चित्तादि सब कुछ है।** पूरा जैनशासन इसमें आ जाता है। इसका कलश है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**भाद्र कृष्ण १३, शुक्रवार, दिनांक - १७-०९-१९७१**
**श्लोक-१९०, गाथा-१२०, प्रवचन-१२७**

यह नियमसार है, चारित्र का अधिकार। चारित्र के अन्तर्भेद में यह निश्चयप्रायश्चित्त, यह चारित्र का भाग है। **११९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—** १९० कलश।

**यः शुद्धात्मन्यविचलमनाः शुद्धमात्मानमेकं,**
**नित्यज्योतिःप्रतिहततमःपुञ्जमाद्यन्तशून्यम्।**
**ध्यात्वाजस्रं परमकलया सार्धमानन्दमूर्तिं,**
**जीवन्मुक्तो भवति तरसा सोऽयमाचारराशिः ॥१९०॥**

क्या कहते हैं? भगवान आत्मा, एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में अर्थात् सूक्ष्म काल में उसका त्रिकाली स्वरूप जो है, वह तो ध्रुव है। अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति से भरपूर जो पदार्थ आत्मा है। तो कहते हैं, कैसा है वह भगवान त्रिकाली? **जिसने नित्य ज्योति द्वारा...** त्रिकाली शुद्ध ध्रुव ऐसा जो उसका स्वरूप है, उसने **तिमिरपुंज का नाश किया है,...** अर्थात् कि उसमें अज्ञान और मिथ्यात्वादि है नहीं। वस्तु है न आत्मा। यह शरीर, वाणी तो जड़ है। अन्दर दया-दान-व्रत-भक्ति के परिणाम होते हैं, वे भी अचेतन, पुण्य और जड़ है। अब उसकी वर्तमान प्रगट दशा, जो अनादि की दशा के ऊपर ही दृष्टि है, वह दृष्टि दशा के ऊपर से छोड़कर त्रिकाली नित्य ध्रुव प्रभु अपना स्वभाव ध्रुव चैतन्य आनन्दकन्द स्वभाव का आश्रय करने से उसे अज्ञान और मिथ्यात्व नहीं रहता, अधर्म नहीं रहता और उसका आश्रय करने से धर्म होता है। यहाँ तो कहते हैं कि वह तिमिर उसमें है ही नहीं। नाश किया है, उसका अर्थ यह। चिदानन्द सहजानन्दमूर्ति आत्मा, उसमें तिमिर—अज्ञान कैसा? वह तो ज्ञान का पुंज है। उसने नित्य ज्योति द्वारा अज्ञानपुंज का नाश किया है।

**जो आदि-अन्त रहित है,...** आत्मा वस्तु है, वह तो आदि-अन्तरहित है। कहीं

शुरुआत हुई है आत्मा की? कहीं अन्त आयेगा आत्मा का? वह तो है, है और है। आदि-अन्तरहित है। जिसे आदि अर्थात् शुरुआत नहीं, जिसका नाश अर्थात् अन्त नहीं। ऐसी चीज़ आत्मा अन्दर ध्रुव नित्यानन्द **जो परम कला सहित है...** आहाहा! क्या कहते हैं? उस आत्मा में परमकला भरी है। समझ में आया? पुण्य-पाप के अधिकार में आता है अपने 'कला'। वहाँ तो कला पर्याय को लिया है। क्योंकि पुण्य-पाप का अधिकार है न! शुभ-अशुभराग, वह कहीं आत्मा की चीज़ नहीं, वह तो विकार है, विभाव है। उसका अभावस्वभाव ऐसा चैतन्य, उसका आश्रय करने से, अन्तर का अवलम्बन करने से जो श्रुतज्ञान और मतिज्ञान की सम्यक् दशा स्वसंवेदन से प्रगट होती है, वह पुण्य-पापरहित है, ऐसा वहाँ बतलाना है। अरे, गजब यह!

भगवान आत्मा की कला के तीन प्रकार। एक तो त्रिकाल कला पड़ी है। ज्ञान-आनन्दादि सभी शक्तियों का स्वरूप, वह कला है। समझ में आया? वह कलाबाज है आत्मा। अनन्त-अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द आदि गुण, वह उसकी कला है। आहाहा! वह कलावन्त परमात्मा स्वयं है, उसका आश्रय करने से, अवलम्बन करने से... पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव, वह तो बन्धन के कर्ता हैं। उससे रहित होकर और भगवान अनन्त कलास्वरूप प्रभु का आश्रय करने से, उसका अवलम्बन लेने से, उसमें एकाग्र होने से शुद्ध मति-(श्रुत)ज्ञान आदि जो मोक्ष का मार्ग है, वह प्रगट हो, उसे यहाँ कला कहा जाता है, पुण्य-पाप के अधिकार में। समझ में आया? और उस कला ने केवलज्ञान कला के साथ क्रीड़ा की है।

जैसे दूज का चाँद हो, उसकी पूर्णिमा होनेवाली ही है, उसी प्रकार भगवान आत्मा, जिसने अन्तर में पुण्य-पाप के राग के विकल्प की वृत्तियों से रहित है, ऐसा निजस्वरूप परमकलाबाज है, ज्ञानकला, दर्शनकला, आनन्दकला—ऐसी अनन्त शक्तियाँ उसकी कला है। आहाहा! समझ में आया? वह अनन्त कला सम्पन्न प्रभु आत्मा है। उस कला का अन्तर में अवलम्बन लेकर जो ज्ञान सम्यक् शान्ति प्रगट हो, उसे साधक ज्ञान की कला कहा जाता है। और उस साधक ज्ञान की कला द्वारा; नहीं कि दया, दान, व्रत और पूजा व्यवहार द्वारा... ऐसा वहाँ पुण्य-पाप में कहा है। उस सम्यग्ज्ञान की कला द्वारा केवलज्ञान की कला उसके कारण से प्रगट होती है। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, जो सम्यग्ज्ञान, शान्ति के वेदनवाला ज्ञान, आनन्द के वेदनवाला ज्ञान, वह कला जो आत्मा के अन्तर में आश्रय करने से प्रगट होती है, वह चीज़ स्वयं कलावन्त है। समझ में आया? मोर ऐसे कला पूरता है न मोर। उस कला की शक्ति अन्दर पड़ी है उसके पास। उसमें से कलाबाज वह मोर... वह कहीं चिड़िया ऐसा करे तो मोरकला हो, ऐसा नहीं होता। उसके पास है ही कहाँ वह? समझ में आया? उसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द की कला, पूर्ण ज्ञान की कला (आदि) अन्दर शक्तिरूप सब कलायें सत्त्वरूप पड़ी है, परन्तु उसका उसे स्वीकार नहीं। समझ में आया? उसका स्वीकार पुण्य और पाप के भाव हों, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, बस वह मैं और या उसे जाननेवाली प्रगट अवस्था—ज्ञान का अंश दिखे, वह मैं।—ऐसा मानकर त्रिकाली ज्ञानानन्द की कला का वह अनादर करता है। कहो, पण्डितजी! आहाहा!

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा ने जो केवलज्ञान कला प्रगट की, वह कहाँ से आयी? कहते हैं। वह क्या बाह्य संयोग से आयी? या उसके पुण्य-पाप के विकल्प हुए, उनमें से आयी? या वह पर्याय, पर्याय में से आयी? पर्याय क्या... मूलचन्दभाई! सेठिया व्यक्ति होकर पर्याय को समझे नहीं। पर्याय अर्थात् अवस्था। उसका स्वभाव, प्रत्येक द्रव्य की पर्याय—अवस्था—हालत स्वभाव है। समझ में आया? जिसने निमित्त संयोगी चीज़ को बहुमान दिया, जिसने पुण्य और पाप को बहुमान दिया और जिसने एक समय की प्रगट अवस्था को बहुमान दिया, उस परमकलावन्त ध्रुव का उसने अनादर किया है। समझ में आया? आहाहा!

उस परमकला सहित जो आत्मा है... आहाहा! वह केवलज्ञान की कला या श्रुतज्ञान की कला—अंश जो धर्म की कला प्रगट होती है। केवलज्ञान भी अंश है, यह भी अंश है। ये सब अंश कहाँ से आते हैं? वह परमकलाबाज आत्मा है, उसका लक्ष्य करे तो उसमें से आते हैं। समझ में आया? कठिन ऐसा धर्म भाई! जैनधर्म ऐसा होगा? एकेन्द्रिय की दया पालना, व्रत पालना, अपवास करना, रात्रि में चार प्रकार का आहार न करना (अर्थात्) आहार नहीं करना और कन्दमूल नहीं खाना, लो यह धर्म। ऐई! धूल में भी धर्म नहीं, सुन न अब! वह तो विकल्प की क्रिया है। आहाहा! धर्म तो उसे कहते

हैं कि जो धर्मी ऐसा भगवान आत्मा, जिसमें ज्ञान-दर्शन अनन्त शक्तिरूप कला भरी हुई है, उसका आश्रय करे, अन्तर्मुख हो, तब अन्तर्मुख होने से शक्ति की व्यक्तता प्रगट होती है, उसे धर्म कहा जाता है। आहाहा! कलाबाज ऐसा भगवान आत्मा में अनन्त कलायें पड़ी हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह दुनिया की कला की बात नहीं, हों! यह वकालत की कला, डॉक्टर की कला, क्या कहलाती है वह तुम्हारी? दवा की कला। ऐई! वह सब पाप की कला है। वह तो इसमें है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। ....कब? आहाहा! भगवान आत्मा जो आदि-अन्तरहित वस्तु स्वयं है। आहाहा! अकेला आवे और अकेला जाये। परन्तु वस्तु तो अनादि-अनन्त अकेला ही है। आहाहा! जहाँ-तहाँ इसने दोकला माना है, वही मिथ्याभ्रम है। रागवाला हूँ, पुत्रवाला हूँ, लक्ष्मीवाला हूँ, धूलवाला हूँ, मकानवाला हूँ, इज्जतवाला हूँ—यह मिथ्यात्व अधर्मभाव है। ... आहाहा! इसे खबर नहीं। यह तो अनन्त ज्ञान-दर्शनादि कलावाला आत्मा अनादि का है। हों! आहाहा!

खबर नहीं होती खबर। जैन के वाड़ा में जन्मे और वाड़ा की बाहर की क्रियायें करे और माने कि अपने धर्म हो गया। समझ में आया? यह तो जैन वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ क्या कहते हैं, उसकी भी खबर नहीं। कहते हैं, भगवान आत्मा ऐसा अनादि का है कि अज्ञानपना उसमें है ही नहीं। और आदि-अन्तरहित है। दो। आदि-अन्तरहित है, परन्तु स्वभाव क्या है? कहते हैं। उसका भाव कहते हैं। **परम कला सहित है...** आहाहा! जिसमें ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव... आनन्द को मुख्य लेंगे। क्योंकि अज्ञान का नाश किया न, वहाँ ज्ञानस्वभाव आ गया अन्दर में। यहाँ आनन्द लेंगे। ज्ञान और आनन्द की मुख्यता है। आहाहा! अपना जो परम कला शक्तिरूप से जो स्वभाव, उसे यहाँ परम कला, ध्रुवस्वरूप को परम कला कहते हैं।

**तथा जो आनन्दमूर्ति है...** अतीन्द्रिय आनन्द का चोसला है। 'चोसलुं' शब्द कहते थे न? सेठ! चोसला का अर्थ किया है एकबार। क्या? चोसला। बर्फी चूरमा का दृष्टान्त नहीं दिया था? बर्फी चूरमा का चोसला... उसको चोसला कहते हैं। चार (कोने) है न ऐसे। ...होवे न चोसला। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा... अरे! उसकी

खबर नहीं होती। वह तो अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ है, अतीन्द्रिय के आनन्द के स्वाद से भरपूर सत्त्व है, सच्चिदानन्द आत्मा है। उसकी खबर नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? सच्चिदानन्द (अर्थात्) एक तो सत् है—शाश्वत् है प्रभु अन्दर और उसमें चिद्... चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द अर्थात् सुख। वह सुख और आनन्द से भरपूर पदार्थ है। ऐसा अनन्त-अनन्त कलाबाज भगवान आत्मा है। समझ में आया?

भाई! ऐसा धर्म होगा? जैन में जन्मे हों और ६०-६० वर्ष गये हों, तो भी सुना न हो। हम जैन हैं, हम स्थानकवासी, हम मन्दिरमार्गी, वह कहे हम दिगम्बर हैं, वे कहे हम तेरापंथी हैं। पंथी हैं पक्षी चार गति में भटकनेवाला। आहाहा! भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में आनन्द की मूर्ति वह तो है। **ऐसे एक शुद्ध आत्मा को...** ऐसे एक शुद्धात्मा को... यह तीन विशेषण दिये न! एक तो, उसमें अज्ञान और मिथ्यात्व है ही नहीं। वह आदि-अन्त काल से लिया, आदि-अन्तरहित तत्त्व है। भाव में अनन्त कलायें भरी हुई हैं और जो आनन्दमूर्ति है। आनन्द को खास विशेष अलग किया। परम कला में आनन्द आ जाता है। वह आनन्द का कामी है, परन्तु उसे आनन्द कहाँ है, उसकी खबर नहीं। आनन्द की मूर्ति प्रभु अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द है।

**ऐसे एक शुद्ध आत्मा को...** ऐसा एक शुद्धात्मा अन्दर वस्तु को **जो जीव शुद्ध आत्मा में अविचल मनवाला होकर...** आहाहा! ऐसा भगवान निजस्वरूप अन्दर अमृत के सागर से भरपूर तत्त्व अमृतरूप है। ऐसा अमृतस्वरूप कैसे बैठे? बाहर में जहाँ हो, वहाँ माना हो कि यहाँ सुख है, सुख है। आहाहा! 'सरोवर कांठे रे मृगलो तरस्यो...' आहाहा! बाहर भ्रमण किया करता है पानी के लिये। ऐई! परन्तु भरपूर है न यहाँ? परन्तु मैं इतना हूँ, इसकी उसे खबर नहीं। यह राग करके यह करना... यह करना... यह करना, वह मैं। यहाँ तो कहते हैं, भाई! तेरी वर्तमानदशा जो प्रगट है, उतना भी तू नहीं। आहाहा! भाई! तुझे यदि धर्म करना हो, धर्म अर्थात् पवित्र शुद्धदशा, तो जिसमें पवित्रता पड़ी है, उसमें से शुद्धदशा होगी। कहीं पुण्य-पाप में या निमित्त में तेरी पवित्रता पड़ी है वहाँ? समझ में आया?

ऐसे शुद्ध एक ही आत्मा को, बस। दो नहीं वापस, ऐसा। भेद नहीं, पर आत्मा

नहीं। **ऐसे एक शुद्ध आत्मा को...** पहला है न '**शुद्धात्मन्यविचलमनाः**' पहला पद है यह। '**शुद्धात्मन्...**' '**शुद्धात्मन्यविचलमनाः**' ऐसा भगवान अन्दर आत्मा अविचल शुद्ध चैतन्य... मन को चलित न होने देकर उसमें स्थिर हो, उसकी प्रथम दृष्टि स्थिर हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! पश्चात् चलित नहीं हो, इस प्रकार से भाव को अन्दर स्थिर करे, उसे चारित्र कहते हैं। वह आचार की राशि है। वह चारित्र का ढ़ेर प्रगट होता है अन्दर में से। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग, वह कैसा होगा? जैन का मार्ग ऐसा होगा? यह ५०-६० वर्ष से ऐसा सुनते नहीं थे। ऐ जादवजीभाई! यह तो प्रतिक्रमण करो, सामायिक करो, प्रोषध करो, रात्रिभोजन न करो, कन्दमूल न खाओ, छह परवी पालन करो—ऐसा सुनते थे जैन में। यह तुमने नया कहाँ से निकाला ऐसा? ऐ जादवजीभाई! आहाहा!

भाई! तुझे खबर नहीं। वह जैनपना नहीं तू जो मानता है वह। जैन परमेश्वर उसे जैन नहीं कहते। वह तो विकल्प—राग की क्रिया है। यह नहीं खाना, यह नहीं पीना—वह तो राग की क्रिया है। वह तो जिसके स्वरूप में है ही नहीं, उसे तू करके माने कि धर्म, वह तो मिथ्यात्व का पोषक है, अधर्म में पुष्टि देता है वह तो। आहाहा! धर्म का धारक, परमकला का नाथ आत्मा, उसमें जो भाव से अविचलरूप से स्थिर होता है, उसे धर्म होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह सब बाहर का कुछ कर दें, लोक का कर दें, लोक का काम करें... कहलाये। आगे पड़ता व्यक्ति कहलाये। ऐसा करके नास्तिक बनावें, फिर लोगों को ऐसा करें। ऐसा लोगों को रस पड़ता है।

यहाँ कहते हैं, वहाँ बाहर के सन्मुख देखना नहीं। बाहर के सन्मुख देखने से तेरा लुट जाता है, भाई! आहाहा! अन्तर कलाबाज भगवान, वहाँ तू नजर कर न अन्दर! आहाहा! जहाँ निज निधान सच्चिदानन्द आत्मा सिद्धस्वरूप है। जो सिद्ध हुए, वह सिद्ध तो पर्याय है, सिद्ध तो दशा है। संसारदशा और सिद्धदशा—वह तो दशा है। वह दशा आयी कहाँ से? सिद्ध को सिद्धदशा हुई कहाँ से? संसारदशा में से? पुण्य-पाप में से? और संसारदशा का अभाव हुआ उसमें से? आहाहा! वह अन्तर में पड़ी है, प्रभु! तुझे खबर नहीं। इसलिए यहाँ 'कला' शब्द आया। सब कला का पिण्ड अकेला है। आहाहा! उसकी भावना करने से अथवा उसमें भाव रखने से अविचलरूप से भाववाला होकर... नीचे **मन**

**अर्थात् भाव...** अर्थ किया है। **निरन्तर ध्याता है।** आहाहा! **तरसा... तरसा** अर्थात्? निरन्तर ध्याता है, ऐसा। '**अजस्त्रं**' आया है। '**अजस्त्रं**' आया है न। '**ध्यात्वजस्त्रं... अजस्त्रं**' वहाँ निरन्तर आया है। यह भी एक शीघ्र... आहाहा! यह तो मोक्ष के मार्ग की बातें हैं।

अरे! अनन्त काल से दुःखी... दुःखी... दुःखी... अकेला भटकता, कोई सगा नहीं—सांई नहीं। 'अगुंसांई' हमारे कहा जाता है। सांई कहना। क्या कहते हैं? 'सांई पूछना' ऐसी भाषा है। सांई का अर्थ मूल साता। सांई के साथ दूसरा शब्द है। सांई कहना। बहिन को सांई कहना। 'सांई' भाषा ऐसी है। सांई का अर्थ मूल साता है। ऐसी काठियावाड़ी भाषा हो गयी है। सगासांई... सगासांई ऐसा कहते हैं न? कोई सगासांई नहीं तेरा, बापू! तेरा धर्म का सगा तो तेरा स्वभाव अन्दर पड़ा है। आहाहा! सांई कहना माँ को, बा को सांई कहना। सांई... परन्तु सांई क्या होगा? समझ जाये कि यह कुछ अच्छा कहना चाहता है। हमारे काठियावाड़ में... तुम्हारे ऐसा कुछ होगा दूसरा। भाषा दूसरे प्रकार की होगी। लड़के जायें न बहिन के पास। उसकी माँ कहे, बहिन को सांई कहना। लड़के दूसरा न समझे तो उसे ऐसा कहे इतना। अपने और ऐसा कहे कि सुखसाता पूछना। और ऐसा आवे तो ऐसा कहे। सुखसाता पूछना। सुखी हो न, ऐसा। सुखी किसका? धूल का। बेचारा दुःखी है। आहाहा! कुशलक्षेम पूछते हैं न! आहाहा!

जिसने कभी निजभाव की सम्हाल नहीं ली। महाप्रभु चैतन्य भगवान सच्चिदानन्द प्रभु है वह तो। आहाहा! उसके सामने देखा नहीं और सामने देखा, वह ठीक है, ऐसा भी माना नहीं इसने। ऐसा का ऐसा बाहर में भटकाऊ... आहाहा! वर्तमान ज्ञान की दशा और राग और पुण्य और पाप में भटकायी है इसने। समझ में आाय? भाई! यह निश्चय प्रायश्चित्त का अधिकार है न! शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त कहो या चारित्र कहो, वीतरागदशा कहो, मोक्षमार्ग कहो—सब एक है। कहते हैं, अरे! शुद्धात्मा भगवान आनन्द का धाम प्रभु है न! ऐसा तेरा स्वरूप नित्य पड़ा है, उसके सामने देख और उसमें भाव को अविचलरूप से स्थापित कर। आहाहा! **निरन्तर ध्यावे...** निरन्तर भगवान आत्मा का—अपना ध्यान करे। आहाहा! समझ में आया?

**ध्याता है, वह यह...** वह यह, ऐसा। '**सोऽयम**' है न? 'अयं' शब्द पड़ा है न?

'**सोऽयमाचारराशिः**' चौथी लाईन। यह आचारराशि। आहाहा! कहते हैं, चारित्र का पुंज, चारित्र का समूह, आनन्द का नाथ हुआ वह तो, कहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द और परम कलास्वरूप भगवान आत्मा है, उसमें जो मन न चलित हो, ऐसा एकाग्र हुआ, उसकी दशा में चारित्र की पूर्ण दशा प्रगट हुई, वीतरागता प्रगट हुई, आनन्द का पुंज प्रगट हुआ। आहाहा! समझ में आया? ऐसा **आचारराशि जीव...** देखा! अकेला जीव, ऐसा नहीं कहा। जीव तो जीव कहा पहला, परन्तु उसमें अविचल मनवाला जीव। अकेला जीव मुक्ति को पावे, ऐसा नहीं कहा, परन्तु ऐसे भाववाला जीव। आहाहा!

अरे! निजघर में क्या चीज़ है, वह इसने सुनी नहीं। मर गया ऐसा कर-करके। समझ में आया? साधु हुआ, वस्त्र बदले, नग्न हुआ, स्त्री-पुत्र छोड़कर बैठा तो संसार छोड़कर बैठा। संसार कहाँ छोड़ा था? सुन न! संसार की खबर नहीं कि संसार कहाँ रहता होगा। स्त्री-पुत्र वह संसार है? तुझे किसने कहा कि वह संसार है? तुझमें राग का भाव हो विकल्प, वह मेरा, यह मान्यता मिथ्यात्व, वह बड़ा संसार है। अब वह संसार तो छोड़ना आया नहीं। स्त्री-पुत्र को छोड़कर बैठा (इसलिए) संसार छोड़कर बैठा। धूल भी संसार नहीं छोड़ा, सुन न! ऐ सेठ! कल पूछते थे न! संसार वहाँ कहाँ है कि छोड़े? किसे छोड़े? यह अज्ञानी मूढ़ को कहाँ भान है? पागल को भान कब था? ऐई! पागल से भरपूर है सब। यह स्त्री-पुत्र छोड़े (तो) छोड़ा संसार।

भगवान तो कहते हैं कि राग का कण दया, दान, व्रत का उठे, उतना कण भी मैं हूँ—ऐसी जो मिथ्यात्व की मान्यता, वह महासंसार है। उस मिथ्यात्व से... अपने आ गया है (समयसार) नाटक में। 'प्रसिद्ध होओ कि मिथ्यात्व, वह संसार है।' आहाहा! नाटक में। समझ में आया? जैनदर्शन में प्रसिद्धि पाओ कि राग और स्त्री-कुटुम्ब वे मेरे और पुण्य-परिणाम दया-दान, वे मेरे—यह मिथ्यात्व, वह संसार है, उसमें से नरक और निगोद में जाने का वह पंथ है। आहाहा! अरे! चीज़ कहाँ है और किस चीज़ में एकाग्र होने से मुझे धर्म होगा, (उसकी) खबर नहीं होती। अन्ध अन्ध। चलनेवाला अन्ध और बतलानेवाला अन्ध। अन्धेअन्ध पलाय।

यहाँ कहते हैं, ओहो! **यह...** यह अर्थात्? जो आनन्दमूर्ति आत्मा अतीन्द्रिय का

नाथ प्रभु आत्मा है और अनन्त गुण की कला से भरपूर प्रभु ध्रुव है। उसमें मन को स्थिर न होने देकर अविचलरूप से भाव को स्थापित करे वह जीव... वह जीव आचारराशि है। वह तो चारित्र का ढ़ेर प्रगट हुआ उसे। वह चारित्र है। नग्नपना हुआ और यह किया तो चारित्र। जय नारायण! सेठिया भी फिर कुछ छोड़ सके नहीं। इतना छोड़ना... यह छोड़कर बैठे हैं न? छोड़कर बैठे हैं आत्मा को।

**मुमुक्षु :** प्रत्येक मनुष्य मर जाये तो यहाँ सब छोड़कर जाता है। कहाँ लेकर जाता है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहो, समझ में आया? शरीर, वह तो पड़ा रहा। यह नारणभाई चले गये। आहाहा! कल तो अभी व्याख्यान में बैठे थे यहाँ। फिर भक्ति में आये थे। ढाई बजे उड़ गये। उड़ कौन जाये? यहाँ से अन्यत्र जाये। आहाहा! कहीं आत्मा नाश पाता है? आहाहा! शरीर बदला, अवस्था अन्तर की बदली, उसे लोग मरण कहते हैं, कौन मरे? आहाहा! जड़ मरे? आत्मा मरे? मरे कौन? आहाहा! देह रूपान्तर होती है। आहाहा!

अरेरे! इसने अपने निजघर को सुना नहीं कि कैसा (आत्मा) परमात्मा तीर्थंकरदेव कहते हैं। सर्वज्ञ परमात्मा की दिव्यध्वनि द्वारा आवाज है। भाई! तू तो गुण की कला से भरपूर है न, प्रभु! जिसमें से माल निकले, वह मालवाला तत्त्व कौन है, उसकी तुझे खबर नहीं होती। चावल की बोरी में से चावल निकले। कहीं (खाली) बोरी में से निकलते होंगे? ...में से चावल निकले। यह तो थैली जड़-मिट्टी है। यह पुण्य-पाप का राग होता है, वह भी मिट्टी, अचेतन, जड़ है। आहाहा! वह जीव नहीं। जीव जो मेरा जीव है, वह तो आनन्द और शान्ति और अनन्त ज्ञानादि से भरपूर पदार्थ है। वह स्वयं तू वह है। ऐसे तत्त्व में स्थिर होने के भाव से चले बिना स्थिर हो, वह जीव है। वह जीव सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र का वह पुंज है। चारित्र का पुंज कहा, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान आ गया। आहाहा! समझ में आया?

वह जीव **शीघ्र जीवन्मुक्त होता है।** वह अल्पकाल में केवलज्ञान प्राप्त करेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पद्मप्रभमलधारि मुनि दिगम्बर सन्त जंगलवासी। आहाहा! एक-एक लाईन में कितना लिखा है! **शीघ्र...** अब क्रमबद्ध था न, शीघ्र कहाँ से आया

वापस ? कि ऐसा जो आत्मा पूर्णानन्द, उसमें एकाग्र हो, उसे अल्पकाल में केवलज्ञान हो, ऐसी ही उसकी रीति है, ऐसा कहते हैं। उसे केवलज्ञान होने में असंख्य समय ही लगते हैं। उसे अनन्त समय नहीं लगते। ऐसा ही उसके क्रम में नियम है। आहाहा! समझ में आया ? अरे! इसने जाति को कभी जाना नहीं और जाति बिना भात कहीं पड़े नहीं। समझ में आया ? भात समझते हैं ? भात नहीं करते ? डिजाईन। जात बिना भात न पड़े, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** सब कला सीखी, यही कला नहीं आयी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी... वह सब कला तो अज्ञान की है। आहाहा! विष्टा को चोपड़ा। वह जहर को चोपड़ता है। यह बीड़ी ऐसी और तम्बाकू ऐसी—यह कला तो धूल की कला है, कहते हैं, सेठ! आहाहा! हमारे एक व्यक्ति कहता था, महाराज! हम सब मूढ़ ? आचार्य स्वयं कहते हैं कि अज्ञानी मूढ़ है! तेरी चीज़ की तुझे खबर नहीं और तू खबरी बाहर में चतुर। समझ में आया ? देव का पुत्र होकर बैठे कहीं विवाह-विवाह हो तो, इसका ऐसा करूँ... इसका ऐसा करूँ और इसका ऐसा करूँ। और महिलाओं को देखो तो, इकलौते लड़के का विवाह होता हो तो ऐसे गला बैठ जाये। गांठिया और मिर्च खाते हों, वह भजिया-बजिया। परन्तु अब थोड़ा... परन्तु भाई! ऐसा अवसर मिले नहीं, दिक्कत नहीं, दिक्कत नहीं। उसका गला बैठा हुआ हो तो भी बातें करे। मूर्खता का पार है ? यह सब पागल है। ऐई!

तीन-चार दिन का वह हो, मेहमान के साथ बातें की हों, पूरे दिन और रात बारह बजे तक बातें करे, कण्ठ बैठ जाये फिर। कढ़ी और ऐसा खाया हो, मिर्ची... वह जबरदस्ती बोले तो प्रसन्न हो। यह तो ल्हावा है बापू! जहर पीता है और ल्हावा है, ऐसा कहता है। आहाहा! यहाँ तो प्रभु कहते हैं कि तेरा आत्मा प्रभु ऐसा भरा है न। जैसे मक्खन का पिण्ड, उसमें मिठास और सफेदाई ही भरी है, उसी प्रकार प्रभु तेरा आनन्द का पिण्ड अनन्त गुण का सागर है वह। अरे! उसके सन्मुख एक बार देख तो सही! वह आया है भगवान तुझे ऐसा देने, उसके सामने तो देख। आहाहा! अनादर करता है। आहाहा! राग करना, पुण्य करना और ऐसा करना... ऐसा करना। उसमें मजा है मुझे ? आहाहा!

भगवान आत्मा अन्तर में आनन्द की मूर्ति प्रभु, उसमें अन्तर्मुख होने से... अन्तर्मुख होने से कहो या भाव को स्थिर करने से कहो। उसमें से प्रगट दशा, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की, आनन्द की दशा प्रगट हो, उसे यहाँ आचारराशि कहा जाता है। आत्मा के आचार की राशि, ऐसा। दया, दान और व्रत, वह आत्मा का आचार नहीं, वह तो विकार का आचार है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! ऐसा **जीव शीघ्र जीवन्मुक्त...** वह जीवन रहने पर भी केवलज्ञान को प्राप्त करेगा। आहाहा! और ऐसा जो आत्मा को पहिचाने नहीं, आत्मा की भावना करे नहीं, तो राग और पुण्य और पाप की भावना करेगा, नरक-निगोद में भटकेगा। आहाहा! ११९ (गाथा) हुई। १२०।

**सुहअसुहवयणरयणं रायादीभाववारणं किच्चा।**
**अप्पाणं जो झायदि तस्स दु णियमं हवे णियमा॥१२०॥**

यह नियम कुछ पालन किये, ऐसा नहीं कहते? यह नियम किसे कहना, उसका भान नहीं, कहते हैं। कुछ व्रत-नियम तो पालो, कुछ व्रत-नियम तो करो, ऐसा नहीं कहते? व्रत-नियम कहना किसे? समझ में आया? वह बात है यहाँ।

**शुभ अशुभ-रचना वचन की, परित्याग कर रागादि का।**
**उसको नियम से है नियम जो ध्यान करता आत्म का॥१२०॥**

इसे नियम है। कुछ नियम लिया, ऐसा नहीं कहते? कुछ नियम लिया कि हमारे कन्दमूल नहीं खाना, अमुक नहीं खाना। यह नियम नहीं। 'यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग वैराग अथाग लह्यो।' यह नियम अर्थात् अभिग्रह धारण किये। भिक्षा के लिये जाऊँ, मोतीबाई उसका नाम हो, मोतीचूर का लड्डू खाती हो, उसके पास मोती... कान का गहना टूटकर सुखाकर छोर में बाँधा हो। वह मोतीबाई मोतीचूर खाती हो, वह बाहर दे तो आहार लेना। ऐसे नियम लिये हों अनन्त बार। वह भी विकल्प है। कहते हैं, वह नियम सच्चा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

**यम नियम संजम आप कियो, पुनि त्याग बिराग अथाग लह्यो,**
**वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ आसन पद्म लगाय दियो।**
**मन पौन निरोध स्वबोध कियो हठजोय प्रयोग सु तार भयो,**

**सब शास्त्रनके नय धार हिये, मत मंडन खंडन भेद लिये**
**वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कुछ हाथ हजु न पर्यो**
**अब क्यों न बिचारत है मन से, कछु और रहा उन साधन से।**

यह साधन नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह नियम कहते हैं। क्या कहते हैं? देखो!

**टीका : यह, शुद्धनिश्चयनियम के स्वरूप का कथन है।** शुद्ध सच्चे नियम के स्वरूप का कथन है। **जो परमतत्त्वज्ञानी महातपोधन...** आहाहा! साधु की अपेक्षा से बात रखी है न मुख्यरूप से। **जो परमतत्त्वज्ञानी...** भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप का जिसे ज्ञान अन्तर में प्रगट हुआ है, आत्मज्ञान जिसे प्रगट हुआ है, शास्त्रज्ञान और बाहर के ज्ञान से पार। आहाहा! **परमतत्त्वज्ञानी...** परमतत्त्व ऐसा जो आत्मा, उसका जिसे ज्ञान प्रगट हुआ, अन्तर का भान प्रगट हुआ और **महातपोधन...** महा तपरूपी जिसे धन प्रगट हुआ है, स्वरूप की रमणता का चारित्ररूपी धन प्रगट हुआ है। आहाहा! देखो! यह धन आया मुनि को। वह धन तो धूल है। कल नहीं कहा था? वह लक्ष्मी मेरी। तू मर गया है, कहते हैं। लक्ष्मी कब तेरी? वह तो जड़ है। समझ में आया? आहाहा! मैं पैसेवाला हूँ, इज्जतवाला हूँ। मर गया है, सुन न! जीवित ज्योति का तो निषेध करता है और ऐसेवाला हूँ... समझ में आया? तुझे जीवन-मरण की खबर नहीं। जीवता जीव कैसा होता है? समझ में आया? और मरण भी समाधिमरण कैसा होता है? आहाहा!

जिसे आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु अन्दर में वेदन में भान हुआ है, और उसमें अविचलरूप से जिसकी स्थिरता है, ऐसा जो महातपोधन मुनि। आहाहा! कहते हैं कि उसे तो देह छूटने के काल में महा समाधि वर्तती होती है। आहाहा! आनन्द की शान्ति में यह देह छूट जाती है। कदाचित् विकल्प हो, तो भी उस विकल्प का ज्ञाता रहकर देह छूटती है। आहाहा! समझ में आया? उसका नाम समाधिमरण है। आ गया है पहले। ४२ आचार्यों को पूछकर... उत्तमार्थ... उत्तमार्थ प्रतिक्रमण। (गाथा ९२) आहाहा! बाहर से सब वृत्तियों को छोड़कर और अन्तर्मुख भगवान आत्मा में जहाँ दृष्टि को जोड़े, यहाँ तोड़े और वहाँ जोड़े, उसकी आनन्दमूर्ति में रहते हुए जो देह छूटे, उसका मरण बालमरण नहीं, परन्तु बालमरण को मिटानेवाला पण्डितमरण है। आहाहा!

**महातपोधन सदा संचित सूक्ष्मकर्मों को...** जो अज्ञान में बाँधे हुए कर्म, उन्हें **मूल से उखाड़ देने में...** समझ में आया? गधा खाता है न, वह मूल में से उखाड़कर खाता है। आहाहा! ऐसा कहते हैं, कर्म के रजकण जड़ मिट्टी। **संचित सूक्ष्मकर्मों को मूल से उखाड़ देने में समर्थ...** कर्म क्या? कहाँ रहते होंगे और मैं कहाँ हूँ? कुछ खबर नहीं होती। 'विहुयरयमला' नहीं कहा था एक बार? कुछ भान नहीं होता। बुढ़िया थी, बुढ़िया वृद्ध। दशाश्रीमाली और विशाश्रीमाली दो जातियाँ हैं न हमारे। समझ में आया? रामजीभाई दशाश्रीमाली, यह विशाश्रीमाली है। दोनों साथ-साथ बैठे हैं। यह विशाश्रीमाली है। जाति है जाति दो—दशा-विशा। उसमें दोनों को विवाद पड़ा लींबड़ी में, दशा-विशा को। उसमें दशावाली बाई होगी वृद्ध। सामायिक करके बैठी हुई। उसने मानी हुई सामायिक। सामायिक कब तुझे भान न हो वहाँ? परन्तु वह लेकर बैठे घड़ी। दो घड़ी चाहिए, दो घड़ी हुई, पूरी हो गयी—सामायिक हो गयी, उठ जाओ।

उसमें आया लोगस्स। बोलने में आता है। 'लोगस्स उज्झयरगरे...' चौबीस तीर्थंकर की स्तुति अपने आती है, परन्तु ... नहीं। दिगम्बर में आती है। 'लोगस्स उज्झयरगरे धम्मतित्थयरेजिणे...' चौबीस भगवान की स्तुति आती है। उसमें यह शब्द आया 'विहुयरयमला।' उसमें 'विहुयरयमला' आता है लोगस्स में। कुछ भान नहीं होता वृद्धा को, सामायिक में बैठी। उसमें (आया) विशा रोई मळया। 'विशा रोई मळया' यहाँ कहाँ से आया इसमें? आपने आता है, सामायिक के पाठ में आता है। दिगम्बर में आता है अपने सामायिक के पाठ में। पाठ में आता है, वाँचा है किसी दिन? विहुयरयमला... विहुयरयमला। विहुय अर्थात् विशेष टाले हैं, रय अर्थात् कर्म की रज सूक्ष्म रजकण, मल अर्थात् पुण्य-पाप के भाव टाले। उसे अर्थ की खबर नहीं होती, वस्तु की तो खबर नहीं होती। विसा रोई मळया। ऐई! अपना विवाद इसमें लोगस्स में कहाँ से आया? कहो, चन्दुभाई! चन्दुभाई विशाश्रीमाली हैं। नारणभाई दशाश्रीमाली थे। छूट गया भाई का। आहाहा!

विहुय... विहुय अर्थात् टाला है रज और मल। वह बाई क्या बोली? कि विशा रोई मळया। दो जातियाँ हैं यहाँ। विशा जाति है वह रोई मली। ऐई! अपने यहाँ कहाँ से आया इसमें? अर्थ तो देखो! वहाँ देखा तो, विशेष टाले हैं कर्मरूपी रज जिसने और

पुण्य-पाप का पूर्ण नाश करके परमात्मा हुए हैं। वहाँ तो ऐसा अर्थ है। कुछ भान नहीं होता। पहाड़े बोलते जाते हैं। 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं...' णमो अरिहंताणं अर्थात् क्या? अरि क्या, हंता क्या? णमो क्या? वह अपने कुछ नहीं। 'णमो अरिहंताणं' पहाड़ा बोले, भान नहीं होता कुछ। पूरी हो गयी। अब कितनी बार हुई वह राह देखे। उसमें जो कणी आ गयी हो तो देरी लगे, भाई! देरी क्यों लगी? कणी जाड़ी आ गयी हो उसमें। काँच का होता है न घड़ियाल। आहाहा!

कहते हैं, अनादि अज्ञान में पूर्व में जो शुभकर्म बाँधे हुए थे, उसे धर्मी मूल से उखाड़ डालने को समर्थ है। ऐसा भगवान आत्मा अन्दर में लीन होने से सदा संचितकर्म को मूल से उखाड़ डालने को समर्थ है। **निश्चयप्रायश्चित्त में परायण रहता हुआ...** स्वरूप के अन्दर में लीनता रखता हुआ, यह निश्चय प्रायश्चित्त है। यह निश्चय अर्थात् सच्चा चारित्र है, यह सच्चा मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! **निश्चयप्रायश्चित्त में परायण रहता हुआ मन-वचन-काया को नियमित किये होने से...** देखो! भाषा 'नियमित' है उसमें। (अर्थात्) संयमित किया। मन-वचन और काया, वहाँ से लक्ष्य छोड़ दिया है और पुण्य-पाप के विकल्प से भी लक्ष्य छोड़ दिया (और) स्वरूप में जम गया है। उसे चारित्र और उसे प्रायश्चित्त, उसे कर्म का नाश होता है, ऐसा भाव है। अज्ञानी को कर्म का नाश हो, ऐसा भाव है नहीं। नये कर्म बाँधे, ऐसा भाव है उसे। आहाहा! समझ में आया? नियमित... मन-वचन-काया को संयमित किया अर्थात् कि विकल्प की ओर से विमुख हो गया है। देह-मन-वाणी की क्रिया से हट गया है (और) अन्तर भगवान आत्मा के आनन्द में लीन हुआ है, उसे चारित्र और उसे संयम कहा जाता है। समझ में आया?

**भवरूपी बेल के मूल-कन्दात्मक...** आहाहा! क्या कहते हैं? यह चौरासीरूपी बेल—अवतार, उसका मूल-कन्द—उसका मूल शुभ और अशुभभाव। **शुभाशुभस्वरूप प्रशस्त-अप्रशस्त...** भाव और वचन। आहाहा! अच्छे शब्द बोलना, वचन। कहते हैं कि वह भव के कन्द का कारण है। आहाहा! भवरूपी कन्द का उत्पन्न होने का कारण है और उसमें शुभभाव हो, वह भी संसार में भटकने का कारण है। वचन... वचन निमित्त से बात है। उपादान में तो शुभ-अशुभभाव है, वह भवरूपी बेल का मूल-कन्द है, वह

मूल है। आहाहा! गजब बात है न! व्रत-तप और अपवास और भक्ति का जो भाव, वह संसार की बेल का मूल-कन्द है। उसमें से (विकार) उत्पन्न करके भटकेगा वह। वह तो विकल्प है—राग है। आहाहा! वीतरागमार्ग पूरी दुनिया से अलग। खबर नहीं होती।

**शुभाशुभस्वरूप प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना का निवारण...** करके... वाणी करना व्याख्यान की—प्रवचन की, वह भी शुभ वचन है। उसे छोड़ दे, वरना वहाँ विकल्प इकट्ठा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात है न! सम्यग्दर्शनसहित... निश्चयप्रायश्चित्त अर्थात् चारित्र का अधिकार है। **शुभाशुभस्वरूप प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना का निवारण करता है, केवल उस वचनरचना का ही तिरस्कार नहीं करता...** ऐसा वापस तिरस्कार। अकेले मन-वचन / वाणी बोलता नहीं, मैं मौन हूँ। उसमें क्या भला हुआ? अन्दर का शुभराग का विकल्प—जल्प जो उठता है, उसे छोड़कर स्थिर हो, तब संयमित और चारित्रवन्त कहने में आता है, उसे सच्चे नियम का पालन करनेवाला कहा जाता है। पण्डित अभी वाँचते नहीं नियमसार। हाथ भी आता नहीं। वाँचे तो उल्टे अर्थ करे। आहाहा! पहले सम्यग्दर्शन में ऐसी चीज़ें, वह तो समझ पहले। सम्यग्दर्शन प्रथम धर्म है। वह भी त्रिकाली द्रव्यस्वरूप का आश्रय लेने से हो सकता है। इसके अतिरिक्त विकल्प की क्रिया से नहीं होता। आहाहा!

**परन्तु...** कहते हैं, अकेले वचन का त्याग नहीं। **समस्त मोहरागद्वेषादि परभावों का निवारण करता है...** आहाहा! शुभ-अशुभ जो विकल्प—राग उठता है, उसका अभाव करता है—निवारण करता है। यह तो नास्ति से बात की। अब अस्ति। **( -निरन्तर ) अखण्ड, अद्वैत, सुन्दर-आनन्दस्यन्दी...** ऐसा **अनुपम, निरंजन निजकारणपरमात्मतत्त्व की सदा शुद्धोपयोग के बल से सम्भावना करता है,...** यह अस्ति। राग और वाणी का लक्ष्य छोड़कर और भगवान नित्यानन्द प्रभु... कैसा है? अनवरतरूप से निरन्तर अखण्ड है वह तो। एकरूप वस्तु परमात्मा, वह अपना आत्मा, हों! अद्वैत है, लो। गुण-गुणी का भेद भी जिसमें नहीं, अकेला अद्वैततत्त्व। यह अद्वैततत्त्व, हों! सब होकर आत्मा एक है, ऐसा नहीं। आहाहा!

**अद्वैत, सुन्दर-आनन्दस्यन्दी....** सुन्दर आनन्द झरता... आहाहा! आनन्द झरता

**अनुपम, निरंजन निजकारणपरमात्मतत्त्व की सदा शुद्धोपयोग के बल से...** कहते हैं कि शुद्ध उपयोग जहाँ अन्दर जमा, उसमें से निरन्तर आनन्द झरता है। अतीन्द्रिय आनन्द का झरना आत्मा है। वह पुण्य-पाप के विकल्प का झरना आत्मा नहीं। समझ में आया? आहाहा! पुण्य-पाप के भाव, वे तो दु:खरूप हैं। वे आत्मा में कहाँ थे कि वहाँ से झरे? आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। **सुन्दर-आनन्दस्यन्दी अनुपम,...** जिस आनन्द की उपमा नहीं मिलती। आहाहा! झरता है तो आनन्द, परन्तु आनन्द का झरना हो, ऐसा आत्मा है। अनुपम—जिसे कोई उपमा नहीं। **निरंजन निजकारणपरमात्मा...** निरंजन भगवान आत्मा वर्तमान में अंजन—रागरहित है, ऐसा **निजकारणपरमात्मा की सदा शुद्धोपयोग के बल से...** लो। शुद्धोपयोग के बल से... पुण्य-पाप के भाव हैं, वे अशुभ हैं... अशुभ हैं। उसके (शुद्धोपयोग के) बल से सम्यक् करता है, वह अन्तर में भावना अन्दर एकाग्र करता है, उसे सच्चा प्रायश्चित्त और सच्चा चारित्र और सच्चा धर्म होता है। विशेष एक पद है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**भाद्र कृष्ण १४, शनिवार, दिनांक - १८-०९-१९७१**
**गाथा-१२०, श्लोक-१९१-१९४ प्रवचन-१२८**

यह नियमसार चलता है। शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त अधिकार अर्थात् कि चारित्र का अधिकार। चारित्र (अर्थात्) स्वरूप की रमणता, वह साक्षात् मोक्ष का कारण है। वह चारित्र सम्यग्दर्शन और ज्ञान के बिना नहीं होता और वह सम्यग्दर्शन और ज्ञान त्रिकाली आत्मा के आश्रय बिना नहीं होता। कहो, समझ में आया? इसलिए यहाँ कहते हैं, देखो!

**निरंजन निजकारणपरमात्मतत्त्व की...** १२० गाथा की टीका का अन्तिम भाग। **अनुपम, निरंजन निजकारणपरमात्मतत्त्व की...** अपना स्वभाव त्रिकाली ध्रुव उसकी, सदा उसकी भावना करना, ऐसा कहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की नहीं, क्योंकि वह विकल्प है। समझ में आया? पर्याय की नहीं। त्रिकाली भगवान शुद्ध चैतन्य ध्रुव नित्य निजकारणपरमात्मा—अपना कारणपरमात्मा जिसमें से कार्यदशा प्रगट होती है। ऐसा कहकर (सिद्ध किया कि) निमित्तकारण से भी वह कार्य नहीं होता, व्यवहाररत्नत्रय के राग से भी वह कार्य नहीं होता, पर्याय के आश्रय से भी वह कार्य नहीं होता। आहाहा! जगत को कठिन। देव-गुरु-धर्म से धर्म नहीं होता, ऐसा कहते हैं।

**मुमुक्षु :** किसी जगह विवादास्पद चर्चा नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** छूने देते नहीं। यह शास्त्र का अर्थ कहते हैं हम। ऐसा कहते हैं कि तुझमें कहाँ कमी है, कहाँ हीनता है, कहाँ विरोधता है कि तू पर का आश्रय लेने जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा कहा, देखो न! यह अनुपम... सुन्दर आनन्द झरती चीज़ है। आहाहा! यह नीम में से जैसे गोंद झरता है, देखो न! वह क्या कहते हैं? अफीम। अफीम का डोडा होता है न? उसमें से अफीम झरती है अफीम। यह खसखस का डोडा होता है उसमें से अफीम निकलती है। उसी प्रकार आनन्दमूर्ति भगवान त्रिकाली नित्यानन्द में से

आनन्द निकले अर्थात् मोक्षमार्ग निकले। आहा! आनन्द का नाम मोक्षमार्ग। सम्यग्दर्शन, वह आनन्द है। अतीन्द्रिय आनन्द की दशा का अंश है। सम्यग्ज्ञान, वह आनन्द है, चारित्र तो है ही विशेष आनन्द। ऐसी बात है।

कहते हैं, निरुपम—**अनुपम, निरंजन निजकारणपरमात्मतत्त्व की सदा...** ऐसा कहते हैं। किसी समय भी व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा से आत्मा को संवर-निर्जरा हो, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह सम्मेदशिखर और शत्रुंजय की यात्रा करने से संवर-निर्जरा हो, ऐसा नहीं है। हो गयी परन्तु... वह बीच में शुभराग हो, परन्तु वह बन्ध का कारण है। आहाहा! यह बात तो... '**सदा**' ऐसा कहते हैं। 'सदा' ऐसा कहने से किसी समय—किसी समय शुभराग से भी संवर-निर्जरा हो और किसी समय त्रिकाली के आश्रय से शुद्धभाव से भी निर्जरा हो—ऐसा नहीं है। समझ में आया? जिसकी श्रद्धा का ठिकाना नहीं, उसे संवर-निर्जरा कैसी? धर्मदशा कैसी? ऐसा कहते हैं।

**सदा शुद्धोपयोग के बल से...** ऐसा कहते हैं। शुभ के बल से नहीं। शुभ के बल से शुद्ध हो और शुद्धोपयोग के बल से निर्जरा हो, ऐसा नहीं है। कठिन काम! **शुद्धोपयोग के बल से सम्यक् भावना करता है,...** वस्तु जो नित्यानन्द प्रभु, उसके सन्मुख का जो शुद्ध उपयोग, उसके बल से जो अन्तर एकाग्रता करता है, उस तपोधन को—**महातपोधन को नियम से**—निश्चय से **शुद्धनिश्चयनियम है,...** नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग। यह नियमसार है न! नियम उसे होता है। सार तो, व्यवहाररहित है, इसलिए (सार) कहा है। समझ में आया? इसमें आ गया नियमसार में। नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। यह त्रिकाली द्रव्यस्वभाव के आश्रय से, शुद्धोपयोग के बल से यह नियम प्रगट होता है। जिस नियम में शुभराग का अभाव है। सार अर्थात् व्यवहार का अभाव। समझ में आया? यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा से भी राग होता है, ऐसा कहते हैं। त्रिकाली भगवान आत्मा के शुद्धोपयोग के बल से ही संवर और निर्जरा होती है। भारी कठिन काम! लोगों को सुनने में कठिन पड़े।

ऐसे **नियम से शुद्धनिश्चयनियम है,...** ऐसे निश्चय अन्तर कर्तव्य से उसे शुद्धनिश्चय नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग है। वीतरागमार्ग

अपने स्वभाव के आश्रय से प्रगट होता है। पराश्रय से जितना विकल्प, वह सब ही बन्ध का कारण है। आहाहा! तीर्थंकर ऐसा कहते हैं कि मुझे मानने से भी तुझे पुण्य होगा। आहाहा! उसे शुद्धनिश्चय नियम है। **ऐसा भगवान सूत्रकार का अभिप्राय है।** स्वयं टीकाकार मुनि नौ सौ वर्ष पहले दिगम्बर सन्त वनवासी थे, अनन्त केवलियों के मार्गानुसारी सन्त थे। वे ऐसा कहते हैं कि **भगवान सूत्रकार...** लो, टीका में है, देखो! **'भगवतां सूत्रकृतामिति'**

मुनि स्वयं हैं पंच महाव्रतधारी और शुद्धोपयोग की परिणतिसहित। शुद्ध परिणति है, वे ऐसा कहते हैं कि अरे! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का तो यह अभिप्राय है, भाई! तू दूसरा अभिप्राय करेगा तो जायेगा चार गति में भटकने। यहाँ ऐसा कहते हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का यह अभिप्राय है कि त्रिकाली वस्तु भगवान आत्मा का आश्रय करके एकाग्र हो, उसे नियम और मोक्ष का मार्ग सच्चा होता है। दूसरे को सच्चा मार्ग होता नहीं। ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का अभिप्राय है, ऐसा लिखा है, देखो न! **'भगवतां सूत्रकृतामिति अभिप्रायो:'** आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य के अभिप्राय से विरुद्ध कहे और हम कुन्दकुन्दाचार्य को मानते हैं, ऐसा कहे (तो वह मानता नहीं)। समझ में आया? मानता नहीं। स्वच्छन्द का सेवन करनेवाला है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** यह शास्त्र तो भव्य जीवों को लिये रचकर....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** (भव्य) जीवों के लिये ही है। अभव्यों के लिये नहीं। क्या है?

**मुमुक्षु :** इसलिए उपकारी मानना चाहिए।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उपकार का विकल्प आवे, वह दूसरी बात है, तथापि वह बन्ध का कारण है। ऐ शिवलालभाई! तुम्हारे बापू तो ऐसी टोकरी बजाते थे सुबह-शाम। श्रीमद् का फोटो लेकर वाँचें, टोकरी बजाकर भक्ति करे और उससे अपने को कल्याण हो जायेगा, (ऐसा माने), हमने श्रीमद् को पकड़ा है। यहाँ तो कहते हैं, तीन लोक के नाथ साक्षात् तीर्थंकर हों, उन्हें पकड़ तो वह राग है। आहाहा! ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का अभिप्राय है, ऐसा मुनिराज स्वयं कहते हैं। समझ में आया?

वहाँ '**अप्पाणं जो झायदि**' ऐसा है न ? '**सुहअसुहवयणरयणं रायादीभाववारणं किच्चा। अप्पाणं जो झायदि**' ऐसा कहा है। देव-गुरु-शास्त्र का ध्यान करे, उसे सच्चा सम्यग्दर्शन है, ऐसा नहीं कहा। '**अप्पाणं जो झायदि तस्स दु णियमं हवे**' उसे मोक्ष का मार्ग अर्थात् उसे समकित होता है। आहाहा! समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** भगवान को जैसे हैं, वैसे माने तो राग कहाँ है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु परद्रव्य है, उसका लक्ष्य है तो राग है। परद्रव्य है, स्वद्रव्य नहीं। परद्रव्यानुसारी वृत्ति राग है। '**परदव्वाओ दुग्गई**' ऐसा पाठ है कुन्दकुन्दाचार्य का। परद्रव्य के आश्रय से वृत्ति, वह दुर्गति है, आत्मा की गति नहीं। भले स्वर्ग मिले, परन्तु वह दुर्गति है। आहाहा! मार्ग कठिन। लोगों को अन्तर चीज़ की महिमा आती नहीं कि उसे कोई बाहर की अपेक्षा है ही नहीं। आहाहा! तीर्थंकर कहते हैं, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं और कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, उसका अभिप्राय यह मुनिराज कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य का यह अभिप्राय है कि निज कारणपरमात्मा की शुद्ध उपयोग से जो भावना करता है, उसे ही मोक्ष का मार्ग होता है अर्थात् सम्यग्दर्शन से लेकर चारित्र उसे होता है। समझ में आया ?

**१२०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज चार श्लोक कहते हैं :**—लो।

**वचनरचनां त्यक्त्वा भव्यः शुभाशुभलक्षणां,**
**सहजपरमात्मानं नित्यं सुभावयति स्फुटम्।**
**परम-यमिनस्तस्य ज्ञानात्मनो नियमादयं,**
**भवति नियमः शुद्धो मुक्त्यङ्गनासुखकारणम्॥१९१॥**

यह '**भव्यः**' शब्द आया न, इसलिए सेठ ने निकाला पहले से। महामुनिराज २८ मूलगुणों के विकल्प होने पर भी, यह लिखने का विकल्प होने पर भी, यह कहते हैं कि विकल्प से मुझे लाभ नहीं है—ऐसा कहते हैं। शास्त्र की रचना होती है, उसमें निमित्तपना विकल्प का है, परन्तु विकल्प से मुझे कुछ लाभ नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**श्लोकार्थः—जो भव्य शुभाशुभस्वरूप वचनरचना को छोड़कर...** आहाहा! यह शास्त्र के वचन कि बोलना, उसे छोड़ और उस सम्बन्धी का राग छोड़कर **सदा स्फुटरूप से...** उसमें डाल दिया। पहले पाठ में तो यह था न! वचनरचना को छोड़े और रागादि भाव को छोड़े—ऐसा दोनों था। इसमें डाल दिया एक में दोनों। शुभवचन... आहाहा! धर्म की प्ररूपणा, वह शुभवचन, वह आत्मा का कर्तव्य नहीं, हितकारी नहीं। वचन हितकारी है? ऐसी बातें हैं, भाई! अगम-निगम की बात है। यह तो वीतराग... जो कोई भव्यप्राणी—योग्यतावाला जीव **शुभाशुभस्वरूप वचनरचना...** जैनशास्त्र की स्वाध्याय के वचन प्ररूपणा के, कहने के, उन्हें भी छोड़कर... उस ओर का लक्ष्य छोड़ने से राग छूट जाता है। **सदा स्फुटरूप से—**सदा प्रगटरूप से... भगवान तीन लोक का नाथ आत्मा सदा प्रगटरूप से विराजमान चैतन्य ध्रुव है। **सहज परमात्मा...** स्वयं स्वाभाविक परमात्मा है। आहाहा! समझ में आया?

'सहजात्मस्वरूप' आता है न श्रीमद् में? यह सहजात्मस्वरूप यह आत्मा स्वयं है। समझ में आया? सदा प्रगटरूप से **सहज परमात्मा को...** स्वाभाविक भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द प्रभु, उसे **सम्यक् प्रकार से भाता है,...** अर्थात् कि विकल्प से नहीं, परन्तु स्वभाव-सन्मुख होकर एकाग्रता करता है। निमित्त से, राग से और पर्याय से—सबसे विमुख हुआ है और स्वभाव अन्तर ध्रुव के सन्मुख हुआ है। वह आत्मा की भावना करनेवाला कहा जाता है। **उस ज्ञानात्मक परम यमी को...** देखो! यह क्या कहा? जो सहज परमात्मा को सम्यक् प्रकार से भाता है, उसकी दशा ज्ञानस्वरूप हो गयी है। रागरूप नहीं रही, पुण्य के विकल्पवाली दशा नहीं।

**ज्ञानात्मक परम यमी को...** ज्ञान, श्रद्धा, शान्ति तीनों को ज्ञानस्वरूप कहा है। ऐसे संयमी को—परमसंयमी को **मुक्तिरूपी स्त्री के सुख का कारण ऐसा यह शुद्धनियम नियम से (-अवश्य) है।** ओहो! परमात्मपद, मुक्तिरूपी स्त्री का जो सुख अतीन्द्रिय आनन्द... सिद्ध को मुक्ति में जो अतीन्द्रिय आनन्द, उसका कारण इस जीव का शुद्ध नियम, वह निश्चय से होता है। समझ में आया? अपना भगवान—निजस्वरूप भगवान का जो ध्यान करता है, उसके सन्मुख की भावना में एकाग्र है, उस जीव को मुक्तिरूपी अनन्त आनन्द है, उसका कारण, उसकी नियम की पर्याय है, वह कारण होती है।

इसलिए शुद्ध-उपयोग कहा, यहाँ उसे नियम कहा। समझ में आया? कहो, समझ में आया?

उसे ऐसा **यह शुद्ध नियम...** शुद्ध नियम... परमात्मा निजस्वरूप शुद्ध आनन्दस्वरूप आत्मा की एकाग्रता, ऐसी जो शुद्ध उपयोगदशा अथवा वह मोक्ष के मार्ग की दशा, वह पूर्ण आनन्द का कारण होती है। समझ में आया? यह नियम—**शुद्ध नियम, नियम से है...** अवश्य है। आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप परमात्मा निजानन्द से भरपूर भगवान की एकाग्रता अर्थात् शुद्ध उपयोग, उसकी एकाग्रता, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। ऐसी एकाग्रता वह नियम, वह नियम मुक्ति का नियम निश्चय से होता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? **नियम, नियम से है...** ऐसा। ऐसा नियम मोक्ष का कारण निश्चय से है। आहाहा! अरे! उसे वीतरागभाव ऐसा आत्मा जिसे पर की कुछ अपेक्षा ही नहीं। समझ में आया?

अलिंगग्रहण में आता है न यह दसवाँ बोल। सूर्य में जैसे मैल (ग्रहण) नहीं, उसी प्रकार भगवान आत्मा में विकार है ही नहीं शुभपरिणाम का। शुभपरिणाम का विकार, हों! देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति और देव-गुरु को मानना, वह राग-विकार है। वह विकार स्वरूप में नहीं। वह शुद्ध उपयोग स्वभावी है, ऐसा कहा है। अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं, प्रवचनसार—वीतराग की वाणी का सार। उसके अलिंगग्रहण के बीस बोल, उसका यह दसवाँ बोल है। उपयोग का हरण नहीं और उपयोग में विकार नहीं, उसे—शुद्ध उपयोग को आत्मा कहा जाता है। वह शुद्ध उपयोग की दशा, वह आत्मा की दशा। राग की दशा, वह आत्मा की दशा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

उसे तो शुद्ध उपयोग स्वभावी ही आत्मा कहा है। शुभरागवाला दया, दान और व्रत और भक्ति और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, वह सब आत्मा नहीं। वह आत्मा नहीं, वह आत्मा की पर्याय नहीं। आहाहा! ऐसी बात तो जगत को कान में पड़ना महापुण्य से है। आहाहा! वह भगवान आत्मा शुद्ध उपयोग स्वभावी है। शुभ और अशुभ परिणामवाला—विकारवाला आत्मा है? स्वभाव है, वह शुद्ध है। उसे विकारवाला आत्मा (कहना)? वह तो शुद्ध उपयोगी स्वभावी आत्मा है। उस शुद्ध उपयोग के बल

से आत्मा एकाग्र होता है और उसे नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। आहाहा! १९१ कलश हुआ। १९२।

**अनवरतमखण्डाद्वैतचिन्निर्विकारे,**
**निखिलनयविलासो न स्फुरत्येव किञ्चित्।**
**अपगत इह यस्मिन् भेदवादस्समस्तः,**
**तमहमभिनमामि स्तौमि सम्भावयामि॥१९२॥**

तीन शब्द प्रयोग किये हैं इसमें। आहाहा! कठिन मार्ग। लोगों ने ऐसा नोंच डाला है। वीतरागमार्ग को उल्टी रीति से चित्रित किया है और मानते हैं कि हम वीतरागमार्ग को मानते हैं। समझ में आया?

**श्लोकार्थः—जो अनवरतरूप से...** अनवरत—( **-निरन्तर ) अखण्ड अद्वैत चैतन्य के कारण...** भगवान आत्मा एक तो निरन्तर अखण्ड, अद्वैत, चैतन्य ऐसा उसका त्रिकाली स्वरूप है। उसके कारण **निर्विकार है...** आहाहा! जो निरन्तर अखण्ड है आत्मा, अद्वैत है—उसमें दोपना नहीं। गुण-गुणी का भेद भी नहीं, वह तो अखण्ड अद्वैत है। आहाहा! ऐसे **चैतन्य के कारण निर्विकार है, उसमें ( -उस परमात्मपदार्थ में )...** त्रिकाली परमार्थ पदार्थ। स्वयं परमात्मा त्रिकाल है भगवान स्वयं। उसे पर्याय में प्रगट हो तब सिद्ध कहा जाता है। प्राप्त की प्राप्ति है। उसमें है, वह बाहर आता है। ऐसे चैतन्य परमात्म पदार्थ में **समस्त नयविलास किंचित् स्फुरित ही नहीं होता।** मैं अबद्ध हूँ, शुद्ध हूँ—ऐसा निश्चयनय का विकल्प भी वहाँ है नहीं। आहाहा! मैं व्यवहारवाला हूँ, रागवाला हूँ और निमित्त के सम्बन्धवाला हूँ—ऐसे नय तो उसमें नहीं, परन्तु मैं अकेला अबद्ध और शुद्ध हूँ, ऐसा जो विकल्प, वह भी उसमें नहीं। ऐसा आत्मा का त्रिकाली शुद्ध आनन्दघन का स्वरूप है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** मैं कैसा हूँ, ऐसा विकल्प नहीं....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मैं कैसा हूँ ऐसा विकल्प उसमें नहीं। विकल्प कहाँ है? वह तो राग है। स्वयं परमात्मा है, दूसरा परमात्मा नहीं। आहाहा! 'मैं कौन हूँ' यह वृत्ति उठती है, वह तो राग है। वह राग वस्तु में कहाँ है? बहुत सूक्ष्म बात है, मूलचन्दभाई!

नयविलास विकल्प है। मैं निश्चय से ऐसा हूँ और व्यवहार से ऐसा हूँ। ऐसा उसमें है नहीं। अन्दर ज्ञानानन्दस्वरूप सच्चिदानन्द—सत्-शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द का धाम है... उसमें नयविलास (अर्थात्) नय अर्थात् ज्ञान के अंशों के भेद—विकल्प उसमें है नहीं। **किंचित् स्फुरित ही नहीं होता।** वापस ऐसा। **नयविलास...** अर्थात् भेद, नय के प्रकार **किंचित् स्फुरित ही नहीं होता।** आहाहा! यह तो लोगों को व्यवहार के पक्षवालों को तो यह ऐसा लगे। वह तो अनादि का व्यवहार का पक्ष है, उसमें नया क्या है? यह चोट लगती है। हाय! हाय! व्यवहार का तो नाश हो जाता है। परन्तु व्यवहार उसमें है ही नहीं, फिर प्रश्न कहाँ? आहाहा! समझ में आया? जिसे अभी बाहर की श्रद्धा का ठिकाना नहीं। पर से होगा, राग से होगा, उससे (होगा)—उसे तो बाहर की व्यवहारश्रद्धा का ठिकाना नहीं। समझ में आया? उसे परलक्ष्यी श्रद्धा का भी ठिकाना नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **जिसमें से समस्त भेदवाद दूर हुए हैं,...** देखो! नयविलास इकट्ठा लेंगे। भेद—नयादि विकल्प दूर हुए हैं, अर्थात् उसमें है ही नहीं... है ही नहीं। भगवान आत्मा अकेला सहजात्मस्वरूप, पूर्ण चैतन्यदल, वीतरागबिम्ब प्रभु त्रिकाली आत्मा, उसमें यह नय के भेद दूर है अर्थात् है ही नहीं। आहाहा! **उसे उस परमात्मपदार्थ को...** मुनिराज कहते हैं कि **मैं नमन करता हूँ।** उसे मैं नमन करता हूँ। मेरा झुकाव हो तो ध्रुव आत्मा की ओर है। नित्यानन्द आत्मा अविनाशी अनादि-अनन्त ऐसी चीज़ में मेरा झुकाव है, उसमें मैं नमित हूँ। आहाहा! कहो, समझ में आया? अन्यमत में आता है वह। कृष्ण का रूप लेकर आये। तुलसीदास कहते हैं, इसे नहीं नमूँगा, राम को नमूँगा। मेरे राम आवे तो नमूँगा।

विवाह में भी ऐसा आता है। जब... 'नहीं नमे रे नहीं नमे रे, मोटाना छोरुं नहीं नमे।' ऐसा आता था। सुना था। बहुत वर्ष का सुना हुआ हो, ५०-६० वर्ष। उस समय का कहीं याद नहीं अपने को। तब छोटी उम्र, १८ वर्ष की उम्र। हमारे फावाभाई की १४ वर्ष की। उनका विवाह था। परन्तु ऐसा आवे। यह सब कुँवरजीभाई को विवाह में... गढडा के उपाश्रय में थे वहाँ। बारात आयी तब हम वहाँ थे। कुँवरजीभाई का यह दूसरा विवाह है। पहला विवाह तो उमराला। दूसरा विवाह हुआ तब मैं वहाँ था। मेरा छोटा भाई साथ में विवाह में आया था। भाई नहीं आये थे खुशालभाई। दुकान में... मुझसे

छोटा था वह... तब वे सब बोलते थे बस में बैठाया तब। 'नहीं नमे रे नहीं नमे, मोटाना छोरु नहीं नमे...' कन्या देने से ही छुटकारा, ऐसा कहे। यहाँ आत्मा की प्रजा निर्मलानन्द, वह राग को नहीं नमे, वह तो आत्मा को ही नमेगी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान पूर्णानन्द प्रभु को जिसने दृष्टि में लिया है, वह वहाँ ही नमकर परिणमन करता है। वह राग, पुण्य को, निमित्त को नहीं नमता। आहाहा! समझ में आया? उसे 'मैं नमता हूँ' ऐसा करके अपनी बात करके जगत को सत्य प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! उसे मैं **स्तवन करता हूँ...** उसकी प्रशंसा करता हूँ। राग और निमित्त की प्रशंसा नहीं, ऐसा कहते हैं। **सम्यक् प्रकार से भाता हूँ।** मैं उसमें एकाग्र होता हूँ। भावना मेरी निर्मल परिणति में है। राग की भावना, वह मेरी भावना नहीं। आहाहा!

तीन बोल लिये। यहाँ '**अहमभिनमामि**' है न? '**तमहमभिनमामि**' ऐसी अन्तिम लाईन है। '**स्तौमि**' और '**संभावयामि**' वापस नमामि में '**अभिनमामि**' ऐसा है। '**अभिनमामि**'—उसके सन्मुख होकर उसमें झुका हुआ है, ऐसा। आहाहा! एक बोल भी सच्चा समझे तो उसे अन्दर से न्याय उघड़ जाये। सम्यग्ज्ञान प्रगट हो। परन्तु एक भी बराबर जानना चाहिए न! होंकारा करे आड़े-टेड़े, वह तो अनन्त बार की माथाकूट (सिरपच्ची) की। आहाहा! लो, उसे मैं सम्यक् प्रकार से अर्थात् कि ऐसे विकल्प से नहीं, परन्तु अन्दर ऐसे यथार्थरूप से शुद्ध चिदानन्द भगवान में मैं एकाग्र होता हूँ। उसमें एकाग्र होकर उसकी ही मेरी भावना है। आहाहा! शुभभाव होओ, निमित्त अच्छे मिलो—यह मेरी भावना है नहीं। आहाहा! १९३ (कलश)।

**इदं ध्यानमिदं ध्येयमयं ध्याता फलं च तत्।**
**एभिर्विकल्प-जालैर्यन्निर्मुक्तं तन्नमाम्यहम्॥१९३॥**

ओहोहो! **श्लोकार्थः**—जिसमें निमित्त तो नहीं, निमित्त की ओर का विकल्प है, वह तो नहीं, परन्तु **यह ध्यान है...** निर्मल सम्यक् शुद्धोपयोग, वह ध्यान है और यह ध्येय, आत्मा **ध्येय है...** और वह ध्यान करनेवाला **ध्याता है और वह फल है...** और उसका फल मुक्ति है।—**ऐसे विकल्पजालों से जो मुक्त है,...** कहो, समझ में आया?

ध्यान, ध्याता और ध्येय तथा उसका फल—यह सब भेद का विकल्पजाल है, उससे भगवान त्रिकाल मुक्त है। आहाहा! श्लोक एक और उसके चार कलश। एक में नौ-नौ आये थे। उसका भाव रखे न। ऐसे विकल्प के भेदजाल से भगवान परमानन्द की मूर्ति आत्मा भेदजाल से तो रहित ही है। जिससे रहित है, उससे सहित होकर आत्मा को लाभ मिले, यह कैसे हो? ऐसा कहते हैं। गजब परन्तु! यह देखो न झगड़े कितने! एक कहे कि नाचो, बस ऐसा करो और भूल जाओ, शून्य हो जाओ विकल्प से। यह विकल्प से शून्य... शून्य कहाँ? किस चीज़ को लक्ष्य में लिया, वह शून्य हो? शून्य ही है, यहाँ कहा, विकल्प से शून्य है। देखो ने! यह वस्तु जो है, उसे दृष्टि में लेने से विकल्प से शून्य हो जाता है। समझ में आया? क्योंकि विकल्प तो उसमें है ही नहीं, शुभराग भी उसमें नहीं। आहाहा!

पंच महाव्रत का विकल्प, आहाहा! शास्त्रस्वाध्याय का विकल्प और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भी विकल्प जिसकी चीज़ में नहीं **उसे ( -उस परमात्मतत्त्व को ) मैं नमन करता हूँ।** है न अन्तिम। '**तन्नमाम्यहम्**' ऐसा भगवान आत्मा शुद्ध पूर्ण प्रभु में मेरा झुकाव है, उसे मैं नमता हूँ। आहाहा! बाहर के त्रिलोकनाथ तीर्थंकर को नमना, वह भी एक विकल्प है, राग है।—ऐसा तीर्थंकर फरमाते हैं। अपनी कल्पना से शास्त्र वाँचे और अर्थ बैठावे अपनी कल्पना से खोटे-खोटे। 'निज कल्पना से कोटि शास्त्र मात्र मानका गुमान। गुमान मान का कि हमने वाँचा है और अपने को आता है।

यहाँ तो कहते हैं कि जिसमें देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री-कुटुम्ब-परिवार या मुक्तिशिला या शत्रुंजय या सम्मेदशिखर नहीं, उसके लक्ष्य से विकल्प होता है, वह भी उसमें नहीं, परन्तु उसमें चार भेद पड़ते हैं, वह भी उसमें नहीं, ऐसा कहते हैं। सेठ! ऐसी बातें भारी सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म। यह बाहर से हो-हा होकर मिल जाये मुझे। प्रभावना की और दो लाख खर्च किये, पाँच लाख खर्च किये। लोग पाँच-पाँच हजार आये और सीखे, इसलिए अपने को उसमें से धर्म हो गया (-ऐसा नहीं है)। कठिन काम। ऐसा जो परमात्मा मैं त्रिकाली, जिसमें ध्यान-ध्याता-ध्येय और धर्म का फल ये भेद—प्रकार है ही नहीं उसमें। आहाहा! ऐसी विकल्पजालों से जो रहित है, **उसे ( -उस परमात्मतत्त्व को ) मैं नमन करता हूँ।** परमात्मतत्त्व स्वयं है, ऐसा कहते हैं। 'अप्पा सो परमप्पा'

बहुत चलता है तारणस्वामी में। ममलपाहुड़, ज्ञानसमुच्चयसार। परन्तु वह भी कहाँ तुमने वाँचा है कभी ? वाँच है ? लो, भाई इनकार करते हैं। ऐसा कि... १९४ (कलश)। आहाहा!

**भेदवादाः कदाचित्स्युर्यस्मिन् योगपरायणे।**
**तस्य मुक्तिर्भवेन्नो वा को जानात्यार्हते मते॥१९४॥**

आहाहा! तीर्थंकरदेव, त्रिलोकनाथ, अरिहन्त के मत में—परमेश्वर वीतरागदेव के मत में **योगपरायण में कदाचित् भेदवाद उत्पन्न होते हैं...** धर्मात्मा अन्तर में अभेद आनन्द में एकाकार रहे, उसमें भेद उत्पन्न होता है कि मैं शुद्ध हूँ, यह पर्याय है—ऐसा विकल्प—भेद उत्पन्न होता है.... **अर्थात् जिस योगनिष्ठ योगी को...** यहाँ योगपरायण कहा न ? योग अर्थात् स्वरूप में जुड़ान में प्रीतिवाला, रुचिवाला, स्थिरतावाला। **कभी विकल्प उठते हैं...** यह द्रव्य है और यह गुण है और यह पर्याय है, ऐसा कहते हैं। ध्याता है और यह ध्यान है—ऐसी वृत्ति उठे राग-भेद, **उसकी अर्हत के मत में मुक्ति होगी या नहीं होगी, वह कौन जानता है ?** ऐसों को मुक्ति होगी नहीं। भगवान के मत में ऐसा है। समझ में आया ? सर्वा अरिहन्त परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के मत में अभेद से मुक्ति होती है, परन्तु उसमें भेद उत्पन्न हुआ, उससे मुक्ति होगी या नहीं होगी, कौन जाने ? यह तो अज्ञानी मानता है, ऐसा कहते हैं। लो, ऐसा मार्ग है यह। इस पंचम काल के प्राणी के लिये कहते हैं। समझ में आया ?

यह चौथे काल की बात होगी या पंचम काल की बात है ? मुनि पंचम काल के हैं। पंचम काल के जीव को कहते हैं। भगवान के मार्ग में पंचम क्या, तीनों काल में (एक ही बात होती है)। अन्तर स्वरूप की एकता, अभेदता वही मुक्ति का कारण है। जितना भेद पड़े, विकल्प उठे कि मैं शुद्ध हूँ, यह पर्याय है और यह द्रव्य है... द्रव्य-गुण और पर्याय, अपने, हों! पर की तो बात छोड़ दी है, परन्तु अपना द्रव्य है और गुण है और पर्याय है, ऐसा भेद विकल्प उठे, उससे वीतराग के मत में मुक्ति नहीं है। यह विकल्प बन्ध का कारण है, भेद बन्ध का कारण है। आहाहा! कहो, ऐसा है। ऐसा पाठ लिया है न देखो! **'जानात्यार्हते मते'** वीतरागमार्ग के अन्दर में राग और भेद से धर्म होगा और मुक्ति होगी (ऐसा) कौन जाने ? अज्ञानी मानता हो तो भले माने। समझ में आया ? वीतराग मत में यह है नहीं। आहाहा!

निमित्त से मुक्ति होगी, यह नहीं; निमित्त की श्रद्धा के राग से धर्म होगा, यह नहीं; परन्तु गुण–गुणी का भेद उठाकर विकल्प उठा, उससे मुक्ति अर्थात् संवर–निर्जरा तीन काल में नहीं है। आहाहा! हीरालालजी! कठिन बात। मैं आत्मा हूँ, मैं आत्मा हूँ। राजा हो गया फिर उसे 'मैं राजा हूँ... राजा हूँ।' ऐसा होगा उसे? वह गद्दी में न बैठा हो, तब तक ऐसा होता है कि राजा हूँ... राजा हूँ। परन्तु गद्दी पर बैठने के पश्चात् 'राजा हूँ' ऐसा होता होगा? है, उसमें फिर 'मैं हूँ' ऐसा कहाँ आया? है ही। समझ में आया? दिगम्बर सन्तों ने कथनी की है, वह तो अलौकिक केवली के घर की की है। समझ में आया? उसे छोड़कर जो बातें करे, वह सब आत्मा के घर की और केवली की नहीं है। अर्हंत के मत की नहीं है, ऐसा कहा न, अर्हंत के मत की नहीं है। आहाहा!

वाह रे वाह! मुनि ने भी कलश करके यह कितना स्पष्ट किया है! भिन्न–भिन्न प्रकार से... आहाहा! तेरी चीज़ ऐसी है, तुझे बतायी, प्रसन्न हो... प्रसन्न हो। समझ में आया? आता है न पहले समयसार में। आनन्द में आ जा एक बार। आहाहा! ऐसा स्वभाव, जिसे भेद की अपेक्षा नहीं, राग और निमित्त की तो किसकी हो? अभेद भगवान की अभेद भक्ति में एकाकार में भेद की गन्ध नहीं। भेद उठे और उसे लाभ हो, यह अर्हंत के मत में नहीं है। अज्ञानियों का मत हो तो भले मानो। आहाहा! समझ में आया? मुनि ने भी...!

मुनि ने भी '**तस्य मुक्तिर्भवेन्नो वा**' उसे मुक्ति होगी या नहीं? अज्ञानी माने भले, कहते हैं। आहाहा! विकल्प उठा और उससे मुक्ति होगी, भेद से मुक्ति होगी, (ऐसा) अज्ञानी मानता है। वीतराग मत में तो यह है नहीं। आहाहा! कठिन काम। ऐसा होगा तो कोई किसी का विनय नहीं करेगा, दूसरे को समझावे किसलिए? कुछ मान दे, बहुमान दे, इसके लिये समझाना है या नहीं? बड़ा ठहरावे। यह तो कहे, दूसरे को जो बड़ा ठहराने जायेगा तो तेरा घर जायेगा। परन्तु पण्डित का उपकार कोई नहीं माने। पण्डित थोथा रह जायेगा। हो गया, लो। हमने तुमको पढ़ाया, इसका फल क्या? तुम तो हमको मानते नहीं। तथापि उसे विकल्प में मान आये बिना रहता नहीं, तथापि वह विकल्प बन्ध का कारण है। आहाहा! योगपरायण—आत्मा में एकाग्रता की लीनता, स्वभाव-स्वरूप में निष्ठ ऐसे धर्मी को कभी विकल्प उठे। परन्तु विकल्प उठे ऐसे धर्मी को मुक्ति

होगी या नहीं कौन जाने? जब तक विकल्प में है, तब तक मुक्ति नहीं होगी। आहाहा!

भाई! कुन्दकुन्दाचार्य ने पंचास्तिकाय में १७० गाथा में कहा। तीर्थंकर कहते हैं कि जब तक मेरी रुचि रहेगी, नौ तत्त्व की रुचि रहेगी, यह आगम की रुचि जब तक रहेगी, तब तक तुझे मुक्ति नहीं होगी, तब तक मोक्ष दूर है। आहाहा! समझ में आया? इस गाथा का अर्थ श्रीमद् में दूसरा लिखा गया है। श्रीमद् ने ऐसा लिखा। गाथा है... परन्तु उसमें दूरतर नहीं, ऐसा लिखा है। उल्टा पूरा अर्थ गड़बड़ में चढ़ गया है। वह लोग अर्थ करने जाये कि क्या लिखा है। महाराज! देव-गुरु-शास्त्र को मानने से मुक्ति दूर? ऐसा होगा? ऐसा लिखो कि दूर नहीं। है न उसमें? उसमें नहीं। ... नहीं लिखा होगा। कहो, समझ में आया? उसमें अर्थ भरा है। पाठ में दूसरा है और अर्थ में दूसरा है। उसके वाँचनेवाले को ऐसा ही लगता है कि इसमें मुक्ति की नजदीकता है। पंचास्तिकाय का अर्थ है न... उसका पाठ—कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा यह है। जब तक तीर्थंकर की रुचि है, परद्रव्य है तीर्थंकर, उनका विकल्प है, रुचि है, वह विकल्प है, आगम की रुचि रहेगी, तब तक विकल्प है, नौ तत्त्व की श्रद्धा रहेगी, तब तक भेद का विकल्प है, उसे मुक्ति दूरतर है, ऐसा पाठ है। उसका मोक्ष दूर है, बहुत दूर है। पंचास्तिकाय में अर्थ किया है। कितनी (गाथा) है पंचास्तिकाय? इसमें नहीं?

'परमेष्ठी पद के विषे जो तत्त्वार्थप्रतीतिपूर्वक भक्ति है और निर्ग्रन्थ प्रवर्तन में रुचिरूप से जिसे बुद्धि परिणमी है, तथा जो संयम तप सहित वर्तता है, उसे मोक्ष कुछ दूर नहीं।' कुन्दकुन्दाचार्य के सिद्धान्त में ऐसा है कि मोक्ष दूर है। अर्थात् अर्थ में अन्तर कर दिया। अर्थ उल्टा हो गया। 'उसे मोक्ष कुछ दूर नहीं है।' यह पंचास्तिकाय है न? इस गाथा का अर्थ है। यह १७० गाथा, जिसे **संयमतपसंयुक्त होने पर भी,...** मुनि है, समकिती है, संयम तप है, परन्तु **नव पदार्थों तथा तीर्थंकर के प्रति जिसकी बुद्धि का झुकाव वर्तता है...** नौ तत्त्व की श्रद्धा का विकल्प... **और सूत्रों के प्रति जिसे रुचि (प्रीति) वर्तती है, उस जीव को, निर्वाण दूरतर (विशेष दूर) है।** आहाहा! समझ में आया?

कुन्दकुन्दाचार्य का यह कथन है। अर्थकार ने 'मोक्ष दूर नहीं' (ऐसा) उल्टा सब किया। वह वाँचनकार की बेचारे की दृष्टि विपरीत पड़ी और जिन्दगी चली जाये, हो

गया। समझ में आया? हीराभाई! लो, गाथा यह है। वस्तु वह यह है। वीतरागमार्ग है, यह कहीं रंक का मार्ग—कल्पित मार्ग नहीं है। तीन लोक के नाथ वीतराग, ऐसा ही स्वयं वीतराग भगवान है। उसके मार्ग में भेद से मुक्ति माने, (ऐसा) अरिहन्त के मत में नहीं है, कहते हैं। कहो, उसमें ऊपर कहा था कि यह कुन्दकुन्दाचार्य का अभिप्राय यह है। उसक कलश में यह डाला कि अरिहन्त का मत यह नहीं है। विकल्प से—भेद से धर्म माने, मुक्ति माने, वह भगवान का अभिप्राय नहीं है। अरे! अरिहन्त देव और गुरु दोनों डाले हैं। आहाहा! पाटनीजी! उसमें कुछ छाछ लेने जाये वहाँ फिर दौना (बर्तन) नहीं छुपावे। यह है भाई! मार्ग यह है। मानो—न मानो, बाद में मानो। दूसरे प्रकार से मानो तो भटकना पड़ेगा। आहाहा! तीर्थंकर के घर में ही यह बात होती है। दूसरे तो कहे कि हमको दो, हमको आहार-पानी दो, भक्ति करो, तुम्हारा कल्याण होगा। यहाँ कहते हैं कि हमारी भक्ति करो, आहार-पानी दो, (तो) तुम्हें पुण्य होगा, धर्म नहीं होगा। अरे.. अरे! गजब बात है! ऐई! मूलचन्दभाई!

पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिराज दिगम्बर मुनि वनवासी सन्त थे। कहते हैं कि जो अन्तर ध्यान में स्थिरता में से हट जाये और विकल्प उठे, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का, द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद उठे, ऐसे को अरिहन्त मत में मुक्ति (नहीं है)। केवली के अभिप्राय में—तीन लोक के नाथ वीतराग परमेश्वर के मत में... 'मत में' ऐसा कहा है न? मुक्ति होगी या नहीं होगी, कौन जाने? अर्थात् होगी नहीं, आहाहा! विशेष स्पष्ट किया। कहो, ठीक! १२० है न। **नियम से...** कहा है न? **नियम से नियम है...** ऐससा कहा है न? ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। नियम से नियम है। उसका यह स्पष्ट किया। कुन्दकुन्दाचार्य का यह अभिप्राय और भगवान का यह अभिप्राय है। समझ में आया?

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र कृष्ण अमावस्या, रविवार, दिनांक - १९-०९-१९७१
गाथा-१२१, श्लोक-१९५, प्रवचन-१२९

यह नियमसार, शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त अधिकार चलता है। १२१ गाथा।

**कायाईपरदव्वे थिरभावं परिहरत्तु अप्पाणं।**
**तस्स हवे तणुसग्गं जो झायइ णिव्वियप्पेण॥१२१॥**

नीचे हरिगीत

**परद्रव्य काया आदि से परित्याग स्थैर्य, निजात्म को।**
**ध्याता विकल्प-विमुक्त, उसको नियत कायोत्सर्ग हो॥१२१॥**

क्या कहते हैं? देखो! **टीकाः—यह, निश्चयकायोत्सर्ग के स्वरूप का कथन है।** क्या कहते हैं? इस गाथा में निश्चय अपना धर्मस्वरूप, कायोत्सर्ग अर्थात् काया और राग से रहित अपने निज स्वरूप में स्थिरता, निर्विकल्प आनन्द में लीनता, उसका नाम कायोत्सर्ग है। आयेगा अन्दर। यह ऊपर उपोद्घात किया है थोड़ा। काया है न काया। काया... त्याग है। काया का—शरीर का त्याग अन्तर दृष्टि में और विकल्प का त्याग और सब रमणीय क्षेत्रादि लेंगे। अन्तर निजस्वरूप अखण्ड आनन्दधाम भगवान नित्य ध्रुव में दृष्टि लगाकर उसमें—निर्विकल्पदशा में स्थिर होना, उसका नाम कायोत्सर्ग अर्थात् धर्म है। पण्डितजी! समझ में आया? वह कहते हैं, देखो! टीका।

**यह निश्चय...** अर्थात् यथार्थ, **कायोत्सर्ग के...** आत्मा के सिवाय—अलावा रागादि सबको काय कहते हैं। शुभभाव, दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति का भाव, वह भी काया है—कर्मकाया है, यह आत्मा नहीं। कायोत्सर्ग का सच्चा स्वरूप यहाँ कहते हैं। कायोत्सर्ग कहो... आता है न तस्सउत्तरि में 'ताव कायं ठाणेणं माणेणं...' इसके अर्थ-बर्थ की खबर नहीं होती। हिम्मतभाई! 'तस्सउत्तरि करणेणं प्रायश्चित करणेणं ताव कायं ठाणेण माणेणं जाणेणं...' कुछ अर्थ की खबर नहीं होती, भाव की खबर नहीं होती। ताव उतर जाये। आहाहा! आता है न जयन्तीभाई! यहाँ तो परमेश्वर त्रिलोकनाथ

तीर्थंकरदेव जिसने एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में तीन काल, तीन लोक देखा, ऐसे तीर्थंकर परमेश्वर कायोत्सर्ग किसको कहते हैं? कायोत्सर्ग कहो, मोक्षमार्ग कहो, निर्मल निर्विकल्पदशा कहो, धर्मध्यान (कहो), यह धर्म। धर्मध्यान कहो—यह एक ही चीज़ है। आहाहा! वीतरागमार्ग पूर्ण समझना कठिन जगत को। सर्वज्ञ तीर्थंकर परमेश्वर जिसने एक समय में तीन काल, तीन लोक देखा, उसने धर्म का यथार्थ स्वरूप ऐसा कहा। कायोत्सर्ग कहो या धर्म कहो—एक ही बात है। पहली टीका।

**सादि-सान्त...** यह शरीर... शरीर जड़-मिट्टी है न। यह काया तो मिट्टी-जड़ है, पुद्गल है। **सादि...** यह तो सादि (अर्थात्) नया उत्पन्न हुआ। यह कोई अनादि की चीज़ नहीं है। यह (शरीर) तो माता के गर्भ में नया उत्पन्न हुआ है, मिट्टी जड़ है। सादि है वह। सादि अर्थात् आदि हुई है और अन्त है। देह का अन्त हो जायेगा। यह शरीर सादि-सान्त है। **मूर्त...** है। जड़ मूर्त रंग, गन्ध, स्पर्शवाली यह चीज़ है। **विजातीय...** है। आत्मा चैतन्य है तो यह जड़ जाति है। कायोत्सर्ग शब्द है न, कायोत्सर्ग। तो काया—शरीर जड़ मिट्टी देह की सादि—शुरुआत हुई है। आत्मा के सम्बन्ध में सादि हुई है (और) अन्त आयेगा। यह कोई आत्मा की चीज़ नहीं है। आहाहा! और मूर्त है। जिसमें रंग, गन्ध, स्पर्श भरा है। विजातीय है। आत्मा चैतन्य भगवान से यह विजात है-कुजात है-आत्मा से दूसरी जाति है। आहाहा! समझ में आया? विजातीय, विजातीय लिया है न! जैसे ब्राह्मण से हरिजन-भंगी विजात है, वैसे आत्मा से शरीर विजात है। आहाहा!

पश्चात् **विभाव-व्यंजनपर्यायात्मक...** यह एक परमाणु नहीं, यह तो अनन्त परमाणु का पिण्ड जड़ है। तो विभाव है, यह विभाव है। विभाव, व्यंजन अर्थात् आकृति। शरीर की आकृति है न? व्यंजनपर्याय। व्यंजनपर्याय आकृति **अपना आकार...** धरती है **वह काया।** एक बात। **'आदि' शब्द से क्षेत्र...** मकान, खेत, बँगला आदि। ....कहेंगे अभी। **गृह**—मकान, **कनक**—सोना, **रमणी...** स्त्री-पुत्रादि **आदि। इन सबमें स्थिरभाव—सनातनभाव छोड़कर...** क्या कहते हैं? यह चीज़ कायम रहेगी ऐसी जो दृष्टि है... यह स्त्री, कुटुम्ब, परिवार सब तो अस्थिर-जड़ है, मिट्टी-धूल। समझ में आया? स्थिरभाव की दृष्टि छोड़कर... स्थिर तो, मैं सनातन आत्मा अनादि-अनन्त स्थिर हूँ। समझ में आया? आहाहा! यह धर्म अभी कैसे हो, उसकी खबर नहीं होती। कहते हैं, यह शरीर,

क्षेत्र, गृह, कनक और स्त्री-पुत्र आदि, यह कायम रहेंगे—ऐसी जो दृष्टि अज्ञानी की है, उसे छोड़ दे। यह सब तो नाशवान पदार्थ हैं। यह तेरी चीज़ नहीं, तुझमें नहीं, तू उसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? किसको धर्म होता है, उसकी बात चलती है। समझ में आया? कायोत्सर्ग कहो या धर्म कहो।

सादि स्थिरभाव... है तो अपनी चीज़ अनादि-अनन्त स्थिर, परन्तु अनादि से अपनी स्थिर वस्तु की खबर नहीं, तो यह (कायादि) स्थिर रहेगी, ऐसी अज्ञानी की मान्यता है। वह दृष्टि छोड़कर... **कायादिक स्थिर हैं...** क्षेत्र स्थिर है, मकान जड़ स्थिर है, सोना, स्त्री आदि स्थिर है—ऐसा सब छोड़कर... उसमें से दृष्टि छोड़ दे प्रभु! यह तेरी चीज़ नहीं। आहाहा! यह तुझमें नहीं। और तुम उसमें नहीं। खबर नहीं... खबर नहीं। आहा! **नित्य-रमणीय निरंजन...** अब उस (जड़) की दृष्टि छोड़कर... भगवान आत्मा अपना निजस्वरूप कैसा है? कि नित्य है। आत्मा नित्य ध्रुव अनादि-अनन्त है। यह (शरीर) सादि-सान्त है, यह आत्मा अनादि-अनन्त है। है?

**नित्य-रमणीय...** आत्मा तो आनन्ददायक, उसमें रमण करनेयोग्य चीज़ है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से भरा हुआ पदार्थ है। समझ में आया? आचार्य पद्मप्रभमलधारिदेव दिगम्बर मुनि हैं। वे टीका करते हैं पाठ की। पाठ तो कुन्दकुन्दाचार्य का है, उसकी टीका करते हैं कि भाई! तुम तो नित्य रमणीय हो न! यह काया में रमता है 'यह मेरी है' (ऐसी) दृष्टि छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? नित्य रमणीय प्रभु आत्मा शाश्वत् आनन्ददायक प्रभु है। आहाहा! अन्तर रमनेयोग्य यह चीज़ है। समझ में आया?

**नित्य-रमणीय निरंजन निज कारणपरमात्मा...** निरंजन है, उसमें अंजन-बंजन, कर्म का बन्ध और राग-बाग है नहीं। आहाहा! ऐसी अपनी चीज़ शुद्ध चैतन्यघन भगवान नित्यानन्द रमणीय निज कारणपरमात्मा—अपना कारणपरमात्मा, उसमें से मोक्ष का कार्य प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात! एक भी बात सुनी न हो, समझा न हो और धर्म करते हैं, ऐसा माने। अनादि से अज्ञानी ऐसा का ऐसा मानकर जिन्दगी व्यर्थ जाये... आत्मा अन्दर चीज़ नित्य—रमणीय ध्रुव आनन्ददायक चीज़ निज कारण—अपना कारणप्रभु ध्रुव, जिसमें से केवलज्ञानादि कार्य प्रगट होता है, ऐसा

अपना आत्मा। आहाहा! ऐसा आत्मा है, उसकी खबर न हो। समझ में आया? ऐसा अपना स्वरूप...

क्रिया **व्यवहार क्रियाकाण्ड आडम्बर सम्बन्धी विविध विकल्परूप कोलाहल रहित...** उसमें दया पालन करूँ, भक्ति करूँ और पूजा करूँ, व्यापार करूँ—ऐसी विकल्प की जाल आत्मा में नहीं है। समझ में आया? व्यवहार क्रियाकाण्ड—दया, व्रत, तप, अपवास, पूजा, भक्ति और यात्रा—यह सब विकल्प-रागजाल है। शास्त्र का सुनना और वाँचना, यह विकल्प की जाल है। चन्दुभाई! अरे, कठिन बात, भगवान! तेरा आत्मा पर को सुने और ... समझ में आये ऐसी चीज़ ही नहीं, यह कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! उसने अनन्त काल में सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है और सम्यग्दर्शन का ध्येय-विषय क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं की। ऐसा का ऐसा मिथ्यादृष्टि—अन्ध-अन्धा अनन्त बार दिगम्बर साधु हो गया, आत्मा के भान बिना। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, व्यवहार क्रियाकाण्ड व्रत, तप, अपवास, दया, दान, पूजा और नामस्मरण-भक्ति आदि यह सब व्यवहार क्रियाकाण्ड का विकल्प—राग है। यह सब तो आडम्बर है। आहाहा! मणिभाई! ऐसी बात है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा ने केवलज्ञान में देखा कि तेरा आत्मा तो ऐसा है, भाई! इसकी तुझे खबर नहीं। आहाहा! ऐसा **आडम्बर सम्बन्धी विविध विकल्परूप कोलाहल...** आहाहा! ऐसा करना और ऐसा नहीं करना, ऐसा खाना, ऐसा नहीं खाना और ऐसा पीना और ऐसा नहीं पीना, ऐसा पालना और ऐसा नहीं पालना—ऐसे विविध विकल्प का कोलाहल, वह सब राग की जाति है। आहाहा! उससे तो रहित है। वस्तु उससे रहित—उससे रहित है। आहाहा! समझ में आया? कभी सुना नहीं, इसलिए लगे कि यह क्या चीज़ है। यह कहीं वीतराग की चीज़ होगी ऐसी? क्रियाकाण्ड में मान लिया सब मिथ्यात्वभाव में। वह तो कहते हैं कि क्रियाकाण्ड के विकल्प के जाल से तो रहित है प्रभु अन्दर। समझ में आया?

ऐसे आत्मा में **सहज-परम-योग के बल से...** यह वस्तु। अन्तर नित्यानन्द भगवान अपना निजस्वभाव शुद्ध ध्रुव त्रिकाल में स्वाभाविक योग के बल से—शुद्ध उपयोग के बल से... पुण्य और पाप के क्रियाकाण्ड के विकल्प से रहित अपने नित्य रमणीय भगवान में सहज योग... सहज योग के बल से... स्वाभाविक स्वरूप की एकाग्रता

की क्रिया शुद्ध उपयोग की, उसके बल द्वारा, यह धर्म। आहाहा! समझ में आया? **सहज-परम-योग के बल से...** स्वाभाविक अपना जो आत्मा निर्मलानन्द सहज प्रभु नित्यानन्द, उसकी अन्दर में सहज निर्विकल्प रागरहित शुद्ध परिणतिरूपी योगबल के द्वारा... आहाहा! अभी तो शब्दों का अर्थ समझना कठिन है। ऐसा माने अज्ञानी। धर्म तो नहीं, परन्तु धर्म कैसे हो, यह सुना नहीं। आहाहा! उल्टा सुना हुआ? बात सच्ची। उल्टा सुना हुआ सब। दरकार नहीं। यह देखो न! जानेवाले हो न आज अब। दरकार की नहीं अभी। ऐ सेठ! आहाहा! **सहज-परम-योग के बल से...** भाषा देखो! भगवान आत्मा नित्यानन्दस्वरूप पर दृष्टि करने से... सहज स्वभाव का उपयोग—शुद्ध उपयोग के बल से... यह शुद्ध उपयोग धर्म है। आहाहा! समझ में आया?

**सहज-तपश्चरणरूपी क्षीरसागर का चन्द्र...** ऐसा आत्मा, अपना त्रिकाली निज कारणपरमात्मा, शुद्ध उपयोग द्वारा उसका ध्यान, यह आत्मा स्वाभाविक तपस्या... वीतरागीदशा अन्दर में प्रगट हुई। ऐसी सहज तपश्चरणरूपी क्षीरसागर का वह चन्द्र... स्वाभाविक चारित्ररूपी **क्षीरसागर को उछालने में चन्द्र समान ऐसा जो जीव...** आहाहा! कैसा जीव? नित्य-आनन्द प्रभु में लीनता करनेवाला जीव, अपने शुद्धोपयोग द्वारा उसमें रमनेवाला जीव। आहाहा! जैसे पूनम का चन्द्र खिलता है, पूनम का चन्द्र, (तो) समुद्र उछलता है। पूनम के दिन चन्द्र उछलता है—ऐसा सम्बन्ध है। चन्द्रमा पूनम (के दिन) जब खिले, तब (समुद्र में) ज्वार आता है, बाढ़। बाढ़... बाढ़ कहते हैं? क्या कहते हैं? इसी प्रकार भगवान आत्मा, आहाहा! अपने आनन्दस्वरूप में रमणता करनेवाला ऐसा जो आत्मा, वह स्वाभाविक चारित्ररूपी क्षीरसागर का चन्द्र है। आहाहा! वह तो आनन्द की रमणता को वृद्धि करे, ऐसा वह आतमा है, कहते हैं। आत्मा में से—उसमें से अतीन्द्रिय आनन्द उछले। आहाहा! वीतराग तीर्थंकरदेव ऐसा स्वरूप अनादि से कहते आये हैं। इसने कभी दरकार की नहीं। मनुष्य जन्म ऐसे का ऐसे गँवाया पशु की तरह। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, स्वाभाविक चारित्ररूपी क्षीरसागर का चन्द्र ऐसा वह जीव... देखो! कैसा वह जीव? कि आत्मा के त्रिकाली आनन्द में रमणता जिसने प्रगट की है, ऐसा वह जीव। कहो, भीखाभाई! यह बातें गजब! ऐसा वीतराग का धर्म होगा? यह जैन में

तो यह कन्दमूल नहीं खाना, यह खाना, पीना, लेना... अरे! यह तो विधि-निषेध का विकल्प है, यह तो आत्मा का स्वरूप ही नहीं। आहाहा! उससे रहित है आत्मा। यह तो कोलाहल, विकल्प का जाल है। कहते हैं, ऐसा यह जीव कि जिसने नित्यानन्द प्रभु की दृष्टि करके, उसमें रमणता आदरी है—रमणता शुरु की है। आहाहा! और विकल्प से लेकर सब स्थिर हैं, ऐसी दृष्टि जिसने छोड़ दी है। कहो, सेठ! इसमें वाँचा भी नहीं होगा घर में। वाँच है यह? ढीला बोलते हैं। बीड़ियों में ऐसा बोलते होंगे वहाँ?

**मुमुक्षु :** वाँचे तो (भी) निकले नहीं इसमें से सार। भाव ही न निकाल सके।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु पहले वाँचें तब खबर पड़े न कि भाव निकलते हैं या नहीं? आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने जगत के समक्ष सत्य को प्रसिद्ध किया। आहाहा! भाई! वीतराग का सत्य तो यह है। तेरी कल्पना से तुम मानते हो तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ अनन्त काल से रुलते हो। समझ में आया?

**नित्य ध्याता है,...** आहाहा! अपना सहजानन्द प्रभु, उसकी दृष्टि करके जिसने अन्तर में रमणता प्रगट की है, वह ऐसे आत्मा को नित्य ध्याता है, ध्यान में लेकर लीन होता है, उसको कायोत्सर्ग होता है। समझ में आया? भारी कठिन काम। आहाहा! ऐसा जो धर्मात्मा... अपना आनन्द भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का अकेला पुंज प्रभु, ऐसी रमणीय चीज़ में रमता है, ऐसी रमणीय चीज़ में रमते हुए लीन होता है, निर्विकल्पदशा में रमता है, वह आत्मा को नित्य ध्याता है। **उस सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि...** क्या कहते हैं? कायोत्सर्ग कहना है न? इसमें (-अपने में) रमता है और पर से वैराग्य हो गया है। विकल्प से लेकर परिवार, शरीरादि सब मेरी चीज़ नहीं। समझ में आया? यह विकल्प उठते हैं, वह मेरे हैं, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है, अजैन की है। यह जैन की श्रद्धा नहीं। समझ में आया? क्योंकि विकल्प उठते हैं, वह राग है, राग मेरा मानना, वह तो मिथ्यादृष्टि है, वह जैन नहीं।

जैन तो (माने कि) राग से रहित मेरी चीज़ है। और स्त्री मेरी है, पुरुष—पति मेरा है, पुत्र मेरा है—ऐसी मान्यतावाला मिथ्यादृष्टि अजैन है। समझ में आया? आहाहा! जयन्तीभाई! यहाँ तो, यह मान्यता छोड़कर, ऐसा कहते हैं। वीतरागमार्ग है, भाई! तीर्थंकर केवली... 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं...' आता है न मांगलिक में? पहाड़े बोले, भाव

का कुछ भान नहीं होता। 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं।' केवली पण्णत्तो परन्तु कौन सा धर्म, कैसे? यह दया पालते हैं, व्रत करते हैं, वह धर्म। धूल भी धर्म नहीं, सुन तो सही! आहाहा! पण्डितजी! ऐसा मार्ग भारी कठिन। सब कहीं कर सके? आत्मा है या नहीं? आत्मा है, उससे हो सकता है। अनात्मा से नहीं हो सकता। आहाहा!

कहते हैं... इस ओर से कहा न कि नित्य ध्याता है। तो इस ओर से 'वैराग्य है' ऐसा कहना है। स्वाभाविक वैराग्यरूपी महल का शिखर का शिखामणि **( परम सहज-वैराग्यवन्त जीव को ) वास्तव में निश्चयकायोत्सर्ग है।** वास्तव में उसको कायोत्सर्ग होता है। अज्ञानी (माने कि) पत्नी मेरी, लक्ष्मी मेरी, दया, दान का विकल्प मेरा—ऐसे अज्ञानी को कायोत्सर्ग और धर्म होता नहीं। मणिभाई! ऐसा कठिन मार्ग, भाई! सुनने को मिलता नहीं। अभी तो उल्टी-उल्टी बातें सब। जाओ धर्म हो गया। जिन्दगी व्यर्थ करके, अज्ञानी पशु की भाँति जिन्दगी व्यतीत करता है।

**मुमुक्षु :** पण्डितों ने घोटाला...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** घोटाला तुमने माना किसलिए? तुमने माना है न! तुमको रुचि है तो मानते हो। देखो! यह मलूकचन्दभाई सुलटा लेते हैं। .... आहाहा!

भगवान! यदि तेरे धर्म की पर्याय प्रगट... धर्म एक पर्याय है, अवस्था है। तो वह अवस्था कहाँ से आयेगी? क्या दया-दान के विकल्प से आयेगी? वह तो राग है। क्या निमित्त से आयेगी? शरीर में से आयेगी? अपनी एक समय की व्यक्त-प्रगट पर्याय है, क्या उसमें से धर्मपर्याय आयेगी? आज तो हिन्दी होता है। भैया प्रेमचन्दजी! आज तो समझ में आता है। जाना है न आज। आहाहा! भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु जिसमें रमनेयोग्य है। पर्याय में रमनेयोग्य है? राग में रमनेयोग्य है? राग तो कोलाहल है। आहाहा!

ऐसी निज चीज़ अन्दर में नित्यानन्द प्रभु को ध्याते हैं, ध्यान में लेकर रमते हैं, (उन्हें) बाह्य विकल्प से लेकर (सब चीज़ से) सहज वैराग्य है। पर का वैराग्य है और स्व में लीन है। आहाहा! कठिन बातें, भाई! उसको धर्म होता है, उसको सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है, उसको कायोत्सर्ग होता है।—ऐसा त्रिलोकनाथ परमात्मा का फरमान है। इन्द्रों और गणधरों के बीच भगवान की ऐसी दिव्यध्वनि आयी थी, वह सन्त

कहते हैं। आहाहा! **( परम सहज-वैराग्यवन्त जीव को )...** अर्थात् शुभ विकल्प से लेकर सब परचीज़, उससे उदास होकर, उससे रहित होकर सहज वैराग्य (और) अपने नित्यानन्द भगवान में लीन होना, उसका नाम कायोत्सर्ग अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसका नाम है, उसका नाम धर्म है, उसका नाम धर्मध्यान है। आहाहा! दिमाग में प्रविष्ट होना कठिन। यह वह भाषा ही ऐसी है। वीतराग के घर की भाषा ही अलग है।

**अब, इस शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज...** दिगम्बर सन्त थे, उन्होंने यह टीका बनायी है ९०० वर्ष पहले। वनवासी, मुनि तो वनवासी थे—वन में रहते थे। अन्तर आनन्द में झूलते थे मुनि। अतीन्द्रिय आनन्द में झूलनेवाले प्रचुर आनन्द का वेदन... उसमें—जंगल में बसते थे, ऐसे मुनि ने यह टीका बनायी है। मूल श्लोक कुन्दकुन्दाचार्य का है। **श्री पद्मप्रभमलधारिदेव पाँच श्लोक कहते हैं:—** लो। अस्ति और नास्ति दोनों आ गया। अस्ति—पूर्ण प्रभु आनन्दघन, वह अस्ति और रागादि से नास्ति। ऐसी अपनी चीज़ में लीनता, उसका नाम धर्म है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह भी विकल्प-राग है। राग से रहित आत्मा है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। दूसरे प्रकार से कहें तो, यह देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य हैं। उसकी मान्यता करते हैं, वह राग है। वास्तव में पर की मान्यता करना राग, वह आत्मा के स्वभाव में है ही नहीं। अपनी मान्यता करना, वह आत्मा के स्वभाव में है। आहाहा! समझ में नहीं आया, ऐ सेठ! क्या कहा? देव-गुरु और शास्त्र; स्त्री-कुटुम्ब-परिवार तो कहीं भिन्न रह गये; परन्तु देव-गुरु और शास्त्र अपनी चीज़ से पर द्रव्य हैं। तो परद्रव्य की मान्यता, वह राग है। वह राग, आत्मा के स्वभाव में नहीं है अर्थात् परद्रव्य की मान्यता करना, यह आत्मा का स्वभाव है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

परद्रव्य की श्रद्धा करना, यह आत्मा के स्वभाव में है ही नहीं। अरे, अरे! गजब बात करते हैं न! अपना भगवान पूर्णानन्द की श्रद्धा—सम्यग्दर्शन, यह अपना स्वभाव है। उसमें है, उसमें से (श्रद्धा) आती है। आहाहा! समझ में आया? हीराभाई! क्या कहा—क्या कहा? अरिहन्त और सिद्ध को मानना, वह विकल्प है, तो कहते हैं कि उन्हें मानने का विकल्प, वह आत्मा के स्वभाव में नहीं, इसलिए उन्हें मानना, वह आत्मा

के स्वभाव में नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात है। भगवान आत्मा... कहते हैं, उसके स्वभाव में नहीं है। कोई ऐसा कहे कि वह तो विकल्प है न? विकल्प हो, तब तक मुक्ति नहीं होती। परन्तु पहले से विकल्प जो है देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह राग आत्मा के स्वभाव में नहीं है। उसका अर्थ कि परद्रव्य की श्रद्धा करना, यह आत्मा के स्वभाव में नहीं है। चन्दुभाई! ऐसी बात है, भगवान! क्या कहे? आहाहा!

निज भगवान आत्मा चिदानन्द नित्य ध्रुव का सम्यग्दर्शन करना—उसकी श्रद्धा करना, वह आत्मा के स्वभाव में है। श्रद्धा करना, वह आत्मा का स्वभाव है। आहाहा! यह वह कोई...? वीतरागमार्ग में ऐसा होता है। देवीलालजी! गये लगते हैं। दूर क्यों बैठे? पीछे नहीं, आगे यहाँ आओ। क्या कहीं यह अन्तिम बात? देव-गुरु और शास्त्र... स्त्री-कुटुम्ब-परिवार तो हमारे आत्मा में है नहीं और उसकी श्रद्धा करे तो मिथ्यात्व है। परन्तु अरिहन्तदेव (आदि) पंच परमेष्ठी की श्रद्धा करना, वह राग है। परद्रव्य है न, तो उसकी श्रद्धा करने का राग और श्रद्धा करना, ऐसा आत्मस्वभाव में है नहीं। चन्दुभाई! आहाहा! यह बात तो वीतराग करे, हों! दूसरे तो मुख के आगे ग्रास किसे खराब लगे? हमको मानो, तुम्हारा कल्याण होगा। यहाँ तो (कहते हैं कि) तेरे कल्याण में हमको मानना, ऐसा भाव है ही नहीं।

**मुमुक्षु :** अभव्य को पररूप श्रद्धा करे....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पररूप श्रद्धा अर्थात्? वह तो नास्तिरूप ज्ञान हुआ। परद्रव्य को लक्ष्य में लेकर 'यह है' ऐसी मान्यता, वह तो राग है। व्यवहार पराश्रित है। व्यवहार पराश्रित है तो व्यवहार आत्मा के स्वभाव में है ही नहीं। बसन्तभाई! ऐसी बात है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** श्रद्धा को भी उड़ा दिया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** श्रद्धा क्या? वह तो राग था। श्रद्धा को नहीं उड़ाया। राग को उड़ाया। आहाहा!

**मुमुक्षु :** राग उड़ाया, वह ज्ञान को भी उड़ाया....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ज्ञान उड़ाया... वह तो अकेला परलक्ष्यी ज्ञान को उड़ाया। स्व

में पर का ज्ञान हो जाये, उसे उड़ाया नहीं। स्वलक्ष्यी—स्वचैतन्य के आश्रय से जो श्रद्धा, ज्ञान हो, वह तो उसका स्वभाव है, ऐसा कहा और उस ज्ञान में परज्ञेयरूप से जाने, वह दूसरी बात है। परन्तु 'ये मेरे हैं और मेरे गुरु और मेरे देव हैं' वह वस्तु के स्वभाव में नहीं। आहाहा! कहो, हिम्मतभाई! ऐसा सूक्ष्म है, भाई! अरेरे! इसे सुनने को मिलता नहीं जिन्दगी में, वह समझे कब और रुचि करे कब? तीन लोक के नाथ तीर्थंकरों ने गणधरों ने इन्द्रों के समक्ष में यह प्रसिद्ध किया था, यह ढिंढोरा पीटा था। समझ में आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते होंगे कि मेरे प्रताप से....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मेरे सामने देखकर मेरी श्रद्धा करे, वह तेरे स्वभाव में नहीं है। आहाहा! परन्तु परद्रव्य के आश्रय से भाव हो, वह तो सब व्यवहार है। व्यवहार आत्मा में है? (नहीं)। सम्यग्दृष्टि तो व्यवहार से मुक्त है। इसका अर्थ क्या हुआ—क्या हुआ? 'सम्यग्दृष्टि व्यवहार से मुक्त है', उसका अर्थ क्या हुआ? कि परद्रव्य, उसकी श्रद्धा का राग, उससे मुक्त है। उसका स्वभाव वह है। आहाहा! ऐसी बात लोगों को कठिन पड़े, हों! मार्ग तो यह है। गूढ़ मिले इसमें... आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ऐसा कहते हैं कि हम तुझसे भिन्न हैं और भिन्न हैं, उसे भिन्न के ऊपर लक्ष्य रखकर श्रद्धा करना, वह राग है। वह (राग) तेरे स्वभाव में नहीं। उसका अर्थ कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग और श्रद्धा करना कि यह है—यह आत्मा के स्वभाव में नहीं है। ऐसी दृष्टि हुए बिना उसे समकितदर्शन नहीं होता। ... विकल्प है न देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा... आया है न १७० गाथा, पंचास्तिकाय। तीर्थंकर ऐसा कहते हैं, पंचास्तिकाय में कुन्दकुन्दाचार्य (ने कहा है)। मेरी श्रद्धा... तीर्थंकर ऐसा कहते हैं। पंचास्तिकाय १७०। बतायी नहीं थी कल? १७०। लो, यह १७० देखो! १७० (गाथा) में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं। पंचास्तिकाय। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार और पंचास्तिकाय।

'संयम तप संयुक्त होने पर भी...' कोई प्राणी अपने स्वरूप में देव-गुरु-शास्त्र के विकल्प से रहित अपनी श्रद्धा की, अपने स्वरूप में संयम किया, ऐसे आनन्द में आया, ऐसा होते हुए, जब तक नौ पदार्थों की श्रद्धा रहेगी, वह राग है। तीर्थंकर के प्रति

श्रद्धा रहेगी... 'तीर्थंकर' पाठ में पड़ा है। '**सपयत्थसूत्ररोचिनः तित्थयरं**' तीर्थंकर ऐसा कहते हैं कि हमारी श्रद्धा—विकल्प जबतक रहेगी, तबतक मुक्ति नहीं होगी। आहाहा! देखो! 'तीर्थंकर के प्रति जिसकी बुद्धि का झुकाव वर्तता है...' '**अभिगतबुद्धेः**' ऐसा है न? '**सूत्ररोचिनः**' और आगम के प्रति रुचि—प्रीति वर्तती है। भगवान के कहे हुए आगम के प्रति जब तक प्रीति वर्तती है, उस जीव को निर्वाण दूरतर है। दूर नहीं, परन्तु दूरतर है।

**मुमुक्षु :** श्रद्धा होने की.... पुरुषार्थ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर की श्रद्धा छोड़ और तेरी श्रद्धा कर, ऐसा कहते हैं। हाँ, हमारी श्रद्धा छोड़ और तेरी श्रद्धा करने को... ऐसा कहते हैं। सेठ ठीक कहते हैं। किसने रचे हैं? यह वाणी तो जड़ की अवस्था से हो गई? आहाहा! बात तो कठिन बात है। सम्यग्दर्शन और उसका विषय और उसमें पर की नास्ति—बहुत सूक्ष्म बात है। यह हुआ तो मुक्त हो जाये।

यहाँ तो (कहा कि) निर्वाण दूरतर है। दूर नहीं कहा, भाई! दूरतर; दूरतम नहीं। तीर्थंकर ऐसा कहते हैं, हमारी श्रद्धा जब तक तुझे रहेगी, तब तक तुझे मोक्ष दूर है। मोक्ष दूर है। ऐई! यह तो वीतराग ऐसा कहते हैं, हों! आहाहा! उसमें लिखा है कि दूरतर नहीं। यहाँ तो दूरतर कहा है। दूर नहीं, परन्तु दूरतर। राग है, वह विकल्प है। आहाहा! श्रीमद् में उल्टा लिखा गया है, छपा डाला है, भूल में छपा डाला है। छापने में किसी ने भूल की है। उसे सुधारे नहीं, वह तो अक्षर-अक्षर रखते हैं। **अरिहन्तादि की भक्तिरूप परसमय प्रवृत्ति में साक्षात् मोक्षहेतुपने का अभाव है।** परम्परा हो अर्थात् राग को छोड़ेगे, ऐसा... कहो, समझ में आया? ऐसा मार्ग है। माने—न माने, स्वतन्त्र है जगत में प्राणी। वस्तु का स्वरूप तो यह है। इससे कुछ भी उल्टा माने, वह मिथ्यात्व के पोषक हैं, संसार की वृद्धि के करनेवाले हैं। आहाहा! श्लोक १९५। पाँच श्लोक हैं।

**कायोत्सर्गो भवति सततं निश्चयात्संयतानां,**
**कायोद्भूत-प्रबलतर-तत्कर्ममुक्तेः सकाशात्।**
**वाचां जल्प-प्रकर-विरतेर्मानसानां निवृत्तेः,**
**स्वात्मध्यानादपि च नियतं स्वात्मनिष्ठापराणाम्॥१९५॥**

आहाहा! इसका **श्लोकार्थः** धर्मी जीव **जो निरन्तर स्वात्मनिष्ठापरायण...** ...यहाँ कहा हो तो लक्ष्य में लेना, यह चीज़ भी सुनी नहीं होगी। परिचय नहीं, ...परिचय नहीं, सत्य का परिचय नहीं। आहाहा! श्लोकार्थ। **जो निरन्तर स्वात्मनिष्ठापरायण...** यह मुनि की कथा। मुनि स्वयं कहते हैं। दिगम्बर मुनि आत्मध्यानी, आनन्द में रहनेवाले। **निरन्तर स्वात्मनिष्ठापरायण...** स्व-आत्म-निष्ठा-परायण इतने शब्द पड़े हैं। आहाहा! जो निरन्तर स्व—अपना आत्मा आनन्दमूर्ति, उसमें प्रीति से परायण—रुचि से तत्पर **निज आत्मा में लीन हैं,...** आहाहा! ऐसे **संयमियों को...** राग और निमित्त से हटकर अपना ध्रुव शुद्ध उपादान त्रिकाली भगवान में लीन होने से... ऐसे संयमियों को... राग और पर से हटकर (अर्थात्) अपने में नास्ति मानकर, अपना अस्ति नित्यानन्द प्रभु, उसमें लीन होते हैं।

**काया से उत्पन्न होनेवाले अति प्रबल कर्मों के...** आहाहा! यह काया की क्रिया—ऐसा चलना और ऐसा बोलना, ऐसा चालचलन और स्वाहा—यह क्रिया सब शरीर की... काया से उत्पन्न होनेवाली अतिप्रबल क्रिया—शरीर की क्रिया... **( -काया सम्बन्धी प्रबल क्रियाओं के ) त्याग के कारण,...** काया की क्रिया, वह मेरी नहीं। समझ में आया? आहाहा! अनादि से तत्त्व का अभ्यास नहीं। लोगों को ऐसा लगे कि यह वह कहीं वीतराग का मार्ग ऐसा होगा? यहाँ तो भाई! अपवास करना, दशलक्षणीपर्व में अपवास दस करना, लो। यहाँ तो कहते हैं, वह सब तेरे अपवास बुरा वास है। निजात्मा अन्दर में स्वरूप की दृष्टि करके स्थिर न हो, तब तक तेरा सब लंघन है। जादवजीभाई! ऐसी बात है। लंघन... लंघन। यहाँ तो स्व-आत्मा आनन्द का धाम प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, ऐसा अनुभव करके लीन होना, उसको काया की क्रिया से रहित(पना) है। समझ में आया?

लो, भगवान के पास करे न स्वाहा। यह सब क्रिया जड़ की है। उससे धर्मात्मा रहित है। अरे, गजब बात, भाई! लिखा है न, देखो! प्रबल कर्म... कर्म अर्थात् क्रिया। काया सम्बन्धी प्रबल क्रिया। हाथ और पैर, आँखें फिरे ऐसे-ऐसे, यह तो काया की जड़ की, मिट्टी की क्रिया है। उससे धर्मी रहित है। कायोत्सर्ग की व्याख्या है न! आहाहा! उसके त्याग को कारण... उस काया की क्रिया का त्याग जिसे अन्दर वर्तता है और आनन्दमूर्ति भगवान की—स्वभाव की एकाग्रता की धार्मिक क्रिया अन्दर वर्तती है, उसे

कायोत्सर्ग होता है। कहो, समझ में आया? अब सुने नया। अनन्त काल में सुना नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, 'श्रुतपरिचित् अनुभूता...' राग और राग की कथा, वह अनन्त बार सुनी, विकल्प की वार्तायें तूने अनन्त बार सुनी, परन्तु विकल्परहित आत्मा की बात तूने कभी सुनी नहीं। आहाहा! बहुत कठिन काम है। यह तो (पूरे दिन) क्रियाकाण्ड में लवलीन और माने कि हमारे धर्म है।

अतिप्रबल काय की क्रिया से रहित और **वाणी के जल्पसमूह की विरति के कारण...** उसमें त्याग कहा, यहाँ विरति कही। वाणी का विकल्प... वाणी का विकल्प और वाणी दोनों जिसमें नहीं। वाणी तो जड़ है। जड़ बोलता है भाषा। आत्मा बोलता नहीं। आत्मा में भाषा है ही नहीं। यह गजब! आवाज निकलती है, वह तो जड़ है, वाणी है। आत्मा में है ही नहीं। **वाणी के जल्पसमूह की विरति...** वाणी का विकल्प उठता है अन्दर, उससे विरति के कारण। दो आये—काया और वचन। **और मानसिक भावों की (विकल्पों की)...** शुभराग ऐसा दया, व्रत, तप, भगवान (की) भक्ति, पूजा आदि मानसिक विकल्प, उसकी निवृत्ति के कारण से (अर्थात्) उसका निवृत्ति का भाव—उसका अभाव-स्वभाव, उसे कायोत्सर्ग और धर्म कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

तीनों की निवृत्ति कही। काया की क्रिया का त्याग, वचन की निवृत्ति-विरति और मानसिक की निवृत्ति। तीनों अलग-अलग शब्द हैं। भगवान आत्मा में यह काया की क्रिया का त्याग, वाणी की क्रिया की विरति और मानसिक क्रिया की निवृत्ति। आहाहा! ऐसे **निवृत्ति के कारण...** बस, इतना लिया। ऐसे पर से हटकर... कायोत्सर्ग लेना है न! **तथा निज आत्मा के ध्यान के कारण,...** यहाँ निवृत्ति के कारण और निज आत्मा के ध्यान के कारण—अस्ति। निज आत्मा, हों! वापस परमात्मा वीतरागी का ध्यान नहीं, उनका ध्यान वह विकल्प है।

**मुमुक्षु :** भड़कते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भड़कते हैं? अब मूलचन्दभाई भड़के, ऐसा नहीं। मार्ग ऐसा है, उसकी पहले श्रद्धा तो करे। मार्ग ऐसा है, भाई! तुझे चाहे जो लगे, परन्तु मार्ग तो यह है।

तीन से निवृत्ति और एक में लीनता, ऐसा आया न? मन-वचन और काया के

विकल्प और क्रियाओं से निवृत्ति और आत्मा में ध्यान की लीनता। समझ में आया? काया की क्रिया और वचन की क्रिया और मानसिक क्रिया धर्म में मदद करे, ऐसा नहीं। शान्तिभाई है या नहीं? कहो, ऐसा आया इस रविवार को तुम्हारे। रविवार को अच्छा आवे, हों! आहाहा!

अरे! तुझे तेरी खबर नहीं होती। तू कौन है और कहाँ है और कितना कैसे है— उसकी तुझे खबर नहीं होती और बाहर की सब पर की पंचायत लगायी, जिसमें तेरा कुछ नहीं। राग में, देह की क्रिया में, मन में, वाणी में कुछ नहीं। उसमें वहाँ 'कायोत्सर्ग' लिया है न? अर्थात् काया, मन और वाणी तीन से निवृत्त होकर... काया की क्रिया से निवृत्त होकर (अर्थात्) त्याग करके, त्याग के कारण से, वाणी के जल्प से विरति करके और मानसिकभाव से निवृत्ति करके। भगवान आत्मा में अन्दर ध्रुव चैतन्य में लीनता करे, उसके कारण से (अर्थात्) **आत्मा के ध्यान के कारण,...** ऐसा। **निश्चय से सतत कायोत्सर्ग है।** ऐसे धर्मात्मा को निरन्तर कायोत्सर्ग है। जब ऐसे बैठे कायोत्सर्ग करके, ऐसा नहीं, परन्तु निरन्तर कायोत्सर्ग ही है। आहाहा! **निश्चय से सतत**—निरन्तर... आत्मा नित्य है और नित्य आनन्द से भरा है, उस ओर की लीनता निरन्तर है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! दृष्टि, ज्ञान, और लीनता प्रगट हुई, वह तो निरन्तर है। निरन्तर धर्मी को तो कायोत्सर्ग है। आहाहा! समझ में आया?

निरन्तर उसको धर्मदशा है, '**प्रबलतर सत्कर्ममुक्तेः कर्ममुक्तेः**' त्याग, ऐसा (अर्थ) किया। '**कर्ममुक्तेः**' '**वाचां जल्पप्रकरवितेर्मानसानां निवृत्तेः**' बराबर है। पहले मुक्त था त्याग का, काया की क्रिया से मुक्ति, वचन की क्रिया से विरति... वचन है न, इसलिए विरति, ऐसा। काया की क्रिया से मुक्ति, वचन की क्रिया से विरति, मानसिक क्रिया से निवृत्ति। ऐसा आत्मा—भगवान आत्मा, उससे निवृत्त होकर, अन्तर आत्मा में ध्यान करके, ध्येय बनाकर लीन होता है, ऐसे धर्मात्मा को निरन्तर धर्म है। ऐसे धर्मात्मा को निरन्तर धर्म है। समझ में आया? कारण... कहा न कारण। तीन की—मुक्ति, विरति और निवृत्ति के कारण से। एक बात। सदा ही निवृत्ति है। सदा ही आत्मा के ऊपर ध्यान और लीनता के कारण से सतत धर्म है, उसे सतत कायोत्सर्ग है, निरन्तर मोक्ष का मार्ग उसके पास है। आहाहा! विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**आसोज शुक्ल १, सोमवार, दिनांक - २०-०९-१९७१**
**श्लोक-१९६-१९८, प्रवचन-१३०**

यह नियमसार, शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त अधिकार चलता है। उसका १९६... १९६ कलश है। हिन्दी है न हिन्दी। हिन्दी है हिन्दी? समझते नहीं। शब्द का क्या अर्थ होता है, वह कभी सुना नहीं। १९६।

**जयति सहजतेजःपुञ्जनिर्मग्नभास्वत्-**
**सहज-परम-तत्त्वं मुक्त-मोहान्धकारम्।**
**सहजपरमदृष्ट्या निष्ठितन्मोघजातं ( ? )**
**भवभवपरितापैः कल्पनाभिश्च मुक्तम्॥१९६॥**

क्या कहते हैं? सूक्ष्म बत है। अनन्त काल का अभ्यास नहीं तो क्या चीज़ है, वह समझने में बड़ा परिश्रम—पुरुषार्थ चाहिए। **श्लोकार्थ :** कहते हैं, **सहज तेज पुंज में निमग्न ऐसा वह प्रकाशमान सहज परम तत्त्व...** मैं परम तत्त्व शुद्ध आनन्द और शान्ति से भरा हुआ द्रव्यस्वभाव मेरा **सहज तेज पुंज में निमग्न...** वस्तु तो ज्ञान के प्रकाश में निमग्न चीज़ है। सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन पाने का आधार, प्रथम धर्म की पर्याय—सीढ़ी के पाने में अवलम्बन(रूप) चीज़, वह तो अन्दर त्रिकाल भगवान अपना स्वाभाविक तेजपुंज, स्वाभाविक ज्ञानप्रकाश का पुंज, उसमें निमग्न है। आहाहा! अपनी चीज़ नित्यानन्द भगवान अपने ज्ञानप्रकाश के स्वभाव में निमग्न है। ऐसा प्रकाशमान **सहज परम तत्त्व जयवन्त है...** ऐसा क्यों कहा? धर्मी की दृष्टि में, ऐसा तत्त्व दृष्टि में आया है। समझ में आया? प्रथम में प्रथम धर्म जिसको प्रगट हुआ हो, ऐसी धर्म की दृष्टि में यह अन्तर चीज़ विषय क्या है, वह ख्याल में आ गया है। तो कहते हैं कि जयवन्त वर्तता है। आहाहा! समझ में आया?

अहो! मैं परम तत्त्व सहज तेज के पुंज में निमग्न ऐसा प्रकाशस्वरूप—प्रकाशमान प्रभु चैतन्य, ध्रुव नित्य, जिसमें दृष्टि करनेयोग्य है और जिसमें रमण करनेयोग्य है, ऐसी

चीज़ मैं हूँ। समझ में आया? धर्म ऐसी चीज़ है, अपूर्व चीज़ है। लोगों ने धर्म को साधारण... साधारण कर डाला है। समझ में आया? जिसको धर्मदृष्टि हो और धर्मदशा प्रगट हो, तो वह तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति प्रगट हुई, उसमें—दृष्टि में तो आत्मा जयवन्त वर्तता है। ओहो! ऐसा प्रकाशपुंज तत्त्व त्रिकाल ऐसा का ऐसा वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? **कि जिसने मोहान्धकार को दूर किया है...** कैसा है मेरा परम तत्त्व? सच्चिदानन्दस्वरूप—सत् अर्थात् शाश्वत, ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से भरा हुआ भण्डार है। कि **( जो मोहान्धकार रहित है ),...** अर्थात् जिसने मिथ्यात्व और अज्ञान को दूर किया है। उस चीज़ में मिथ्यात्व और अज्ञान है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा, पहले तो ऐसा लिया कि जयवन्त वर्तता है, ऐसा तत्त्व है। ऐसे तत्त्व में मोहान्धकार है ही नहीं अर्थात् ऐसी दृष्टि जब हुई तो पर्याय में मोहान्धकार नहीं (उत्पन्न हुआ), परन्तु द्रव्य में नहीं था तो पर्याय में नहीं (उत्पन्न) हुआ। समझ में आया? आहाहा! अभी प्रथम सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली सीढ़ी की बात है। आहाहा! कहते हैं कि भगवान आत्मा सहज प्रकाशमान जयवन्त वर्तता है, ऐसा दृष्टि में आत्मा आया तो उस आत्मा में मोह—मिथ्यात्व अन्धकार है ही नहीं। मिथ्यात्व अन्धकार से रहित तत्त्व की दृष्टि हुई तो पर्याय में मिथ्यात्व अन्धकार रहा नहीं। पण्डितजी! आहाहा! आगे कहेंगे। अरेरे! मैं ऐसी चीज़ (हूँ कि) मेरी समाधि, शान्ति का विषय है, मेरे सम्यग्दर्शन-ज्ञान और शान्ति का वह विषय है। यह विषय कभी जाना नहीं (तो) हैरान... हैरान हो गया चौरासी के अवतार में। समझ में आया?

**जो सहज परम दृष्टि से परिपूर्ण है...** वाह! कथन तो देखो! क्या कहते हैं? कि हमारा स्वभाव भगवान आत्मा तेजपुंज से सहज निमग्न है तो प्रकाशमान ज्योति जयवन्त वर्तती है, ऐसा हमारी दृष्टि में आया है। और उस चीज़ में मोहान्धकार नहीं तो हमने उसकी दृष्टि की तो पर्याय में भी मोहान्धकार रहा नहीं। आहाहा! दूसरा। **जो सहज परम दृष्टि से परिपूर्ण है...** आहाहा! जो सम्यग्दर्शन वर्तमान में प्रतीति—भान हुआ कि मैं परिपूर्ण तत्त्व हूँ, तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन की पर्याय में वह भान हुआ, वह चीज़ तो परम दृष्टि सम्पन्न अनादि से है। त्रिकाल दृष्टि, परम दृष्टि सम्पन्न है, देखो! **सहज परम दृष्टि...** स्वाभाविक परम सम्यग्दर्शन—दृष्टिसहित ही वह तत्त्व है। है तो उसके आश्रय

से सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ। आहाहा! समझ में आया? वीतरागधर्म अलौकिक है, भाई! यह बाह्य चीज़ से प्राप्त हो, ऐसी चीज़ नहीं है। समझ में आया?

भगवान आत्मा... पहले उसकी समझ में तो ले कि यह चीज़ है और उसी चीज़ पर दृष्टि करने से ही धर्म की शुरुआत होती है, (ऐसी) यह चीज़ है। मलूकचन्दभाई! ऐसी बात है। सुनी न हो कभी। जय भगवान! आहाहा! कहते हैं, वह तत्त्व—मेरा स्वरूप मेरी दृष्टि जब उसके ऊपर पड़ी और सम्यग्दर्शन हुआ, वह त्रिकाली चीज़ ही सहज परम दृष्टि से परिपूर्ण ही है। आहाहा! वस्तु स्वाभाविक सम्यग्दर्शन की दृष्टि से परिपूर्ण भरा ही है। समझ में आया? तो उसकी दृष्टि करने से—ऐसी चीज़ की दृष्टि करने से—पर्याय में सम्यक् दृष्टि की पर्याय उत्पन्न हुई। कठिन मार्ग। समझ में आया? और कैसी चीज़ है मेरी? मेरी दृष्टि में आया वह भगवान आत्मा जयवन्त वर्तता है। वह आत्मा कैसा है?

**और जो वृथा-उत्पन्न भवभव के परितापों से...** आहाहा! **मोघ**—मुफ्त, निष्फल। राग और द्वेष—विकल्प का जाल, पुण्य और पाप—भव-भव के परितापों से (तथा) कल्पना से मुक्त है। आहाहा! मेरा भगवान वृथा भव-भव की कल्पना के जो दुःख—आकुलता, उससे तो मुक्त है। चीज़ मुक्त है। समझ में आया? मेरी चीज़ ही भव-भव के परितापों से मुक्त है। ऐसी मेरी दृष्टि मुक्त आत्मा के ऊपर हुई तो मेरी पर्याय में भी भव-भव के परितापों से रहित मेरी दृष्टि हो गयी। समझ में आया? सूक्ष्म है, भाई! वीतरागमार्ग सूक्ष्म है और वह भी दिगम्बर धर्म में है, अन्यत्र (कहीं) यह चीज़ नहीं है। जिसमें है, (उसमें) सुनने में आती नहीं। आहाहा! लोगों को ऐसा लगे कि यह क्या है? भाई! यह तेरी चीज़ में इतना वैभव पड़ा है। सम्यग्दर्शन की पर्याय, कहते हैं कि किसमें से आयी? समझ में आया? दर्शन-दृष्टि त्रिकाली दृष्टि से परिपूर्ण भरा था। आहाहा! उसकी दृष्टि करने से जो पर्याय प्रगट हुई तो सम्यग्दर्शन की पर्याय में परिपूर्णता प्रगट हुई। आहाहा! उसमें मिथ्यात्व अन्धकार रहा नहीं। समझ में आया? पाटनीजी! ऐसा मार्ग है, भाई!

'वृथा' शब्द कहा। अरे! उसमें नहीं। उसमें है नहीं। भव-भव के परिताप तो वस्तु में है नहीं। '**मोघ**'—वृथा—फोगट। '**मोघ**' आहाहा! फोगट-निष्फल... आहाहा!

**'निष्ठितन्मोघजातं भवभवपरितापैः कल्पनाभिश्च मुक्तम्'** यह सुख-दुःख की कल्पना... असुख अर्थात् दुःख। सुख-दुःख की कल्पना परिताप—ज्वाला है। उससे भगवान आत्मा तो मुक्त है। समझ में आया? तो दृष्टि जब उसके आश्रय से हुई, तो यह मेरी दृष्टि—पर्याय भी भव-भव के परिताप से मुक्त है। द्रव्य मुक्त है तो मेरी पर्याय भी मुक्त हो गयी। आहाहा! समझ में आया? अरे! भगवान तीन लोक का नाथ पूर्णानन्द प्रभु अपनी चीज़ पर कभी उसने दृष्टि दी नहीं। अपना निधान—परिपूर्ण निधान भरा है, परन्तु कभी नजर दी नहीं और पुण्य-पाप की आकुलता—मिथ्याजाल में—कल्पना में रुक गया। समझ में आया? कि जो मिथ्याजाल कल्पना, स्वरूप में है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

**वृथा-उत्पन्न भवभव के...** आहाहा! **'मोघजातं'** कहा है न? निष्फल। मोघ का अर्थ निष्फल है। फोगट, खोटी बात, खोटी कथनी। यह मैं, पर में सुख है, विषय में सुख है, देव में सुख है, सेठाई में सुख है, नरक में दुःख है—यह सब कल्पनायें हैं, कहते हैं। दुःख... दुःख... कल्पना का दुःख लगा है न? आहाहा! वस्तु तो ऐसी है। भगवान आत्मा अनन्त गुणसम्पदा से भरा पड़ा है। अनन्त-अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान सिद्ध को प्रगट हुआ, ऐसी अनन्त-अनन्त सम्पदा से तो आत्मा भरा पड़ा है। सिद्ध तो एक ही समय की पर्याय है। यह तो द्रव्य में, सिद्ध के द्रव्य में भी, इस द्रव्य में भी वस्तु—आत्मा तो अनन्त-अनन्त चैतन्य केवलज्ञान के पुंज में पड़ा है। ओहोहो! अरे! आत्मा किसको कहना और कैसा आत्मा है, उसको कैसे मानना? ऐसे आत्मा को उस प्रकार से माने बिना कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

**वृथा-उत्पन्न...** फोगट, मुफ्त **भव-भव के परितापों...** देखो! यहाँ ऐसा नहीं लिया है कि नरक में ही परिताप है। स्वर्ग के भव भी परिताप का ही कारण है। आकुलता... आकुलता... आहाहा! समझ में आया? करोड़ों इन्द्राणियाँ और करोड़ों अप्सराओं पर लक्ष्य जाता है तो आकुलता... आकुलता (होती है)। दाह अग्नि सुलगती है, राग की अग्नि। समझ में आया? यहाँ तो एक स्त्री हो वहाँ आहाहा! अब हमने विवाह किया और अब हम सुखी हुए। क्या कुछ कहते हैं न विवाह के समय? बड़े के चरण छुए... प्रभुता के चरण, हाँ, यह बात... यह कहते हैं, बात सच्ची। हाँ, ऐसा कहते

हैं। प्रभुता के चरण मांडे। रांकाई में चरण मांडे। सुलगती अग्नि में पैर रखे हैं। चरण छुए न सबके, पिता के... बहुत अच्छा किया, मुझे डाला भट्टी में। ....भाई! तुम्हारे तो कुछ नहीं इसलिए क्या। यह तुम्हारे है—सादूभाई को है न। आशीर्वाद। बेटा! सुखी होना भटकने में। आहाहा! गजब बात है। संसार... संसार...

कहते हैं, अरेरे! सच्चे मुनि, स्वयं दिगम्बर सन्त हैं, वनवासी हैं। समझ में आया? आहाहा! परमात्मा—अपना निज स्वरूप का भक्त है। समझ में आया? उसका भजन करनेवाला है। आहाहा! ऐसा भगवान... **भवभव के परितापों...** नरक और स्वर्ग—सब भव। प्रत्येक भव में परिताप, आकुलता... आकुलता है। आहाहा! समझ में आया? **तथा कल्पनाओं से मुक्त है।** कहा न '**मोघजातं**' और '**कल्पाभिश्च मुक्तम्**' वहाँ '**मोघजातं**' यहाँ '**कल्पाभिश्च मुक्तम्**' आहाहा! मुनियों ने भी वन में मस्ती की है न सिद्ध के साथ! आहाहा! भगवान आत्मा... भाई! इस राग के—विकल्प के पर्दे में प्रभु अन्दर पड़ा रहा। विकल्प की रुचि के प्रेम से वह आत्मा भासित नहीं होता—आत्मा का भास नहीं होता। क्या चीज़ है, खबर नहीं। समझ में आया?

व्यवहार, रागादि व्यवहार की रुचि में भगवान परमानन्द निधान की नजर नहीं करता। सामने पड़ा है (तो) वहाँ नजर नहीं करता। समझ में आया? वह कल्पना से है तो मुक्त है। उसका अर्थ कि मेरी दृष्टि द्रव्यस्वभाव के ऊपर हुई, स्वभाव में कल्पना और वृथा भव-भव का परिताप नहीं तो मेरी पर्याय में भी अब रहा नहीं। भव-भव का परिताप, समझ में आया? और कल्पना, वह चीज़ मेरी पर्याय में नहीं। सम्यग्दृष्टि तो कल्पना से मुक्त है। आहाहा! समझ में आया? अरे! जिन वीतराग का मार्ग यह है। जैन में जन्मे, परन्तु जैन क्या कहते हैं, उसकी खबर नहीं। समझ में आया? यह १९६ हुआ। १९७ (कलश)।

**भवभवसुखमल्पं कल्पनामात्ररम्यं,**
**तदखिलमपि नित्यं सन्त्यजाम्यात्मशक्त्या।**
**सहज-परम-सौख्यं चिच्चमत्कार-मात्रं,**
**स्फुटित-निज-विलासं सर्वदा चेतयेऽहम्॥१९७॥**

**'सन्त्यजाम्यात्मशक्त्या'** आहाहा! मेरी आत्मशक्ति से छोड़ता हूँ। विकल्प से छोड़ता हूँ, ऐसा नहीं। आहाहा! कैसे अमृत कलश बनाये हैं!

१९७। **श्लोकार्थ:—अल्प ( -तुच्छ ) और कल्पनामात्ररम्य ( -मात्र कल्पना से ही रमणीय लगनेवाला ) ऐसा जो भवभव का सुख,...** लो। स्वर्ग का, सेठाई का, देव का सुख भ्रान्ति से—कल्पना से माना है। सुख है नहीं। आहाहा! समझ में आया? सुख तो भगवान आत्मा में है। अतीन्द्रिय आनन्द से तो परिपूर्ण छलाछल—लबालब भरा है। समझ में आया? आहाहा! दृष्टि से परिपूर्ण, आनन्द से परिपूर्ण। वस्तु अपना स्वभाव-शक्ति, एक-एक शक्ति से परिपूर्ण है। एक-एक शक्ति में अपरिमित अनन्त-अनन्त बेहद स्वभाव है। क्षेत्र की आवश्यकता नहीं। उसके स्वभाव की शक्ति का माहात्म्य है, ऐसा भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय भगवान... कहते हैं कि भव-भव के सुख कल्पनामात्र **वह सब मैं आत्मशक्ति से नित्य सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ;...** देखो! आहाहा! पुण्य के परिणाम में ठीक—सुखबुद्धि, यह कल्पनामात्र है। आहाहा! **सब मैं...** सब मैं... कोई भी शुभ-अशुभभाव—सब परिताप आकुलता है। धर्म तो गहन है। समझ में आया? गूढ़ है। अपरम्पार फलदायक धर्म है। समझ में आया?

कहते हैं, मैं सब पुण्य-पाप के विकल्प चार गति के भव के परिताप... अल्प और कल्पना दो बात की है। एक तो तुच्छ... आहाहा! स्वर्ग के भोग के सुख तुच्छ, जहर जैसे हैं। कल्पनामात्र रम्य है, (वास्तव में) है नहीं। कल्पना से माना कि हमको अनुकूल है, हमको चैन पड़ता है, हमको प्रेम पड़ता है—मजा पड़ता है, मूढ़ है, कहते हैं। ओहो! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द से परिपूर्ण... परिपूर्ण भरा है। ऐसी **आत्मशक्ति से नित्य सम्यक् प्रकार से...** मैंने तो त्रिकाल द्रव्यस्वभाव का आश्रय लिया है तो इस आत्मशक्ति से निर्णय पर्याय उत्पन्न होती है और मलिन पर्याय का व्यय होता है। छोड़ता हूँ अर्थात् व्यय होता है। समझ में आया?

**सब मैं...** चार गति, सेठ की हो या निर्धन की हो, नरक की हो या स्वर्ग की हो—सब गति दुःखरूप है। आहाहा! यह वह कहीं अंक—माप? अरबोंपति खम्मा... खम्मा... खम्मा अन्नदाता... क्या मुख माँगता है। मुख माँगता है अर्थात् क्या खाना है?

ऐसा। राजा हो, उसे लिखकर दे। पचास-सौ चीज़ें हों न! साहेब! इसमें से खास चीज़ कौनसी पसन्द है। पूछा जाये नहीं बहुत, बड़ा राजा हो। पचास-सौ चीज़ लिखी हुई हो, उसका पृष्ठ छपा हुआ-लिखा हुआ हो। पूरणपूरी, लड्डू, चूरमा, फलाना, ढींकणा, मौसम्बी का रस, सुगन्धी पानी, फलाना पानी, बढ़िया पानी ऐसे सब... जो पाँच-सात लिये जाये न.... कहो, मूलचन्दभाई!

यह अभी बड़े राजा को ऐसा होता है। वह झट पूछे नहीं। यह बड़े... करोड़ों की उपज हो जिसे, ऐसे राजा होते हैं। पुण्य से सब हो न। यह चोपानिया—कागज छपे हुए ही पड़े हों उसके भोजन के। मोळी रोटी, पूरणपूरी, मीठी रोटी, चूरमा या लापसी या मिठाई इत्यादि, इत्यादि नाम सब हों और सब्जी के नाम हों। ऐई वजुभाई! यह है यह तो सुना हुआ है बराबर। यहाँ तो हमारे बहुत अनुभव हो न। सब्जी के नाम हों टींडोरा और फलाना और फलाना। .... शून्य रख दे, वह उसे पकावे। ऐसा सुना है राजा के लोगों से।

हमारे बहुत अनुभव हो न। दुनिया के सब बहुत आवे... यह सब सुखी होंगे? दुःखी है, सुन न! ....पराधीन। दास है राग का—राग का दास है। भिखारी में भिखारी है तू। आहाहा! ऐसे कल्पनामात्र सुख... उस सुख को... उस सुख की कल्पना को **सब मैं आत्मशक्ति से नित्य सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ;...** वास्तव में मेरी आत्मशक्ति में है नहीं, परन्तु मेरी पर्याय जब उस ओर झुकी तो उस पर्याय से रागादि का सुख है, वह मैंने छोड़ दिया। पर्याय में से छोड़ दिया है। आहाहा! समझ में आया? **आत्मशक्ति से...** क्या कहते हैं? वह कल्पना है सुख की, वह पाप की कल्पना पुण्य से छूट जायेगी—ऐसा नहीं है। शुभभाव से अशुभ छूट जायेगा। यह शुभ और अशुभ दोनों दुःखरूप है। आहाहा! विभाव है।

**( और ) जिसका निज विलास प्रगट हुआ है,...** विलास तो विलास प्रगट है ही, अन्दर प्रगट है ही, ऐसा। 'विलास प्रगट हुआ' का अर्थ मेरा आनन्द का विलास तो त्रिकाल अन्दर है ही। समझ में आया? मेरी पर्याय में अन्दर आश्रय हुआ तो मेरी पर्याय में भी विलास प्रगट हुआ है। यहाँ तो 'विलास प्रगट हुआ' यह त्रिकाल में है, ऐसा बताना है। समझ में आया? **जिसका निज विलास प्रगट हुआ है,...** (अर्थात्) त्रिकाल

है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय अमृत का सागर भगवान, अतीन्द्रिय अमृत का स्वरूप प्रगट पड़ा है अन्दर। ऐसा अनादि पड़ा ही है, प्रगट ही है। समझ में आया? परन्तु जब दृष्टि में भान हुआ तो अनादि-अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द से प्रगट भरा ही है। निज विलास की क्रीड़ा में पड़ा है आत्मा तो। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा दृष्टि में जब आया, तब आत्मा ऐसे विलास में पड़ा है, ऐसा भान हुआ। राग में विलास करते हैं, उसमें आत्मा के आनन्द का विलास कहाँ से प्रगट होगा? आहाहा! गजब बात भाई! दिगम्बर सन्तों की कथनी! ऐई चेतनजी! कहीं सुना है ऐसा? नहीं। यह हित की बात है। मण्डप को शृंगार करते हैं न, वैसे यह आत्मा को शृंगार किया है। शृंगार किया हुआ ही है वह। आहाहा! उसकी शृंगार का क्या बात! आहाहा! जिसके घर में अनन्त-अनन्त आनन्द, अनन्त-अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति, अनन्त एक-एक शक्ति—ऐसे शृंगार से भरा पड़ा, विलास से भरा पड़ा ही है आत्मा। आहाहा!

अरे! ऐसे आत्मा की कभी महिमा नहीं आयी और पुण्य के परिणाम में महिमा, पाप में महिमा, पुण्य का फल कहीं धूल मिले पाँच-पच्चीस करोड़ रुपये वहाँ। आहाहा! गरीब मनुष्य को जहाँ पच्चीस हजार, पचास हजार हो, वहाँ आहाहा... अपने को बादशाही मिली। मूर्ख का सरदार है। कहो, शिवलालभाई! ऐसा यह तो कहते हैं। तुमको वहाँ सुखी कहते हैं न? व्यवहार बहुत करना आता है शिवलालभाई को। लोग गाँव में बातें करते हैं। तीन भाईयों में होशियार यह कहलाता है। लड़के नहीं हों तो पति-पत्नी बैठे। वह फिर कमावे... व्यापार करना बहुत आता है, ऐसा लोग कहते हैं। हमको भी आता है। मलूकचन्दभाई! आहाहा! किसकी इज्जत भगवान! तेरी इज्जत को तूने देखा नहीं। तेरी चीज़ में इज्जत का भण्डार भरा है। उसको तो देखा नहीं और यह बाहर की इज्जत हमारी सब है, हमारा नाक बढ़ा है। धूल भी नाक नहीं। नाक की तो राख होगी। आहाहा! उसमें आता है न! समयसार नाटक में ऐसा आता है। 'तिगड़ो' ऐसा कहा। देखो न! इसमें है न! तीन... तीन... तीन होता है न। नाक की फाँक में 'तीन' लिखा है। यह आता है समयसार नाटक में। बनारसीदास। अरे! यह तेरी नाक की राख होगी। भगवान शाश्वत् वज्रबिम्ब चैतन्य प्रभु है, निज विलास प्रगट है। आहाहा!

**जो सहज परम सौख्यवाला है...** भगवान तो स्वाभाविक आनन्द—सुखवाला है। स्वतन्त्र अनन्त-अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द से ठसाठस वज्र से भरा है। आहाहा! ऐसी दृष्टि हुई तब 'ऐसा आत्मा है'—ऐसा भान हुआ। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में ऐसा आत्मा भास होता है, ऐसा कहते हैं। अब सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं और यह व्रत, तप और साधु हो गया, बारह व्रत और प्रतिमा। बिना एक के शून्य है। अंक समझे न, अंक? अंक बिना का शून्य। आहाहा! समझ में आया? जिसे ऐसा भगवान आत्मा दृष्टि में मुख्यरूप से न आया, समझ में आया? (तो) सब चीज़ की क्या कीमत? यह व्रत और प्रतिमा, २८ मूलगुण—सब जहर की क्रिया है। समझ में आया? पाटनीजी! सम्प्रदाय को कठिन लगे। ओहो! यहाँ सोनगढ़ में तो क्या? परम सत्य, परन्तु सत्य वह कैसा होगा? भाई! तेरा सत् साहेब, आहा! कैसा है, उसकी खबर नहीं।

**मुमुक्षु :** सांईबाबा....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सांईबाबा, वह तो मुफ्त का खोटा भटकता है। सांईबाबा नाम भी नहीं लेना। वह तो परमेश्वर है। सांईबाबा तो जायेगा चार गति में भटकने। मिथ्यादृष्टि, गृहीत मिथ्यात्वी है। समझ में आया? यह तीन भगवान कहे जाते हैं अभी। सांईबाबा एक, एक यह रजनीश और एक कोई बाई है नीलकण्ठमाता। बाई है, वह भगवान हो गयी। अखबार में आया था। भगवानतुल्य माने, उसकी जन्मजयन्ती मनावे लाखों लोग... लोग भगवान मानते हैं। भगवान के भान बिना रंक को भगवान मानते हैं, मरकर ढोर में जायेंगे। यह चार गति में भटकेंगे सब। गृहीत मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया?

तीन लोक का नाथ परमात्मा अपना निजस्वरूप, उसकी खबर बिना ऐसी जंजाल में भटकते हैं कि मुझमें चमत्कार है, मैं ऐसा बनाता हूँ, जादूगरी है, जादूगर। वह तो कहते थे हमारे। जादूगर आया था न, के. लाल। आया था न राजकोट। बड़ा जादूगर है। लाखों रुपये पैदा करता है एक महीने में। जादूगर है अपने जगजीवन बावचन्द, नहीं? कुण्डलावाले, उसका साला है। उसका साला है काका... सोलह दिन वहाँ रहे थे राजकोट। हम वहाँ थे। आया दर्शन करने को। सोलह दिन रहा। पाँच-पाँच, छह-छह हजार एक दिन में आमदनी। कहे, अभी तो हम जाते हैं परदेश में। लाखों, एक महीने में अनेक लाख पैदा करे। लोग तो फिदा हो जायें, ऐसा दिखाव है। जादूगर परन्तु वह

तो बड़े मानधाता को हिला डाले ऐसी... उसने आकर दर्शन किये। बीस मिनिट बैठा। अभी राजकोट थे न!

महाराज! हमारा सब धतंग है। बोला हमारे पास। महाराज! हमारा तो सब धतंग है। हमारा तो धतंग है, परन्तु रजनीश और सांईबाबा भी सब जादूगर है। हमारी जादूगरी की शक्ति से सब करते हैं। परन्तु हम स्त्री-पुत्रवाले हैं तो नजरबन्दी हमको कहे और वह त्यागी गिना जाता है, इसलिए शक्तिवान कहे। बाकी है समान। बहुत जादूगर, जबरदस्त जादूगर। ऐसा काट डाले और कौन जाने कहाँ से... ? हाथ टुकड़ा करे, वापस ऐसे यह बाई... ऐसी कल्पना... हमारे नजरबन्दी ऐसा कहते हैं। अभी तो परदेश में गया है। वहाँ से कच्छ में जायेगा भुज। परन्तु पैसे का तो ढ़ेर होता है। बड़े-बड़े कार्यकर्ता हमारे पास आते हैं, कहे, हमारे पास... एक तो बड़ा जोरदार कार्यकर्ता था। आया और हाथ ऐसा किया, छुआ नहीं था। ऐसा किया वहाँ झुक उठा। लोगों को ऐसा होता है कि यह तो जोरदार जादूगर है। यह जादूगर सब चार गति (में भटकनेवाले हैं)।

मैंने तो उससे कहा, यह तुम्हारा पुण्य जल जाता है, कहा। जो यह पुण्यफल लेकर आया है, तेरा पुण्य जल जाता है। फिर यह पुस्तक दी। वैसे नरम व्यक्ति है। जादूगर जोरदार परन्तु है नरम। ऐसे अकड़ नहीं है। यह वह पुस्तकें दीं दो, नहीं? आत्मसिद्धि और कुछ दो पुस्तकें। कहे, वाचूँगा, हों! नरम व्यक्ति। परन्तु पावर ऐसा है, जवान ऐसा है। चालीस वर्ष का... यहाँ ऊषाबेन है न, उसका मामा होता है। ऐसा जब जादूगर आता है न जादूगर खेल में, सिर पर बाँधकर। हमारे पास (कहे), महाराज! हमारा तो धतंग है। ऐसा कहे। अरे! बाहर में कल्पना से किसी पुण्य के कारण... बनिया है विसाश्रीमाली। आहाहा! यह भगवान चैतन्य का विलास, आहाहा! यह जादूगरी अलग प्रकार की है आत्मा की। समझ में आया? अरे! अपने चैतन्य के खेल में पड़ा प्रभु, उसका खेल उसने कभी देखा नहीं। अरे! उसके सामने नजर डाली नहीं (कि) यह आत्मा क्या चीज़ है। समझ में आया?

**सहज परम सौख्यवाला है...** आहाहा! यह आनन्द से भण्डार भरा है अन्दर। आनन्द... आनन्द... आनन्द... अतीन्द्रिय आनन्द, हों! जिसके समक्ष करोड़ों अप्सराओं

का सुख जहर जैसा दिखे। जहर को पीते हैं अज्ञानी। समझ में आया? चक्रवर्ती को ९६ हजार स्त्रियाँ, ९६०००। वह भोग जहर के भोग हैं। धर्मी समकिती को अपने आनन्द-सुख से भरा हुआ प्रभु, उसकी दृष्टि हुई तो उसमें सुख की लहजत आ गयी। आहाहा! उस आनन्द के समक्ष चक्रवर्ती को दुःखी देखता है। समझ में आया? दुःखी है बेचारा। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, ९६ हजार (स्त्रियाँ), सात सौ वर्ष का आयुष्य। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, रवरव नरक में सातवें नरक में अभी है। सातवाँ नरक अपरिठाणे। अभी तो थोड़े वर्ष हुए। रवरव नरक में अपरिठाणे। सात सौ वर्ष की अवधि में यहाँ रहा तो उसके मिनिट करो मिनिट, तो एक मिनिट में असंख्य अरब वर्ष (का नरक का दुःख)। एक मिनिट के सुख की कल्पना का फल असंख्य अरब वर्ष दुःख नरक में। आहाहा! पाटनीजी!

सात सौ वर्ष था न, अन्तिम चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त। बारह चक्रवर्ती होते हैं न। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती, सात सौ वर्ष थे। सात सौ वर्ष में मिनिट की संख्या कितनी? वहाँ ३३ सागर। एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम। एक पल्योपम के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष। एक मिनिट में असंख्य अरब वर्ष का दुःख आया। यह सुख। उसकी (मुख्य) स्त्री की एक हजार देव सेवा करे, ऐसी एक स्त्री है चक्रवर्ती की रानी। रानी रत्न है न रानी रत्न। एक हजार देव (सेवा करे)। मरकर सातवें रवरव नरक में (गया)। दुःखी... दुःखी... दुःखी... वर्तमान में—चक्रवर्ती के भोग के काल में दुःखी था। उसके फल में तो महादुःखी है। धर्मी जीव को अपने आत्मा के अतिरिक्त आनन्द कहीं भासित नहीं होता। और अज्ञानी लक्ष्मीवन्त को अरबोंपति देखे तो 'यह सुखी है' ऐसा भासित होता है। दुःखी बेचारा भिखारी दुःखी है। आहाहा! ऐसी अपनी निज चीज़ है, ऐसी (उसकी) महिमा जागृत हुई, दूसरे की महिमा उड़ जाती है। समझ में आया? आहाहा!

**तथा जो चैतन्यचमत्कारमात्र है,...** लो, यह चमत्कार आ गया, कहते हैं। आत्मा चैतन्यचमत्कार है। जिसमें एक समय का ज्ञान प्रगट हो (कि जो) तीन काल—तीन लोक जाने। समय एक और तीन काल। आहाहा! यह चमत्कार कैसा! समझ में आया? जिसमें से केवलज्ञान प्रगट हो... एक समय की पर्याय, एक समय—काल और तीन काल और तीन लोक, उसकी ओर दृष्टि किये बिना एक समय में अपनी पर्याय में जानने में आता है। ऐसा चैतन्यचमत्कार भगवान है। एक समय में तीन काल—तीन लोक का

ज्ञान हो, ऐसी एक समय की पर्याय और अनन्त पर्याय का पिण्ड आत्मा है। चैतन्यचमत्कार से भरा है। आहाहा! समझ में आया? चैतन्यचमत्कार। यह जादूगरी कैसी? एक समय की पर्याय में तीन काल—तीन लोक को जाने, ऐसी अनन्त पर्यायें जिसमें पड़ी हैं, ऐसा चैतन्यचमत्कारमात्र भगवान है। यह चमत्कार है। आहाहा!

**उसका (-उस आत्मतत्त्व का) मैं...** मुनिराज कहते हैं। अपना नाम लेकर दुनिया को कहते हैं। मैं ऐसे आत्मा को **सर्वदा अनुभवन करता हूँ।** तो तुम भी ऐसे आत्मा का अनुभव करना (कि जो) तुम्हारे कल्याण का हेतु है। आहाहा! यहाँ तो अभी दो-चार लाख की आमदनी हो, कुछ पाँच-पच्चीस लाख इकट्ठे हुए हों, पूरा परिवार (कहे), कर्मी जगा हमारे में। ऐई मलूकचन्दभाई! क्या? कर्मी जगा। बहुत कर्मी, भाई! आहाहा! आओ... आओ... आओ, भाई! आओ। बड़े व्यापार का राग करता हो न! राग, हों! व्यापार करना कहाँ आता है उसे? राग करना आवे राग। व्यापार तो पर की क्रिया है। वह आत्मा कभी कर नहीं सकता। राग करे बड़ा। बड़ा होशियार है। मूढ़ है तू, कहते हैं। ऐसे को होशियार मानते हो। आहाहा! अपना भगवान चैतन्य चमत्कार से भरा उसकी जिसने दृष्टि की, वह पण्डित, शूरवीर और बड़ा है। समझ में आया?

ऐसे **मैं सर्वदा....** ऐसे भगवान आत्मा को मैं निरन्तर... उस ओर की रुचि मेरी पड़ी है। निरन्तर मेरा परिणमन उसके अनुभव में ही है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **मैं सर्वदा—** त्रिकाल... उस ओर की अनुभव की दृष्टि में त्रिकाल... ऐसा अनुभव करता हूँ। उसका नाम धर्म है। वह मुनि का मार्ग है। आहाहा! धर्मी का—समकिती का मार्ग यह है। १९८ (कलश)।

**निजात्मगुणसम्पदं मम हृदि स्फुरन्तीमिमां,**
**समाधि-विषया-महो क्षण-महं न जाने पुरा।**
**जगत्त्रितय-वैभव-प्रलयहेतु-दुःकर्मणां,**
**प्रभुत्वगुणशक्तितः खलु हतोऽस्मि हा सन्सृतौ ॥१९८॥**

आहाहा! पूर्व का याद करते हैं, ज्ञान करने के लिये। **श्लोकार्थः—अहो! मेरे हृदय में स्फुरायमान इस निज आत्मगुणसम्पदा को कि जो समाधि का विषय है....** क्या

कहते हैं ? मेरी चीज़ जो आनन्दकन्द प्रभु है, वह तो समाधि अर्थात् वर्तमान सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति का विषय है। यह पुण्य के परिणाम, व्यवहार के परिणाम का विषय है नहीं। समझ में आया ? भगवान आत्मा... यह जरा समाधि क्यों लिया ? सब अमृतचन्द्राचार्य की शैली है। समाधि अधिकार आता है न ? यहाँ अन्तिम समाधि... ऐसे सन्धि करते हैं। अमृतचन्द्राचार्य की शैली यह है न। समझ में आया ? समाधि अधिकार आयेगा न, तो अन्तिम कलशो में... अरे! मेरे हृदय में स्फुरायमान है। चैतन्य जलहल ज्योति आनन्द से भरा प्रभु मेरी नजर वहाँ है, तो मेरे हृदय में यह भगवान स्फुरायमान है। आहाहा! देखो! यह मुनि का विषय आत्मा। मुनि का विषय, व्यवहार-फ्यवहार क्रिया, यह मुनि का विषय नहीं है, ऐसा कहते हैं। २८ मूलगुण पालना, यह साधु है। अरे! चल... चल। यह तो व्यवहार का कथन है। समझ में आया ?

**अहो!** ऐसा शब्द पड़ा है। **मेरे हृदय में—**ज्ञान के भाव में **स्फुरायमान इस निज आत्मगुणसम्पदा...** अपनी निज आनन्द गुणादि की सम्पदा... अपनी ऋद्धि—सम्पदा धूलसम्पदा नहीं। आहाहा! धूल के धनी मानते हैं, वे जड़ हैं। हमारी सम्पदा, हमारा मकान, हमारे हाम, दाम और ठाम। कहते हैं न, भाई! हमारे हाम, दाम और ठाम, लड़के अच्छे, हमारा पुरुषार्थ बहुत, दाम—पैसे बहुत, ठाम अर्थात् ठिकाना बहुत, घर और मकान और दुकानें। ले, यह सब कहाँ से आ गया तुझे ? मूलचन्दभाई! दो लड़के अमेरिका गये, दो यहाँ रहे हों, फलाना... ऊपर से उतरे, जब बाहर से आवे तब आहाहा! क्या लेकर आये ? ऐई!

उसका लड़का आया है न अभी। अमेरिका से यहाँ आया न निरंजन। यहाँ आया था, रह गया। परन्तु लड़का नरम, हों! ऐसे उद्धता नहीं जरा भी। आहाहा! नरमाई से सुनता था। वह यहाँ था तब लिखता कि भाई! ....ऐसा सुनने का वहाँ है नहीं। ऐसा लिखता। पत्र आता न। हाँ, सच्ची बात है। लिखता था। अमेरिकावाले मूर्ख हैं, ऐसा लिखता था। स्वयं वहाँ था न, लिखता था। ....धूल में... आहाहा! अमर नगरी अपनी अपने पास है, वहाँ अमेरिका में जा न अन्दर। आहाहा! महिमा ऐसी करे कि वहाँ तो ऐसा होता है। एक चीज़ पड़ी हो तो कोई ले नहीं। वापस ऐसी कहीं महिमा करे उस देश की। वह लोग आवे न, सब हमारे पास बहुत आते हैं। वहाँ ऐसी नीति है कि ऐसी

चीज़ खुल्ली पड़ी हो तो ले नहीं। वह लोग वापस आवे आधे घण्टे-घण्टे में तो मिली रहे, ऐसा जीवन है। अरे! जीवन, धूल में क्या जीवन है उसमें? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि हे भगवान! मेरे हृदय में तो स्फुरायमान सम्पदावाला मैं हूँ। आहाहा! मेरी निज लक्ष्मी मेरे पास है। आहाहा! **निज आत्मगुणसम्पदा को कि जो समाधि का विषय है....** आहाहा! ऐसी बात करके... भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, वह अन्तर निर्विकल्प वीतरागी पर्याय का ही विषय है। उससे जानने में आता है। आहाहा! गजब बात है, हों! मुनि ने बात भी की है न, गजब की है! एक-एक कलश में (अमृत भरा है)। आहाहा! श्रीमद् में बोलते हैं न, 'जो स्वरूप समझे बिना, पाया दुःख अनन्त, समझाया उन पद नमुं श्री सद्गुरु भगवन्त, ऐ गुणवंता रे ज्ञानी अमृत वरस्या रे पंचमकाल में।' 'अमृत वरस्या पंचम काल में' वह यह है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, मेरी निज-आत्मसम्पदा कि जो मेरी शान्ति का विषय है। अरे! मेरी अकषायभाव परिणति का वह विषय है। ओहोहो! समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा के विकल्प का वह विषय नहीं। आहाहा! यह तो राग है। आहाहा! एक बात में कितनी बात करते हैं, देखो! व्यवहारमोक्षमार्ग का विषय नहीं। निश्चयमोक्षमार्ग का वह विषय है। आहाहा! समझ में आया? **समाधि का विषय है, उसे—मैंने पहले एक क्षण भी नहीं जाना।** आहाहा! अरे भगवान! मेरे पास मैं हूँ। मेरी नजर नहीं (पड़ी) वहाँ। आहाहा! समझ में आया? मेरी आत्मसम्पदा मेरे पास पड़ी है और मुझे स्फुरायमान प्रगट है। परन्तु अरेरे! **मैंने पहले एक क्षण भी नहीं जाना।** एक समयमात्र भी मैंने पहले नहीं जाना, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

एक समय भी जानने में आ जाये, तो मुक्त हो जाये। समझ में आया? आहाहा! गजब भाई! अरेरे! मैंने पहले, आज से पहले, हों! ऐसा। अनन्त भव में एक क्षण भी... 'एक क्षण' शब्द से (आशय) एक समय, एक समय भी नहीं जाना। ओहोहो! ११ अंग पढ़ा, नौ पूर्व पढ़ा, पंच महाव्रत की शुक्ललेश्या की, २८ मूलगुण पालन किये, परन्तु वह विषय कैसे जानने में आता है, यह एक समय भी मैंने नहीं जाना। उसको—राग और पुण्य को जाना। आहाहा!

**वास्तव में, तीन लोक के वैभव के प्रलय के हेतुभूत दुष्कर्मों की प्रभुत्वगुणशक्ति से, अरेरे! मैं संसार में मारा गया हूँ।** आहाहा! अरे! देव का भव मिला तो भी, कहते हैं, तू मर गया, मार डाला। अरबोंपति हुआ, अरेरे! मैं संसार में मारा गया हूँ। मेरा चैतन्यसम्पदा का जीवन मैंने कभी पहिचाना नहीं। समझ में आया? तीन लोक का वैभव ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसमें कर्म के निमित्त की प्रभुत्वशक्ति से... उसकी प्रभुत्वशक्ति.... मेरी प्रभुत्वशक्ति (मेरी) पर्याय में उसके निमित्त से नाश हो गयी है। आहाहा! निमित्त की बात है। हेतुभूत कहा न। **प्रलय के हेतुभूत...** निमित्त है। ऐसी बात कही न! पर्याय में विकार करने का भाव—स्वभाव नहीं है। निमित्त से हुआ है सब, ऐसा। अरेरे! उससे मैं मारा गया। मेरी सम्पदा मैंने नहीं जानी। समझ में आाय? अरेरे! मैं संसार में मारा गया। अभी तक स्वर्ग के भव, सेठाई के भव.. मारा गया हूँ। मेरा जीवत्व मैंने जाना नहीं। ऐसा करके स्वभाव की महिमा गाकर अपनी दृष्टि का विषय बताते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**आसोज शुक्ल २, मंगलवार, दिनांक - २१-०९-१९७१**
**श्लोक-१९९, प्रवचन-१३१**

यह नियमसार सिद्धान्त—नियमसार शास्त्र है। नियमसार अर्थात्—इसका अर्थ क्या है? मोक्ष का मार्ग। जो आत्मा अनादि से राग-द्वेष और अज्ञान से चार गति में भटकता है, वह दुःखी है। जहाँ-जहाँ वह स्वर्ग-नरक में गया... अनादि का है यह आत्मा, आत्मा कहीं नया है नहीं। अपने स्वरूप की सम्पदा निजानन्द आत्मा अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द और शान्त वीतरागरस आत्मा में पड़ा है, उसके भान बिना विकार के भाव द्वारा चार गति में—चौरासी में भटकता है। सर्वत्र दुःखी है यह। नरक में और पशु में प्रतिकूल संयोग है, इसलिए दुःखी है, ऐसा नहीं है। और स्वर्ग में अनुकूलता अथवा सेठाई जिसे दुनिया कहे, पाँच-पच्चीस करोड़ रुपये या अरब-दो-पाँच अरब हों, उसे सुखी कहे। वह सुखी नहीं है। क्योंकि उस परवस्तु का जहाँ परिचय और आश्रय करने जाता है, वहाँ उसे राग और द्वेष की आकुलता उत्पन्न होती है। उस आकुलता का वेदन, वह दुःख का वेदन है।

परन्तु सन्निपातिया को जैसे भान नहीं... सन्निपातिया जीव होता है न सन्निपात? वात, पित्त और कफ का बिगड़ा हुआ रूप... वात, पित्त और कफ का बिगड़ा हुआ रूप उसे सन्निपात कहते हैं। ऐसा अनादि से अज्ञानी मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और राग-द्वेष के मिथ्या आचरण के सन्निपात के कारण, वह जहाँ-जहाँ भटका, वहाँ-वहाँ अनुकूलता में सुख माना, प्रतिकूलता में दुःख माना। वह सन्निपाती जीव है। आहाहा! यह शरीर तो मिट्टी जड़ है, यह तो धूल है। यह कहीं इसकी चीज़ नहीं है। लक्ष्मी आदि इसकी चीज़ नहीं है, वह तो पर है। स्त्री-कुटुम्ब परिवार भी इसकी चीज़ नहीं है। वह तो पर अस्तिरूप से—पर की अस्तिरूप से टिक रहे हैं। वह कहीं तुझमें आये नहीं और तुझमें नहीं और तू उनमें नहीं। आहाहा! ऐसा इसे भान नहीं। जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ संसार में भटकने के दुःख को भोगा है। यह १९९ में आता है, देखो! १९९ कलश है

न कलश। जरा—थोड़ी सूक्ष्म बात है। यह तो बहुत सादी और संक्षिप्त (भाषा) है इसमें।

**भवसम्भवविषभूरुहफलमखिलं दुःखकारणं बुद्ध्वा।**
**आत्मनि चैतन्यात्मनि सञ्जातविशुद्धसौख्यमनुभुञ्जे॥१९९॥**

श्लोक तो बहुत छोटा है, परन्तु भाव बहुत गहरे हैं। **श्लोकार्थः—**कहते हैं, **भवोत्पन्न...** है न अर्थ? १९९। **(-संसार में उत्पन्न होनेवाले) विषवृक्ष के समस्त फल को....** आहाहा! चार गति में इसने जो पूर्व में पुण्य और पाप के भाव किये हैं, उसका इसे बन्धन हुआ। उसके फलरूप से, जहर के वृक्ष के फल जैसे होते हैं, वैसे यह चार गति के भव और फल, वह जहर के वृक्ष के फल हैं। आहाहा! खबर नहीं। भगवान आत्मा अमृत का सागर है, सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा है। सत् अर्थात् शाश्वत्। नीचे दो बात कहेंगे। एक, संसार के फल को अनुभवता था, वह अब छोड़ देता हूँ, ऐसा कहते हैं। ...भाई!

**मुमुक्षु :** मूर्खाई को छोड़े?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उस मूर्खाई को छोड़े, ऐसा कहते हैं। वह मेरी मूर्खाई है। आहाहा! कहीं स्वर्ग का भव मिला... वह तो अनादि का है आत्मा। नित्य है। उसकी उत्पत्ति कहीं है? सादि है? अनादि है। और अनन्त काल सत्रूप से तो रहेगा। उस चीज़ को भव के अन्दर... भव अर्थात् चौरासी के अवतार... आहाहा! स्वर्ग का अवतार भी जहर के वृक्ष का फल है। यह सेठाई, मलूकचन्दभाई! जहर के वृक्ष का फल है।

**मुमुक्षु :** मुनि तो ऐसा ही कहे न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मुनि नहीं, वस्तु का स्वरूप ऐसा है। बराबर होगा? क्या कहते हैं? देखो!

**भवोत्पन्न...** भव अर्थात् संसार, चार गति, चौरासी के अवतार। उसमें से उत्पन्न होते जहर के विषवृक्ष के समस्त फल को... अरेरे! पुण्य और पाप के फल, वे सब जहर के वृक्ष के फल हैं। सूक्ष्म बात है, भगवान! तूने तेरी जाति को जाना नहीं और जाति में क्या है, उसकी इसे खबर नहीं। और खबर बिना जगत के जंजाल की खबर की, होशियार होकर, यह संसार के जहर के वृक्ष को अनुभव करता है। पाँच-पच्चीस

करोड़वाला आसामी हो या निर्धन हो... निर्धनता, वह दुःख नहीं, इसी तरह सधनता, वह सुख नहीं। निर्धनता में ऐसा मानता है कि अरे! मैं निर्धन हूँ। ऐसी दीनता का भाव, वह उसे दुःख देता है और सधन जो पाँच-पच्चीस लाख या करोड़-दो करोड़ हो, वह तो जड़-मिट्टी-धूल है। वह मेरे हैं और उसमें मुझे सुख है—ऐसी कल्पना-मिथ्याभ्रान्ति, उसे दुःख देती है। समझ में आया?

यहाँ तो सब पूरा संसार लिया है। **संसार में उत्पन्न होनेवाले...** बराबर होगा यह? मलूकचन्दभाई! यह क्या तुम्हारे? न्यालचन्द मलूकचन्द, लो। दुःखी कहेंगे उसे? दो करोड़ रुपये हैं उसके पास—इनके लड़के के पास। इनके पास नहीं, लड़के के पास हैं। दो करोड़ ऐसे, आहा! और वापस उसे पुत्र एक भी नहीं, एक लड़की है। सुखी नहीं कहलाये वह? अरे! भान नहीं, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा! लक्ष्मी और परद्रव्य का लक्ष्य और परिचय जहाँ करने जाता है, वहाँ मिथ्यात्व और अज्ञान खड़ा होता है। इसे उसकी खबर नहीं। अरेरे! चौरासी के अवतार में... ऊपर कहा न! अरे! संसार में मैं मारा गया। आहाहा!

अनन्त-अनन्त भव में कहीं मेरी आनन्द की सम्पदा मैंने नहीं देखी। मैं सच्चिदानन्द प्रभु हूँ, सत् हूँ। सत् है। (सच्चिदानन्द)= सत् अर्थात् शाश्वत्, चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द अर्थात् शान्ति—सुख। ऐसा मैं आत्मा, उस मेरी सम्पदा को मैंने नहीं देखा। मेरी सम्पदा को मैंने नहीं माना। आहाहा! और यह शरीर लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति धूल जगत की जड़, उसे मैंने सम्पदा माना, मैं दुःखी होकर मर गया हूँ। कहो, बराबर होगा यह? क्या बराबर है? कहाँ ऐसे कपड़े पहने, यह दहेगांव (में) मकान बनाया, और यह हीराभाई जैसा लड़का।

**मुमुक्षु :** अब आप इनकार करते हो। ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल भी नहीं। किसका पुत्र? वह तो आत्मा भिन्न है। उसका आत्मा भिन्न, उसे शरीर भिन्न। आत्मा को उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा!

भगवान! तेरी जाति में महा आनन्द की सम्पदा पड़ी है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमेश्वर जो एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में तीन काल और तीन लोक जाने। ऐसी

जो आत्मा की सर्वज्ञशक्ति थी, वह प्रगट की अरिहन्तदेव परमात्मा ने। और उनकी वाणी में आया वीतराग की वाणी में कि भाई! भवोत्पन्न—संसार के जहर के फल हैं ये सब। आहाहा! लक्ष्मी कुछ दो-पाँच-दस लाख हो, मैं चौड़ा और गली सकड़ी। हम बहुत बढ़ गये। सूजन बढ़ी, सुन न! सूजन, वह कहीं निरोगता कहलाती है? वह सूजन समाये तब चिल्लाहट मचायेगा अन्दर से। तुझे खबर नहीं। इसी प्रकार यह लक्ष्मी और शरीर धूल—मिट्टी के कारण तुझे प्रमोद आता है कि हम कुछ सुखी हैं। भाई! वह तो सूजन है। वह सूजन का कोठा है। कोठा समझे? यह तो अपनी काठियावाड़ी भाषा गुजराती। सूजन का कोठा जाड़ा। कहीं निरोगता का जाड़ा है वह? आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं।

तेरी अन्तर्लक्ष्मी (जैसी) भगवान त्रिलोकनाथ ने अरिहन्त परमात्मा ने प्रगट की। वह प्रगट की कहाँ से? कहीं बाहर से आयी है वह? केवलज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त बल, अनन्त वीर्य, वह परमात्मा को प्रगट हुआ, वह कहीं बाहर से आता है? अन्दर में पड़ा है वह सब, परन्तु इसे कहाँ खबर? बाहर में भटकाभटक। 'भटकत द्वार द्वार लोकनके, कूकर आशा धारी...' कुत्ता जैसे दस बजे रोटी के लिये जाली के पास बैठकर ऐसे टकटकी लगाता है, हों! अब उघाड़े तो रोटियाँ मिले। यह कुत्ता, जाली होती है (उसके) बाहर बैठे। गन्ध आवे ने रोटियों की और सब्जी की। अब मिलेगी। उसी प्रकार अज्ञानी... आनन्दघनजी में शब्द है 'भटकत द्वार द्वार लोकन के, कूकर आशा धारी...' कुत्ते की भाँति जहाँ-तहाँ मुझे यहाँ मिलेगा... मुझे यहाँ मिलेगा... मुझे पैसे मिलेंगे... इज्जतदार होऊँगा, अधिकारी होऊँगा, सेठिया होऊँगा, संघवी होऊँगा, प्रमुख होऊँगा। मर गया भिखारी...। कुत्ते की भाँति ऐसी आशा रखकर अनादि से दु:खी है। बराबर होगा?

**भवोत्पन्न...** यह एक ही शब्द कहा है पूरा। चाहे तो सेठरूप से अवतरित हो, चाहे तो नरकरूप से अवतरित हो, चाहे तो स्वर्गपने अवतरित हो। परन्तु वह सब विषवृक्ष के फल हैं। आहाहा! बापू! यह तेरा अमृतस्वरूप भगवान उससे विरुद्ध जहर के फल हैं, वह सब। आहाहा! पाटनीजी! ऐसे लाल-पीले लगे...! बाह्य में पैसा हो, शरीर ठीक हो, रूपवान शरीर हो और व्यवस्थित जठराग्नि, चूरमा के तीन लड्डू पचते हों और

अरबी के भुजिया। डकार ओ... सांढ़ की भाँति ओ... करे। यह सुखी है वह? दुःखी है, भाई! वह पर की आशा की कल्पनायें विकल्प सब दुःख है, भाई! जहर के वृक्ष के समस्त फल को, आहाहा! **दुःख का कारण जानकर...** भाई! इस आत्मा के आनन्द के फल के अतिरिक्त पुण्य-पाप के भाव से पूर्व में बँधे हुए कर्म, वह तो जहर का वृक्ष है। आहाहा! उससे सामग्री अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, वह सब जहर के वृक्ष के फल हैं। मूलचन्दभाई! बराबर होगा यह? तुम्हारे लड़के अमेरिका में पढ़ें। बापूजी! बापूजी! लिखें ऐसे अन्दर।

**मुमुक्षु :** उससे क्या मिला?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बापूजी! हमको यहाँ दिक्कत नहीं, हों! हम दस हजार वेतन महीने में लेते हैं। थोड़ा सा पढ़ते हैं और वेतन लेते हैं। ऐई! यह तुम्हारा गया था न अभी। उससे पूछा था। आया न अभी अमेरिका से। कहा, वहाँ क्या वेतन मिलता था? कि दस हजार महीने। परन्तु दस हजार में बचे कितना? खर्च का पार नहीं होता। दुःखी... दुःखी बेचारा। वह तो और लड़का ऐसा कहता था... अमेरिका गया था। अभी आया न! यहाँ आवे, वह मूर्ख है, ऐसा लिखता था। अमेरिका में आवे, वह मूर्ख है। कहीं शान्ति और धर्म की गन्ध नहीं होती। मकान—बड़ा मकान। हजीरा समझे न? ४८-४८ मंजिल के। और बैठकर ऊपर चढ़ना। क्या कहलाता है तुम्हारे? लिफ्ट। आहाहा!

इसी प्रकार चार गति में... यहाँ तो वह भी दुःखी है, (परन्तु) उसे भान नहीं। आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, वह अमृत का सरोवर—सागर आत्मा है। अरे! वहाँ कभी पानी पीने को नहीं गया। आहाहा! मीठा मधुर आनन्द का सरोवर भरा है। कैसे जँचे?

**मुमुक्षु :** परन्तु बापू! मायाजाल नहीं....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह मायाजाल की है इसने न? किसने की है? बस, तब हो गया। करे, वह छोड़े। मोहनभाई है न। यह सब की है किसने? खड़ी उसने की। अतीन्द्रिय आनन्द का सरोवर भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ... 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं' आता है या नहीं? आहाहा! अभी आता था न! बोलते थे। सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी ने तीन काल, तीन लोक देखे, उन्होंने धर्म कहा, उस आत्मा के

आनन्द में एकाग्र होना, उसका नाम धर्म। आहाहा! गजब व्याख्या! जहाँ अमृतसागर प्रभु आत्मा है। यह पुण्य-पाप के भाव और फल तो दुःख, जहर है। आहाहा! वर्तमान में दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के भाव, वह शुभ है, परन्तु है राग और जहर है; इसी प्रकार हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग-वासना भाव पाप और जहर है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! इसकी उसे खबर नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **( -संसार में उत्पन्न होनेवाले )...** भव का संसार कहा। **विषवृक्ष के समस्त...** अब मैं इस फल का छोड़ता हूँ। अरे! मैंने बहुत दुःख भोगे। चौरासी के अवतार स्वर्ग के, नरक के करके दुःखी हुआ हूँ। अब उस फल को छोड़ता हूँ। उस दुःख के फल का मेरा लक्ष्य वहाँ से अब छोड़ देता हूँ, ऐसा कहते हैं। क्या करके छोड़ता हूँ? उसे **दुःख का कारण जानकर मैं....** ओहो! संक्षिप्त में दो ही बात की है। **चैतन्यात्मक आत्मा में....** भगवान आत्मा, वह तो ज्ञानस्वरूप और आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है। किस गज से मापे? इसका गज छोटा। आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा... यह देह के रजकण तो मिट्टी-धूल है, यह वाणी जड़ है, मन अन्दर विचार में निमित्त है, वह जड़ है, कर्म जड़ है, पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वे भी अचेतन-जड़ हैं। उसमें चैतन्यस्वरूप का ज्ञान—चैतन्यस्वभाव उसमें कहीं नहीं है। समझ में आया? **चैतन्यात्मक आत्मा...** ऐसा शब्द लिख है न? किसलिए ऐसा लिया है? चैतन्य ज्ञानानन्द ज्ञानस्वरूप आत्मा। यह पुण्य-पाप के भावस्वरूप आत्मा नहीं। आहाहा!

मैं इस संसार के राग-द्वेष के भाव और उसके फल—जहर के फल, अरेरे! खाकर—अनुभव करके चौरासी के अवतार में दुःखी था। उसे अब मैं दुःख के कारण जानकर, मेरी रुचि वहाँ से बदल देता हूँ। आहाहा! समझ में आया? अरे! भगवान आत्मा आनन्द का धाम... जैसे छोटी पीपर में चौंसठ पहरी चरपराई भरी है, उसे घोंटने से बाहर आती है। चौंसठ पहरी कहीं पत्थर में से नहीं आती। उसमें शक्ति है, प्राप्त की प्राप्ति है, उसमें है, उसमें से आती है। समझ में आया? पीपर होती है न छोटी पीपर, यह छोटी पीपर। घोंटे पत्थर से चौसठ पहर चरपराई... अपने (गुजराती में) तीखाश कहते हैं। चरपराई बाहर आवे, वह कहाँ से आयी? दाना तो छोटा, रंग में काला, कद में छोटा और शक्ति से चौंसठ पहरी अर्थात् रुपया-रुपया चरपराई से भरा हुआ और हरा रंग....

उसी प्रकार यह भगवान आत्मा देह के प्रमाण में उसका अवगाहन लगता है। उसका अवगाहन गम्य है। और उसमें पुण्य और पाप के भाव की कालिमा अर्थात् जहर की मिठास दिखती है। काला है न वह दाना। इसी प्रकार पुण्य और पाप का मैल, वह काला-जहर है। परन्तु अन्दर में जैसे चौंसठ पहरी तीखाश—चरपराई, हरा रंग आदि से भरपूर है, उसी प्रकार भगवान आत्मा अन्दर की शक्ति में अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान भरा हुआ है। वह पीपर का माने, इसका नहीं। गजब परन्तु! इसी प्रकार यह वास्तविक बात है। ऐसी यह वास्तविक बात है। उसमें था वह आया। कोयले को, कंकड़ को घोंटे, कोई चौंसठ पहरी चरपराई नहीं आती। क्योंकि उसमें कहाँ थी? उसमें (पीपर में) तो थी। इसी प्रकार इस शरीर को पिघला डाले क्रियाकाण्ड करके, इससे कहीं अमृत आवे, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अन्दर में भगवान आत्मा... **चैतन्यात्मक आत्मा...** यह शब्द अकेला पड़ा है। चैतन्य-आत्मक... आत्मक अर्थात् स्वरूप। चैतन्यस्वरूप आत्मा कि जिसमें शरीर, वाणी, मन तो नहीं, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम जो राग हैं, उसमें चैतन्यपना नहीं। उस राग से भिन्न चैतन्यात्मक आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? **मैं चैतन्यात्मक आत्मा में...** आहाहा! अरे! अब मैं करवट बदलता हूँ, कहते हैं। मैंने अनादि से पुण्य और पाप के मलिन भाव को मेरा माना और उसके फल में मैंने हर्ष और उत्साह और होंश किया, वह मेरी दृष्टि जहरदृष्टि है। आहाहा! अरे! अमृत का सागर भगवान चैतन्यस्वरूप का नाथ आत्मा अन्दर, केवलज्ञान जिसमें से प्रगट हो, उस आत्मा में से—शक्ति में से प्रगट होता है। जैसे चरपराई अन्दर भरी हुई (हो) चौंसठ पहरी... चौंसठ कहो या रुपया कहो—(सब एक ही है)। सौ पैसे का रुपया अब हुआ न, पहले तो चौंसठ पैसे का रुपया (था)। चौंसठ कहो या रुपया कहो। इसी प्रकार चौंसठ पहरी चरपराई अर्थात् रुपया-रुपया (पूर्ण) चरपराई भरी है अन्दर और हरा रंग। इसी प्रकार भगवान आत्मा में... आहाहा! अरे! विश्वास कैसे आवे इसे? कभी अभ्यास किया नहीं, सुना नहीं। समझ में आया?

मैं तो चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा हूँ। आहाहा! ऐसा मैं आत्मा में उत्पन्न... भाषा देखो न! वह संसार से उत्पन्न चार गति के फल जहर के फल। आहाहा! अब चैतन्यस्वरूप

भगवान आत्मा से उत्पन्न... आत्मा, वह वस्तु हुई और चैतन्य, वह उसका स्वभाव—गुण हुआ। अब उसकी एकाग्रता से पर्याय प्रगट हो, वह धर्म की पर्याय हुई। आहाहा! द्रव्य, गुण और पर्याय जैनदर्शन के एकड़ा का मूल। आहाहा! उसकी भी खबर नहीं होती। द्रव्य किसे कहना? इस पैसे को द्रव्य (कहे)। पर्याय किसे कहना? इस पर्याय की हमको कुछ खबर नहीं। यह यहाँ कहते हैं, मेरे आनन्दस्वरूपी भगवान को भूलकर मैंने, पुण्य और पाप के अचेतनभाव जिसमें चैतन्यपने की गन्ध और असर नहीं, ऐसे विकारीभाव को करके विकारीभाव के फल—चार गति के जहर के फल भोगे हैं। अरे! दुःख के कारण को मैंने सेवन किये। अब मैं छोड़ता हूँ। अब गुलाँट खाता है। समझ में आया?

गुलाँट समझ में आता है या नहीं? पलटा मारता है, करवट बदलता है, करवट बदलता है। इस करवट से सोता हो तो फिर इस करवट से सोता है न ऐसा करके। अमुक तो दायें करवट सोवे या यह बायें (करवट) सोवे। इसी प्रकार अनादि से मैं उल्टी करवट सो रहा था और बैठा था। जो पुण्य और पाप के विकारीभाव जहर, उनके पक्ष पर चढ़ा हुआ था। उसका फल—चार गति के दुःख मैंने भोगे हैं। उसमें कहीं ऐसा नहीं कहा कि स्वर्ग का भव सुखरूप है। ऐसा कहा है उसमें? शरीर अच्छा लगे... परन्तु यह शरीर अच्छा है, यह मान्यता दुःख है। यह तो जड़-मिट्टी—धूल है। फू.. होकर श्मशान में राख होकर उड़ जायेगा।

'रजकण तेरे भटकेंगे जैसे भटकती रेत, फिर नर तन पावे कहाँ चेत चेत नर चेत।' यह धूल रजकण श्मशान में सुलगेगी तो इतनी भी नहीं रहेगी। राख इतनी थोड़ी होती है। उसमें हवा यदि ठीक सी आयी हो तो जाओ। वह तो जड़, मिट्टी, पुद्गल है। आहाहा! उसमें मुझे मजा आता है, वह मेरा है, उसे मेरा माना, इसका नाम मिथ्यात्व और इसका नाम दुःख है। परन्तु मेरा आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, मैं तो ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा हूँ, आहाहा! ऐसे सम्यग्दर्शन की पहली दशा होने पर, सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली दशा होने पर... चारित्र तो अभी कहीं रह गया, वह तो दूसरी चीज़ है। समझ में आया? आहाहा!

अरे, मैं! ऐसा कहते हैं। मैं कौन? मैं चैतन्यस्वरूप आत्मा। जिसमें ज्ञान का

झरना झरे। पर्वत में से जैसे पानी झरे, वैसे आत्मा के अनुभव में आनन्द का झरना झरे। आहाहा! आत्मा का अनुभव होना, इसका नाम धर्म है। बाकी सब बातें हैं। पूजा, भक्ति, दान, दया और व्रत, यह सब उथले विकल्प में गया, जहर में गया। आहाहा! भगवान तो चैतन्यस्वरूप प्रभु आत्मा है। ज्ञान का कन्द, आनन्द का दल वह आत्मा। ऐसा आत्मा... 'यह आत्मा' ऐसा अन्तर्मुख होकर जहाँ अनुभव, प्रतीति की, तो कहते हैं, उस आत्मा में से उत्पन्न होते... वह उत्पन्न (हुई), वह पर्याय है। आत्मा, वह द्रव्य—वस्तु है। चैतन्यस्वरूप, वह उसका गुण है—उसकी शक्ति है, उसका स्वभाव है और स्वभाव की अन्तर एकाग्रता होने पर जो आनन्द की अवस्था प्रगट हो, ऐसे **विशुद्धसौख्य को अनुभव करता हूँ।** आहाहा!

मैं जहर के वृक्ष को भोगता था अनादि से, उसे अब छोड़कर मैं भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप... चैतन्यस्वरूप आत्मा की अन्तर में दृष्टि करके अन्तर का आश्रय लेकर सुख जो प्रगटे... वह जहर था, दुःख था, यह सुख है। वह धर्म की दशा, आनन्द की दशा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? धर्म हो और अतीन्द्रिय आनन्द न आवे, वह धर्म नहीं। समझ में आया? आहाहा! भारी कठिन बात! उसमें जहर कहा, यहाँ सुख कहा। आत्मा में से उत्पन्न हुआ... जैसे पीपर में से उत्पन्न हुई चरपराई, चार पहरी, छह पहरी, दस पहरी और चौंसठ पहरी, ऐसे समकित में त्रिकाली भगवान आत्मा का भाव स्वसन्मुख होकर प्रतीति में आने पर अमुक सुख की—आनन्द की उत्पत्ति हो, उस आनन्द को अब अनुभव करता हूँ। इसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। अरे, गजब व्याख्या भाई!

**मुमुक्षु :** यह तो घरबार छोड़े तब हो न? साहेब!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** घरबार छोड़े हुए ही पड़े हैं। कब घुस गये थे इसमें? घर, घर में रह गया। तुम्हारा मकान—कमरा यहाँ है? गली वहाँ रह गयी है। साथ में कब थी? वह तो जड़ में है। जड़ की आत्मा में नास्ति है और चैतन्य आनन्दस्वरूप की आत्मा में अस्ति है। दो अँगुली है उसमें, इस अँगुलीरूप से अस्ति है, इस अँगुलीरूप से नास्ति है। तो वह टिकी रहे ऐसी है। स्वपने सत्ता से है, पर की सत्ता से वह नहीं। लॉजिक-न्याय से तो समझेंगे या नहीं? समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा यह ज्ञान और आनन्दस्वरूप से अस्ति है और पुण्य और पाप और यह शरीर और मकान से वह नहीं। आहाहा! अरे! कभी सुना नहीं होगा। यह तो कहे, सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो। परन्तु किसकी सामायिक? अभी आत्मा कौन है, उसे जाने बिना सामायिक आयी कहाँ से तुझे? प्रतिक्रमण करो और प्रौषध करो, मन्दिर बना दो, दो-पाँच लाख का, जाओ कल्याण। धूल में भी नहीं कल्याण, सुन ने! मन्दिर तो जड़ है, पर है। पर को बनावे कौन? उसमें कदाचित् भाव हो तो शुभ है, वह पुण्य है, वह जहर है। गजब बात है।

**मुमुक्षु :** दुःख तो नहीं न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दुःख है। भाई! तुझे खबर नहीं।

अमृत सरोवर प्रभु... आहाहा! अभी गाया था न कल किसी ने, नहीं? वह भाई का, नहीं? 'सरोवर कांठे रे...' किसी ने गाया था। नागरभाई के यहाँ। नागरभाई ने गाया था कागज। कल वह आहार करते समय, नहीं?

'सरोवर कांठे रे मृगला तरस्या रे लोल, दोडे हांफी झांझवां जलनी काज,
अरेरे! एने साचा वारि नहीं मळे रे लोल।'

अपने बींछिया का है न रमेश... रमेश। उसने बनाया है। मण्डली है न बींछिया की वहाँ घाटकोपर, मुम्बई। लड़का तो अभी कुँवारा है, परन्तु उसे रस बहुत है। यह स्वयं ने बनाया है। 'सरोवर कांठे रे मृगला...' मृगला जैसा आत्मा... यह सरोवर अन्दर भरा है आनन्द का नाथ अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु... जो देवाधिदेव तीर्थंकर ने दशा प्रगट की, उन सब दशाओं का सागर आत्मा है। आहाहा! परन्तु कैसे जँचे? यह सरोवर किनारे रे मृग प्यास, दौड़े हाँफे... दौड़े हाँफे—हाँफ कर... कर-करके यहाँ जाना और यहाँ जाना और यहाँ जाना। समझ में आया? दहेगाम छोड़कर मुम्बई और मुम्बई छोड़कर यहाँ और यहाँ... ऐई मलूकचन्दभाई! नागनेश छोड़कर कहाँ गये थे पहले? राणपुर गये थे। राणपुर छोड़कर स्विट्जरलैण्ड। एक लड़का स्विट्जरलैण्ड, एक लड़का वहाँ भटके मुम्बई। उसके पास तीन करोड़, मुम्बईवाले के पास तीन करोड़ है। पूनमचन्द मलूकचन्द प्रसिद्ध है। इनका लड़का है। एक वह न्यालचन्द मलूकचन्द, वह

और स्विट्ज़रलैण्ड में रहता है। एक के पास दो और एक के पास तीन करोड़, हों! कमर तोड़ डाले ऐसी। ममता... ममता उसके पास है। वस्तु तो जड़ है। आहाहा! अरेरे! तुझे खबर नहीं, बापू! ऊपर आ गया है अपने। देखो!

**अहो! मेरे हृदय में...** १९८ ऊपर कलश। **स्फुरायमान यह निज आत्मगुणसम्पदा को कि जो समाधि का विषय है...** आहाहा! यह लोगस्स में नहीं आता? लोगस्स में आता है न! 'समाहिवर मुत्तं दिंतु...' भगवान जाने इसका अर्थ क्या होगा? पहाड़ा बोले जाये। 'लोगस्स उज्जोयगरे धम्मतित्थयरे जिणे, अरिहंते कित्तइस्सं...' यह आवे न पीछे से। 'एवं मये अभिथुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा... समाहिवर मुत्तमं दिंतु।' जय महाराज! समाधि किसे कहना और वर किसे कहना? पहाड़ा बोले जाये, भान कुछ नहीं होता। समझ में आया? अपने आता है लोगस्स में दिगम्बर में। 'समाहिवर मुत्तमं दिंतु।' लोगस्स में आता है न, कण्ठस्थ किया है न चन्द्रकान्तभाई? कण्ठस्थ किया है, ऐसा कहा है। पाठ कहाँ किया है? कण्ठस्थ किया है। आहाहा! 'समाहिवर मुत्तमं दिंतु...' हे नाथ! तीर्थंकरों को (कहते हैं)। निमित्त से (कथन है)। वे कहाँ दे ऐसा है? मुझे मेरी समाधि दो। समाधि अर्थात् यह समाधि कही वह। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीन को यहाँ समाधि कहते हैं और उस समाधि का विषय आत्मा है। समझ में आया? आहाहा!

है, ऊपर है न। ऊपर कलश है। कल आ गया है? **अहो! मेरे हृदय में स्फुरायमान—** प्रगट चैतन्य भगवान **निज आत्मगुण सम्पदा—**अपने आत्मगुण की लक्ष्मी... आहाहा! निज की लक्ष्मी की खबर नहीं होती और धूल की लक्ष्मी को बाँथ में भरता है। बाथोडिया भरे जहाँ-तहाँ। हैरान... हैरान... आहाहा! अरेरे! मैंने मेरी सम्पदा जो समाधि का विषय है, कहते हैं। अर्थात्? जो सम्यग्दर्शन, जिसने स्वरूप को ध्येय माना, सम्यग्दर्शन का ध्येय वह आत्मसम्पदा है, सम्यग्ज्ञान का ध्येय, विषय वह आत्मसम्पदा है और सम्यक्-चारित्र का ध्येय, वह आत्मसम्पदा है। आहाहा! ऐसी कैसी बातें? समझ में आया? तथा पुण्य और पाप का विषय वह परचीज़ है। भगवान आत्मा अन्तर की दृष्टि जहाँ पूर्णानन्द प्रभु....

तीर्थंकरों ने सर्वज्ञ परमेश्वरों ने 'केवली पण्णत्तो धम्मो' जो कहा, वह यह धर्म।

कि जो अन्तर की शान्ति और रागरहित श्रद्धा, ज्ञान, उसका विषय भगवान निज सम्पदा आत्मा है। आहाहा! वह क्या होगा? ऐसा धर्म होगा जैन का? यह सब कन्दमूल नहीं खाना, मन्दिर बनाना और सामायिक करना, ऐसा सब अभी तक सुना था। ऐसा वह कुछ... ? अरे, सुन न! वीतरागधर्म का मार्ग यह है। समझ में आया? यह समाधि में आयेगा। वीतरागभाव से जो आत्मा को ध्यावे... है न गाथा बाद में। आहाहा! वह वीतरागभाव कहो या समाधि कहो या सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र कहो। आहाहा!

सम्यग्दर्शन किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और हो गये श्रावक और मुनि। हम श्रावक। थैली में चिरायता और ऊपर लिखा शक्कर। बड़ी रेशमी थैली। अभी तो प्लास्टिक की आयी है। वह तो बहुत सुन्दर आवे। अन्दर हो चिरायता, ऊपर लिखे शक्कर। कड़वाहट मिट जाती होगी? इसी प्रकार हम श्रावक और मुनि, (परन्तु) अन्दर का कुछ भान नहीं होता (कि) आत्मा, वह क्या। मिथ्या जहर पड़ा हो, राग मेरा, पुण्य मेरा, पुण्य से मुझे धर्म होता है—ऐसी जहरदृष्टि तो अन्दर में पड़ी है। आहाहा! ऊपर नाम दे श्रावक और साधु। वह चिरायते की थैली पर शक्कर लिखने जैसा है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, अहो! समाधि का विषय **मैंने पूर्व में एक क्षण भी जाना नहीं।** है न ऊपर के श्लोक में, ऊपर के श्लोक में। आहाहा! बड़ी-बड़ी अमेरिका की परीक्षायें दीं। इनके लड़के ने दी थी। वहाँ गये थे न सुमनभाई। अभी बहुत लोग जाते हैं वहाँ मुँडाने। मानो कुछ होगा वहाँ। बहुत वर्ष हो गये न। इनके पुत्र सुमनभाई गये थे न अमेरिका। तब तो ऐसा कहा था भाई ने। क्या भाषा थी? कुंचे मरने जाता है। इकलौता लड़का, हों! अभी दस हजार वेतन महीने में। मुम्बई में है। आठ हजार। दस हजार... दस हजार। अंक गिनना है न। धूल कब तेरी थी? सुन न! यह सब जहर के फल हैं। आहाहा! वह ३० रुपये में जब थे... क्या कहलाता है? तलाटी... टपाली। वह तलाटी टपाली कहलाये। समझ में आया?

अरे भगवान! इस पर की सामग्री से तेरा माप निकालना, कलंक है, प्रभु! एक क्षण में बिखर जायेगा भाई! वह तो सन्ध्या के रंग हैं। वे सन्ध्या के रंग हैं, नाथ! तुझे खबर नहीं। वह सन्ध्या का पीला रंग दिखता है, ऐसे सूर्यास्त हुआ, एक क्षण में

अन्धकार। आहाहा! बापू! यह सब सामग्रियाँ जड़, अचेतन, प्रलय, नाश होने के योग्य हैं। भगवान अविनाशी चिदानन्द प्रभु उसे जिसने सम्यग्दर्शन में विषय बनाया, जिसने आत्मा की सम्पदा को सम्यक् श्रद्धा द्वारा विषय बनाया, वह लक्ष्मीवन्त है, वह सुखी है, वह धर्मी है। मूलचन्दभाई! आहाहा! दो ही शब्द कहे हैं मात्र। संसार से उत्पन्न हुआ जहर, आत्मा से उत्पन्न हुआ सुख। सुख, वह आत्मा से उत्पन्न होता है। यह बाहर की कल्पना (कि) सुखी हैं और धूल है न! समझ में आया?

हजार-हजार का दिन का बड़ा वकील लावे, दो हजार। फूलकर डोडा हो अन्दर। आहाहा! जज के समक्ष दलील करे अन्दर से। इस बार लन्दन में ऐसा चुकादा दिया है, इसलिए उसका—इस केस का ऐसा चुकादा किस प्रकार से देना चाहिए। मानो क्या बड़े... ? वह वकील थे न। यह सब किया है न इन्होंने दलील। रामजीभाई ने किया है न सब। आहाहा! वह मानो देते समय उसे ऐसा हो जाये कि मैं देव का पुत्र ऊपर से उतरा। आहाहा! अरे! भगवान! यह सब ज्ञान तो अज्ञान है। यह दुःख का ज्ञान है। आहाहा! जहर है, लो। समझ में आया?

यह वकालत का ज्ञान और डॉक्टर का ज्ञान, वह सब जहर है। आहाहा! है कोई डॉक्टर-बॉक्टर? आहाहा! यह रामजीभाई का वकालत का कहा नहीं था कि तुम्हारी बुद्धि कैसी? २०० रुपये लेते थे एक दिन के। पाँच घण्टे के दो सौ। बुद्धि कैसी? कि अज्ञान, मूर्खता से भरपूर, कुज्ञान। आहाहा! भगवान! यह पर का ज्ञान, वह तो अन्धकार, जहर है। आहाहा! कैसे जँचे? भगवान आत्मा निजसम्पदा का नाथ, आहाहा! यह तो मेरे समाधि का विषय है। यह पूर्व में (एक) क्षण भी जाना नहीं। आहाहा! एक समयमात्र भी मैंने आत्मा परमानन्द की मूर्ति ऐसी श्रद्धा नहीं की। आहाहा! यह जगत की जंजाल, उसे अपना मानकर दुःखी हुआ है। है न इसमें? देखो! है न!

**तीन लोक के वैभव के प्रलय के हेतुभूत...** ऊपर के कलश में है। तीन लोक का वैभव ऐसा मेरा आत्मा। आहाहा! आनन्द, ज्ञान और शान्ति (आदि) अनन्त-अनन्त शक्ति से भरपूर ऐसा मेरा आत्मवैभव, तीन लोक का वैभव, वह मैं हूँ। अरेरे! यह **प्रलय के हेतुभूत दुष्कर्म...** जड़कर्म के लक्ष्य से, अरे! मेरा तीन लोक का वैभव नाश हो गया

पर्याय में। आहाहा! अरे! मैंने कर्म की संगति की—जड़कर्म के संग में गया, इससे मेरी त्रिलोकनाथ की वैभवदशा घात हो गयी पर्याय में। आहाहा! अब जानने में आया कि यह सब बात झूठी है। मेरा आत्मा निज आनन्द से भरपूर है। उसमें बसना, उसे वास्तु कहते हैं, लो! यह वास्तु और घर अनन्त बार हुए। दस-दस लाख के मकान, बीस-बीस लाख के मकान। समझ में आया?

गोवा में एक व्यक्ति अपना जैन है। चालीस लाख का मकान है। चालीस लाख का एक बँगला। पूँजी दो अरब और चालीस करोड़, जहर का वृक्ष। आहाहा! सही परन्तु! दुनिया से भगवान की बात अलग है। समझ में आया? वह दुःखी के सरदार हैं सब। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि अब मैं, मेरे भगवान में से उत्पन्न हुआ आनन्द, उसके निमित्त से होनेवाला यह संयोग, वह तो दुःख... दुःख... दुःख और जहर है। आहाहा! उसमें तो यह कहा न, तीर्थंकरप्रकृति, वह जहर का फल है। आहाहा! १४८ प्रकृति ली है न। तीर्थंकरप्रकृति जहर की प्रकृति है। उसके फलरूप से संयोग, वह मैं नहीं। आहाहा! आत्मा जैसा और जैसे है, वैसा जब तक माने नहीं, तब तक उसने आत्मा माना नहीं कहलाता।

आत्मा तो चैतन्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, अतीन्द्रिय आनन्द की खानस्वरूप है। ऐसा भगवान आत्मा मैं, अब बाहर की दृष्टि छोड़कर अन्तर की दृष्टि में जाता हूँ। जिस दृष्टि का विषय भगवान अखण्ड आत्मा है। ऐसे आनन्द को, अब आत्मा से उत्पन्न हुए सुख को... कैसा सुख? **विशुद्धसौख्य...** ऐसा शब्द प्रयोग किया है। इस जगत की कल्पना का सुख, वह तो मलिन दुःख है। आहाहा! पद्मिनी जैसी स्त्री हो, शरीर कोमल, रूपवान मक्खन जैसा हो, पाँच-पचास लाख की पूँजी हो, पाँच-पाँच लाख की आमदनी महीने में हो, बड़ा मूर्ख है, जहर में पड़ा है। ऐ मूलचन्दभाई! अरे, परन्तु ऐसा गजब! इस दुनिया में पहली कुर्सी मिले इसे, लो। मीठा लगे। लड़के अमेरिका से आयेंगे तब, आहा! कहाँ से उतरकर आये मानो? विलायत से। परन्तु इसे हूंफ (अभिमान) सब हो जाये, हों! परन्तु कितना मूर्ख! अरे! सब जहर का पठन है। आहाहा! दुःख के समुद्र में डुबकी लगाने जैसा है।

यह आनन्द का समुद्र भगवान, उसके अन्दर एकाग्र होने से जो आनन्द आवे,

उसे मैं भोगनेवाला हूँ। धर्मी को यह धर्म है। आहाहा! अरे! यह बात इसे कान में पड़े नहीं, इसे श्रवण में आवे नहीं, वह कब उसका ज्ञान करे? कब रुचि करे? कब अनुभव करे? आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा, उसमें मैं अन्दर जाता हूँ, एकाग्र होता हूँ। मैं राग में और पुण्य में एकाग्र था, वह मैं दुःख में डूब रहा था। अब आनन्द का सागर मेरा प्रभु (जो) भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने कहा, आहाहा! ऐसा चैतन्यस्वरूप आत्मा, उससे उत्पन्न विशुद्धसौख्य, आहाहा! इसका नाम धर्म। गजब बात, भाई! यह सब मन्दिर और पूजा और यात्रा और धर्म कहाँ गया फिर? वह तो पुण्यभाव था, पुण्यभाव। समझ में आया? धर्म दूसरी चीज़ है, भाई! एक सेकेण्ड का धर्म तो अनन्त जन्म-मरण को गला डालता है, उसे धर्म कहते हैं। समझ में आया?

**विशुद्धसौख्य का अनुभव करता हूँ।** आहाहा! क्या कहते हैं यह? अपनी बात करके जगत को समझाते हैं कि मैं एक चैतन्यस्वरूप आत्मा हूँ, ऐसा तू आत्मा चैतन्यस्वरूप है। ऐसे चैतन्यस्वरूप आत्मा में... आहाहा! ऐसे राग और पुण्य के ऊपर बुद्धि है, वह तो पापबुद्धि है, मिथ्याबुद्धि है। छोड़ प्रभु! तुझे चार गति के दुःख टालना हो तो। उसमें से छूटकर यहाँ भगवान आत्मा आनन्द का नाथ अन्दर, अतीन्द्रिय आनन्द, हों! जिसे स्वर्ग के इन्द्र और करोड़ों अप्सरायें... धान के पिण्ड नहीं, यह तो धान के पिण्ड रूपवान लगे। दो दिन न खाये तो ऐसे चमड़ी सूख जाये, आँखें ऐसी हो जाये। वे अप्सरायें जिन्हें धान बिना अमृत की डकार आवे। ऐसी करोड़ों अप्सरायें, उनका जो कल्पना का सुख, वह जहर है। आहाहा! अरे! मेरा आनन्द, उसे लूटकर मैंने इस राग को—विकार को उत्पन्न किया, मैंने जहर किया, ऐसा कहते हैं।

अब मैं, आत्मा आनन्द की मूर्ति प्रभु हूँ, उसमें अन्तर्मुख होकर मेरे आत्मा से उत्पन्न हुए अनाकुल आनन्द की दशा को अब मैं अनुभव करता हूँ, इसका नाम धर्म है। बाकी सब बातें करते हों, वह सब थोथा है। बिना एक का शून्य है। कोरे कागज में करोड़ शून्य और अंक न हो। समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा, वर बिना की बारात। यह किया और यह किया और यह किया। परन्तु वर—आत्मा कौन है, यह जाना है?—कि नहीं, यह हमको खबर नहीं। बारात जोड़ दी। ऐसा भगवान आत्मा, आहाहा! इस देह के देवल में और राग की आड़ में प्रभु अन्दर विराजता है। समझ में आया?

ऐसे **विशुद्धसौख्य का अनुभव करता हूँ।** ले! ऐसी खबर पड़ गयी। मैं धर्मी हो गया, ऐसी खबर पड़े? आहाहा! बापू! धर्म अर्थात् आत्मा का आनन्द आवे, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, उसका नाम धर्म। धर्मी ऐसा भगवान आत्मा, उसका आनन्द ऐसा स्वभाव—धर्म, उसकी एकाग्रता वह आनन्द की पर्याय आवे, उसका नाम धर्म। आहाहा! द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों का ज्ञान कराया। समझ में आया? लो, १९९ गाथा (कलश) हुई। संसार की करवट बदलकर आत्मा में आये। यहाँ बात लाये। यह वास्तु करना है। भीखाभाई! सब बातें थोथा। बड़ा करोड़ों का बँगला बनाया और रहा अनन्त बार। आहाहा! यह जॉर्ज मरकर गया न, तब साढ़े तीन करोड़ का बँगला तब, हों! अब तो कीमत बढ़ गयी। मर गया तो खबर नहीं पड़ी कि रात्रि में कब मर गया। जॉर्ज मर गया था न यहाँ। डॉक्टर बड़े-बड़े दस-दस हजार के वेतनवाले। रात्रि में सोता था तो कब मर गया, उसकी खबर नहीं। सवेरे ऐसे देखे तो वहाँ, साहेब उठे नहीं, पोढ गये हैं। मर गया। वहाँ अब क्या होता था परन्तु पर में? आहाहा!

इस प्रकार से मृत्यु, वह तो अलग चीज़ है, परन्तु यहाँ तो आनन्दमूर्ति को पुण्य और पाप के रागवाला मानना, वह तो आत्मा की मृत्यु है। उसकी जीवित ज्योति आनन्द से जीती है, ऐसा उसका टिकता स्वरूप है। उसे ऐसा न मानकर, उसे पुण्य और पाप, शरीर और लक्ष्मीवाला मानना, वह आत्मा की निर्मल पर्याय की मृत्यु है। आहाहा! इसकी उसे खबर नहीं होती। और दुनिया की चतुराई करने बैठा हो, मानो देव का पुत्र उतरा हो। इसका ऐसा हो... इसका ऐसा हो, अमुक का ऐसा हो, कन्या का यहाँ विवाह करे तो ऐसा हो, ऐसा वर खोजना, विवाह ऐसे करना, दहेज में ऐसा देना। ओहोहो! क्या है परन्तु यह सब? सब कचरा है। समझ में आया?

ऐसे **विशुद्धसौख्य का अनुभव करता हूँ।** अब समाधि का अधिकार लेते हैं, लो। समाधि। यहाँ पहले आयी थी न! समाधि किसे कहना? आहाहा! है? **परम-समाधि अधिकार।** नौवाँ। परम समाधि। यह बाबा लोग समाधि चढ़ावे, ऐसी नहीं, हों! यह तो आधि, व्याधि और उपाधिरहित आत्मा की वीतरागीदशा का नाम समाधि है, उसका नाम धर्म और उसका नाम मोक्ष का मार्ग। समझ में आया? आधि, व्याधि और उपाधिरहित वह समाधि। आधि अर्थात् मन की कल्पनायें—पुण्य-पाप की कल्पनायें,

वह आधि है। शरीर का रोग, वह व्याधि है। यह बाहर के स्त्री-पुत्र-लक्ष्मी, वह उपाधि है। उपाधि, व्याधि और आधि से रहित, वह समाधि। आहाहा! यह 'समाहिवर मुत्तं दिंतु...' लोगस्स में यह आता है। परन्तु अर्थ की खबर नहीं होती। जय नारायण। 'लोगस्स उज्जोयगरे...' हाँक रखे। चार लोगस्स का कायोत्सर्ग करना। पूरा होकर एकदम 'णमो अरिहंताणं...' ऐई!

यहाँ कहते हैं कि **समस्त मोहरागद्वेषादि परभावों के विध्वंस के हेतुभूत परम-समाधि अधिकार कहा जाता है।** आहाहा! भगवान आत्मा... मोह अर्थात् पुण्य और पाप, वह मेरे, उसमें मुझे ठीक—ऐसा मिथ्यात्वभाव। और जगत के ज्ञेय जानने में एकरूप ही ज्ञेय सब हैं। उसके बदले दो भाग करना कि यह ठीक और यह अठीक, इसका नाम राग-द्वेष। मोह और राग-द्वेष, ऐसे जो परभाव, जहरभाव, उनके नाश का हेतु... संसार के विकारीभाव मिथ्यात्व के नाश का हेतु परमसमाधि... अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान अमृतसरोवर में अन्दर जाता है, तब उसे शान्ति मिलती है, उसे समाधि कहते हैं, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र कहते हैं। संसार के जहर को उतारने का यह मन्त्र है। समझ में आया? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)